प्रकाशक—
श्री उदय द्विवेदी
विद्यामंदिर प्रकाशन
ग्वालियर

प्रथम संस्करण
२६ मई १९६०
मूल्य [illegible] रु

मुद्रक—
श्री भगवानलाल शर्मा
नवप्रभात प्रेस
ग्वालियर

विषय

निवेदन

छिताईचरित हिन्दी का गौरव ग्रन्थ है। हिन्दी की लौकिक आख्यान काव्य धारा की श्रेष्ठ रचना के रूप मे, राजनैतिक इतिहास की घटनाओ के कथा बीज पर आधारित सर्व प्रथम प्रामाणिक रचना के रूप मे, अपने युग के सांस्कृतिक वैभव का सजीव विवरण प्रस्तुत करने वाली एक मात्र कृति के रूप मे, तत्कालीन सामाजिक आकाक्षाओ और परिस्थितियो के परिचायक के रूप मे, जायसी और तुलसी के प्रवन्ध काव्यो के प्रेरक स्रोत के रूप मे, हिन्दी भाषा और प्रबन्ध काव्यों की रचना विधा के इतिहास की प्रमुख कडी के रूप मे और सर्वोपरि उत्कृष्ट प्रबन्ध काव्य के रूप मे छिताई चरित का स्थान हिन्दी साहित्य मे अत्यन्त श्रेष्ठ है। लगभग पॉच शताब्दी पूर्व विरचित हिन्दी प्रबन्ध काव्यो की मणिमाला के इस अनुपम रत्न को उसकी समस्त आभा सहित पुन. प्रस्तुत करने का अवसर सौभाग्य पूर्ण ही माना जाएगा। नारायणदास, देवचन्द्र और रतनरग की इस महान कृति को गत कुछ शताब्दियो से हमने भुला दिया था। आज उसे हिन्दी साहित्य मे पुन उसके उचित स्थान पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास अत्यधिक आत्मसतोष का कारण हुआ है।

श्री अगरचन्द नाहटा के वक्तव्य मे छिताईचरित के प्रकाशन सम्बन्धी समस्त घटनाएं दी गई है, उन्हे दुहराने की मुझे आवश्यकता नही है। इतनी महत्वपूर्ण रचना की प्रतिया खोज निकालने के लिए हिन्दी ससार उनका सदा ऋणी रहेगा। श्री विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध सस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुर की मूल प्रति के प्रत्येक पृष्ठ के फोटोग्राफ्स श्री नाहटा जी ने मेरे पास भेज दिए और उसके पश्चात "खरतर गच्छीय वृहत ज्ञान भडार" की प्रति तथा डॉ० शिवगोपाल मिश्र द्वारा उतारी गई इलाहाबाद म्यूजियम की प्रति की प्रतिलिपि भी मेरे पास भेज दी जिनसे मैं प्रस्तुत पाठ तयार कर सका। इनके पश्चात श्री नाहटा जी ने होशियारपुर की मूल

प्रति तथा उसका पाठ एव कथासार भी मेरे पास भेज दिये। इससे अधिक कृतज्ञ मे श्री नाहटा का इस कारण हू कि उनके द्वारा मुझे इस पुस्तक को अपनी इच्छानुसार पुन' पाठ तयार करने की तथा उसकी टीका लिखने एव शब्द-सूची तयार करने की अनुमति दे दी गई। मेरे द्वारा किये गये विलम्ब के कारण उन्हे कुछ असुविधा भी हुई, क्योकि भडारो की प्रतिया शीघ्र लौटाई न जा सकी। श्री नाहटा जी ने अत्यन्त उदारता पूर्वक इन सव कठिनाइयो को मेरे कारण सहन किया।

पाठ, टीका और शब्द-सूची के कारण पुस्तका का आकार वहुत बढ गया, अतएव प्रस्तावना को सक्षिप्त करना आवश्यक हो गया। प्रस्तावना मे मैंने यथासभव अध्ययन की दिशाओ का ही सकेत किया है। मुझे विश्वास है कि अध्ययन का यह आधार प्रस्तुत हो जाने के पश्चात छिताईचरित की ओर हिन्दी के अधिकारी विद्वानो का ध्यान आकर्षित होगा और वे हिन्दी के इस गौरव'ग्रन्थ का सभी दृष्टिकोणो से अध्ययन प्रस्तुत करेंगे।

श्री डॉ० रघुवीरसिह महाराजकुमार सीतामऊ का मैं बहुत आभारी हूँ। सलहदी तोमर के विषय मे इस पुस्तक के साथ प्रकाशित करने के लिए लेख लिखने के मेरे आग्रह का डॉ० श्री रघुवीरसिह ने मान रखा और कृपा कर अपना लेख भेज दिया। उसे इस पुस्तक मे सादर एव साभार देने मे मुझे प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। छिताईचरित के अध्ययन के मार्ग मे सवसे वडी वाधा उसके रचना काल का सप्रमाण निरूपण रहा है। होशियारपुर की प्रति तथा सलहदी विषयक डॉ० रघुवीरसिह के लेख के पश्चात किसी शंका और सन्देह के लिए अव स्थान नही रहना चाहिए। प्रस्तावना मे की गई इस विषय की मेरी स्थापनाओ से भी इस दिशा मे यदि कुछ मार्गदर्शन मिल सके तव मैं उसे अपना सौभाग्य ही समझू गा। मध्यदेशीय भाषा तथा मैंनासत मे की गई स्थापनाओ की पुष्टि का दृढ आधार मुझे छिताईचरित मे मिला और इसी हेतु से प्रेरित होकर मैंने अपना अकिचन योगदान इस कृति मे किया है। उस प्रयास मे मिलने वाला आत्म-सतोष ही मेरे लिए वहुत वड़ा पुरस्कार है। जो कुछ मैंने लिखा है उससे यदि हिन्दी साहित्य के ज्ञान कोष मे किंचित भी वृद्धि हो सके तव उसे मैं अतिरिक्त लाभ के रूप मे ही ग्रहण करू गा।

इस पुस्तक के प्रकाशन के पूर्व डॉ० माताप्रसाद गुप्त का बीकानेर तथा इलाहाबाद की दो खण्डित प्रतियो के आधार पर तयार किया गया अपूर्ण पाठ भी प्रकाशित हो गया है । यह निःसंकोच रूप से कहा जा सकता है कि डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने दो भ्रष्ट और अधूरे पाठो के आधार पर जो कुछ प्रस्तुत किया है वह उन जैसे विद्वान द्वारा ही सम्भव हो सकता है । मैंने उनकी कृति का भी उपयोग किया है और उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ ।

छिताईचरित के पाठ के मुद्रण मे कुछ प्रूफ की और कुछ मेरी भूलें रह गयी है । उनका शुद्धि-पत्र दे दिया गया है । पाठक उसे ठीक करके ही पढे, अन्यथा अनेक स्थलो पर अनर्थ ही हाथ आएगा ।

विद्यामदिर
मुरार
२६ मई १९६०

हरिहरनिवास द्विवेदी

वक्तव्य

बीकानेर के ज्ञान भडारो का अवलोकन करते हुए बडे उपासरे स्थित खरतर गच्छीय वृहद ज्ञान भडार की विवरणात्मक सूची बनाने का काम जब मैंने प्रारम्भ किया तब वहा के बहुत से हस्तलिखित गुटको का अवलोकन करते हुए एक पुस्तकाकार प्रति मे छिताई वार्ता नामक रचना सवत् १६४७ की लिखी हुई अवलोकन मे आई जिसका रचयिता रचना के अन्तिम पद्या-नुसार नारायणदास है। चू कि उस प्रति मे इस रचना के प्रारम्भ एव मध्य के कई पत्र फटे हुए थे इसलिए उसे अपूर्ण होने से केवल सूची मे उसका उल्लेख करके वह प्रति वही रखदी गई। कई वर्षो बाद सन १६४२ मे जब उस प्रति को पुनः निकालकर छिताई वार्ता के प्राप्त अश को पढा तो वह रचना महत्व की मालूम हुई। यद्यपि प्रति मे लिखा हुआ पाठ भी कही कही अशुद्ध था फिर भी उसका कथासार सक्षेप मे लिखकर इस महत्व पूर्ण एव अज्ञात रचना का परिचय हिन्दी साहित्य ससार के सामने रखना आवश्यक समझा और एक लेख इस सम्बन्ध मे तैयार करके विशाल भारत मासिक मे प्रकाशनार्थ भेज भेज दिया गया, जो मई १९४३ मे 'छिताई वार्ता' के नाम से प्रकाशित हुआ।

उक्त लेख के प्रकाशन के कुछ समय बाद श्री वटे कृष्ण एम० ए० का नागरी प्रचारिणी सभा से पत्र मिला कि उक्त रचना की प्रतिलिपि उन्हे करवा के भेज दी जाय। तदनुसार हमने उसकी प्रतिलिपि उन्हे भेज दी। उससे पूर्व नागरी प्रचारिणी पत्रिका वर्ष ५१ अक ३४ मे छिताई चरित नामक उनका लेख प्रकाशित हुआ जो इलाहाबाद के म्युनिसपल म्युजियम की सवत् १६८२ की लिखी हुई छिताई चरित की प्रति पर आधारित था।

उसके बाद माननीय डॉ० वासुदेवशरण जी अग्रवाल का मुझे पत्र मिला कि छिताई वार्ता का मैं सम्पादन कर दू। पर अपूर्ण रचना का सम्पादन करना मुझे जचा नही तो उन्होने डॉ० माताप्रसाद गुप्त को उसके सम्पादन की प्रेरणा दी और गुप्त जी का जब मुझे पत्र मिला, तो मैंने छिताई

वार्ता की टाइप कॉपी उन्हे भेज दी और तत्पश्चात् वीकानेर वाली मूल प्रति मँगाने पर वह भी भेज दी।

सन १९५६ मे विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम होशियारपुर के हस्तलिखित ग्रन्थ की सूची छप रही थी। उसमे से जैन ग्रन्थो की सूची का प्रूफ मुझे संशोधनार्थ मिला तो उसमे आधुनिक भाषा ग्रन्थो के अन्तर्गत विताई कथा प्रबन्ध नामक ग्रन्थ का नाम देखने को मिला। मैंने उसी समय अनुमान किया कि छ और व के लेखन मे हस्तलिखित प्रतियो मे वहुत कम अन्तर होने से अनभ्यासी व्यक्तियो के पढने मे प्राय भूल हो जाती है। अतः ग्रन्थ का नाम विताई कथा प्रवन्ध न होकर छिताई कथा प्रवन्ध होना सम्भव है। मैंने शोधस्थान के आये हुए प्रूफ देखकर उन्हे सूचना की कि इस प्रूफ मे कई ग्रन्थो के नाम गलत है और वहुत से ग्रन्थों के रचयिता के नाम आपकी सूची मे लिखने से छूट गये हैं तो मान्यवर आचार्य विश्व वन्धु जी ने अपने वहा आने का निमन्त्रण दिया जिससे मैं वहा पहुचकर वहाँ की हस्तलिखित प्रतियो को स्वय देखकर सूची मे जो अपूर्णता व गलतिया रह गई है उसे पूर्ण और शुद्ध कर दूं। उनके आमन्त्रण से मैं होशियारपुर गया और २ दिन रह कर हस्तलिखित प्रतियों को देखकर जिन रचनाओं मे रचयिता का नाम थे वे नाम सूची मे लिखवा दिये और अशुद्ध नामो का संशोधन करवा दिया। मेरा अनुमान सही निकला और विताई कथा प्रवन्ध वास्तव मे छिताई कथा प्रवन्ध ही निकला। मुझे इस ग्रन्थ की पूर्ण प्रति मिल जाने से वडा ही हर्ष हुआ। वीसलदे रास की भी वहा ३ प्रतिया जैन विद्वानो की लिखी मिली और छिताई प्रवन्ध की भी प्रति जैन विद्वान की ही लिखी हुई थी। प्रति वहुत सुन्दर और शुद्ध लिखी हुई होने से और भी आनन्द की वात थी। हमे पूर्व प्राप्त छिताई वार्ता की अपेक्षा इस प्रति मे ३०० पद्य अधिक थे इसलिए मैं वीसलदे रास की प्रतियां एव इस प्रति को अपने साथ वीकानेर ले आया और ग्रन्थ का अवलोकन करने पर जो तथ्य सामने आये उनके सम्वन्ध मे एक लेख लिखा जो मध्यप्रदेश सदेश मे कई महीने पूर्व प्रकाशित हुआ। मूल ग्रन्थ की प्रेस कापी और उसका कथा सार तैयार करने के लिए मेरे भ्रातृ पुत्र एव सहयोगी भवरलाल

नाहटा को प्रति कलकत्ते भेज दी गई। उसने २-२॥ महिने श्रम करके उसकी प्रेस कॉपी व कथा सार लिखकर मुझे भेज दिया और मैंने पूर्व प्राप्त छिताई वार्ता के पद्यो से मिलान करके जो पद्य बीच बीच मे छिताई कथा प्रबन्ध मे नही थे और छिताई वार्ता मे थे उनको यथा स्थान लिख दिया और कुछ महत्व के पाठ भेद भी ले लिये। कथासार को मूल ग्रन्थ से मिलाया और छिताई वार्ता मे पीछे का जो अंश कथा प्रबन्ध से भिन्न था उसे परिशिष्ट मे देने के लिए नकल करवा ली। डॉ० शिवगोपास मिश्र से इलाहवाद वाली प्रति की भी नकल मगवा ली गई। इस तरह उस सस्करण को तैयार करके हिन्दी विद्यापीठ आगरा को प्रकाशनार्थ भेज दिया गया। भूमिका मे अनेक महत्वपूर्ण बातो पर चर्चा करने का विचार था। इसी बीच ग्वालियर जाने पर श्री हरिहरनिवास जी द्विवेदी से इस सम्बन्ध मे वातचीत हुई तो उन्होने कहा कि हिन्दी विद्यापीठ वाले न छापें या देरी करते हो तो मुझे भिजवा दे। वास्तव मे ही विद्यापीठ वालो ने कई महिने तक उसे यो ही पडा रखा। फिर मूल प्रति भेजने को लिखा गया तो दोनो प्रतिया भी उन्हे भेज दी गई पर अन्त मे वहा प्रकाशन प्रवन्ध न हो सका अत: उन्हे मेरी भेजी हुई सामग्री श्री हरिहरनिवास जी द्विवेदी को भेजने का लिखा गया। सयोग की वात उन्होने भूल से हमारी सामग्री और कही भेज दी और दूसरे व्यक्ति की प्रतिया हमे भेज दी। कतः कई महिने फिर इसी तरह बीत गये अन्त मे जब द्विवेदी जी को सामग्री मिली तो उन्होने यह इच्छा प्रकट की कि होशियारपुर वाली प्रति का पाठ मूल मे रखते हुए बीकानेर एव इलाहाबाद की दोनो प्रतियो के पाठ भेद के साथ इस सस्करण को प्रकाशित किया जाना अधिक उपयुक्त होगा। और तदनुसार उन्होने यहा प्रकाशित होने वाले संस्करण को वडे श्रम से तैयार किया।

इसी वीच डॉ० माताप्रसाद गुप्त सम्पादित छिताई वार्ता ग्रन्थ नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हुआ। पर उसमे प्राथमिक पद्य न होने से ग्रन्थ के रचनाकाल, रचना स्थान आदि के सम्वन्ध मे मध्यप्रदेश सन्देश मे प्रकाशित मेरे लेख के आधार से भूमिका मे प्रकाश डाला गया है पर मूल

ग्रन्थ तो त्रुटित ही रह गया है । हमे प्राप्त प्रति से इस ग्रन्थ के लिखने मे तीन कवियो का योग रहा है, यह स्पष्ट होता है । श्री हरिहरनिवास जी द्विवेदी ने अपनी प्रस्तावना मे आवश्यक बातो पर प्रकाश डाला ही है उनके कुछ तथ्यो से हमारा कुछ मतभेद अवश्य है । फिर भी उन्होने इस सस्करण को इस रूप मे तैयार करने मे काफी श्रम किया है । हमारे सम्पादित सस्करण की अपेक्षा इसमे कई विशेषताएं है इसलिए हमे ग्रन्थ को इस रूप मे प्रकाशित होते देख कर अत्यन्त हर्ष होता है ।

१८-२० वर्षो से हमारा इस ग्रन्थ से निरन्तर सम्बन्ध रहा है और इसको सुसम्पादित प्रकाशित करने का यथा सम्भव प्रयत्न भी करते रहे है अत. आज हमारी चिर अभिलाषा पूर्ण होते देख आनन्दित होना स्वाभाविक है । श्री भँवरलाल नाहटा का तो मुझे सब समय सहयोग मिला पर वह तो मेरा आत्मीय ही है । डॉ० शिवगोपाल मिश्र इलाहाबाद वाली प्रति की नकल मुझे करा भेजी इसके लिए उनका भी आभार प्रदर्शित करना अपना कर्त्तव्य समझता हूं । श्री द्विवेदी जी के सहयोग के लिए तो विशेष आभारी हू ही ।

अगरचन्द नाहटा

प्रस्तावना

छिताईचरित की प्राप्त प्रतियां

छिताईचरित हिन्दी लौकिक आख्यान काव्य धारा की अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है। ईसवी पन्द्रवी शताब्दी की हिन्दी प्रबन्ध काव्य रचनाओं में उसका विशिष्ट स्थान है। परन्तु उसकी अभी तक केवल तीन प्रतियों की ही खोज हो सकी है। इन तीन प्रतियों में भी दो अपूर्ण हैं, पूर्ण प्रति केवल एक ही है। छिताईचरित के पाठ निर्धारण में हमें इन तीनो प्रतियो के उपयोग का सुयोग प्राप्त हो सका है। इनका उल्लेख हमने क्रमशः क, ख तथा ग नाम से किया है।

क प्रति सर्वाधिक पूर्ण है, परन्तु उसकी पुष्पिका में कहीं भी प्रति-लिपि-संवत् नहीं दिया गया है। परन्तु वह किसी भी दशा में ईसवी सत्रहवी शताब्दी के पश्चात की नहीं है। श्री अगरचन्द नाहटा ने इसे श्री विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, साधु आश्रम, होशियारपुर, पंजाब से प्राप्त कर हमारे उपयोग के लिये भेज दिया था। उनने इसके सभी पत्रों के फोटोग्राफ्स भी बनवा लिये और उन्हे भी हमारे उपयोग के लिये भेज दिये। इस प्रति में कुल १०४ पत्र है। प्रतिलिपि अत्यन्त सावधानी से की गई है। प्रतिलिपिकार की कुछ अपनी विशेषतायें अवश्य हैं। वह बहुधा स को श और व को ब लिखता है, अन्यथा इतनी सावधानी से लिखी हिन्दी की प्राचीन पोथियां कम मिलती हैं।

ख प्रति खरतर गच्छीय ज्ञान भण्डार, बीकानेर की है। श्री अगर-चन्द नाहटा ने यह मूल प्रति हमारे उपयोग के लिये भेज दी थी। इसका प्रतिलिपि काल संवत् १६४७ वि० (सन १५९७ ई०) है। दुर्भाग्य से यह प्रति न सावधानी से लिखी गई है और न पूर्ण है। इसके प्रारम्भ के ६१ छन्द नही हैं और बीच मे भी कुछ पत्र नही हैं।

ग प्रति प्रयाग के म्युनिसिपल म्यूजियम में है। उसकी मूल प्रति

हमें प्राप्त नहीं हो सकी। परन्तु उसकी प्रतिलिपि डॉ० शिवगोपाल मिश्र ने उतार कर भेजी है। यह प्रतिलिपि संवत् १६८२ वि० (सन् १६२५ ई०) की है। यह प्रति भी पूर्ण नहीं है। इसके प्रारम्भ के २२४ छंद नष्ट हो गये हैं।

छिताईचरित के पाठ निर्धारण में हमने क प्रति को आधार बनाया है तथा ख और ग प्रतियों के पाठ भेद पाद-टिप्पणियों में दे दिये हैं। कुछ ऐसे स्थल भी हैं, यद्यपि वे बहुत थोड़े हैं, जहां हमने क प्रति के किसी शब्द के स्थान पर ख अथवा ग प्रति के शब्द को मूल पाठ में स्वीकार किया है। क प्रति के 'श' और 'व' हमने 'स' और 'ब' कर दिये हैं।

क प्रति की ऐसी पंक्तियों के पहले जो ख प्रति में नहीं हैं S चिह्न लगाया गया है। जो पंक्तियां ग प्रति में नहीं हैं उनके आगे X चिह्न लगाया है। जो पंक्तियां ख तथा ग दोनों ही प्रतियों में नहीं हैं उनके पहले SX चिह्न है। परन्तु ख तथा ग प्रतियों में जो अंश त्रुटित हैं उनके पहले हम ये चिह्न नहीं लगा सके हैं। ख तथा ग प्रतियों में कुछ पंक्तियाँ क प्रति के अतिरिक्त भी हैं। उन सबको पाद-टिप्पणियों में दे दिया गया है।

ख प्रति का अंत का कुछ अंश क तथा ग दोनों प्रतियों से ही भिन्न है। उसे परिशिष्ट के रूप में अलग दे दिया गया है। इस प्रकार प्रयत्न यह किया गया है कि इन तीनों प्रतियों में जो पाठ प्राप्त हैं वह समस्त उपलब्ध कर दिया जाए।

इन तीनों प्रतियों के पाठ भेदों को देखने से हिन्दी के मध्यकालीन प्रतिलिपिकारों की विशेषताएं स्पष्टरूपेण प्रत्यक्ष हो जाती हैं। मूल पाठ को ज्यों का त्यों उतार देने की उन्हें विशेष चिन्ता नहीं रहती थी। शब्दों को अपनी निजी रुचि के अनुसार बदल देने में उन्हें कोई संकोच नहीं होता था। ख प्रति में शब्दों के पश्चिमोत्तरीय उच्चारण निस्संकोच रूप से कर दिये गये हैं। लीनी को लोधी, हौं को हूं, कौन को कुण, जिउनार को जीवनवार आदि अबाध रूप से लिखे गये हैं।

ख प्रति एक ऐसी पोथी मे है जिसमे अनेक जैन स्तोत्र तथा जैन आख्यान हैं। इस स्थिति ने भी प्रभाव दिखाया है। क प्रति में जहाँ 'जिनस जिनस मदिरि गिन सारा' (प० स० २७३) है वहाँ ख प्रति में 'गिन सारा' के स्थान पर 'जिन सार' कर दिया गया है।

सयुक्त स्वरो के वियोगात्मक प्रयोगो को देखते हुए तीनो ही प्रतिया ऐसी प्रतियो से उतारी गई प्रतीत होती हैं जो ईसवी पन्द्रहवीं शताब्दी मे उतारी गई थीं। सोलहवी शताब्दी मे ऐ को अई, औ को अउ लिखने की प्रथा प्रायः समाप्त हो गई थी। क ख तथा ग तीनों प्रतियों मे इन सयुक्त स्वरो के दोनो ही रूप मिलते हैं। इससे यह बात स्पष्ट है कि जिन प्रतियो से ये उतारी गई उनमे इन स्वरो के वियोगात्मक रूपों का प्रयोग किया था। प्रतिलिपिकार अनेक स्थलों पर उन्हे मूल रूप मे उतारता गया और अनेक स्थलों पर अभ्यास के कारण उसने सयोगात्मक रूप लिख दिये।

क प्रति तथा ख और ग प्रतियो मे एक व्यापक पाठ भेद है जिसे पाद टिप्पणियो में नही दिया गया हैं। ख और ग प्रतियो में चौपाई के चरणों में अन्तिम वर्ण ह्रस्व है और क प्रति में वह सर्वत्र दीर्घ है। ख तथा ग प्रतियों में इन चरणो में जहा १५ मात्राए हैं क प्रति मे १६ मात्राएँ मिलती हैं।

छिताईचरित की तीनो ही प्रतियो में आख्यान को खण्डो में विभाजित नही किया गया है और प्रसगो के शीर्षक भी नही हैं। लखनसेन पदमावती रास का सम्पादन करते समय हमें ज्ञात हुआ कि इस काल की रचनाओं को उनके रचयिता बहुधा चार खण्डो में विभाजित करते थे। बीसलदेव रास तथा लखनसेन पदमावती में आख्यान को चार खण्डो में विभाजित किया गया है। बीसलदेव रास में इन खण्डो के नाम स्वयवर रसायन, नर रसायन, स्त्री रसायन, तथा अमृत रसायन दिये गये हैं। लखनसेन पदमावती रास मे उन्हे केवल पहला, दूसरा, तीसरा तथा चौथा खण्ड कहा गया है।[1] छिता चरित का

---

१ प्रस्तुत लेखक की पुस्तक 'लखनसेन पदमावती रास' की प्रस्तावना देखिए।

कथानक भी हमे स्पष्ट चार खण्डो मे विभाजित ज्ञात हुआ और न मे कथा वस्तु का विकास भी उक्त दो रचनाओ के अनुसार हुआ है। अतएव इस पाठ को हमने चार खण्डों में विभक्त कर दिया है।

इसी प्रकार प्रसगो के शीर्षक भी हमने दिये है। ये मूल पाठ मे नही हैं। मूल पाठ में यत्र तत्र 'उवाच' ही प्राप्त होता है। कोई भ्रम न हो जाए, इस कारण खण्डो तथा प्रसंगो के शीर्षक कोष्ठकों के बीच में दे दिये गये हैं। कोष्ठको में आवद्ध शीर्षक मूल पाठ में नहीं है जो शब्द कोष्ठको में आवद्ध नही हैं वे मूल पाठ में हैं।

छिताईचरित के रचयिता

छिताईचरित के प्रस्तुत पाठ के रचयिता तीन कवि हैं। मूलत उसे नारायणदास ने लिखा था। उसके पश्चात किसी रतनरग नामक अथवा रतनरंग उपनाम-धारी कवि ने उसमें कुछ भाग जोड़ा और अन्त में देवचन्द्र ने उसे परिवर्धित किया। नारायणदास द्वारा रचित मूल रचना प्राप्त नही है। जो तीन प्रतियां अब तक प्राप्त हुई हैं, उनकी सहायता से नारायणदास की रचना का मूल रूप प्राप्त कर सकना सम्भव नही है। ख प्रति में नारायणदास और रतनरग दोनो के ही अंश मिले हुए है और यही दशा ग प्रति की है। क प्रति में, नारायणदास, रतनरग और देवचन्द्र तीनो के अश सम्मिलित हैं।

नारायणदास द्वारा रचित छिताईचरित मूल रूप में नहीं मिल सका, यह बहुत महत्वपूर्ण नही है। रतनरग तथा देवचन्द्र ने उसमें परिवर्तन नारायणदास की स्वीकृति से किये थे और उन्हे स्वयं नारायणदास ने स्वीकार कर लिया था, ऐसा क प्रति से ज्ञात होता है। इसके विवेचन के पूर्व नारायणदास, रतनरग तथा देवचन्द्र का परिचय प्राप्त कर लेना उपयोगी होगा।

नारायणदास

नारायणदास ने अपनी रचना मे अनेक स्थलों पर अपने नाम की छाप दी है। वह नारायणदास, कविजन, कविदास तथा नरायन रूप मे मिलती है।

छिनाईचरित की प्रस्तावना मे नारायणदास ने अपने विषय मे दो उल्लेख बहुत महत्वपूर्ण किये हैं। एक स्थल पर वह लिखता है:—

बिरसिंघ बस नरायनदासू (पंक्ति २४)

तथा दूसरे स्थल पर उसने लिखा है:—

जपई बिस्नु नरायनद सू (पंक्ति २६)

प्रथम चरण का आशय 'दासू' के श्लेष पर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है, उसक अर्थ है "नारायणदास वीरसिंह के वश का दास—आश्रित है"। यह वीरसिंह-वंश कौन है? इसका परिचय प्राप्त करने के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि ग्वालियर के तोमरो के राज्य के सस्थापक वीरसिंह तोमर थे। तैमूर के आक्रमण के पश्चात ही तुगलको की सेना को छोडकर वीरसिंह तोमर ने सन १३९८ ई० में ग्वालियर गढ़ पर अधिकार कर लिया था। ग्वालियर के तोमर राज्य के सस्थापक वीरसिंह के वश के आश्रित नारायणदास थे।

वीरसिंह तोमर द्वारा सन १३९८ ई० मे सस्थापित ग्वालियर का तोमर राज्य सन १५१७ ई० तक चला जब ग्वालियर गढ इब्राहीम लोदी ने आत्मसात कर लिया और ग्वालियर का अन्तिम स्वतन्त्र राजा विक्रमादित्य तोमर सिंहासन-च्युत होकर श्रमिजीवी उलगाना बन गया, और २१ अप्रैल १५२६ ई० को पानीपत के युद्ध मे राणा सग्रामसिंह के निर्देशन में इब्राहीम लोदी से युद्ध करता हुआ मारा गया। आगे भी ग्वालियर के तोमरो के दर्शन हमें इतिहास में होते हैं। रामसिंह तोमर ने चम्बल की घाटी को कभी मुगलो के लिए निरापद नही होने दिया। उसने अपने तीन पुत्रो के साथ हल्दी घाटी के सग्राम मे राणा प्रताप के साथ अकबर से युद्ध किया और अपने पुत्रो सहित रणक्षेत्र मे मारा गया। उसके बड़े राजकुमार का पुत्र श्यामसिंह जीवित बचा जो जहांगीर के दरबार में हिन्दू दल के स्वामी के रूप मे प्रतिष्ठित हुआ और उस समय भी 'गोपाचल का सिंह' कहलाता रहा—

तूंवर तमाम को तिलक मानसिंह जू को,
कुल को कलश वंश पाण्डव प्रबल को।

जूझ मे वूझ परे मुझनी ज्यो देवन को,
किधो हुनपद के चरन हलाल को ।
जालिम जुझार जहांगीर जू को सावन,
कहावत है केसोराइ स्वामी हिन्दू दल को ।
राजन की मडली को रजन विराजमान
जानियत स्यामसिह सिह गोपाचल को ।
—केशवदास, जहांगीर जस चन्द्रिका ।

इस परवर्ती इतिहास से हमारा यहां सम्बन्ध नहीं है । नारायण दास के प्रसग में इतना जान लेना ही पर्याप्त है कि वीरसिह तोमर के वश में आगे डुगरेन्द्रसिह, कीर्तिसिह, कल्याणसिह तथा मानसिह ग्वालियर को गद्दी पर बैठे । सन १६१४ में डुगरेन्द्रसिह के सिहासनारूढ होते ही ग्वालियर के तोमर वश की प्रतिष्ठा बहुत अधिक बढ गई । इसकी धाक दिल्ली के लोदी, मालवे के सुलतान और जौनपुर के शर्की भी मानते थे । काश्मीर के सुल्तान जैन-उल-आब्दीन से उसके मैत्री सम्बन्ध थे ; इन्ही डुगरेन्द्रसिह के आश्रित कवि थे गोस्वामी विष्णुदास । विष्णुदास ने अपनी 'महाभारत कथा' डूंगरेन्द्रसिह को सुनाने के लिए ही लिखी थी —

पुनि तिहि व्यास नवन किय सीसा । नानर रोगु कालकु न दीसा ॥
चौदहसै रु वानवे आना । पडु चरितु मे सुनो पुराना ॥
कातिक कृस्न भई तिथि आसो । वासर सुक सिव की रासी ॥
तिहि सजोग भऊ भोतासू । राइ हकारि लियो कविदासू ॥
पंड वस तोमर धुर धीरू । डोगरसिह राउ वर बीरू ॥
गढ गोपाचल वैरिनि सालू । हय गय नरपति टोडर मालू ॥
भुजवल भीम न सकै कासू । अमिवर आन दिखावे त्रासू ॥
ता सिर सेत छत्र फरहरई । कोऊ समर उभारु न करई ॥
ता गुन वहुत न सको वखानी । कीरत सागर पर भुमि जानी ॥
तिहि तमोरु दियो कवि हाथा । पुनि पूछे डोंगर नरनाथा ॥
कहि कविदास हिये धरि भाऊ । कौरो पाडो को सति भाऊ ॥
—आदि पर्व

महाभारत कथा और छिताईचरित के नारायणदास रचित अंश की भाषा तथा शैली की तुलना करने पर उनमें अद्भुत साम्य दिखाई देता है (आगे पृष्ठ १६० देखिए)। इस पृष्ठ भूमि मे 'जपई बिस्नु नरायनदासू' का आशय स्पष्ट हो जाता है। वीरसिंह के वश का आश्रित कवि होना तथा विष्णुदास का पुत्र होना दोनो ही नारायणदास के लिए, कवि के रूप में गौरव दिलाने वाले थे। अतएव उसने इन दोनो बातो का उल्लेख अपने आत्म परिचय मे किया है। महाराष्ट्र में पहले अपना नाम और फिर पिता का नाम देने की रीति है परन्तु उत्तर भारत में पिता का नाम पहले कहा जाता है[1]।

विष्णुदास ने महाभारत कथा सवत् १४९२ वि० अर्थात सन् १४३५ ई० में लिखना प्रारम्भ किया था। नारायणदास को हम सन १५२६ ई० में सारगपुर से छिताईचरित सुनाते हुए देखते हैं। ज्ञात यह होता है कि विष्णुदास ने महाभारत कथा की रचना अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में की थी और उसके पश्चात नारायणदास का जन्म हुआ। महाभारत कथा और छिताईचरित के सारगपुर मे पढे जाने के बीच ९१ वर्ष का अन्तर है जो नारायणदास को विष्णुदास के पुत्र होने की सभावना को असिद्ध नहीं कर सकता। इस युग में ८०-९० वर्ष तक पौरुष क्षीण नही होता था।

इस प्रकार 'बिरसिंघ वस नारायणदासू' और 'जंपई बिस्नु नारायणदासू' के उल्लेखो से यह परिणाम निकलता है कि नारायणदास ग्वालियर के तोमर राजाओं के आश्रित और महाभारत कथा के रचयिता गोस्वामी विष्णुदास के पुत्र थे।

छिताईचरित में नारायणदास ने अपने विषय में एक और महत्त्वपूर्ण उल्लेख किया है। वह लिखता हैं —

देसु मारवी कचन खानां। लोग सुजान विवेकी दानां॥
महानगर सारगपुरि भलौ। तिहिंपुर सलहदीन जांगलौ॥

---

१ पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दड प्रनामा।
रामचरित मानस, अयोध्याकांड।

खाडे दान दूसरउ करनू। विक्रम जिउ दुख दालिद हरनू ॥
दुरगावती तासु वामगू। जनु रति-कामदेव कइ संगू ॥
तिहि पुर कवि श्रोहरि ठा गयो। कथा करनु मन उद्यम भयो ॥
हरि सुमरतह भयो हुलासू। विरसिंघ वस नारायन दासू ॥
पन्द्रहसइ रु तिरासै माता। कहूवक सुनी पाछिली वाता ॥
सुदि आषाढ सातइ तिथि भई। कथा छिताई जान लई ॥
(पक्ति १६-२६।

इन पक्तियो से प्रकट है कि कवि कही से कवनदास मालव के सारगपुर नगर मे पहुचा और वहा सवत १५८३ वि० (सन १५२६ ई०) को विष्णु मन्दिर में उसने पहले लिखे हुए छिताईचरित को सुनाना प्रारम्भ किया।

सलहदी का परिचय इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान डा० रघुवीरसिहजी, सातामऊ, ने दिया है, जिसे इस पुस्तक के परिशिष्ट ५ में दिया गया है। उसस अनेक बातें स्पष्ट होती है। सलहदी स्वय तोमर था और ग्वालियर के निकट ही सोजना में उसका जन्म हुआ था। उसके राजकुमार भूपतराय का विवाह राणा सग्रामसिह की राजकुमारी से हुआ था। मुगलो के भारत मे पैर उखाडने का राणा सग्रामसिह ने जो भीषण प्रयास किया था उसमें विक्रमादित्य तोमर के समान सलहदी भी उनका सहयोग दे रहा था। पानीपत के युद्ध के दो मास पश्चात ही ग्वालियर के तोमरो के आश्रित कवि नारायणदास का सारंगपुर में जाकर सलहदी की प्रशस्ति औ अलाउद्दीन के उत्पीडन की कथा सुनाने का रहस्य इन तथ्यो को देखते हुए समझा जा सकता है। इन घटनाओं की पृष्ठभूमि मे यह भी समझा जा सकता है कि देवचन्द्र द्वारा जोडे गये युद्ध वर्णनों को नारायणदास ने किस उद्देश्य से मान्यता दी थी और उसके लिये 'कियो समो कचन के मोला' क्यों कहा था। यह स्मरणीय है कि पानीपत के २१ अप्रैल १५२६ ई० के युद्ध में विक्रमादित्य तोमर की मृत्यु के पश्चात राणा सग्रामसिह, सलहदी और रामसिह तोमर बाबर से टक्कर लेने की तयारी मे थे और नारायणदास द्वारा १७ जून १५२६ (सवत

१५८२ वि० आषाढ सुदी सप्तमी) की सारगपुर में पहुचने के सात मास के भीतर बयाना के युद्ध मे १६ फरवरी १५२७ को राजपूतो को मुगलो पर विजय प्राप्त हुई थी, जिसमें राणा सागा के साथ चन्दवार के राव मानिकचन्द्र चौहान, चन्देरी के मेदिनीराय आदि ने भाग लिया था और उसके एक मास के भीतर ही १६ मार्च १५२७ ई० को खानवा का निर्णायक युद्ध हुआ जिसमें सलहदी और रामसिह दोनो ने ही भाग लिया था।

इन भीषण सग्रामो के लिए जनसाधारण मे वीरदर्प एव बलिदान की भावना जाग्रत करने के लिए नारायणदास की—

मरइ फूल जीवइ दिन बासू (पक्ति २९)

तथा देवचन्द्र की—

जाकी कीरति पुहमी रहई।
ते जीवइ कवि दिवचद कहई ॥ (पंक्ति १४४३)

जैसी उक्तिया उपयोगी हुई होगी।

नारायणदास ने अपने आख्यान में ग्वालियर को जो महत्व दिया है तथा अनेक प्रसगो पर स्थानीय निर्माणो का उल्लेख किया है व उसके स्थान की ओर अत्रुट सकेत करते हैं। डूगरेन्द्रसिह के समय में ही ग्वालियर का सगीत भारत में अपनी श्रेष्ठता के लिए प्रख्यात हो चला था छिताईचरित में नाद-ब्रह्म की उपासना को जो महत्व दिया गया है वह कवि के चातुर्दिक वातावरण की ओर सकेत करता है। प्रासाद के निर्माण के वर्णन को यदि ग्वालियर गढ के तोमर कालीन निर्माणो मे बैठकर पढा जाए तब ऐसा ज्ञात होता है माना देवगिरि के प्रासाद-निर्माण के व्याज से कवि इन महलो के निर्माण का आखो देखा हाल लिख रहा है। प्रस्तरो को उत्कीर्ण कर नाना रगो से विभूषित इन्ही प्रासादो का वर्णन नारायणदास ने किया है यह स्पष्ट दिखाई देता है। मानमदिर और गूजरी महल की भूलभुलैयां, तलघर, यहा तक कि महादेव के मन्दिर के लिए जाने वाला गुप्तमार्ग इस रचना मे साकार हो उठे हैं। मानमन्दिर के पश्चिमी पार्श्व पर नालोत्पलखचित हस, मोर,

कदली आदि के चित्र छिताईचरित्र में सजीव हुए हैं। डूंगरेन्द्रसिंह का बादल महल और हिंडोला महल आज पूरे प्राप्त नहीं हैं परन्तु जो कुछ भी शेष हैं वह छिताईचरित के वर्णनों का साकार रूप है।

अलाउद्दीन की सेना के उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर लौटने के समय ग्वालियर गढ का जिस प्रकार उल्लेख किया गया है वह भी अकारण नही हो सकता —

वढइ कथा जौं घाटिन गनऊ।
गोपाचल गढ दय दाहिनऊं॥
लागी फउजइ जुरन असेसू।
घाटी चढी मारवइ देसू॥ (पक्ति १२२-१२३)

आगे लौटते समय का वर्णन देवचन्द्र का है। वह लिखता है —

सब मारओ धसिउ सुलिताना।
आनि चन्देरी कियो मिलाना॥
गोपाचल गढ बाएँ जानी।
कटक परिउ कौतलपुर आनी॥ (पक्ति १४४५-१४४६)

दोनों ही कवि गोपाचल के पास फटकने का भी साहस अलाउद्दीन की सेना को नही देना चाहते। यह अकारण नही हो सकता। ग्वालियर गढ उनका रचना स्थल है। उसकी धाक अलाउद्दीन की सेना पर है, वह उस सेना से विचलित नहीं होता। इस दर का उत्तर सा देते हुए जायसी ने जो लिखा है उसे देखने से स्थिति और भी स्पष्ट हो जाती है —

डोले गढ गढपति सब कापे। जीउ न पेट हाथ हिय चांपे॥
कापा रनथभउर डरि डोला। नरवर गएउ झुराइ न बोला॥
जूना गढ और चम्पानेरी। कांपा माडौ लेत चदेरी॥
गढ गवालियर परी मथानी। औ खधार मठा होइ पानी॥
कलिजर मह परा भगाना। भाजि अजैगिरि रहा न थाना॥
कापा बाधौ नर औ प्रानी। डर रोहितास विजैगिरि मानी॥
काँप उदैगिरि देवगिरि डरा। तब सो छिताई अब केहि धरा॥

जाँवत गढ़ गढपति सब कापे औ डोले जस पात।
का कहं बोलि सौहं भा पातसाहि कर छात ॥५००॥

नारायणदास और देवचन्द्र ने केवल ग्वालियर गढ को अजेय, निर्भीक और सुल्तान की सेना के लिए भय का कारण बतलाया था, अतएव जायसी ने ग्वालियर के साथ साथ अन्य किलों को भी शाह की कूच से डगमगा दिया। ग्वालियर की घबराहट का जायसी ने अन्य गढों की अपेक्षा कुछ अधिक विस्तार से वर्णन किया है। ग्वालियर गढ मे मथानी सी फिर गई मानो उसे किसी ने बिलो दिया हो, उसका स्कधावार[1] रूपी मट्ठा पानी-पानी हो गया। इसी प्रसग में आगे छिताई की कथा का उल्लेख सन्देह के लिए स्थान नही रहने देता। पदमावत लिखते समय जायसी के समक्ष नारायणदास—देवचन्द्र का छिताईचरित था एव उसी प्रतिक्रिया के रूप में उसने पदमावत लिखा था, यह पदमावत के इस स्थल पर छिताई के उल्लेख से भी सिद्ध है। जायसी ने छिताई के आख्यान का उल्लेख छिताईचरित के कथानक के अनुसार ही किया है। छिताईचरित और पदमावत के ग्वालियर गढ के उल्लेख के उद्देश्यो से तो यह स्पष्ट है ही, छिताई के पदमावत के अन्य उल्लेखों से भी यह बात बहुत स्पष्ट हो जाती है। सरजा दम के साथ रतनसेन को अलाउद्दीन की अजेय शक्ति का परिचय देते हुए कहता है :—

बोलु न राजा आपु जनाई। लीन्ह उदैगिरि लीन्ह छिताई॥

रतनसेन का उत्तर है —

जो छलि आने जाइ छिताई। तब का भएउ जो मुक्ख जनाई॥

---

१ डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने पदमावत की सजीवनी व्याख्या में 'खधार' को अलग दुर्ग माना है। परन्तु खधार का अर्थ स्कन्धावार है। छिताईचरित में भी यह शब्द आया है 'दीरघ मजल चले कर तारा। पहुते दिवगिरि दुर्ग खधारा।' (पक्ति २०१४) यहाँ आशय दुर्ग के स्कन्धावार के निकट पहुचने से है। स्वय डॉ० अग्रवाल ने इसका अर्थ पदमावत के एक स्थल पर स्कन्धावार किया है। (३३४/६)

यह नारायणदास-देवचन्द्र के छिताईचरित का आख्यान ही जायसी के मुख से बोल रहा है इसमे सन्देह नहीं —

छल कर पकरी ताकी धीया। (पंक्ति १७३५)

जायसी के पदमावत और छिताईचरित के पारस्परिक सम्बन्धों का विवेचन यहा न करते हुए, यहा केवल यह कहना है कि नारायणदास ने ग्वालियर गढ़ पर तोमरो के आश्रय में छिताईचरित लिखा था।

छिताईचरित के उल्लेखों से ही यह भी ज्ञात होता है कि नारायण दास ने इस आख्यान को पूरा नही किया था। सम्भावना यह ज्ञात होती है कि इस पाठ के प्रथम खण्ड को समाप्त करने के पश्चात नारायणदास ने कथा को द्रुति गति से समाप्त कर दिया। उसे कुछ रतनरग ने पूरा किया और कुछ देवचन्द्र ने।

रतनरंग

रतनरग का सर्व प्रथम उल्लेख आख्यान में बहुत पीछे आता है। सर्व प्रथम पंक्ति सख्या १२६० पर रतनरग की छाप की तीन अर्धालिया प्राप्त होती है जिसमें उसने अपने अशदान का उल्लेख किया है :—

रतनरंग कवियन बुधि ठई। समौ विचारि नाथ निरमई॥
गुनियन गुनी नरायन दासा। तामहि रतन कीयौ परगासा॥
रतन रगु अनमिली मिलाई। जेइं रे सुनि तेहि अति सुख पाई॥

इन पंक्तियो से स्पष्ट है कि 'रतनरग नारायणदास' का शिष्य था. उसने कविजन (नारायणदास) से बुद्धि (ज्ञान) प्राप्त की थी। उसके गुरु (नाथ) ने विचार पूर्वक जिस समय (आख्यान) की रचना की थी उसमें रत्न का सा प्रकाश है। वह कथा जहा 'अनमिली' ज्ञात होती थी वहा उसने उसे 'मिलाया' था। कथा का उपसहार (कलश) भी नारायनदास ने नहीं लिखा था अथवा वह कथा के अनुरूप नहीं था इस कारण रतनरग ने उसे भी नया लिखकर जोड़ दिया। कलश के बिना कथा छबिहीन है अतएव रतनरंग कवि ने यह कलश लिख डाला :—

ज्यौं बिनु कलस कथा आरंभ। लीनी वरण कथा कवि रंग॥
(पंक्ति २०८४)

रस रत्नना मे किये गये उल्लेखो के अतिरिक्त रतनरग कवि के विषय मे अभी तक कोई अन्य बात ज्ञात नही हो सकी है। रतनरंग का छिताईचरित की रचना में दिया गया अशदान बहुत अधिक नही है और काव्य गुणो की दृष्टि मे भी वह इसके तीनो रचयिताओ में सबसे नीचे स्थान पाने योग्य है। उसने कही-कही अनमिली मिलाने मे अनमिलापन भी ला दिया है[1]।

देवचन्द्र

रतनरग की अपेक्षा देवचन्द्र ने अपना परिचय इस रचना में अधिक विस्तार से दिया हैं और उसका उल्लेख अन्यत्र भी प्राप्त होता है। उसका छिताईचरित मे किया गया अशदान भी बहुत महत्वपूर्ण है तथा उसे हिन्दी के श्रेष्ठ कवियो की श्रेणी मे स्थान दिलाने के योग्य है। नारायणदास की तुलना मे भी उसके युद्ध वर्णन निःसन्देह बहुत श्रेष्ठ हैं यद्यपि अन्य रसो मे वह नारायणदास के समकक्ष नही पहुच सका है।

देवचन्द्र ने अपने विषय में छिताई चरित मे जो कुछ लिखा है उससे अनेक महत्वपूर्ण तथ्य ज्ञात होते है। सर्व प्रथम वह लिखता है.—

आधी कथा सुनत सुख भईयो। हसि दिउचद कवि बूझन लईयो॥
कहि कविदास हीए घरि भाऊ। जिसउ छिताई करिउ उपाऊ॥
सरस कथा मेरे जीय रहई। कीरति चलइ दमोदर कहई॥
काइथ वस तमोरी जाता। गोवरगिरी तिनकी उतपाता॥
तिनको वध्यो दिउचदु आही। कही कथा सुख उपन्यो ताही॥
धर्म नीति मारग विउपरही। वहुत भगति विप्रन की करही॥

1 रतनरग के विषय मे हमने पहले यह शका प्रकट की थी कि वह कोई स्वतन्त्र कवि नही था, न उसने छिताईचरित में कुछ जोडा है (मध्यप्रदेश सदेश, १० मई १९५८ में हमारा 'नारायणदास का छिताईचरित' लेख)। हमने जब यह विचार व्यक्त किया था उस समय हमारे सामने पूरा छिताईचरित नही था। छिताईचरित से रतनरग का अस्तित्व और उसका अशदान स्पष्ट है।

देवी सुत कवि दिउचदु नाऊ । जन्म भूमि गोपाचल गाऊं ॥
जइसी सुनी खेमचद पासा । तैसी कवियन कही प्रगासा ॥
आधी कथा नराइन करी । सपूरन दिउचंदु उचरी ॥
जम्‍नृ पत्रह कीरति लिख लेहू । पढवे करहु गुनी जन देहू ॥

दोहरा

विहंसि दमोदर पूछियो, कह दिउचदु समुझाइ ।
किसइ छिताई वसि परी कैसे हारिउ राइ ॥

चौपाई

कैसे राउ हारि गढ गईयो । कइसइ जूझ दुहूं दल भईयो ॥
कैसे दूती कियो उपाई । कहु कविदास मोहि समुझाई ॥
कइसइ दिवगिरि ढोवा करिउ । कैसे सोरिसी मिरगु वन धरिऊ ॥
किऊ सु दरो गही वसि साही । सो सब कथा कहउ निरवाही ॥
(पक्ति ५५९-५७६)

सिलसिलेवार इस अश का घटनाक्रम है —

देवी(चद)के पुत्र देवचद का गोपाचल में जन्म हुआ था। वह दामोदर कायस्थ का "वघा"—आश्रित था। दामोदर की उत्पत्ति गोपगिरि[1] मे हुई थी। वे कायस्थ कुल के तमोरी जाति के थे। वे धर्म नीति युक्त व्यवहार करते थे और विप्रो की बहुत भक्ति करते थे। देवचन्द्र ने खेमचद के पास कथा उस रूप में सुनी जिस रूप में कविजन (नारायणदास) ने लिखी थी। देवचन्द्र ने जिस रूप में सुनी, वैसी ही अपने आश्रयदाता दामोदर को सुनाई। वह कथा नारायणदास की लिखी हुई थी। परन्तु, नारायणदास ने केवल आधी कथा लिखी थी। उस आधी कथा को सुनकर दामोदर को बहुत सुख हुआ।

उसने हसकर देवचद से कहा "कविदास, हृदय में भाव रखकर,

---

१ गोवर नहीं, उससे गुह्य गोवर हो जाता है। इसका आशय गोवरधन भी नहीं है क्योंकि फिर गोवरगिरि लिखने की आवश्यकता नहीं थी, गोवरधन ही लिख दिया जाता। यहां मात्रायें भी "गोपगिरी" पाठ मे पूरी होती है।

सहृदयता से, आगे की कथा सुनाओ, फिर क्या हुआ, राव गढ़ कैसे हारा, दोनो दलो में किस प्रकार युद्ध हुआ, दूती (चुगली) ने क्या किया, समरसिंह ने वन में मृग को कैसे पकडा और कैसे शाप ग्रहण किया, बादशाह ने सु दरी छिताई को कैसे पकडा, देवगिरि पर आक्रमण कैसे हुआ, समरसिंह किस प्रकार योगी बना, यह सब कथा निर्वाह करके कहो। इसे पूरा करने से तुम्हारी कीर्ति बढेगी।

यह आदेश पाकर दिउचद—देवचद—ने कथा को पूरा किया।

इस उद्धरण में प्राप्त नामो में से अनेक हमारे सपरिचित हैं। खेमचन्द अनूप कथाएं सुनने का बहुत अभ्यासी था। अयोध्या से आये हुए मानिक (सन १४८९ ई०) ने उसके विषय में लिखा है[1]:—

सिंघई खेमल बीरा दीयो। मानिक कवि कर जोरे लीयो ॥
मोहि सुनावहु कथा अनूप। ज्यो बेताल किये बहु भूप ॥

ग्वालियर के तोमरो के कायस्थ मन्त्रियो के विषय में पहले हम लिख चुके हैं।[2] पद्मनाभ कायस्थ के परिवार के ये दामोदर कायस्थ ज्ञात होते हैं। वीरमदेव के राज्य काल मे प्राप्त मन्त्रिपद मानसिंह के समय में उन्हे प्राप्त नहीं था परन्तु प्रभाव और वैभव शेष रह गया था, ऐसा ज्ञात होता है। देवचन्द्र के इस उल्लेख से यह भी ज्ञात होता है कि उनके यहा अब पान का व्यापार होता था। ग्वालियर के पास ही आंतरी और बिलौआ के पान सदा प्रसिद्ध रहे हैं और उनके व्यापारी आज भी समृद्ध हैं।

ये देवी (चद) के सुत देवचद कौन हैं, जो अपने विषय में केवल यह लिखते हैं कि उनका जन्म गोपाचल मे हुआ है। इनका परिचय सूरदास की साहित्य लहरी मे मिलता है:—

वीरचद प्रताप पूरन भयौ अद्भुत रूप ॥
रथभौर हमीर भूपति सग खेलत जाय।

---

१ प्रस्तुत लेखक की पुस्तक मध्यदेशीय भाषा, पृष्ठ १८१।
२ वही, पृष्ठ १३५।

तासु वंस अनूप भो हरिचंद अति विख्याय ॥
आगरे रहि गोपचल मे रह्यो ता सुत वीर ।
पुत्र जनमे सात ताके महा भट गंभीर ॥
कृष्णचंद, उदारचंद जो रूपचंद सुभाइ ।
बुद्धिचंद प्रकास चौथे चंद भे सुखदाइ ॥
देवचंद प्रबोध पष्टमचंद ताको नाम ।
भयो सप्तम नाम सूरजचंद मंद निकाम ॥

अन्यत्र हम "सूरजचंद मंद निकाम" के प्रसंग मे इस सम्बन्ध मे विस्तार से लिख चुके हैं[1]। ये देवचंद रणथंभोर में हमीरदेव के साथ खेलने वाले वीरचंद के वंशज हरिचन्द के पुत्र देवीचन्द्र के पाचवे "चन्द्र" हैं। हरिचंद आगरा होकर ग्वालियर आये और उनके पुत्र (देवचंद की इस रचना के अनुसार) देवीचंद के ग्वालियर में कृष्णचन्द्र, देवचन्द्र, सूरजचन्द्र आदि उत्पन्न हुए।

अलाउद्दीन ने रणथंभोर का ध्वंस और हमीरदेव का हनन सन् १३०१ ई० में किया था। हमीरदेव के बालबंधु वीरचंद का यह वंश अलाउद्दीन की क्रूरताओं की स्मृति लेकर भटकता रहा। उसके एक वंशज देवचन्द्र ने उसके द्वारा देवगिरि मे की गई नृशंसताओं को लिख डाला, यह स्वाभाविक ही है।

यहाँ हम उन समस्त तर्कों को दुहराना नहीं चाहते जो हमने सूरदास के जन्म स्थान के विषय में 'मध्यदेशीय भाषा' में दिये हैं और न हम साहित्यलहरी की इन पंक्तियों को सूरकृत मानने के अपने तर्कों को दुहराना चाहते हैं। देवचन्द्र के सम्बन्ध में हम यहा साहित्यलहरी के उक्त उद्धरण का आगे का अंश देना उचित समझते हैं। सूरदास ने आगे लिखा है—

सो समर कर साहि से सब गये विधि के लोक ।
रह्यो सूरज चन्द दृग से हीन भर वर शोक ॥

---

१ प्रस्तुत लेखक की पुस्तक मध्यदेशीय भाषा, पृष्ठ ६० ।

इससे प्रकट है कि कृष्णचन्द्र उदारचन्द्र, रूपचन्द्र, बुद्धिचन्द्र, प्रकाशचन्द्र तथा देवचन्द्र किसी शाह से युद्ध करते हुए रणक्षेत्र में मारे गए। लोदियों ने ग्वालियर गढ पर अनेक आक्रमण किए थे। सन १५०५ ई० में सिकन्दर लोदी ने ग्वालियर पर भीषण आक्रमण किया था और अपार जन संहार हुआ था। सन १५१६ ई० में भी इब्राहीम लोदी ने ग्वालियर गढ घेर लिया था। देवचन्द्र ने जिन वीरोचित भावनाओ की अभिव्यंजना छिताईचरित में व्यक्त की है, उन्हें देखते हुए यह ज्ञात होता है वह अपने भाइयो सहित सुल्तानो के साथ हुए अनेक युद्धो में रणक्षेत्र मे भी अपना कौशल दिखाता रहा होगा और अन्त में सन् १५०५ ई० के युद्ध में अथवा सन १५१६ के घेरे मे वह अपने पांच बन्धुओ सहित वीर गति को प्राप्त हुआ होगा।

देवचन्द्र के युद्ध-वर्णनों को पढने से यह ज्ञात होता है कि वह अनेक युद्धो का प्रत्यक्षदर्शी है। उसके सुलतानी सेना का वर्णन (५७७-६०२), सेना के पहुचने पर देवगिरि की हलचल (६०३-६१५), मन्त्रियो से मंत्रणा (६१६-६२६), गढ की सज्जा (६२७—६६२), अलाउद्दीन की आक्रमण की योजना (६६३-६८६), पहले दिन का युद्ध (६८७-६९१), दूसरे दिन का युद्ध (७४८-८१८), पुनः रामदेव और अलाउद्दीन का युद्ध (१३३५-१३८०) तथा रणक्षेत्र रूपी सरोवर का वर्णन (१४११-१४१६) देवचन्द्र को हिन्दी के उन महाकवियो की श्रेणी में श्रेष्ठ स्थान देते हैं जिनने युद्धो के अत्यन्त सजीव वर्णन किये हैं। ऐसा वर्णन प्रत्यक्षदर्शी द्वारा ही किया जा सकता है।

देवचन्द्र ने अलाउद्दीन और रामदेव के पक्ष के अनेक सैनिको एवं सेनापतियो के नाम भी दिये हैं। उनकी ऐतिहासिकता का विवेचन हमारा ध्येय यहा नहीं है। यहा यह ध्यान रखना ही पर्याप्त है कि यह ब्रह्मभट्ट वंश के शज द्वारा दी गई नामावली है जो अनेक पीढियो से युद्धप्रिय राजाओ के सखा रहे, जिनके एक पूर्वज चन्द वरदायी ने पृथ्वीराज का साथ दिया और एक दूसरे पूर्वज वीरचन्द्र रणथंभोर के हमीरदेव के बाल सखा रहे तथा जिनने अलाउद्दीन की सेनाओ को भी देखा था।

देवचन्द्र सैनिक और कवि के रूप में हिन्दी के अत्यन्त श्रेष्ठ एवं वन्दनीय व्यक्तित्वों में हैं।

प्रक्षेप या मूल रचना

छिताईचरित के इन तीन रचयिताओं के पृथक पृथक अंश निश्चयपूर्वक अलग कर सकना संभव नहीं है। परन्तु कुछ बातें निश्चय पूर्वक कही जा सकती हैं। प्रारंभ में पंक्ति संख्या १२५६ तक जिन पंक्तियों के पहले ऽ तथा X चिह्न नहीं हैं वे नारायणदास की रचनायें हैं। पंक्ति संख्या १२५६ के पश्चात पंक्ति १८५८ तक जिन पंक्तियों के पहले इन दोनों चिह्नों में से कोई चिह्न नहीं हैं उनमें से कुछ पंक्तियां रतनरंग की भी हैं जिनकी संख्या ८-१० से अधिक नहीं है। प्रारंभ से पंक्ति संख्या १८६० तक जिन पंक्तियों के पहले ऽX चिह्न लगा है वे निश्चय ही देवचन्द्र की कृति हैं। जिन पंक्तियों के पहले ऽ चिह्न है वे देवचन्द्र की भी हो सकती हैं और रतनरंग की भी। पंक्ति संख्या १८५८ के पश्चात नारायणदास की कृति नहीं है, केवल रतनरंग की है और जिन पंक्तियों के पहले X चिह्न लगा है केवल वे ही देवचन्द्र की हैं। परिशिष्ट १ की मूल रचना नारायणदास की रही हो यह संभव है, परन्तु ख प्रति का पाठ इतना भ्रष्ट और त्रुटित है कि आज यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें मूल की छाया कितनी है।

परन्तु जिस प्रकार अन्य रचनाओं में मिलाए गये अंशों को प्रक्षिप्त कहा जाता है क्या उसी प्रकार देवचन्द्र एवं रतनरंग द्वारा जोड़े गये अंश भी प्रक्षिप्त माने जाएंगे? यह रचना यह प्रकट करती है कि स्वयं नारायणदास यह समझता था कि उसकी रचना का उत्तरार्ध उपयुक्त नहीं बन सका और बीच बीच में भी कुछ त्रुटि रह गई है। उसके कहने से ही रतनरंग ने अंतिम अंश लिखा और उसके अनुरूप यत्र तत्र संशोधन किये। देवचन्द्र के संशोधन नारायणदास की स्वीकृति से हुए हैं। नारायणदास ने इस रचना को इस रूप में ग्रहण कर उसे संवत १५८३ विक्रमी अर्थात सन १५२६ ई० में सारंगपुर में सुनाया। इस सम्बन्ध में रचना की प्रस्तावना के "कछुवक सुनी पाछली वाता" तथा "कथा

श्रिताई जपन लई", विशेष रूप से ध्यान में रखने योग्य हैं। अन्त में 'पोथी देख नरायन बोला' कि 'कियो समो कचन के तोला', (२०८१) निरर्थक नही है, न रतनतरग कवि का 'विचार कर' यह कहना निरर्थक है कि 'करो कथा सो अमिय रिसारा' (पक्ति २०८१)। गुरु और शिष्य (नारायणदास और रतनतरग) दोनो ने ही देवचन्द्र द्वारा परिवर्धित कृति को सराहा था और स्वीकार किया था।

जिन ग्रथों में अन्य रचनाओ के क्षेपक खोज किये जाते हैं उन ग्रथों में छिताईचरित के इन परिवर्धनो को क्षेपक नही कहा जा सकता। यह तीन कवियो की सयुक्त रचना है, यह विशेषता है कि किसने कितना अश लिखा है यह जानने का साधन सौभाग्य से प्राप्त है।

रचना काल

छिताईचरित के रचना काल के सम्बन्ध मे अनेक अनुमान किये गये हैं। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने ख प्रति के प्रतिलिपि काल १६४७ वि० (सन १५९० ई०) से गणना का आधार मानकर और प्रतिलिपियो की पीढिया निधारित कर नारायणदास की रचना का काल सवत १५०० वि० तथा रतनरग की रचना का समय १५५० वि० अर्थात क्रमशः सन १४४३ ई० तथा सन १४९३ ई० माना है। भाषा की दृष्टि से वे इसे हिन्दी के आदि युग और भक्ति युग के बीच की कडी मानते हैं।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने छिताईचरित के रचना काल को सन् १४४३ के लगभग मानकर बडी खोज की है, परन्तु दुर्भाग्य से उनकी पुस्तक मे ही किन्ही रुद्र काशिकेय महोदय ने टाट की गोट लगाई है। "पद्मावत" को ससार साहित्य का और विशेषतः हिन्दी साहित्य का केन्द्र मानकर चलने वाले इन महापण्डित ने छिताईचरित को पद्मावत की परवर्ती रचना सिद्ध करने के आशय से छिताईचरित का रचनाकाल सवत १६२७ वि० (सन १५७० ई०) माना है ताकि वह पद्मावत से ३० वर्ष पश्चात की रचना प्रकट हो। डॉ० माताप्रसाद गुप्त की कृति मे ही उनकी स्थापनाओ पर उस कृति के 'परिचय' के नाम से हरताल

फेरने का यह प्रयास सुरुचिपूर्ण नहीं कहा जा सकता, तर्क सम्मत तो वह है ही नहीं।

प्रतिलिपि काल को आधार मानकर और प्रतिलिपियो की पीढियो का अनुमान कर पन्द्रहवी शताब्दी और उसके पूर्व की रचनाओ के रचना काल के विषय मे अनुमान करना ठीक नही है। इस युग में मध्यदेश भीषण उथल-पुथल में रहा है। राजस्थान एव गुजरात मे इनमें से कुछ कृतिया सुरक्षित रह सकी हैं क्योंकि देश के इस भाग को मध्यकाल की उत्पीडक ज्वाला से अपेक्षाकृत कम झुलसना पडा है। इन शताब्दियों की प्राप्त रचनाओ के प्रतिलिपि काल और उन रचनाओ में दी गई रचना तिथियो के अन्तर को देखते हुए यह बात स्पष्ट हो जायगी.—

१ महाभारत कथा	—	रचना काल सवत १४९२ वि०
		प्रतिलिपि काल सवत १७९५ वि०
२ लखनसेनपद्मावतीरास	—	रचनाकाल सवत १५१६ वि०
		प्रतिलिपि काल सवत १६६९ वि०
३ बिल्हण चरित्र	—	रचनाकाल सवत १५३७ वि०
		प्रतिलिपि काल सवत १६७४ वि०
४ वैताल पच्चीसी	—	रचनाकाल सवत १५४६ वि०
		प्रतिलिपि काल सवत १७६३ वि०
५ गीता (अनुवाद)	—	रचनाकाल सवत १५५७ वि०
		प्रतिलिपि काल सवत १७२७ वि०

इन पाचो रचनाओ में उनका रचना काल दिया गया है। लखन सेन पद्मावती रास के अतिरिक्त अन्य और रचनाओ में रचना स्थल भी दिया गया है। यदि इनके रचना काल और रचना-स्थल न दिये गये होते तब प्रतिलिपियो के सवत के आधार पर कुछ भी अनुमान कर सकना संभव नही था। श्री रुद्र काशिकेय के तर्कों के अनुसार ये सब रचनायें विक्रमी सत्रहवीं अथवा अठारहवी शताब्दी की माननी पड़ेगी, जो सत्य से बहुत दूर होगा।

अतएव छिताईचरित के रचना काल के निर्धारण में छिताईचरित की अन्तर्साक्ष्य ही सहायक हो सकती है।

यह पहले लिखा जा चुका है कि सारगपुर मे सवत १५८३ वि० (सन १५२६ ई०) मे नारायणदास ने छिताईचरित की रचना नहीं की, वरन उसे पढकर सुनाया था। उसकी रचना उसके बहुत पहले ग्वालियर में हो चुकी थी। कुछ प्रयोजन ऐसे थे जिनकी सिद्धि के लिए देवचन्द्र द्वारा प्रविष्ट वीर रस की सामग्री युक्त रचना सारगपुर मेंसुनाई जाती और बाबर की विरोधी शक्तियों को सुसगठित किया जाता।

छिताईचरित के रचना काल के निरूपण मे सर्वप्रथम देवचन्द्र के उल्लेखो पर विचार करना होगा। खेमल अथवा खेमचन्द्र राजा मान सिंह के समय मे विद्यमान था। मानसिंह का राज्यकाल सन १४८० ई० से सन १५१६ ई० है। खेमचन्द्र के आग्रह पर मानिक ने बैताल पच्चीसी सन १४८९ ई० में लिखी थी। यह भी स्मरणीय है कि सन १५०५ के पहले ही ग्वालियर इतनी सकटपूर्ण परिस्थितियो में आगया था कि स्थापत्य, सगीत, साहित्य आदि की साधना पर आघात होना प्राकृतिक था। हमारा अनुमान है कि मानसिंह ने मानमदिर राज्यारोहण के तुरन्त पश्चात ही पूर्ण किया होगा। नारायणदास ने महल निर्माण का जो वर्णन किया है वह यह स्पष्टत सिद्ध करता है कि नारायणदासने मानमदिर को निर्मित होते हुए स्वय देखा था और ये पक्तियाँ (२३८ २९२) लिखी थी। गूजरीमहल मानमदिर के पश्चात की कृति है और बहुत कुछ मानमंदिर के बचे हुए मसाले में निर्मित है, यह उसके देखने से प्रकट है। उसमे बादल महल और हिंडोला महल के अश भी समेट दिये गये ज्ञात होते हैं। अतएव छिताईचरित का नारायणदास द्वारा रचित अश सन १४८० ई० के आसपास लिखा गया है यह माना जा सकता है और उसके पश्चात नारायणदास ने इसे खेमचन्द्र को सुनाया होगा, जहां उसे देवचन्द्र ने सुना और अपना अश जोड दिया। रतनरग के परिवर्द्धनो को महत्व देने की आवश्यकता नहीं है। वह नारायणदास का शिष्य था और उसने जो कुछ लिखा है वह नारायणदास की रचना के तुरन्त पश्चात ही लिखा होगा।

सभावना यह भी हो सकती है कि मानसिंह के राज्यारोहण के पूर्व ही नारायणदास अपना अश लिख चुका हो, क्योकि जिस प्रकार के निर्माण मानसिंह ने किये, वैसे ही डूगरेन्द्रसिंह के समय से ही होने लगे थे। मानमदिर के शिल्पी एक विकसित परम्परा के द्योतक हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मानसिंह कालीन सगीत ग्वालियरी सगीत की पिछली आधी शताब्दी के क्रमिक विकास का स्वरूप है और मानसिंह कालीन साहित्य का मूल डूगरेन्द्रसिंह के समकालीन विष्णुदास की रचनाओ मे है।

किसी भी दशा में नारायणदास और देवचन्द्र की रचनाए खेमचन्द्र (सन १४६० ई०) के परवर्ती नहीं हैं।

मैनासत और छिताईचरित के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में हम अन्यत्र लिख चुके हैं।[1] मैनासत की राजकुमारी वास्तव मे छिताई की ही छाया है और पूरब का राजकुमार है अलाउद्दीन का कोई प्रतिरूप। सतनकुंवर छिताईचरित के चितेरे तथा राघवचेतन की प्रतिमूर्ति हैं और रतना मालिन धनश्री और मनश्री है। दोनो ही रचनाओ में विरहिणी नायिका पुरुषवेश धारण करती हैं, अपने प्रियतम के बागे को पहने रहती हैं। इस प्रकार साधन का मैनासत छिताईचरित की समकालीन रचना है।

हम अन्यत्र यह भी लिख चुके हैं कि सन १५०० के लगभग मैनासत को मुल्ला दाउद के चन्दायन के साथ जोड दिया गया और सन १५२० के लगभग सम्भवतः जायसी ने उसमें कुछ परिवर्द्धन किये तथा उस रूप में वह सन १६२३ ई० में आसाम में बगला भाषा में अनुवादित हुआ।[2] इस आधार पर भी छिताईचरित के नारायणदास के अश का रचनाकाल सन १४८० ई० या उसके पूर्व माना जा सकता है।

नारायणदास ने अपना रचना में स्थापत्य, चित्रकला, सगीत और युद्धकला का जैसा प्रौढ वर्णन किया है उसे देखते हुए यह रचना

१ साधन कृत मैनासत, पृष्ठ ३०

२ वही, पृष्ठ ८७

उसके जीवन के प्रारभिक काल की ज्ञात नही होती। यदि महाभारत कथा की रचना (सन १४३५ ई०) के पश्चात नारायणदास का जन्म हुआ हो तब छिताईचरित उसने ४०-४५ वर्ष की वय में लिखा होगा, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। यद्यपि छिताईचरित में सुहागरात जैसे वर्णन भी हैं तथापि उसमे काम क्रीडा का वह उद्दाम वर्णन नही हैं जो तत्कालीन अन्य रचनाओ में मिलता है। छिताईचरित का रचना काल सन १४७५-१४८० ई० के लगभग है।

रचना का नाम

छिताईचरित के नाम के विषय में भी कुछ विवाद हुआ है। डॉ० माताप्रसाद ने इस रचना का नाम 'छिताई वार्ता' माना हैं। राजस्थान में बात अथवा वार्ता नाम से जो प्रचुर साहित्य सृजित हुआ है उसके स्वरूप को देखते हुए छिताईचरित को वार्ता अभिधान देना असगत होगा। छिताईचरित में सर्वाधिक 'कथा' शब्द का प्रयोग हुआ है —

सुमति देहु जिहि कथा उपजई (१)
बढइ कथा जउ कहउ वखानी (१२)
किउ यह कथा चली ससारा (१६)
कथा करन मन उग्रम भयो (२३)
कथा छिताई जानन लई (२६)
नवरस कथा करइ विस्तारू (२८)
बढइ कथा जो घाटिन गनऊ (१२२)
बाढे कथा जु करउ वखाना (५४४)
आधी कथा सुनत सुख भईग्रो (५५६)
सरस कथा मेरे जिय रहई (५६१)
कही कथा सुख उपन्यो ताही (५६२)
आधी कथा नारायन कही (५६६)
बढइ कथा जो कहउ बखानी (६४१)
इतनी कथा साहिकन भई,

वहुरि कथा दिविगिर गढ गई (१५०८)
वन वरनौ तौ कथा वढाई (६१८)
करी कथा सौ अमिय रिसारा (२०२८)
त्यौ त्रिनु कलस कथा आरभ,
लीनी वरण कथा कवि रग (२०८०)
जो यहु कथा सुनइ दै काना (२०८५)

बारम्बार 'कथा' शब्द के इन प्रयोगों से भी इस रचना का नाम छिताई कथा नही माना जा सकता। यह प्रयोग ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार राम चरित मानस में अनेक बार 'राम कथा' शब्दबन्ध आया है।

छिताईचरित में कथा के समान ही एक दूसरा शब्द 'समय' आया है। महाभारत मे 'समय' का प्रयोग आख्यान के अर्थ में हुआ है। पृथ्वीराज रासो में इस शब्द का प्रयोग उपाख्यान के अर्थ में किया गया है। छिताईचरित मे इस आख्यान के लिये भी समय – समौ कहा गया है—

समौ विचारि नाथ निरमई (२६७)
कीयो समौ कचन के मोला (२०८१)

परन्तु यह ध्यान मे रखने की बात है कि "समौ" का प्रयोग नारायणदास ने नही किया है, रतनरग और देवचन्द्र ने इस शब्द का प्रयोग किया है। चतुर्भुजदास निगम ने मधुमालती मे कथा और समय शब्द का जिस रूप में प्रयोग किया है उससे उनका आशय समझा जा सकता है—

वहुतै कथा कहत रस फीकौ
आगे समौ सु है रस नीकौ ॥१२७॥

अथवा

लता मध्य पनग लता सोवे मे घनसार।
कथा मध्य मधुमालती आभूषन मे हार ॥६६३॥

अलाउद्दीन के सेनापतियों में छिताईचरित के नुसरतखां, उलुग खां तथा ईसफ खाँ का विशेष उल्लेख आया है। हम्मीर महाकाव्य के अनुसार नुसरतखां रणथम्भोर के युद्ध में मारा गया था और छिताई चरित के अनुसार ही रणथम्भोर का युद्ध देवगिरि युद्ध के पहले हो चुका था। ज्ञात यह होता है कि नारायणदास ने भ्रमवश नुसरतखाँ को देवगिरि के दूसरे अभियान में सम्मिलित कर दिया है। उलुग खां दूसरे देवगिरि अभियान में अलाउद्दीन के साथ नहीं गया और दिल्ली की रक्षा के लिए रह गया। ईसफखाँ के विषय में अलाउद्दीन से छिताई चरित में कहलाया गया है:—

याथइं बलीन दूजो औरा। याके बल तोरिउ चीतौरा ॥

(पंक्ति ७७१)

समरसिंह को द्वारसमुद्र के राजा भगवान नारायण का राजकुमार छिताईचरित में कहा गया है। इतिहासज्ञों को अभी तक होयसल अथवा काकतीय वंश में किसी भगवान नारायण का नाम नहीं मिल सका है। हमारे विनम्र मत में द्वारसमुद्र के इस राजा का नाम छिताईचरित से ग्रहण कर लेना ही श्रेष्ठ मार्ग है। उस समय के राजा एकाधिक नामों को धारण करते थे इस दृष्टि से इस बात को अधिक महत्व देना उचित नहीं है कि भगवान नारायण नाम अभी तक मिल नहीं सका।

छिताईचरित की साक्षी के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नुसरतखां ने देवगिरि पर कोई आक्रमण चित्तौड़ विजय के पूर्व किया था, जिसे फारसी इतिहास लेखकों ने मलिक काफूर के नाम लिख दिया है। उसमें ही रामदेव दिल्ली लाया गया था। इस आक्रमण के पश्चात यहया के कथन के अनुसार अलाउद्दीन स्वयं देवगिरि गया और छिताईहरण करके लाया, जो पुनः समरसिंह को लौटा दी गई।

छिताईचरित की कथा वस्तु के निर्माण में जिन ऐतिहासिक कथा बीजों को ग्रहण किया गया है वे निश्चित ही सुपुष्ट इतिहास की आधार शिला माने जा सकते हैं। जिन ऐतिहासिक तथ्यों का प्रसंग वश उल्लेख किया गया है उन्हें असत्य मानना तो किसी प्रकार उचित

और नायक गोपाल का यहां उल्लेख आवश्यक है। छिताईचरित संगीत के माहात्म्य, निरूपण का आख्यान-काव्य है। प्रारम्भ से अन्त तक गान नृत्य और वाद्य की महिमा और उनके उपकरणों का वर्णन इसमें मिलता है। अलाउद्दीन संगीत का मर्मज्ञ है। रामदेव भी गुणग्राही है। छिताई और समरसिंह दोनों ही संगीत में प्रवीण हैं, इनका वीणा-वादन अद्वितीय है और चराचर को सम्मोहित करने वाला है। ऐसे काव्य में अलाउद्दीन के समकालीन महान संगीतज्ञ नायक गोपाल का उल्लेख न होना ही आश्चर्यजनक होता। छिताईचरित के अनुसार वह दक्षिण का निवासी था। वहाँ से अलाउद्दीन के आश्रय में आया और फिर समरसिंह के साथ दक्षिण लौट गया। गोपाल नायक विषयक ये विवरण पूर्णतः इतिहास सम्मत हैं।[1]

मोल्हण और राघव चेतन दोनों ही ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। मोल्हण के रणथंभोर में अलाउद्दीन की तरफ से किये गये दौत्य का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। राघव चेतन की ऐतिहासिकता के विषय में भी अगरचन्द नाहटा ने अभी विस्तृत लेख लिखा है[2]। छिताईचरित में राजा रामदेव की राज सभा में दूत के रूप में राघव चेतन गया है। उसकी मांग भी वही है जो नयचन्द्र ने मोल्हण से कराई है।

दयं मनि कंचन तुरी तुरंगा। दय मदि गजि रे रहय जिउं रंगा।।
दय गढ छोडि वचन दय मोही। कन्या देहि रहई पत तोही।।
(पंक्ति १०६८-११६६)

ऊपर हम देख चुके हैं कि एसामी राघव चेतन को देवगिरि के दूसरे आक्रमण के समय रामदेव के साथ बतलाता है परन्तु एसामी का यह कथन नितान्त मिथ्या एवं भ्रामक है। राघव चेतन अलाउद्दीन के आश्रय में था और मुहम्मद तुगलक के समय तक दिल्ली में ही रहा, यह तथ्य अनेक स्रोतों से निर्विवाद है।

---

१ प्रस्तुत लेखक की पुस्तक 'मानसिंह और मानकुतूहल' पृष्ठ ६५।
२ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ६४, अंक १, पृष्ठ ६४।

का समाचार भेजने की युक्ति अलौकिक नहीं है और तत्कालीन समाचार भेजने के एक साधन को प्रस्तुत करती है। छिताईचरित में देवगिरि से दिल्ली की दूरी आठ सौ कोस बतलाई गई है। इन आठ सौ कोस में प्रत्येक चौथाई कोस पर ढोल वालों की तीन हजार दो सौ चौकियां बनादी गई थीं। नुसरतखां की आज्ञा होते ही पहली चौकी पर ढोल बजना प्रारम्भ हुए, उन्हे सुनकर आगे की चौकियों पर क्रमशः ढोल बजते गये और उसी दिन दिल्ली में संकेत मिल गया कि सुल्तान ने देवगिरि पर विजय प्राप्त करली क्योंकि उलुगखां को पहले ही समझा दिया गया था कि ये ढोल विजय-संकेत होंगे। देवचन्द्र द्वारा जोडा गया यह अंश (पंक्ति १४३५-१४३६) एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया की जानकारी देता है[1]।

धावन (पतिहा) द्वारा समाचार भेजने के उल्लेख तो अन्यत्र भी बहुत मिलते है। इसी प्रकार राघव चेतन का दौत्य और दूत की अवध्यता जैसे उल्लेख भी अन्य रचनाओं में मिल जाते हैं। जासूसों का अस्तित्व भी नया नहीं है, परन्तु उस समय व्यायाम के साधनों के उल्लेख हमें (महाभारत कथा के अतिरिक्त) अन्य कहीं नहीं मिले—

भानइ मुहगिरि फेरइ नाला। बन्यो शरीर जे द्रढहि रिसाला ॥
लागहि खम्भुमालु बहु गुनी। बोलहिं भुजसु तासु को दुनी ॥
(पंक्ति ३३४-३३५)

इन पंक्तियों में पन्द्रहवीं शताब्दी के इस हिन्दी काव्य में मुदगर, नाल और मलखम्भ को देखकर मन प्रसन्न हो जाता है। ग्रामों की चौपालों पर पत्थर के अनेक प्रकार के नालों और मुग्दरों की परम्परा

---

१ बरनी ने 'तारीखे फीरोजशाही' में समाचार भेजने के ऐसे साधनों का वर्णन किया है। "प्रत्येक मंजिल पर दूतों के लिए घोड़ों का प्रबन्ध कर दिया जाता था। पूरे मार्ग में आधे कोस तथा चौथाई कोस पर धावन नियुक्त किये जाते थे।" श्री रिजवी महोदय ने 'धावन' के स्थान पर 'धावा करने वाले' लिखा है जो स्पष्ट ही अशुद्ध अनुवाद है।

नहीं। साथ ही उसकी कथा युक्तियों और कथा रूढ़ियों में इतिहास की खोज व्यर्थ है।

सामाजिक स्थिति

हिन्दी के लौकिक आख्यान काव्यों में तत्कालीन सामाजिक स्थिति का बहुत विस्तृत एवं प्रामाणिक इतिहास प्राप्त होता है। लखनसेन पद्मावती रास, मधुमालती (निगम कृत) माधवानल कामकन्दला कथा मैनासत आदि रचनाओं में काल्पनिक काम कथाओं के बीच तत्कालीन विश्वासों एवं सामाजिक आकांक्षाओं का अत्रुट स्वरूप प्राप्त होता है। छिताईचरित में यह सब कुछ तो है ही, कुछ विशिष्ट भी है। उसमें तत्कालीन इतिहास के साथ साथ समाज के उस अंग पर प्रकाश डाला गया है जिसे हिन्दी के अन्य किसी समकालीन काव्य ने अपनी सीमाओं में नहीं लिया। बात को बढ़ा चढ़ा कर न कहने की प्रवृत्ति ने तथा अलौकिक तत्व से दूर रहने की भावना ने इस रचना के कथनों का महत्व बढ़ा दिया है।

जहां तक तत्कालीन समाज के विश्वासों का सम्बन्ध है; छिताई चरित में नियति की प्रबलता, कर्मफल की दुर्निवारता, ज्योतिष के प्रति चरम आस्था, शकुन अशकुन पर विश्वास, योगियों के प्रति भय मिश्रित समादर, ब्राह्मणों के प्रति आदर भाव अन्य समकालीन रचनाओं के समान ही प्राप्त होते हैं। घर में कुमारी कन्या होने पर माता-पिता की व्यथा इन समस्त रचनाओं में समान रूप से व्यक्त की गई है।

छिताईचरित राजाओं, रानियों, सुल्तानों और बेगमों को केन्द्र बनाकर चला है अतएव उनके तथा उनसे सम्बद्ध समाज के मनोभावों का अंकन इस रचना में विशेष रूप से हुआ है, यद्यपि जन साधारण के मनोभावों के वर्णन का भी अभाव नहीं है। राजकुमार और राजकुमारियों की बालक्रीडा, उनके यौवन विलास, मृगया आदि के वर्णन तो मिलते ही हैं परन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण है राज सभाओं और सेनाओं से सम्बन्धित अत्यन्त प्रामाणिक और नवीन उल्लेख।

देवगिरि से दिल्ली तक बहुत थोड़े समय में ही देवगिरि-विजय

वस्त्राभूषण एवं प्रसाधनों के विस्तृत वर्णन इस रचना में प्राप्त होते हैं।

किसी कारण से भी किया गया हो, छिताईचरित में चन्दवार की रमणियों की उद्दाम रसिकता का दो बार वर्णन वरवस ध्यान आकर्षित करता है। चन्दवार के पनघट और उन पर रमने वाली सम्मोहक युवतियों की लीलाओं में कवि ने विशेष अभिरुचि दिखाई है। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में चन्दवार चौहान राजपूतों के हाथ में था। इसी वंश के राव मानिकचन्द चौहान ने राणा सांगा के साथ बयाना में बाबर की सेना के साथ युद्ध किया था। हम यह अनुमान कर चुके हैं कि कभी ग्वालियर और चन्दवार के राजाओं में विवाह सम्बन्ध हुआ होगा[1]। चन्दवार चौहानों से बिलग्राम के फरमली सरदारों को मुगलों के पूर्व मिल गया था और यहीं पर परम रूपवती एवं कवयित्री चम्पा (१५४०) हुई थी। जो हो, स्त्री सौन्दर्य का अत्यन्त हृदयग्राही चित्रण करने वाले नारायणदास का घनिष्ट परिचय चन्दवार से था।

मैनासत योगसाधन की पृष्ठ भूमि में निर्मित अत्यन्त सुन्दर सांग-रूपक है। मैनासत और छिताईचरित में कुछ बातों में अद्‌भुत साम्य है। मैना और छिताई दोनों ही अपनी वियोगावस्था में अपने प्रियतम का बागा पहनकर पुरुष वेष में रहती हैं, दोनों ही दूतियों द्वारा प्रलोभित की जाती हैं और खरी उतरती हैं। इन बाह्य समानताओं के अतिरिक्त योग और योगी को छिताईचरित में भी विस्तृत स्थान मिला है। चन्द्रगिरि के चन्द्रनाथ योगी द्वारा सिद्धि का साधन और योग मार्ग का विवेचन तथा राजधर्म के साथ योग का पालन तत्कालीन मान्यताओं के आधार पर विवेचित है। यह स्मरणीय है कि कामशास्त्र के प्रणेता मानसिंह के पूर्ववर्ती तोमर राजा कल्याणमल्ल को 'अनंगरंग' में 'भूप मुनि' कहा गया है। छिताईचरित में एक स्थल पर तो रामदेव को

---

१ बरनी आदि समकालीन इतिहास लेखकों ने युद्ध के साधनों में तलवार, फरसे, भाले, नेजे, पाशेब, गर्गच (ठाटरी), मगरबी, मंजनीक, आरारा, साबात आदि का उल्लेख किया है।

बहुत पुरानी है तथा दक्षिण का मलखम्भ बहुत पहले उत्तर में लोक-प्रिय हो गया था।

तत्कालीन हिन्दू और मुस्लिम सैनिकों की जातियां; उनके अस्त्र-शस्त्र और गढ़ों को ध्वस्त करने की रीति छिताईचरित में बहुत विस्तार से दी गई है। बड़े-बड़े अभियानों, में मार्गों को साफ करने वाले और गढ़ की प्राचीरों को कुदालियों से खोदने वालों के दल भी सेना के साथ जाते थे। हाथी, घोड़े, ऊँट, खच्चर, चौडोल, सेनाओं में भार वहन एवं वाहन के रूप में प्रयोग किये जाते थे। ऊँटों पर पानी की मशकें भी लदी रहती थीं। गढ़ के ऊपर से बड़े बड़े पत्थर और गरम तेल फेंक कर आक्रमणकारी को रोका जाता था। आक्रमणकारी ठाटरी बनाकर उसकी ओट में आक्रमण करते थे। मगरबी, ढेंकुली जैसे यंत्रों से गोले फेंके जाते थे और तीर, कमान, भाले तथा अनेक प्रकार की तलवारें प्रयोग में लाई जाती थीं[1]। सेना के साथ अनेक प्रकार के ध्वज एवं रणवाद्य रहते थे। तोप और बन्दूकें अभी रणक्षेत्र में अवतरित नहीं हुई थीं, परन्तु ऐसे यन्त्र थे जो दूर तक ठीक निशाना बांधकर मार सकते थे। इन रण सज्जाओं के बीच सैनिक के मनोभावों का भी अत्यन्त मार्मिक चित्रण छिताईचरित में मिलता है—

ठां ठां घाइल तोरहिं थाई। इन्हहीं को अब किये जुदाई।
कहं सेवक कीन्हें करतारा। घर संभारि करहि कर छारा।
थरथराइ धरणी महिं लोटहिं। एक ते चलहिं वृच्छ की ओटहिं।
जूझन हार ते हुते अनाथा। बिरले मुह महि घालइं हाथा।
ओछे घाइ जिन भये सरीरा। एक लइन देइ मांगइ नीरा।
(पंक्ति ८२०-८२४)

युद्धों के सजीव एवं यथार्थ वर्णन में छिताईचरित हिन्दी में अद्वितीय रचना है।

राजाओं और रानियों के, साधारण सैनिकों के और योगियों के

---

१ प्रस्तुत लेखक की पुस्तक "सावन कृत मैंनासत" पृष्ठ ८५।

एकते काठन पाहन पाटे । नव नाटक नव साला ठाटे ।
नवनि रंग कुरि अति रवनीका । ठांव ठांव सोने के टीका ॥
बादल घनह उठी घन घटा । रचे अनूप अटारी अटा ।
छाजे झरोखा रचे अनूपा । जिन्हहि उझकिते रहे जे भूपा ॥
कठछपर सतखने अवासा । कंचन कलश मनहु कविलासा ।
रची केरि कांच की कडारी । रहहिं भूलि भ्रम चतुर विचारी ॥
बावन वस्तु मिलइ कइ बानी । अति अनूप आरसी समानी ।
रची चित्रसारी चितलाई । देखत ही मनु रहेउ सिहाई ॥
मानिकु चौक ते मन मोहनी । रची अनूप चोर मिहचनी ।
कीये भौंहरे अन अन भांती । तिनमहि जनि अंधियारी राती ॥
बने हिंडोरे कंचन खंभा । मानहु उपजे उकति सयंभा ।
करि सिंगारु जे अधिक बिचारी । मानहु भरत की भरी सुनारी ॥
सभा जोरि जंह वइसइ राऊ । फटिक पीठ वंध्यौ सो ठाऊ ।
चकई चकवा कीए कडारी । जनक्रकरी मटामरियारी ॥
तिहठां और जिते जल जीवा । भरे भरति की साजति नीवा ।
मच्छ कच्छ लघु दीरघ वने । ते सब चलहिं द्रिष्ट कर वने ॥
सभा सरोवर सोभइ तइसो । हथिनापुर पांडव कउ जइसो ।
और राइ जे देखहि आई । वस न सकहिं रहहि भरमाई ॥
चंदन काठ कठाइल आना । ते ग्रीषम रितु हेम समाना ।
चउवारे चउपखा सुदेसा । बरिखा बिरमइं तहां नरेस ॥
सोने के पीपरि पंचासा । बरिखा बरखइं बारह मासा ।
गोमट खरवूजा आकारा । तिन्हहि पंनारी जरे किवारा ॥
चहुंधा खुटी कांच की भली । रहइ परेवा तहं जंगली ।
तिहं ठाँ सूवा सारो साखा । खुमरो बोलहिं अन अन भाखा ॥
एक महल नीर कौ दुराउ । दीसइं तहं बइसन कौ ठांउ ।
देखति बुधि न होइ सरीरा । चलति बूडीयइ गहर गंभीरा ॥
हिलवी कांच भांति कइ करी । दीसइ जनु कालंद्री भरी ।
जिहं ठां राइ तणी जिउंनारा । दीसइ जमुना जल आकारा ॥

(पंक्ति २३८-२७२)

भी 'महामुनि भूप' कहा गया है (पंक्ति २०२६)। उस युग की इसी भावना के अनुसार चन्द्रनाथ ने समरसिंह को उपदेश दिया हैः—

अविचल वोल धरम कौ मूला। इन सम धर्म आन नहिं तूला।
औरौं कहौं सिध्य तुम्ह जोगा। राजनीति प्रतिपालहु लोगा॥
(पंक्ति २०१०-२०११)

सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि

सामाजिक स्थिति के अंकन का ही एक अंग तत्कालीन सांस्कृतिक वैभव का चित्रण है। कला-साधना के क्षेत्र में ईसवी पन्द्रहवीं शताब्दी में भारतवर्ष की स्थिति क्या थी इसका सजीव वर्णन छिताईचरित में प्राप्त होता है। इन वर्णनों में कल्पना की उडान का आश्रय न लेकर वास्तविक तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं जिन्हें निस्संकोच रूप से इतिहास की वस्तु माना जा सकता है। हिन्दी की किसी भी मध्यकालीन रचना में इस प्रकार का वर्णन प्राप्त नहीं हुआ है।

स्थापत्य तथा मूर्तिकला

इसका एक उदाहरण स्थापत्य वर्णन में मिलता है। ईसवी पन्द्रहवीं शताब्दी के मन्दिर तो अनेक आज भी प्राप्त होते हैं, परन्तु निवास गृह केवल मानमन्दिर और गूजरी महल ही अवशिष्ट रह सके हैं। छिताई चरित के महल निर्माण के वर्णन से इसकी तुलना करने पर छिताई चरित के वर्णनों में और उसके इन समकालीन महलों में अद्‌भुत साम्य दिखायी देता है और यह ज्ञात होता है कि इन महलों में से किसी के निर्माण को देखकर ही छिताईचरित का यह अंश लिखा गया है—

जे प्रवीन पाहन सुतधारा। बीरा दीनौ राइ हकारा।
कमठाने कहं आयसु भयो। अगनत दर्ब काम लगि दयो।
गुनी लंकु गीगौ गुन दासू। जानहि सिलप ते वहुत अभ्यासू॥
वोलि ज्योतिषी साधी लगना। रची नीव सुभ नीके सगुना।
क्षेत्रपालु पूजिउ करि भाउ। अविचल होउ ग्रेह द्रिढ राउ॥
गही नीव भारी चौराई। पुरिष सात कइ मेरि भराई।
चौवारे चउखंडि चौडोरा। कलिचा वने कांच के मोरा॥

परन्तु वे अब साफ कर दिये गये हैं। छिताईचरित उनकी कुछ बानगी प्रस्तुत करता हैं।

चित्रों और चित्रकारों को कथा युक्ति अथवा कथा रूढ़ि के रूप में अनेक काव्यों में ग्रहण किया गया है, परन्तु छिताईचरित में चित्र रचना, चित्रों के विषय एवं उनके सौंदर्य का जैसा अंकन किया गया है, उसे देखने से प्रत्यक्ष है कि इसका कवि केवल चित्रों को देखने वाला नहीं है, उसने अपनी आखों से चित्र बनते देखे हैं और वह उनके मर्म को समझता है तथा अपने श्रोताओं को उनके अलौकिक सौन्दर्य का बोध करा सकता है। 'चित्र न होई पुराने थानी' (पंक्ति २३६) से प्रारम्भ कर कवि ने नवीन महल निर्माण का प्रसंग भी प्राप्त कर लिया और चित्रों के निर्माण के वर्णन का भी। मध्यकालीन चित्रों में हाथ ऊंचा उठा कर मृगशावक को जौ चराती हुई नायिका के श्रेष्ठ चित्र प्राप्त होते हैं। नारायणदास ने लिखा है:—

पहरिउ बहुर कसुंभौ चीरा। गौर वरन ते स्वरन शरीरा॥
कुच कंचुकी सोहियत स्यामू। मानहु गुंडरी दीन्ही कामू।
मृग चेटुवा लगाए साथा। आपुन लए हरे जव हाथा॥
ताहि चरावति बांह उचाई। कुच कुंचकी संधि होइ जाई।
तब कुच मूरि चितेरे देखा। स्याम घटा जनु ससि की रेखा॥
(पंक्ति ३१४-३१८)

चितेरे के मन में यह छवि समा गई और उसने चित्र बनाया। चित्र लेखन की यह घटना तत्कालीन प्रचलित इस विषय के चित्रों को देखकर ही छिताईचरित में समाविष्ट की गई हैं।

इसी प्रकार का एक प्रसंग और हैं जिसके अनेक मध्यकालीन चित्र प्राप्त होते हैं। मृगया का वर्णन करते हुए नारायणदास ने लिखा है—

कबहूँ साथ छिताई जाई। गहै हरिन कर घंट वजाई॥
(पंक्ति ४४०)

एक बात निश्चित है कि छिताईचरित की रचना के समय विविध

इस वर्णन के साथ मानमंदिर के मनोरम झरोखे, सतखने आवास, उनके खरबूजा के आकार के गोमट, सुन्दर चौक, तलघर, कौतूहल पूर्ण भूलभुलैया, कुरेद कर बनाये गए पशु पक्षियों एवं लता गुल्मों के आकार, महराबों और खम्भों की कारीगरी, कांच जैसे चमकते हुए टटके रंगों के नानोत्पलखचित हंस, मयूर, जल कुक्कुट आदि के चित्र महलों के भीतर बने हुए जलाशय, राजा की बैठकें, नृत्यशाला आदि की तुलना करने पर यह सन्देह नहीं रहता कि नारायणदास किस महल का वर्णन कर रहा है।

इस युग में मूर्ति कला स्थापत्य के अंग के रूप में ही दिखाई देती हैं। स्वतंत्र मूर्तियों का निर्माण बहुत कम हुआ हैं यद्यपि मन्दिरों में अगणित मूर्तियों का आडम्बर दिखाई देता है। छिताईचरित में भी स्वतन्त्र मूर्तियां बनाने का वर्णन नहीं हैं। यद्यपि मानमंदिर के सामने ही मानसिंह ने पीतल के एक बड़े नन्दी और पत्थर के विशाल काय हाथी की मूर्तियां बनवाई थीं, परन्तु मानव-मूर्तियों का अभाव प्रत्यक्ष हैं। इसे इस्लाम का ही प्रभाव कहा जा सकता है।

मानमंदिर का लकड़ी का काम नष्ट हो गया हैं और वे फव्वारे आदि भी अब अवशिष्ट नहीं है जिनका उल्लेख छिताईचरित में है। गुमटियों का स्वर्ण मंडित तांबा भी हटा लिया गया हैं तथापि नारायण-दास का वर्णन पढ़ने के पश्चात ऐसा ज्ञात होता है कि मानमंदिर के अटारी-अटा, प्रकोष्ठ, शयन-कक्ष, भोजनालय, सरोवर फव्वारे, उप-वन अपनी समस्त लुनाई एवं वैभव के साथ प्रत्यक्ष हो गये हों। उनमें हंसने-खेलने वाली रमणियां एवं राज कन्याएं, उनसे जमने वाली नाट्य सभाएं एवं संगीत आयोजन, नागरिकों एवं सामन्तों के समूह अपने बहुमूल्य वेशभूषा के साथ सजीव हो उठते हैं और बूढे मार्गदर्शक की देख रेख में उजड़ा सा मानमन्दिर पुनः दक्षिणी धूप से सुवासित एवं देश देशान्तर की प्रसाधन सामग्रियों से परिपूर्ण मुखरित हो उठता है।

चित्रकला

मानमन्दिर को कभी चित्रमहल भी कहा जाता था। उसकी भित्तियों के चित्रों के अवशेष इस शताब्दी के प्रारम्भ में विद्यमान थे,

के हाव भाव के दृश्य का वर्णन करते हुए कवि उनका शब्द-चित्र खींचते हुए लिखता है:—

चलिउ से जाइ रसिक परवीना। बिधीं तिया जनु बनसी मीना।
एकते रहीं कलस सिर लीएं। एक दुहूँ कर राखे हीएं॥
एकते हात रही उरवाई। बरवट मन जोगी लइ जाई।
एक जंभाहि ते तोरहि अंगू। जे चित व्यापी अगमु अनंगू॥
एकते कर फोरहि कामिनी। काम जे कोपि हीए महि हनी॥
(पंक्ति १५६३-१५६७)

अथवा

कान खुजावहि नयन घुराबहिं। लइ उसास से खरी जंभावहिं।
नखहि निरख उर बिउरहि बारा। व्यापहि जबहि काम की झारा॥
देखहि छुद्रघंटिका छोरी। तनु अइठहि करु अंगुरी फोरी।
घूंघट काढ़हि खरी लजाही। चलहि जे नेवरु सबदु सुनाही॥
मुरि मुसकाहि चलत चित हरई। नयन फांसि जनु विषया करई।
(पंक्ति १६०८-१६१२)

समरसिंह के वीणा वादन को सुनने के लिये दिल्ली की रमणियों की आतुरता का चित्र भी दर्शनीय है (यह स्थल संभवतः देवचन्द्र विरचित है):—

उठी चली कामिनी अनूपा। तिनको कौन बखानइ रूपा।
जौ कवि रूप बरनि कइ कहई। कहति कथा कउ अंत न लहई॥
एक ते एक बांह देइ चली। नैन कुरंगिनी बनिता मिली।
एकन आंजे एक ते नइना। एक ते सूधे बोलि न बयना॥
चिकने केस हाथन कांगई। कौतुक देखनि अइसे गई।
एकन कर चंदन आरसी। देखइ चित्रसाल ते धसी॥
एक ते अध नहाति उठि चली। अधिक उलइती ऐसीं मिली।
एक तरिवनु पहिरे कांना। कौतुक भूलि भई अग्याना॥
(पंक्ति १७५०-१७५३)

देवचन्द्र द्वारा प्रस्तुत अश्वों के तीखेपन का शब्द-चित्र भी अत्यन्त सजीव है—

विषयों के भित्ति एवं पटल चित्रों का विधिवत् निर्माण होता था। वे चित्र शबीहों के भी होते थे तथा काल्पनिक भावाभिव्यक्तियों एवं पौराणिक कथाओं के भी। रागमाला एवं काम शास्त्र के चित्रों की रचना भी होती थी।

चित्रकार अपने माध्यमों से चित्रों का अंकन करता है परन्तु नारायणदास और देवचन्द्र दोनों ही शब्दों के माध्यम से सजीव चित्र प्रस्तुत करने में अप्रतिम है। नारायणदास के वर्णन पढ़कर मध्यकालीन चित्रों और मूर्तियों में अंकित नायिकाएं शब्दों के माध्यम से सजीव सी हो जाती है। चित्रकार अथवा मूर्तिकार अपनी नायिकाओं में गति का आभास मात्र दे पाए हैं परन्तु कवि ने उनमें गति भी ला दी है। छिताई के चित्र-दर्शन का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

ठोकति बीना निरखति नारी। रचि रचि राग सवारति सारी।
गजगति चलइ मंद मुसकाई। सखी पाच दस संगि लगाई॥
देखन चली चित्र की सारा। लिखिउ चित्र तहं विविध प्रकारा।
लिखत चितेरी दीन्हे पीठा। सुनिउं भुनक तहं फेरी दीठा॥
रहिउं छिताई कउ मुह जोई। यह मानस कइ अपंछर होई।
लागिउ चित्रु चितु होइ तइसौ।

(पंक्ति २९३-२९८)

चित्रकार स्वयं चित्र सा बन गया और यह समस्त दृश्य अत्यन्त कुशल चित्रकार द्वारा भी 'लिखा' जा सकता है, यह कहना कठिन है।

इसी प्रकार विवाह की रात में जागी हुई राजमहल की कामनियों का शब्द-चित्र भी अत्यन्त सम्मोहक है:—

व्याहु राति जागी कामिनी। घूंघट घूमहि गज गामिनी।
एक ते नारी मुरवहि नैना। गरे खांचकइ बोलइ बैना॥
लटि मेले जे लटिकति फिरहिं। जोवन मदुमाती जिऊं गिरहीं।
एकते खांम्ह गहे ऐंडाही। जागी राति ते खरी जंभाही॥

(पंक्ति ३५४-३५७)

चंदवार की युवतियों के समरसिंह के सौन्दर्य पर विमोहित होने

नाद की ब्रह्म के रूप में उपासना भारतीय संगीत की विशेषता रही है। मध्यकाल में गोरक्षनाथ ने उसे योग साधना का अभिन्न अंग बना दिया था और इसी कारण शिव मत, भरत मत, हनुमंत मत के समान ही गोरक्ष मत का भी उल्लेख संगीत ग्रन्थों में मिलता है। ग्वालियर में गोरक्ष शैली के आद्याचार्य के रूप में गोरक्षनाथ को विशेष महत्व प्राप्त था। मानसिंह तोमर ने मानकुतूहल में उनका प्रमाण रूप में उल्लेख किया है। छिताईचरित में इस परम्परा के दर्शन होते हैं। रामदेव की सभा में जंगम गोरक्षनाथ की परम्परा के यती और सिद्धों का स्मरण करने के पश्चात ही वीणा का स्पर्श करता है—

जती सिध्य अवलंवे सर्व। गीतंगी जनु सुर गंधर्व।
(पंक्ति ८४)

योग साधन, आत्म-दर्शन और तीर्थाटन भी नाद ब्रह्म की आराधना के बिना व्यर्थ और पागलों जैसा निरुद्देश्य भ्रमण है—

नादु रंग को मरमु न लहई। जीय महि जानि अपनपउ कहई।
चित एक पाखंडी करउ। तीरथ फिरति भवइ बावरउ॥
(पंक्ति ९०-९१)

संगीत पूर्णानन्द प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है:—

नादु रंग विनु और न रंगू। मृग माला मोहियइ भुवंगू॥

संगीत के आदि प्रवर्तक के रूप में शिव का और नाट्य शास्त्र के प्रणेता भरत मुनि का उल्लेख भी छिताई चरित में है। (पंक्ति १६४२)

तत्कालीन संगीत शास्त्र के ग्रन्थों में मार्गी और देशी दो प्रकार की संगीत शैलियों का वर्णन मिलता है। मार्गी उस समय प्राचीन पद्धति पर संस्कृत के बोलों पर आधारित शास्त्रीय संगीत माना जाता था और लोक भाषा हिन्दी के बोलों युक्त लोक प्रचलित संगीत देशी कहा जाता था। छिताईचरित में इन दोनों का उल्लेख आया है—

सुवे अंग देशी बहु रूपा। उकति नाच ते करहि अनूपा॥
(पंक्ति ४३४)

पुरु घप चलई प्रोईया थाकू । तेजी तुरकी गूंठ उलाकू ।
एराकी ते बना विधि भलई । बोल चाल हरिए हांसुलई ।
एक वाल कउ पहि तुरी । धावति धरनि न लागइ खुरी ।
एकते खुरासान की जाता । चलिवौं करहिं दिवस औ राता ।
भूलि छुवहि ताजनौ रिसाई । दोऊ चलन रहइ डरि लाई ॥
नवमि न जानहि सूधी रागा । द्रिढ असवार रहहि गहि वागा ।
महोया वहुत हंस के रूपा । कंचन काठी कंठ अनूपा ॥
(पंक्ति ५७८-५८४)

इस प्रकार के शब्द-चित्र समस्त छिताईचरित में अनेक प्राप्त होते हैं। ऐसा ज्ञात होता है मानो शब्द चित्रकार कवि और तूलिका के धनी चितेरे में होड़ सी लगी हो। यह तत्कालीन वातावरण और कला साधना का प्रसाद है। विभिन्न कलाओं की अभिव्यक्ति के माध्यम भिन्न होते हैं परन्तु दृश्यों और मनोभावों की अभिव्यक्ति की भावना और शैली एक युग में एक सी ही होती है, वह चाहे संगीत, काव्य, चित्र, मूर्ति एवं स्थापत्य किसी भी कला के रूप में हो।

भारतीय मध्यकालीन चित्रकला के इतिहास के पुनर्निर्माण की दृष्टि से छिताईचरित के ये उल्लेख अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। मध्यकाल में पन्द्रहवीं शताब्दी में समस्त कलाओं में नवोन्मेष हुआ था। इसके विषय में बहुत ऊहापोह हुई है कि इस नवस्फुरण का केन्द्र कहां था और वह पूर्ण विकास पर कब पहुंच गया था। छिताईचरित इसका अकाट्य साक्षी है। उस समय के ग्वालियर के पटल-चित्र नष्ट हो गये, परन्तु मानमन्दिर के नानोत्पलखचित भित्तिचित्र आज भी सुरक्षित हैं और प्राप्त हो गये हैं छिताईचरित के ये उल्लेख।

संगीत

संगीत अपने समस्त अंगोपांगों सहित छिताईचरित में पूर्ण रूपेण प्रतिष्ठित है। वाद्य यंत्र की सम्मोहक शक्ति के आधार पर पूर्ववर्ती माधवानलकामकन्दला एवं वासवदत्ता जैसे आख्यान लिखे गये थे तथापि छिताईचरित में प्रारम्भ से अन्त तक संगीत के सभी अंग गीत, वाद्य एवं नृत्य अत्यन्त प्रशस्त रूप में गुम्फित मिलते हैं।

विविध विचक्षण बोलहिं बयना । मानहु कुसम मस्त की सयना ॥
एकन कामिनि कांधे यन्त्रा । बरनौं बसीकरण के मन्त्रा ॥
जिती छिताई करी प्रवीना । ते सब गीत नांदु रस लीना ॥
सरमंडल सरबीण संवारि । मुरज मृदंग लए वर नारि ॥
प्रेम कपाट पखावज बीन । बैठी तरुणि तमासै लीन ॥
(पंक्ति १७६२-१७७४)

मध्याकालीन संगीत ग्रन्थों में संगीताचार्यो को 'नायक' कहा जाता था । दक्षिण में तमिल भाषी प्रदेशों में 'नट्टुवन' नाम प्रचलित था । छिताईचरित में गोपाल को नायक और नटुवा उसी परम्परा में कहा गया है ।

संगीत की सम्मोहक शक्ति से मानवों के अतिरिक्त वन्य पशुओं पक्षियों और नागों के विमोहित होने की किंवदन्तियां मध्यकाल में बहुत प्रचलित थीं । बैजू बावरा एवं तानसेन के विषय में भी उनमें से अनेकों को जोड दिया गया है । इन विश्वासों के आधार पर अनेक राग माला चित्रों की भी कल्पना की गई है । छिताईचरित में इन किंव-दन्तियों का प्रचुर प्रयोग किया गया है । यह स्मरणीय है कि छिताई चरित जिस युग की तथा जिस वातावरण की रचना है उसमें मान कुतूहल विरचित हुआ था एवं ध्रुपद संगीत शैली अपने विकास की चरम सीमा को पहुंची थी । मानसिंह तोमर, बैजू बावरा, बख्शू, करण एवं पांडवीय जैसे नायकों (संगीताचार्यों) की स्वर लहरी से भारतवर्ष विमुग्ध और विमोहित हुआ था । कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि उस वातावरण में लिखे गये इस आख्यान काव्य में संगीत को इतना अधिक महत्व दिया गया है ।

छिताईचरित का कवि भारतीय ललित कलाओं के नवोन्मेष के युग का कवि है । वह उनके मर्म को समझता है और उस ज्ञान का उपयोग उसने अपने काव्य में संतुलित रूप से इस प्रकार किया है कि उसकी बहुज्ञता एवं ज्ञान का परिचय भी मिल जाए और काव्य के काव्यत्व पर भी आघात न हो । वह समझता है—

सो गुन जाहि सराहइ गुनी । सो चातुरी जे रीझइ दुनी ॥
(पंक्ति ८८)

छिताईचरित के कवियों ने अलाउद्दीन के समकालीन भारत के सर्वश्रेष्ठ संगीताचार्य गोपाल नायक को अपनी रचना में अवतीर्ण कर भारतीय संगीत और उसके प्रवर्त्तकों के प्रति अपनी आस्था का परिचय दिया हैं। नायक गोपाल एक गौण पात्र के रूप में आया है। छिताई की वीणा पर वह स्वर सन्धान नही कर पाता, यह केवल छिताई और समरसिंह के वाद्य कौशल की श्रेष्ठता दिखाने के लिए लिखा गया है। गोपाल नायक के वर्णन में ऐतिहासिक तथ्यों का पूर्ण ध्यान कवि ने रखा है। वह दक्षिण से दिल्ली आया था और छिताईचरित के अनुसार दिल्ली में समरसिंह को वही एक ऐसा व्यक्ति मिला जो दक्षिणी भाषा से परिचित था। इतिहास कहता है कि गोपाल नायक फिर दक्षिण लौट गया था। छिताईचरित में अलाउद्दीन गोपाल को समर सिंह को भेंट में दे देता है और उसके साथ ही वह दक्षिण लौट जाता है। दक्षिण का संगीत उस समय भी बहुत श्रेष्ठ माना जाता था। उस दक्षिणी गुण को सीखने के लिए अलाउद्दीन ने पचास पातुरें छिताई के पास रख दी थीं।

छिताई का विद्या-गुरु जंगम, स्वयं छिताई तथा समरसिंह संगीत में पारंगत हैं। अलाउद्दीन और रामदेव दोनों ही संगीत के प्रवीण पारखी और रसिक हैं। योगी चन्द्रनाथ भी संगीत में दक्ष हैं। वास्तव में समस्त छिताईचरित और विशेषतः उसका चतुर्थ खण्ड संगीत के वैभव से ओत प्रोत है। नृत्य, छन्द, गीत एवं वाद्य के सामूहिक वर्णन का एक उद्धरण ही पर्याप्त है—

लागी कामिनी करइ अनन्दू। भवरु भवहि जनु मदन गयंदू॥
निरतसील जो ठयौं अनूपा। बढइ कथा जो वरनो रूपा॥
एकति कामिनि करैं कटाख। भंवर भवैं जनु मदन गवाख॥
एक पात्र औ जोवन भरी। सुघरू सुजान सुन्दरी खरी॥
मधुर वचन पिंगल विस्तरही। ते मन महा मुनिंद्रिन हरही॥
एकन कर सोहहिं किंगुरी। कामिनि रंगु रागु रसि भरी॥
एक रबाब दुतारा धरे। सुन्दर सुघरू ते गावहि गरे॥
ढेंका चंदु मंद रसुसारा। अधिक हथौटी मिरवहि तारा॥

पर ईसवी पन्द्रहवीं शताब्दी की भाषा का सम्यक् अध्ययन किया जा सकता है।

हम यह अन्यत्र लिख चुके हैं कि ईसवी पन्द्रहवीं शताब्दी की हिन्दी भाषा में किसी क्षेत्रीय बोली की खोज अवैज्ञानिक और अवास्तविक है। वह क्षेत्रीय बोलियों का युग नहीं था, हिन्दी का विकास कुछ वर्गों में अवश्य प्रथक् प्रथक् स्वरूपों में हो रहा था। विभिन्न वर्गों के इन भाषा प्रयोगों के समन्वय से मध्यदेशीया काव्यभाषा का रूप निर्माण हुआ है। चारणों, भाटों, व्यासों आदि के द्वारा अपभ्रंश से विकसित लोक भाषा हिन्दी का संस्कृत परक रूप भागवत, महाभारत आदि के अनुवादक विष्णुदास, लखनसेनी जैसे कवि संवार रहे थे। सूफी सन्तो और योगियों के सम्पर्क से तथा तुर्क सैनिकों द्वारा भारतीयों से विचार विनिमय के माध्यम से दिल्ली-मेरठ एवं हरियाने की लोक भाषा की धरती पर अरबी-फारसीं शब्दावली मिश्रित एक विशिष्ट भाषा रूप भी सामने आ रहा था जिसमें अमीर खुसरो जैसे फारसी के कवि हिन्दी रचनाएं करते थे। भक्त संतों के गेय पदों में इन सभी प्रयोगों के सामंजस्य का सार्वदेशिक प्रयास दिखाई देता है। परन्तु साधिकार रूप से काव्य भाषा का टकसाली रूप ईसवी पन्द्रहवीं शताब्दी में ग्वालियर में निर्मित हुआ और वही हिन्दी का प्रतिनिष्ठित रूप समस्त देश में मान्य हुआ। यही कारण है कि तत्कालीन काव्य भाषा हिन्दी को देश के सभी भूभागों में 'ग्वालियरी' नाम से सम्बोधित किया गया।

इन विभिन्न भाषा-प्रयोगों के साथ, प्रतिनिष्ठित मान्य काव्य भाषा के व्यापक प्रचार के कारण कुछ क्षेत्रीय पुट भी इसमें प्रवेश कर गया था। ग्वालियरी के व्याकरण में इन तथ्यों को स्वीकार करते हुए ही इस भाषा रूप की परिभाषा निम्न रूप में की गई है—

१ देव नाग कहूँ कहूँ, कहूँ जावनी होइ।
भाषा नाना देश की, ग्वालियरी मधि जोइ॥

यह परिभाषा प्रधानतः शब्द भण्डार की द्योतक है। इस काव्य भाषा की शब्दावली (१) देव=संस्कृत, (२) नाग=प्राकृत (अपभ्रंश) (३)

छिताईचरित का भूगोल

छिताईचरित के रचयिताओं की दृष्टि समस्त भारत देश पर थी। दिल्ली से देवगिरि तक की दो यात्राओं के अतिरिक्त दूतियों की तीर्थ यात्रा के वर्णन में और समरसिंह की यात्रा-वर्णन में छिताईचरित में तत्कालीन प्रसिद्ध नगर, नदी, पहाड और प्रदेशों के उल्लेख आए हैं। भारत के चारों धाम और तीर्थ स्थल उसकी मौलिक एकता है। छिताईचरित में जगन्नाथपुरी, रामेश्वरम, द्वारकापुरी और बदरिकाश्रम एवं केदारनाथ से घिरे हुए भारत देश के वर्णन को देखकर मन प्रसन्नता से भर जाता है। दिल्ली, चंदवार, आगरा, कुन्तलपुर, ग्वालियर चन्देरी होते हुए नर्मदा की घाटी पार कर चन्द्रगिरि से विजयनगर, देवगिरि और उसके भी आगे द्वारसमुद्र तक के मार्ग का कवि इस काव्य में परिचय देता है। सोरों तथा नैमिषारण्य से पूर्व में प्रयाग, काशी गया और कामरूप तक के दर्शन कवि कराता है। रणथम्भोर तथा चित्तौड के साकाओं का भी वह स्मरण करा देता है। अन्य लौकिक आख्यान काव्यों के समान छिताईचरित में कल्पना-लोक के नगर, नदी, पर्वत आदि का वर्णन न करते हुए इसयुग के प्रसिद्ध भौगोलिक स्थलो का परिचय देकर नारायणदास और देवचन्द्र ने भारत भूमि के समग्र एकमूर्ति के रूप में दर्शन कराए हैं।

भाषा—विवेचन

छिताईचरित ईसवी पन्द्रहवीं शताब्दी की काव्य भाषा का प्रातनिधिक स्वरूप प्रस्तुत करता है। इसके मूल रचनाकार की भाषा, कुछ शब्दों को छोड़कर, यथावत प्राप्त हुई है। इस शताब्दी के गेय पदों अथवा मैनासत तथा मधुमालती जैसे बहुप्रचलित गेय काव्यों में भाषा का मूल स्वरूप प्राप्त नहीं हो सकता। विभिन्न गायकों और प्रतिलिपिकारों ने उनकी भाषा में स्वेच्छानुसार बहुत परिवर्तन किये हैं। परन्तु छिताईचरित में यह उलटापलटी कुछ शब्दों तक ही सीमित रही है और उसकी भाषा का मूल स्वरूप अधिकांश सुरक्षित है। उसके आधार

एरछ नगर वसन्ते जाणि । सुणिउं चरित मोहि रचिउं पुराण ॥

प्राचीन पोथियों में 'छ' इस प्रकार लिखा जाता है कि अभ्यास न होने पर उसे 'ब' पढ़ा जा सकता है। एरछ नगर आज भी बुन्देलखण्ड के किसी मानचित्र में देखा जा सकता है और पता लगाया जा सकता है कि वह किस बोली के क्षेत्र में है । इस अग्रवाल की उत्पति आगरे में हुई थी, ग्रन्थ तो एरछ में लिखा गया था। अस्तु।

शब्दावली

छिताईचरित की शब्दावली ग्वालियरी के व्याकरण के निर्देशित वर्गों के अनुसार है। देव (सस्कृत) तथा नाग (अपभ्रंश) के शब्द उसकी प्रमुख शब्दावली है और साथ में यावनी (अरबी-फारसी) तथा देशज शब्द भी प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त हुए हैं ।

छिताईचरित की भाषा पर विचार करते समय दो बातें विशेषतः ध्यान आकर्षित करती हैं। इसमें अरबी-फारसी शब्दों का प्रचुर प्रयोग हुआ है और अलाउद्दीन द्वारा अनेक स्थलों पर 'खड़ी बोली' का प्रयोग कराया गया है । इनके कारण कुछ विद्वानों ने यह विचार प्रकट किया है कि छिताईचरित की भाषा ईसवी पन्द्रहवीं शताब्दी की नहीं है । फारसी शब्दों के प्रयोग के विषय में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उनका प्रयोग तुर्क सेना के अस्त्र-शस्त्र तथा राज व्यवहार के प्रसंग में ही हुआ। फारसी के शब्द भारत की लोक भाषाओं में बहुत पहले प्रवेश कर गये थे। गुजरात में श्रीधर व्यास ने सन १३६८ के लगभग 'रणमल्ल छन्द' लिखा था तथा सन १४५६ ई० में पदमनाथ ने 'कान्हड-दे प्रबन्ध' की रचना की थी । प्रथम पुस्तक में श्रीधर ने ईडर के राव रणमल्ल द्वारा पाटण के सूबेदार जफरखां को पराजित होने का वर्णन किया है। इस रचना में फारसी के शब्दों का प्रचुर प्रयोग किया गया है। उसमें सर्वत्र फुरमाण, सुरताण, माल, हलाल, खान, खिजमत, आलमि, हराण, खुदालम, फौज, सिहर (शहर), लसकर, तेजी, खानखुद, हाल, तथा दीवाणी जैसे शब्द अबाध रूप से आये हैं । जब अरबी-फारसी के ये शब्द ईसवी चौदहवीं शताब्दी में गुजरात के काव्यों

जादनी = अरबी फारसी तथा (४) देशी = देशज मिश्रित हैं। निश्चय ही यह विभाजन व्याकरण का नहीं हो सकता। वह एक ही था। क्रियाओं और कारक चिह्नों के पूर्वी एवं पछाहीं बोलियों के वर्गीकरण स्थानीय उच्चारणों के विभेद के कारण हुए हैं और मध्यकालीन भाषा विवेचक उन्हें महत्व नहीं देता था।

यहाँ केवल संक्षिप्त रूप में छिताईचरित की भाषा का विवेचन करना है, हिन्दी भाषा के विकास के विभिन्न मोड़ों पर विस्तृत-विचार का यह स्थल नहीं है और न यहां 'मध्यदेशीया (ग्वालियरी)' तथा 'मैनासत' में प्रस्तुत किये गये भाषा विषयक निष्कर्षों पर कुछ विद्वानों द्वारा किये गये आक्षेपों का उत्तर देना ही संगत है, तथापि सूर के पूर्व 'व्रजभाषा' की खोज करने वाले सज्जनों का ध्यान हम मध्यकालीन काव्य भाषा के 'षट भाषा' रूप के परिभाषक नागरीदास के कथन की ओर आकर्षित करना चाहते हैं:—

ब्रज मागधी मिलै अमर नाग यवन भाखानि।
सहज पारसी हू मिलै षटविधि कहत वखानि॥

'षटविधि भाषा उसे कहते हैं जिसमें (१) ब्रज (२) मागधी (३) अमर (४) नाग (५) यवन तथा (६) पारसी भाषाएँ मिलती हैं।' यह व्यापक 'षटभाषा' कौनसी है जो निश्चय ही (भिखारीदास के अनुसार) ब्रज नहीं है, उसमें केवल ब्रज का मेल रहता है। ब्रजभाषा नाम भुलाने की बात हम नहीं कह सकते, न कोई कह ही सकता है, नाम में धरा ही क्या है। कहना केवल यही है कि भाषा के विकास का इतिहास न भुलाया जाए और न मध्यकालीन काव्य भाषा के वास्तविक स्वरूप को छोटे-छोटे अवास्तविक पैमानों में बाँधा जाए। पूर्वाग्रहों से सत्य की खोज नहीं होती। सन १४११ ई० के 'सधारु' अग्रवाल द्वारा रचित 'प्रद्युम्न चरित' फिर 'ब्रजक्षेत्र के केन्द्र नगर आगरा'[1] में निर्मित दिखाई देता है यद्यपि बेचारा अग्रवाल स्पष्ट लिखता है :—

---

१ डॉ० शिवप्रसादसिंह: सूर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य, पृष्ठ १४३-१४४

जवाब, जहमत, जासूस, तमासा, तेग, तौग, दीन, फौज, फतह, वागा, बुर्ज, मगरवी, वाजिद, सन्दूक, शहीद, हजूरी, हरम, हवाई, हुकुम आदि ।

फारसी—सवार (असवार), कमान, कूजा, खरवूजा, गर्द, गरदन, गिलूल (गलोल), गुदर, गुनाह, गुमान, गुर्ज, गुलाल, चाबुक, जहान, तवल, ताजन, तीर, तुरक, दमामा, दरवेश, दरबार, दस्त, दोजख, निशान, नेजा, नौगिरह, प्याजी, प्यादा, पैजार, पातसाह, पुस्तीनामा, फरमान, फरियाद, फरमाइये, वजार, वदरा, बांदी, भिस्त (विहिश्त), मजल, मस्त, मसक, मसीत, मुसवर, मुसाफ, मोर्चा, रसाला (इरसाल), लसकर, साह, सुल्तान, हजार आदि ।

तुर्की—कूच, तोप ।

इन उदाहरणो को देखने से स्पष्ट है कि ईसवी पन्द्रहवीं शताब्दी तक हिन्दी मे अरवी फारसीशब्दों का पर्याप्त प्रयोग होने लगा था । यह अवश्य है कि उनका पूर्णतः हिन्दीकरण करने का प्रयास किया गया । तुर्कों के नामों को भी तत्सम रूप में ग्रहण नहीं किया गया । कहीं कहीं वेकाजा (पंक्ति ६१५) जैसे मिश्र प्रयोग भी प्राप्त होते हैं । ग्वालियरी के व्याकरण के अनुसार यह 'जावनी' का प्रभाव है ।

छिताईचरित के देशज शब्द तत्कालीन हिन्दी के केन्द्रीय रूप की ओर संकेत करते है । हिन्दी के अपभ्रंश परक रूप का परिमार्जन कर उसे संस्कृत परक काव्य भाषा का स्वरूप देने का महती प्रयास ग्वालियर में हुआ था और इसी कारण गुजरात, महाराष्ट्र तथा बंगाल में तत्कालीन हिन्दी का नाम ग्वालियरी भाषा प्रख्यात हुआ था । छिताईचरित की रचना ग्वालियर में हुई थी । उसमें प्रयुक्त देशज शब्द इस बात के अत्रुट साक्षी हैं कि ईसवीं पन्द्रहवी शताब्दी तक प्रतिनिष्ठित मान्य काव्य भाषा का केन्द्र वर्तमान वुन्देलखण्ड था । आज वुन्देलखण्ड के अन्तरंग में प्रयुक्त शब्दावली का जिन्हे अभिज्ञान नहीं वे छिताईचरित के शब्दों का अर्थ समझने में वहुधा भूल करेंगे, उन्हे खुमरी, मटामरियारी, जलकुकरी, परेवा, जैसे पक्षी, गोइंडा (गेंउड़ा), खलाइ, भोंहरे, चोर-

में प्रचलित हो गये थे तब वे हिन्दी के क्षेत्र में प्रचलित न हुए हों यह तर्क संगत नहीं है, जहां 'सुल्तानों' के 'फुरमाण' गुजरात से भी पहले व्यवस्थित रूप में पालनीय हो गये थे। कान्हडदे प्रबन्ध ईसवी पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य में जालौर में लिखा गया था। इसमें अलाउद्दीन के सेनापति अलफखां द्वारा गुजरात और काठियावाड के आक्रमणों का वर्णन है और उसी क्रम में जालौर के अधिपति कान्हडदे के पराक्रम की गाथा का वर्णन किया गया है। कान्हडदे प्रबन्ध की भाषा में फारसी के सेना एवं राजकाज विषयक शब्दों का और अधिक प्रयोग मिलता है। अलाउद्दीन के अभियानों को कथावस्तु बनाकर कान्हडदे प्रबन्ध के बीस पच्चीस वर्ष के पश्चात लिखे गये छिताईचरित में फारसी के इन शब्दों को देख कर कोई शंका और सन्देह करने की आवश्यकता नहीं है।

श्रीधर व्यास के रणमल्ल छन्द, नयचन्द्रसूरि के हम्मीर महाकाव्य और पद्मनाभ के कान्हडदे प्रबन्ध की परम्परा में ही नारायणदास देवचन्द्र का छिताईचरित है। जिन कवियों का राजसभाओं और राज व्यवहारों से सम्पर्क अधिक रहता था वे इस शब्दावली से पूर्णतः परिचित हो जाते थे। सूफी सन्तों के सम्पर्क के कारण भी इस प्रकार की शब्दावली का प्रयोग हिन्दी कवि करते थे, यद्यपि वह शब्दावली दार्शनिक अभिव्यक्तियों से सम्बन्धित होती थीं।

छिताईचरित के अरबी-फारसी शब्दों की एक विशेषता है। वे अधिकांश में तद्भव रूप में ग्रहण किये गये है और कभी कभी उनका हिन्दीकरण इतना अधिक हुआ है कि उनका मूल समझने में कठिनाई होती है। 'इर्साल' जब 'रिसाल' या 'रसाल' के रूप में सम्मुख आता है तब उसका अर्थ समझने में बहुत कठिनाई होती है। कुछ शब्द तत्सम रूप में भी मिलते हैं। आलम, उमरा, कूच, तत्सम रूप में भी प्रयुक्त हुए है। छिताईचरित के अरबी-फारसी, तुर्की आदि भाषाओं के शब्दों के कुछ उदाहरण यहां दिये जाते है।

अरबी—अरबी, अमली, आलम, उजीरा, उमरा, अम्बारी, कैफियत, कबा, खुतबा (कुतबा) खैरात, खवास, गैर, गरीबी, जनाब,

इस प्रसंग में छिताईचरित के खड़ी बोली के प्रयोगों पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। इस रचना में निम्न लिखित प्रकार के प्रयोग यत्र तत्र मिल जाते हैं—

कहु बे दिवागिरी तनी कइफीती (पंक्ति ४८३)।
कहु बे कइसइं भयो वियाहू (पंक्ति ४८४)।
को कोन हुआ को कोन गया मीरां के परसाद (पंक्ति ७४६)
मइं क्या कीया देवगिरि आई (पंक्ति ८६१)
खूब खूब खुदि आलम कहुि (पंक्ति ६२६)

अन्यत्र हम विस्तार से लिख चुके हैं कि इस प्रकार की भाषा का प्रयोग तुर्कों के सेनापति और सैनिकों द्वारा दिल्ली-मेरठ की बोली को आधार बनाकर प्रारम्भ हुआ था और उसके लिखित रूप अमीर खुसरो के समय से मिलते हैं[1]। हिन्दी में तुर्क पात्रों से इस प्रकार की भाषा का प्रयोग कराने की प्रथा छिताईचरित के पश्चात बहुत लोकप्रिय हुई। पूर्ववर्ती हिन्दी, गुजराती एवं बंगला काव्यों में भी इसका प्रयोग हुआ है।

स्वरों का प्रयोग

छिताईचरित की प्राप्त तीनों प्रतियों में स्वरों और उनकी मात्राओं के वियोत्मक प्रयोग विशेष रूपेण ध्यान आकर्षित करते हैं। जिस समय हिन्दी ने अपभ्रंश के प्रभाव से मुक्त होकर अपना रूप संवारना प्रारम्भ किया उस संक्रान्तिकाल के अवशेष के रूप में ये प्रयोग मिलते हैं। परन्तु ये लक्षण केवल लिपि से सम्बन्धित होने के कारण जैसे जैसे प्रतिलिपियों की पीढ़ियां आगे बढ़ती गई प्रतिलिपिकारों ने अपने युग की लेखन शैली के अनुसार उन्हें सुधार (?) लिया। पुरानी ध्वनियों के सही रूप के लिए उनके द्वारा नवीन चिह्नों का पर्याप्त मात्रा में आविष्कार न हो सका और अनेक ध्वनियों के मूल रूप प्रायः लोप हो गये।

स्वरों के वियोगात्मक रूप पन्द्रहवीं शताब्दी की रचनाओं में प्राप्त होते हैं। परन्तु इस शताब्दी की किसी रचना की कोई सम-

---

१ 'साधन कृत मैनासत' की प्रस्तावना, पृष्ठ ११७।

मिहचनी, कठछप्पर, हिल्ल, भरता-भरती आदि प्रयोगो का अर्थ समझना सम्भव नहीं, उनके लिए 'ठां ठां' 'स्थान स्थान' के बजाय 'कवच दि से सुसज्जित हाथी' बन जाएगा, मीडिया (मेंडिया) 'मीजना' हो जाएगा, गोमट (गुमटी) गोमेद हो जाएगा, छंछार 'फव्वारा' बन जाएगा और 'खंडारि' हो जाएगी 'काम की इच्छा रखने वाली स्त्री'।

इस प्रसंग में छिताईचरित के निम्नलिखित देशज तथा तद्भव प्रयोग विशेषतः विचार योग्य हैं:—

अकुताई, अटा, अटारी, अधफर, अनअन, अपघात, अरहु, अहेंरे, आपापउ, आपीओ, आफू, ईसर, उजार, उझकति, उतरि, उनहार, उपराऊपर, उमाहे, उरबाई, उलइती, उसास, ऊपरवानी, एवौ, एडांहीं ओढ, ओथाओथी, ओसेरी, अंकवारी, आंथए, कउंपहि, कठछप्पर, कठा इल, कडारी, कमठाने, करते, करत्रि, कलिचा, कलिचा, कहियउ, कह-राई, कांगई, खंखरि, खंधारा, खइकारू, खलाइ, खूटी, खुमरी, गीध मसान, गुडरी, गोंइड़ा, गोमट, घोघर, चितेरी, चैंटी, चौबारे, चौमासे, छछारिउ, छवाउं, झकोरा, झरोखा, ठइकई, ठाटरि, डहकी. डावि, ढका, तरइया, दउत. दौरहा, दवइतर, नाखत, निकुताई, पइंड, पुरइन, बटबांस, विरमना, भिनसारौ, मइंडिया, मटामरियरी, मिहचनी, लेजु लोथ, सउंससी, सेवाधी, सरचइ, सिराइ, सियरो, हथौटी, हती, हरुवे, हांड़िउ, हिलवी आदि।

इन शब्दों के वर्तमान प्रयोग-क्षेत्र तथा उच्चारणों पर विचार करने से छिताईचरित वर्तमान बुन्देलखण्डी बोली की पूर्ववर्ती रचना ज्ञात होती है। वास्तव मे तत्कालीन प्रतिनिष्ठित काव्य भाषा का यही स्वरूप था। चंदवरदायी से लेकर कुतबन और भिखारीदास तक जिस 'षट भाषा' का उल्लेख मिलता है उसकी पूर्ण प्रतिष्ठा छिताईचरित की शब्दावली में है।

संस्कृत शब्दों के तत्सम, अर्धतत्सम एवं तद्भव रूपों का प्रयोग महाभारत कथा आदि अनुवाद अथवा छायानुवादों में छिताईचरित के बहुत पूर्व प्रारम्भ हो गया था। स्पष्ट है कि छिताईचरित की प्रधान शब्दावली उन शब्दों की ही है।

भी छिताईचरित में पश्चिमी ध्वनियों को ही अपनाया गया है ऐसा उसके प्रयोगों से स्पष्ट है। भउ (१५६६), होए (१५६४) लियाउं (८५४), लइगो (८८०), ल्याउं (६३०), करतउ (८०२) आदि ऐसे प्रयोग है जो आज विशुद्ध बुन्देलखण्ड तक सीमित हैं।

क्रियापद, विभक्तियाँ आदि

छिताईचरित के क्रियापद, अव्यय, विभक्तियां आदि विस्तृत अध्ययन की अपेक्षा रखती हैं। उससे बहुत महत्वपूर्ण परिणाम प्रकट होते हैं। बड़े प्रयास से पूर्वी और पश्चिमी बोलियों के आधार पर खींची गई सीमा रेखाएं छिताईचरित में ध्वस्त होती ज्ञात होती हैं और यह भी स्पष्ट होता है कि मध्यकालीन काव्य भाषा की धरती कहाँ की थी। इनके अध्ययन की विस्तृत सामग्री परिशिष्ट ४ में दी गई शब्द सूची में विद्यमान है। छिताईचरित उस युग की रचना है जब तक हिन्दी में क्षेत्रीय प्रयोगों का मोह बढ़ा नहीं था और व्यापक काव्य भाषा का ग्वालियरी रूप सर्वत्र प्रचलित एवं मान्य था।

हम यहां छिताईचरित के व्याकरण का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत नहीं करना चाहते। अन्य समकालीन रचनाओं सहित ईसवी पन्द्रहवीं शताब्दी की काव्य भाषा के व्याकरण का अध्ययन स्वतंत्र पुस्तक का विषय है। छुटपुट और अधूरे प्रयासों से इस विषय में फैले भ्रमों का निराकरण संभव भी नहीं है, अतएव इसे अन्य किसी प्रसंग के लिए स्थगित कर अभी हम यही कहना पर्याप्त समझते हैं कि छिताईचरित परिनिष्ठित काव्य भाषा मध्यदेशीया का सुपुष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। यद्यपि आगे इसी परम्परा में रचनाएं हुईं और हिन्दी का यही काव्य भाषा-रूप ग्रहण किया गया तथापि क्षेत्रीय परिस्थितियों ने बोलियों को प्राधान्य दिया और किसी भी कारण इस काव्य भाषा का नाम ब्रज भाषा चल निकलने के कारण उसका वास्तविक स्वरूप एवं उसके रूप-निर्माण में ग्वालियर द्वारा की गई सेवा का विस्मरण हो गया।

कालीन प्रतिलिपि प्राप्त नहीं हुई है। वे सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी की प्रतिलिपियां हैं। उनमें प्रतिलिपिकार की परिस्थितियों के अनुसार दोनों ही प्रकार के प्रयोग मिलते हैं। प्रतिलिपि के क्षेत्र ने भी प्रभाव दिखाया है। अपभ्रंश परक प्रवृत्तियां राजस्थान में, विशेपतः जैन विद्वानों में, आगे वहुत समय तक प्रभावशील रही हैं। अतएव उनके द्वारा उतारी गई प्रति ों में उनकी विशेष रूप से रक्षा हुई हैं।

छिताईचरित की तीनों प्रतियों में वियोगात्मक एवं संयोगात्मक स्वरों के प्रयोगों को देखकर यह कहा जा सकता है कि ये प्रतिलिपियां पन्द्रहवीं शताब्दी की प्रतिलिपियों पर से उतारी गई हैं और उनकी मूल प्रवृत्तियों की रक्षा इस कारण हो सकी हैं।

छिताईचरित में सात मूल स्वर मिलते हैं:—

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ तथा ए

ए भी संयुक्त स्वर हैं जो अ+उ के संयोग से बना हैं। परन्तु वह मूल स्वर के रूप में ही आया है। छिताईचरित में संयुक्त स्वर तीन प्रयुक्त हुए हैं—

ऐ, ओ तथा औ

इनको अइ तथा अउ के संयोग से बना हुआ दिखाया गया है। अउ से ओ और औ के बीच की ध्वनि प्रकट की गई है। ओ के लिए उसकी मात्रा ो का ही प्रयोग हुआ है। छाडिहउं (१४१०) में हउं हौं और हाँ की बीच की ध्वनि है। पूर्वी प्रदेशों में इस हउं का रूप हौं हो गया और पश्चिमी प्रदेशों में हों। वास्तव में दोनों का मूल स्वरूप हउं है। इन सार्वदेशिक ध्वनियों से पूर्वी और पश्चिमी ध्वनियों की उत्पत्ति की कथा छिताईचरित से स्पष्ट हो जाती है। हइ (३१८) का उच्चारण पूर्वी प्रदेशों में है के रूप में मिलता है और पश्चिमी प्रदेशों में हे और है के बीच का उच्चारण मिलता है। अइसी (२०७) पश्चिम एसो हो गया और पूर्व में ऐसो। औ में भी यही प्रक्रिया दिखाई देती हैं। करउं (१०) का पूर्वी उच्चारण करौं है और पश्चिमी 'करों'।

संयुक्त स्वरों के लिए इन व्यापक चिह्नों के प्रयोगों के होते हुए

अपने काव्यों के पढ़ने की बात न कह कर उन्हें सुनने की बात कहता है। जब छिताईचरित का रचयिता लिखता है:—

मोहि न हसहु सुनहु चउपही (पंक्ति १८)

अथवा

कथा छिताई जंपन लई (पंक्ति २६)

अथवा

सुनहु सभा सब मनि धरि भाऊ। जइसौ लागौ होन उपाऊ।
(पंक्ति १००२)

अथवा

जौ यहु कथा सुनइ दै काना (पंक्ति २०८५)

तब यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने कथा को गाकर ही मूल में सुनाया और गाकर सुनाने के लिए ही यह रचना हुई थी। श्रोता मंडली का धैर्य न टूट जाए इसी कारण संक्षेप की ओर ध्यान भी रखा जाता है और वैसा श्रोता मंडली से कह भी दिया जाता है—

बाढ़ै कथा जु करउं बखाना (पंक्ति ५४४)

बहुत बात को कहै बढ़ाई (पंक्ति ४७६)

आख्यान गान में संक्षेप विशेष महत्व रखता है, यह चतुर्भुजदास निगम ने अपनी रस कथा में स्पष्ट किया है—

थोरे माहि बहुत सुख होई। बहुत कहै मन फीको होई।

इसकी तुलना में यदि परवर्ती रामचन्द्रिका को देखा जाए तब स्पष्ट होगा कि केशवदास की दृष्टि साहित्य शास्त्र की परिभाषा पर खरा उतरने वाला महाकाव्य लिखने की ओर अधिक थी। लोक रंजन के प्रधान लक्ष्य से हट कर पढ़ने के लिए आख्यान काव्य लिखने का युग छिताईचरित के समय तक हिन्दी में नहीं आया था। वह लोक रंजन के लिए लोक भाषा में उगने वाले लोक साहित्य का युग था। वास्तव में ये आख्यान काव्य लोक मंच पर गाये जाने वाले रूपक ही थे। यह परम्परा भारतीय जीवन में इतना गहरा प्रवेश कर गई है कि पाश्चात्य नाटकों का प्रभाव पड़ने के पश्चात आज भी नाटक के पात्र

काव्य सामग्री

छिताईचरित की रचन विधा, छन्द, अलंकार एवं रस सामग्री का अध्ययन तत्कालीन तथा परवर्ती हिन्दी प्रबन्ध काव्यों के क्रमिक विकास की परम्परा समझने में बहुत उपयोगी है।

ईसवी पन्द्रहवीं शताब्दी तक प्रबन्ध काव्य जन साधारण के समक्ष गाकर सुनाने के लिए लिखे जाते थे। हिन्दी के प्रारंभिक प्रबन्ध काव्यों के मूल में संस्कृत और अपभ्रंश के ज्ञान भण्डार को लोक भाषा में प्रस्तुत करने की इच्छा ही प्रधान प्रेरणा रही है। हिन्दी की प्रारंभिक रचनाओं में अधिकांश रामायण, महाभारत एवं श्रीमद्‌भागवत के छायानुवाद प्राप्त होते हैं। हिन्दी ही नहीं, मराठी, बंगला तथा गुजराती के विकास में भी यही प्रवृत्ति दिखाई देती है। यह अकारण नहीं हुआ। संस्कृत के प्रति अपार सम्मान एव श्रद्धा रखते हुए भी, ईसवी पन्द्रहवीं शताब्दी में उसके समझने वाले क्रमशः कम हो चले थे। हिन्दू रईसों का सम्पर्क मुस्लिम राजदरबारों से बहुत अधिक हो गया था, अतएव उनका ज्ञान लोक भाषाओं तक ही सीमित हो चला था। उनके आश्रित कथा वाचक पंडितों के लिए यह आवश्यक हो गया था कि वे उन्हें सुनाने के लिए इन धर्मग्रन्थों का रूपान्तर लोक भाषाओं में प्रस्तुत करें। यही दशा हिन्दू सैनिकों, व्यापारियों एवं जन साधारण की थी। यही कारण है कि हिन्दी के लखनसेनी, विष्णुदास, ईश्वरदास, थेघनाथ आदि ने महाभारत, गीता तथा पौराणिक कथाओं को हिन्दी में लिख डाला! इसके साथ ही यह श्रोता वर्ग मनोरंजक आख्यान काव्य का भी रसिक था। उसके रंजन के लिए वीसलदेव रास, लखनसेन पदमावती रास, मधुमालती जैसे लौकिक आख्यान काव्य भी लिखे गये। ये रचनाएँ महाकाव्यों के शास्त्रीय लक्षण सामने रख कर नहीं लिखी गईं, वरन गाकर सुनाए जाने के लिए लोक साहित्य की रचना विधाओं के अनुरूप लिखी गई हैं। अतएव इन आख्यान काव्यों में गेयता एवं आकार की लघुता विशेष रूप से दिखाई देती है। कवि अथवा गायक अपने श्रोताओं से सम्पर्क साधता हुआ चलता है और

छन्द

छिताईचरित प्रधानतः चौपाई छन्द में लिखा गया है। प्रबन्ध काव्यों के लिए चौपाई का प्रयोग ईसवी पन्द्रहवीं शताब्दी की विशेषता है जो हिन्दी के पश्चातवर्ती प्रबन्ध काव्यों में कुछ परिष्कार के साथ ग्रहण की गई हैं।

इस शताब्दी तक निश्चित संख्या में अर्धालियों के पश्चात दोहा, सोरठा अथवा अन्य छन्द का घत्ता देकर कड़वक बनाने की रीति प्रबन्ध काव्यों में प्रचलित नहीं हुई थी। सधार अग्रवाल के प्रद्युम्न चरित, जाखू मणियार के हरिश्चन्द्र पवाडा, लखनसेनी के हरि चरित, विष्णुदास की महाभारत कथा, दामो के लखनसेन पदमावती रास, साधन के मैनासत अथवा छिताईचरित किसी में भी निश्चित संख्या में अर्धालियों के पश्चात दोहा अथवा सोरठा प्राप्त नहीं होता। सबसे प्रथम निश्चित संख्या में अर्धालियाँ देकर दोहा या सोरठे का घत्ता देकर कड़वक की रचना करने के प्रयास के दर्शन सन १५०१ ई० में लिखी गई सत्यवती कथा में मिलते हैं। इस रचना में पांच अर्धालियों के पश्चात दोहे का घत्ता दिया गया है।[1]

ज्ञात यह होता है कि नारायणदास ने मूलतः छिताईचरित में १५ मात्राओं के चरणों की चौपई का प्रयोग किया था जिसे देवचन्द्र तथा रतनरंग ने १६ मात्राओं के चरणों वाली चौपाई में परिवर्तित कर दिया। इस शताब्दी की अन्य रचनाओं में भी १६ मात्राओं के चरणों की चौपाई का ही प्रयोग मिलता है। चौपई का अपेक्षा चौपाई में गेयता एवं लय अधिक है, इसी कारण यह परिवर्तन किया गया ज्ञात होता है।

छिताईचरित में आठ वस्तुबन्ध छन्द भी प्राप्त होते हैं। राजस्थान और मध्यप्रदेश का यह बहुत प्रिय छंद रहा है। परन्तु छिताईचरित वह अन्तिम आख्यान काव्य है जिसमें यह छन्द प्रयुक्त हुआ है। छिताई चरित के पश्चात कुशललाभ ने सन १५५९ ई० में जैसलमेर में लिखी

१. डॉ० शिवगोपाल मिश्र द्वारा सम्पादित 'ईश्वरदास कृत सत्यवती कथा तथा अन्य कृतियां'।

शोक अथवा हर्ष दोनों ही अवसरों पर गीत गा उठते हैं । जिस देश में समस्त मनोभावों की अभिव्यक्ति ही लोक मंच पर संगीत अथवा गेय काव्यों द्वारा होती थी, वहाँ यह आश्चर्य की बात नहीं है ।

छिताईचरित लोक प्रचलित गेय आख्यान काव्य और परवर्ती शास्त्रीय लक्षणों के अनुरूप रचित महाकाव्यों की बीच को कड़ी है । उसमें दोनों का ही संधिस्थल है । वीसलदेव रास तथा लखनसेन पदमावती रास के समान उसकी रचना स्पष्टतः चार खण्डों में हुई है, फिर भी वह उनसे अधिक प्रशस्त और परिमार्जित है ।

लखनसेन पदमावती रास, मधुमालती, बिल्हणचरित, वेताल पच्चीसी अथवा सत्यवती कथा के समान केवल कोई कौतूहल वर्धक कहानी लिख देना मात्र छिताईचरित का उद्देश्य नहीं है । चतुर्भुजदास निगम की मधुमालती के समान कथा में कथा देकर अनेक अन्तर कथाओं के सृजन की प्रवृत्ति अथवा वार वार संस्कृत एवं प्राकृत सूक्तियों और उनका अनुवाद देने की प्रवृत्ति से छिताईचरित का कवि ऊँचा उठा है । कौतूहल वर्धन के लिए अलौकिक और अप्राकृतिक घटनाओं का सहारा भी इस रचना में नहीं लिया गया है । लखनसेन पदमावती रास तथा मधुमालती के मंत्रपूत अस्त्र शस्त्र तथा दैवी सहायता का भी इस रचना में अभाव है । कामशास्त्र को लक्ष्य बनाकर कामदेव और रति के अवतारों के रूप में नायक नायिकाओं की कल्पना कर विशुद्ध काम कथा लिखने की प्रवृत्तियों का प्रभाव अवश्य छिताईचरित पर है, परन्तु यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि कवि उनको परिष्कृत कर रहा है और अपनी रचना में विचार-प्रौढ़ता लाने का प्रयास कर रहा है । कवि का यह दृष्टिकोण कथावस्तु के चयन, कथा युक्तियों और कथा रूढ़ियों के प्रयोग तक ही सीमित नहीं है, उसने अपने आख्यान काव्य के कथानक का सामाजिक एवं राजनैतिक पटल भी अत्यन्त विस्तृत रखा है और कल्पना लोक से उतर कर उसने अपने आख्यान काव्य को वास्तविकता की ठोस धरती पर ला खड़ा किया है ।

के सम्मुख था। परन्तु मूलतः वे लोक कवि थे अतएव उनका ध्यान उस ओर नहीं गया। इन साहित्य शास्त्रों का हिन्दी रूपान्तर कर लक्षण-उदाहरण प्रस्तुत करने वाले आचार्य-कवियों की बाढ़ हिन्दी में आगे आने वाली थी। छिताईचरित में 'नारायण दासू' (पंक्ति २४) के एक श्लेष को छोड़कर शब्दालकारों का अभाव ही है। इस युग की हिन्दी कविता में सादृश्य मूलक अलंकारों की प्रधानता है जो लोक साहित्य की विशेषता है। परन्तु यह स्पष्ट है कि निगमकृत मधुमालती अथवा दामो कृत लखनसेन पदमावती रास की अपेक्षा छिताईचरित का अलंकार विधान अधिक विकसित है। युद्ध-सरोवर का वर्णन करते हुए देवचन्द्र ने लिखा है—

परकोटा भयो पारि समाना। लोहू भयो पानी उनमाना॥
रावत भए मकर आकारा। खले रूप होइ रहे हथियारा॥
जूझे मलिक ते उमराखाना। तेई भए मच्छ के बाना॥
भई छिताई ऐसे तूला। जन सरु मांझ कमल के फूला॥
पातिसाहि दल कडहरु भइयो। भुजबल तोरि खेई ले गइयो॥
(पंक्ति ४१२-४१६)

इस प्रकार के रूपक इस युग के आख्यान काव्यों में कम ही मिलते हैं। रूप वर्णन में व्याज स्तुति के कुछ सुन्दर उदाहरण छिताईचरित में प्राप्त होते हैं—

दीरघ नयनी कत हुई अंधकाल अनल प्रगासु।
छीन लक हम दोसनी तुम्ह न खिलावहु तासु॥

अथवा

तुम कुच कावरि कीन्हें बाला। लाजन गये भुजंग पताला।
बदन जोति तुम ससि की हरी। तूं किउं सुख पावइ सुंदरी॥
(पंक्ति १४६९-१४७७)

छिताईचरित के अलंकार-विधान को देखने से यह स्पष्ट है कि लोक भाषा हिन्दी का लोक काव्य क्रमशः परिमार्जित और परिष्कृत होकर तुलसी, केशव एवं सूर की ओर अग्रसर होने लगा था।

माधवानल कामकन्दला चउपई में वस्तु छन्द का प्रयोग किया है। मध्यदेश में छिताईचरित के पश्चात वस्तु छन्द के प्रयोग का उदाहरण हमें नहीं मिल सका है। यह छन्द गुजरात और राजस्थान में लिखे गये रास छन्द समूह का एक सुन्दर गेय छन्द है।

वस्तु ५ चरणों का छन्द है। इनमें पहले चरण की रचना विशिष्ट होती है। ७ मात्राओं के शब्द समूह की आवृत्ति कर १४ मात्राओं के पश्चात ८ मात्राएँ जोड़ कर २२ मात्राओं का पहला चरण होता है—

सुमति सामी सुमति सामी वीर गणनाह ॥

तथा

राउ बिरमउ राउ बिरमउ प्रीति अति नेह ॥

दूसरे और तीसरे चरण में प्रत्येक १३+१५=२८ मात्राएँ होती हैं और चौथा तथा पांचवा चरण प्रत्येक १३+११ मात्राओं का होता है, अर्थात अन्तिम दो पँक्तियाँ दोहा होती है।

दुर्भाग्य से छिताईचरित के सब वस्तु छन्द शुद्ध प्राप्त नहीं हो सके हैं। पहला वस्तु छन्द पूर्ण हैं, परन्तु दूसरे की तीसरी पंक्ति अधूरी है। तीसरा वस्तु छन्द पूर्ण हैं और चौथा पुनः त्रुटि पूर्ण है।

छिताईचरित में गाहा, रूप तथा जाति छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। इनका प्रयोग आगे हिन्दी के प्रवन्ध काव्यों में लगभग नहीं ही किया गया है।

छिताईचरित तथा अन्य पूर्ववर्ती प्रबन्ध काव्यों की दोहा चौपाइयों के कड़वकों की शैली को ईश्वरदास, जायसी तथा तुलसीदास आदि ने विकसित किया और निश्चित अर्धालियों के पश्चात दोहा सोरठा या अन्य छन्द देकर कड़वक निर्माण की पद्धति को प्रचलित किया, यद्यपि चौपाइयों की अनिश्चित संख्या के पश्चात दोहा सोरठा आदि देने की रीति भी प्रचलित बनी रही।

अलंकार विधान तथा रस सामग्री

संस्कृत साहित्य शास्त्र में रस रीति अलंकार आदि का विस्तृत विवेचन हो चुका था। वह विषय छिताईचरित के युग के हिन्दी कवियों

छिताईचरित

पाठ की विषय-सूची

[छिताईचरित के मूल पाठ में खण्डों का विभाजन नहीं है, और न प्रसंगों के शीर्षक हैं। 'सिंगार छिताई को' जैसे एक दो शीर्षकों के अतिरिक्त कहीं-कहीं 'उवाच' ही मूल में अधिक मिलते हैं। कथा वस्तु को स्पष्ट करने के लिए समस्त कथानक को चार खण्डों में विभाजित कर प्रसंगों के शीर्षक दे दिये गये हैं और वे मूल पाठ के अंश न होने के कारण कोष्टकों में दिये हैं। 'उवाच' शीर्षक इस विषय-सूची में नहीं दिये गये हैं।]

प्रस्ताविक (पृष्ठ १-४)

गणेशवन्दन—सरस्वतीवन्दन—कथास्थापन—सारंगपुर नगर वर्णन—आख्यान गान।

प्रथम खण्ड (पृष्ठ ५-३५)

राजा रामदेव वर्णन—छिताई जन्म एवं ग्रहयोग वर्णन—छिताई की मुग्धा क्रीड़ा और सौन्दर्य वर्णन—रामदेव की सभा में जंगम का आगमन—छिताई की संगीत शिक्षा—अलाउद्दीन द्वारा दक्षिण में सेना भेजना—तुर्क सेना का दक्षिण अभियान—मार्गवर्ती राजाओं की पराजय—देवगिरि में मंत्रणा—तुर्क सेना से संधि और रामदेव का दिल्ली प्रस्थान—रामदेव और अलाउद्दीन की मैत्री—रानी रेखामती द्वारा रामदेव को छिताई के विवाह की व्यवस्था के विषय में पत्र भेजना—पत्रवाहकों का दिल्ली पहुंचना और राजा की अपने मंत्रियों से मंत्रणा—अलाउद्दीन से रामदेव का देवगिरि लौटने की अनुमति लेना और चित्रकार भेट में माँगना—चितेरे सहित रामदेव का देवगिरि आगमन—महल निर्माण—चितेरे द्वारा महल में चित्र रचना—छिताई द्वारा चितेरे के बनाए हुए चित्र देखना—चित्रकार का छिताई का

रस सामग्री की दृष्टि से छिताईचरित अपने युग की सर्वश्रेष्ठ रचना है। उसके प्रधान रस शृंगार और वीर हैं परन्तु साथ ही करुण, रौद्र, भयानक. अदभुत, एवं शान्त रसों को सामग्री भी प्रस्तुत की गई है और इस प्रकार कवि ने अपने इस दावे को सार्थक किया है—

नवरस कथा करइ विस्तारू (पंक्ति २८)

लौकिक आख्यान काव्यों को कामकथा के रूप में लिखा गया है। लोक विरोधी काम की वर्जना कर धर्म और नीति की रज्जु से बँधे हुए लोक संस्थापक आनन्दमय काम की उनमें प्रतिष्ठा की गई है। साहित्य शास्त्र के नायिका भेद को न अपना कर काम शास्त्र के अनुसार स्त्रियों के भेद पद्मिनी, शंखिनी, चित्रणी एवं हस्तिनी तथा पुरुषों के भेद शश, मृग, वृष और अश्व के रूप में स्वीकार किये गये हैं। साहित्य शास्त्र के स्वकीया एवं परिकीया आदि विभेद इस युग के हिन्दी कवियों को स्वीकार्य नहीं थे क्योंकि परकीया प्रेम के आख्यान लिखना तब समाज विरोधी समझा जाता था। स्वकीया प्रेम के विविध स्वरूपों की अभिव्यक्ति में कामकथा-कार को कोई संकोच नहीं होता था। छिताई चरित में काम शास्त्र के चित्रों और सुहागरात के मांसल वर्णन में कवि को कोई संकोच नहीं हुआ है। वह उस युग के लौकिक आख्यान काव्यों के प्रभाव का परिणाम है। छिताईचरित हिन्दी की उस रचना-धारा की रचना है जो धर्म और रस रीति की चपेट में दबा हुई नहीं थी और जिसका लक्ष्य संसार में रस लेकर सुखपूर्वक जीवन यापन का सन्देश देना था। छिताईचरित में पूर्ववर्ती साहित्य की परम्परा का निर्वाह किया गया है, साथ ही परवर्ती साहित्य की दिशा की भी सूचना स्पष्टतः इससे प्राप्त होती है। तुलसी के लोक संस्थापक आदर्श का संकेत, केशव, बिहारी, मतिराम आदि के रस-रीति-अलंकार का आधार तथा भाषा की सुपुष्ट पृष्ठभूमि छिताईचरित में निर्मित हुई है। अपने पूर्ववर्ती एवं समकालीन प्रवन्ध काव्यों की रचना विधा को परिमार्जित और परिष्कृत कर उसके रचयिताओं ने परवर्ती साहित्य के लिए अत्यन्त सुपुष्ट धरातल का निर्माण किया है।

अलाउद्दीन द्वारा अनुनयविनय करते तथा घेरा उठाने और धन देकर चले जाने का वचन देकर दासी से छुटकारा पाना—राघव चेतन का संधि प्रस्ताव—रामदेव का क्रोधित होना तथा सभासदों द्वारा राघवचेतन की प्राण रक्षा—अलाउद्दीन और राघवचेतन का लौटना तथा गढ़ की बातें करना—मदनरेखा द्वारा रामदेव की सभा में अलाउद्दीन के आने का समाचार कहना—मदनरेखा की सत्यता की परीक्षा—मदनरेखा के कहने पर अलाउद्दीन का पुनः आक्रमण—रतनरंग की प्रस्तावना—दूतियों का छिताई से मिलना—छिताई का रत्नेश्वर महादेव के मंदिर में जाना—रामदेव के बारी का विश्वासघात और अलाउद्दीन को छिताई का पता बताना—छिताई का शिवपूजन को जाना—रामदेव और अलाउद्दीन का युद्ध—गढ़ के परकोटे की दरार पर युद्ध—हम्मीर के कबंध का युद्ध— अलाउद्दीन का शिवमंदिर में जाकर छिताई को पकड़ना—अलाउद्दीन द्वारा छिताई को बेटी के रूप में स्वीकार करना—छिताई हरण—राजा रामदेव से संधि—अलाउद्दीन के हरम में छिताई का प्रवेश—देवगिरि विजय का समाचार दिल्ली पहुंचाना—अलाउद्दीन की सेना का दक्षिण से लौटना—अलाउद्दीन का दिल्ली पहुंचना और शाही हरम में छिताई के रूप की प्रशंसा—देवगिरि की दासियों की छिताई की देखभाल के लिए नियुक्ति—दासियों द्वारा छिताई का रूप वर्णन—अलाउद्दीन द्वारा संगीत का आयोजन—छिताई द्वारा वीणा वादन—छिताई की अला-उद्दीन द्वारा व्यवस्था।

चतुर्थ खण्ड (पृष्ठ ९१-१२४)

रामदेव द्वारा समरसिंह के पास छिताई हरण का समाचार भेजना—समरसिंह का योगी होना—योगी समरसिंह की तीर्थ यात्रा—चँदवार में युवतियों का योगी पर अनुरक्त होना—दिल्ली के निकट खांडव बन में पहुंचकर समरसिंह का वीणा बजाना—समरसिंह का दिल्ली में नायक गोपाल के यहाँ पहुंचकर छिताई की वीणा बजाना—छिताई को दासी द्वारा वीणा बजाने का समाचार मिलना—

पीछा करना और उसके चित्र बनाना—रामदेव द्वारा छिताई के लिए वर खोजने के लिए ब्राह्मण भेजना और उनके द्वारा द्वारसमुद्र के राजकुमार समरसिंह से सगाई करना—समरसिंह की बरात का आगमन तथा विवाह—छिताई सहित बरात का द्वारसमुद्र लौटना—सिंगार छिताई को—सुहागरात—समरसिंह और छिताई का देवगिरि लौटना तथा समरसिंह का मृगया में अनुरक्त होना—समरसिंह को योगी भरथरी द्वारा शाप—चित्रकार की देवगिरि से विदाई और उसका दिल्ली लौटना—चित्रकार द्वारा अलाउद्दीन को देवगिरि से भेजी गई भेंटें सौंपना—छिताई का चित्र देखकर सुल्तान का कामासक्त होना—अलाउद्दीन का देवगिरि पर आक्रमण—तुर्क सेना का देवगिरि पहुंचना।

द्वितीय खण्ड (पृष्ठ ३४-५८)

कवि देवचन्द्र की प्रस्तावना—देवचन्द्र द्वारा सुल्तान की सेना का वर्णन—अलाउद्दीन का देवगिरि पहुंचना तथा रामदेव को दूतों द्वारा सूचना—रामदेव द्वारा मंत्री से मंत्रणा—गढ़ की सज्जा—अलाउद्दीन द्वारा अपने सेनापतियों से मंत्रणा तथा दूसरे दिन सवेरे ही आक्रमण की योजना बनाना—तुर्कों का आक्रमण और पहले दिन का युद्ध—अलाउद्दीन का छत्रदंड भंग—दूसरे दिन का युद्ध—समरसिंह की छिताई से विदाई—अलाउद्दीन को समरसिंह के चले जाने का समाचार मिलना तथा राघव चेतन से उसकी मंत्रणा—राघव चेतन की चिंता तथा पदमावती देवी द्वारा मार्ग दर्शन—राघव चेतन द्वारा गढ़ पर दूतियाँ भेजने की अलाउद्दीन को सलाह—दूतियों का वर्णन तथा उनसे अलाउद्दीन की मंत्रणा—दूतियों द्वारा गढ़ का अगमता और अभेद्यता का वर्णन—गढ़ में दूतियों के प्रवेश करने की युक्ति—अलाउद्दीन द्वारा स्वयं देवगिरि गढ़ में जाने का विचार करना।

तृतीय खण्ड (पृष्ठ ५९-९०)

अलाउद्दीन का बाग और सरोवर देखना—राम सरोवर के तीर पर छिताई—अलाउद्दीन का मदनरेखा द्वारा पहिचाना जाना—मदनरेखा द्वारा अलाउद्दीन की भर्त्सना—अलाउद्दीन का अनुताप—

छिताईचरित

(पाठ)

योगी समरसिंह का राघव चेतन के माध्यम से अलाउद्दीन से मिलना—समरसिंह की अलाउद्दीन से भेंट और छद्म परिचय देकर संगीत प्रदर्शन—सुलतान द्वारा समरसिंह से रनवास में संगीत प्रदर्शन करने की याचना—समरसिंह का नगर में प्रवेश और नरनारियों का एकत्रित होना—नारियों का विमोहित होकर आना और हरम में एकत्रित होना—अलाउद्दीन के हरम में रमणियों की संगीत सभा—हरम में समरसिंह का आगमन—समरसिंह और छिताई का एक दूसरे को देखना तथा छिताई की वेदना—हैवत मलका द्वारा समरसिंह के संगीत की परीक्षा—छिताई का रुदन और अलाउद्दीन द्वारा समरसिंह को छिताई दान में देना—अलाउद्दीन द्वारा छिताई को उसके गहने लौटाने के लिए हेजम द्वारा बुलाना तथा भ्रमवश छिताई और समरसिंह का मरण—राघवचेतन द्वारा समरसिंह और छिताई को जीवित करना—समरसिंह और छिताई की विदा और अलाउद्दीन द्वारा भेंट देना—समरसिंह और छिताई का दिल्ली से प्रस्थान तथा यमुना तट पर विश्राम— चन्द्रगिरि में चन्द्रनाथ से भेंट तथा उपदेश ग्रहण—समरसिंह का देवगिरि पहुंचना तथा रामदेव द्वारा स्वागत-समारोह—समरसिंह द्वारा रामदेव को छिताई प्राप्ति का वृतांत सुनाना—रामदेव द्वारा समरसिंह की प्रशंसा—समरसिंह और छिताई का द्वारसमुद्र पहुंचना और राज्य-भोग—उपसंहार ।

॥ श्री गणेशायनमः ॥

(गणेशवन्दन[1])

वस्तु बन्धु

सुमति सामी सुमति सामी वीर गणनाह ॥
नागहार नव रंग रसु संभयो फुनि तुव चरन ।
लम्बोदर ऊंदर चढ़िउ सुमति देहु जिहु कथा उपजइ ॥
सिरि सिन्दूर उज्जल दसन घोघर सुर नर मोह ।
कवि जे नरायण सुमति लगि शरन नवइ कवि जोह ॥१॥

छंदु

कान कुंडल जडित उर हार गुण गंभीर अथाह ।
देहि बुधि जिउ होइ सिधि एक दंत गणनाह ॥
मोहइ सुर सभ घरहि घरि नादु करइ नव रंगु ।
लंबोदर सोहइ त्रिभुवन मोहइ अगमु अपार अभंगु ॥२॥

चौपाई

दय मति सामी मोहि अभंगू । तोहि प्रणामु करउं अष्टंगू । १०

(सरस्वतीवन्दन)

फुनि प्रणमउं सरसति सिरिनाई । सुमरित त्रिविध पाप सब जाई ॥३॥
बंदउं जननि तासु गुरु ग्यानी । बढइ कथा जउ कहउं बखानी ।

(कथास्थापन)

राजा रामदेव की धीया । कइसइं अलावदीन हरि लीया ॥४॥
कइसे छिताई भयो वियोगू । किउं सौरसी कीयो तन जोगू ।
काहे तइं यहु विग्रह भईयो । रामदेव किउं ढीली गयो ॥५॥ १५

---

१ कोष्टक में दिये गये शीर्षक मूल पाठ में नहीं हैं। वे हमारे द्वारा दिये गये हैं।

(कथारंभ)

(प्रथम खण्ड)

(राजा रामदेव वर्णन)

दखिनि दिसि सायर कउ ठांऊ। दिवगिरि दुर्ग्ग रामदेउ राउ। ३०
ताके हय गय दर्व अशेसू। सायर तीर बसायो देसू ॥१३॥
राउ सुखी दिन राज कराई। दुखी न दीसइ बंभन गाई।
बसहि कोट कोटीधुज साहा। लाख लोग कउ करइ निवाहा ॥१४॥
छत्री खरग धर्म दिढ सूरा। श्रावग दयाधर्म के मूरा।
पूजा धर्म आपुन विउपरई। त्रिविधि पापु नहिं कोई करई ॥१५॥
अपुने आपु वित्त सभ सुखी। तिहं पुरि नाही कोउ दुखी।
राज ग्रेह सुंदरी सइसाता। गुननि पूर कंचन मइमाता ॥१६॥
मुगधा वाला प्रौढ प्रवीना। रहइ दिनह प्रति प्रिय मनु लीना।
पाटवर्द्धना रेखामती। अति सरूप सीता समु सती ॥१७॥ ३९

(छिताई जन्म एवं ग्रहयोग वर्णन)

ताके गर्भ छिताई रही। मुचति गर्भ राजा सुधि लही। ४०
बोले जोतिषी पूंछइ राई। कहि धौं जन्म लग्न के भाई ॥१८॥
जोतिष ग्रन्थ सोधिकइ घरी। यह कन्या कइसइं औतरी।
कहइ जोतिषी जोतिष देखी। यह कन्या दमयंति विशेषी ॥१९॥
भली लग्न यह ग्रह संजूता। इसइ लग्न जो होतउ पूता।
सुनहिं राय गुन ग्रह परवाना। आत होइ[1] हरिचंद समाना ॥२०॥
तव गुरुदेउ देखि उचरई। ताकउ सुजसु पुहमि विस्तरई।
इतनौ लग्नहि परौ कुजोगू। भर योवन या परइ वियोगू ॥२१॥
ग्रह सुख दुख असुभ तन करहीं। ग्रह वल दर्वु ग्रहीता हरहीं।
उदिम करहि विथा उनमाउं। कर्म सरूप रचिउ ग्रह राउ ॥२२॥ ४६

---

१ प्रसंग को देखते हुए 'होत' होना चाहिए।

१६ किउं मिलापु भईयो भरतारा । किउं यह कथा चली संसारा ।
१७ जउ गुन गुनी होइ गुनवंता । विकट बुधि संजम जानंता ॥६॥

(सारंगपुर नगर वर्णन)

१८ मोहि न हसहु सुनहु चउपही । फुरइ सुबुधि करम गति लही ।
देसु मारवौ कंचन खाना । लोग सुजान विवेकी दांना ॥७॥
२० महानगर सारंगपुरि भलौ । निहिं पुरि सलहदीन जांगलौ ।
खांडे दांन दूसरउ करनू । विक्रम जिउं दुख दालिद हरणू ॥८॥
दुरगावती तासु वामंगू । जनु रति कामदेव कइ संगू ।
२३ तिह पुरि कवि चौहरि ठां गयो । कथा करनु मनु उद्यम भयो ॥९॥

(आख्यान गान)

२४ हरि सुमरंतह भयो हुलासू । विरसिंघ वंस नरायनदासू ।
पंद्रहसइ रु तिरासी माता । कछूवक सुनी पाछली वाता ॥१०॥
सुदि आषाढ सातइं तिथि भई । कथा छिताई जंपन लई ।
करुना नीत वीर विस्तरई । अदभुत रूप भयानक करई ॥११॥
अरु किछु करउं वीर सिंगारू । नवरस कथा करइ विस्तारू ।
२९ जंपइ विस्नु नरायनदासू । मरइ फूल जीवइ दिन वासू ॥१२॥

सोरठा

कहा कीयउ मइं पापु, सखी न संग खिलावहीं । ७२
निंदइ मन महि आपु, दीरघ नयनी कत भई ॥३४॥

चौपाई

मो मुख सरद शशी कत भईयो । निश कउ खेल हमारउ गईयो ।
कवियन कहई नरायनदासू । गई छिताई वहुरि अवासू ॥३५॥ ७५

(रामदेव की सभा में जंगम का आगमन)

महाराज भुगवइ भोवाला । अहिनिशि दीजई शत्रू काला । ७६
चउदह विद्या चतुरं सुजानां । छह दरसन कउ राखइ माना ॥३६॥
जंगमु एक बीन कर लीएं । जटा जूटा सिरि जूरा दीएं ।
आयो रामुदेव के पासा । गावइ सुघरु से खरौ उदासा ॥३७॥
पानी मांझ वजावइ वीना । सुनति नादु रस रीझहि मीना । ८०
सुनिकइ कीयो अचंभउ राई । महल मांझ ते गयो लिवाई ॥३८॥
जंगम स्यउं राजा इउं कहियो । तुम्ह गुन सुनति मोहि मनु हरियो ।
तव जंगमु मानिउ उच्छाहू । जब सुग्यान जानिउ नरनाहू ॥३९॥
जती सिध्य अवलंत्रे सर्व । गीतंगी जनु सुर गंधर्व ।
तव कर वीन वियोगी लई । ठोकी तांतु नादु धुनि भई ॥४०॥
अति सुजान ते मनु दय सुनी । रहे रीझ दिवगिरि के गुनी ।
जेते सभा भए गंधर्व । मृग जिउं मोहि रहे सुनि सर्व ॥४१॥
सो गुन साहि सराहइ गुनी । सो चातुरी जे रीझइ दुनी ।
नादु रंगु विनु और न रंगू । मृगमाला मोहियइ भुवंगू ॥४२॥
नादु रंगु को मरमु न लहई । जीय महि जानि अपनपउ कहई । ९०
चित्त एक पाखंडी करउं । तीरथ फिरति भंवइ बावरउं ॥४३॥ ९१

५० रावन समु को पुहमी भईयो । ग्रहन वियाप्यौ सो खय गईयो ।
ग्रह वस देव लहहि दुख घने । ग्रहनि तने दुख जाहि न गने ॥२३॥
जनम लगन किउं मेटि न जाई । अजौं सूर ससि गहीयइ आई ।
ग्रह व्यापइ हरि भौ पाखांना । तीन भुवन को ग्रहन समाना ॥२४॥
माघ विप्र धन गहिर गंभीरा । अंत अन्नु विनु तजिउ सरीरा ।
५५ दीयो दानु जपु होम कराई । कन्या दिन दिन वढ़ती जाई ॥२५॥

(छिताई की मुग्धा क्रीडा और सौन्दर्य वर्णन)

५६ घरी महूरत दिन दिन आना । वरष सात की भई प्रवानां ।
सखी वीस दस वाला साथा । सारो सूवा पढ़ावहि हाथा ॥२६॥
एक ते खेलहि पासे सारा । पारहि मुगधा देहि हंकारा ।
एक ते करु कंदुकी[1] उछालहि । खेलहि कन्या विविध प्रकारहिं ॥२७॥
६० एकहि दिवसि जानि जामिनी । खेलहि कुमरी चोर मिहचनी ।
जहवां छिपइ छिताई आई । तहंवा अंधकाल मिट जाई ॥२८॥
दुरहिं सखी भौंहरे निसंकु । होइ उदौ जनु उयो मयकुं ।
वाला विलखति चलइ रिसाई । छिपइ छिताई देइ दिखाई ॥२९॥
सवन्ह रिसाई कहइ जौ वयना । हम कर लघु या दीरघ नयना ।
दुहं प्रकारि न जिन सौं मेलू । कीजइ और सखिन्ह सौं खेलू ॥३०॥

गाथा

दीर्घ नयनी कत हुई, अंधकाल अनल प्रगासु ।
छीन लंक हम दोसनी, तुम्ह न खिलावहि तासु ॥३१॥

चौपाई

यहु तउ कहीयइ शशिहर वयनी । अरु पंकज दलु दीर्घ नयनी ।
सुनति छिताई भई अनमनी । निंद्रा कुंवरि करह आपुनी ॥३२॥
७० कठंन पापु मइ विधिना कीयो । सखिन[2] वियोग जे खेलति दीयो ।
७१ विधिना बुद्धि वसी कति तोही । दीरघ नयन दीये किउं मोहीं ॥३३॥

---

१ मूल में 'कंचुकी' है । २ मूल में 'शखिन' है ।

सिरि साहिव भउ नसुरति खांनां । साथ सइन समुदइ तुलतानां । ११४
भयो दमामो साजिउ सयनू । चले तुरक चढि दछिनि कौनू ॥५५॥ ११५

(तुर्क सेना का दक्षिण अभियान)

छंदु

नीसान बाजिउ सइन साजिउ चली फौज असंख । ११६
गज घटा दीसहि तुरीय हीसहि उडति गहीयइ पंख ॥
दल चलति धूरी गगन पूरी रहिउ सूर लुकाई ।
कबि दासु जंपइ धरनि कंपइ गनति कापहि जाई ॥५६॥

चौपाई

चलति सइन किउं वरनेउं जाई । कूचह ऊपर कूच कराई । १२०
दल चतुरंगहु द्रिढ कै साजी । उतरे रामदेव हरि गाजी ॥५७॥ १२१

(मार्गवर्ती राजाओं की पराजय)

वढइ कथा जौ घाटिन गनऊं । गोपाचलगढ दय दाहिनऊं । १२२
लागी फउजइं[1] जुरन असेसू । घाटी चढी मारवइं देसू ॥५८॥
मेले भीमुसेन के गोइंडा । उतरे नदी नरवदा जुरइंडा ।
करहिं तुरक दखिन मइ धारी । उबरहिं राइ दीएं वरनारी ॥५९॥
दर्व सर्व[2] *इय हस्ती तुरंगू । चलहि ते नसुरतिखां के संगू ।
नगर दुर्ग पाटन जे नयरा । रहि न सकहि[3] तुरकन के वयरा ॥६०॥
वहुति वात को कहई बढ़ाई । उतरे दिवगिरि मइंडे जाई[4] ।
धावहिं तुरक देस महि भारी । पुर पाटन दीजहि परजारी ॥६१॥ १२९

---

१. क प्रति में कउजइं है, यहां संभाव्य पाठ फउजइं है । २. इस पंक्ति के चिह्न * से ख प्रति का पाठ प्रारम्भ होता है और उसमें इस छन्द की संख्या ६२ पडी हुई है । ३. क प्रति में 'शकहि' है । ४. 'ख' में 'उतरे मीर देवगिर जाइ' है ।

(छिताई की संगीतशिक्षा)

९२ कहइ राउ जंगम स्यउं एहू । एक वचन मांगिउ मो देहू ।
मेरे जे पातर परवीना । तिन्हहि वजावन सिखवहु[1] वीना ॥४४॥
महल मांझ दिन जंगमु जाई । त्रीया सहितु राइ वइठइ आई ।
रीझी तांति नादु रस रंगू । भइ चितु व्यापी खरी अभंगू ॥४५॥
जंगमु तांति नाद धुनि करई । भूली भामिनी सुधि न परई ।
तिन्ह के साथि छिताई रहई । वीना नाद धुनि जीय महि गहई ॥४६॥
जइसइं गीत नाद धुनि करई । विनही पढ़ें छिताई लहई ।
अति वितपन्न नादु गुन खरी । जनु कलि महि रंभा ग्रौतरी ॥४७॥
१०० जंत्र मृदंगु किन्नरी वीना । अहिनिसु रहइ नादु रसु लीना ।
१०१ अन्तरकथा सुनहु चितलाई । जइसइ लागिउ होन उपाई ॥४८॥

(अलाउद्दीन द्वारा दक्षिण में सेना भेजना)

१०२ ढीली अलावदीन सुलताना । सो तपु तपई जन दूजउ भाना ।
सोवे सूषम विषय संकेतू । चौमद छक्यौ तास को चेतू ॥४९॥
धन जोवन प्रभुता जे विवेकू । इन्ह चहुं मांझ भयो नर एकू ।
अगनि जरी ग्रीषम उद्याना । प्रजरति वरजइ कउंन सुजाना ॥५०॥
मदमातौ को गहइ गयंदू । मंत्रिन्ह मतउ न सुनइ नरिंदू ।
पूरब पछिम उत्तर देसू । भुमियां जेते आहि नरेसू ॥५१॥
छलि बलि बेटी मांगइं साही । नाही करइ हतइ सिरि ताही ।
दखिन सुनी विचखिन नारी । राघौचेतन लीयौ हकारी ॥५२॥
११० मोल्हन सरिस राइ यों भनी । छलि बलि ल्याउ तिरी दछिनी ।
वरतन सदा स्वामिकउं धर्मू । मलक नेव पांडे दिउ सरमू ॥५३॥
तिन्ह सिउं आपु कहइ नरिनाहू । तुम चारउ दखिनि दिसि जाहू ।
११३ मोल्हन सरिस कहइ सुलतानू । दखिन देश करहु तुरकानू ॥५४॥

---

[1] मूल में 'शिखवहु' है ।

ऽ राधौ चेतन मोल्हन राउ। इन्हहि दिखायो दिवगिरि ठाउ ॥७०॥ १४७
ऽ जे दासी दासिन महि बुरी। अइसी दुइ दीन्ही छोकरी।
ऽ और न्ह तिन्ह दीनी सुन्दरी। अइसी राउ चतुरई करी ॥७१॥
ऽ वहही कपोल बरिखु ते साठी। सदल दंत दीरघ जनु गांठी। १५०
ऽ और दर्व को गनइ न अइसा। मिल्यौ राउ दिवगिरी नरेसा ॥७२॥
सायर तीर राय जे घने। निसुरतखां कीन्हे आपुने।
लीयो राउ रामु संघाती। वीच न विरमे ढीली जाती ॥७३॥
अति सुख सुनि सुलतानहि भईयो। उलूखानि आगे हुइ लईयो। १५४

(रामदेव और अलाउद्दीन की मैत्री)

करी अलावदीन वारामा। टका कोटि दश दीए दामा ॥७४॥ १५५
अधिकु मया कीन्ही सुरिताना। राजहिं राखहि आपु समाना।
गइर महल सुलतानहि पासा। रहइ रामदेव मांझ अवासा ॥७५॥
दुहुंन प्रेम वाढिउ अति घनउं। कहहि ते गुझ आपु आपुनउ।
[1]रंगु विनोद जे राइ सुजाना। तिहु रसु बसु कीन्हौं सुरिताना ॥७६॥
अइसे वरखु तीसरी गई। रायह घर की सुधि न भई। १६०
ऽ ऐसी प्रीति साहि सिउं भई। तीनउं वरसु घरी वरि गई ॥७७॥
ऽ राजा भूलि रहिउ रजथाना। वहुत सुख तिहकौ सुरिताना ॥७८॥

वस्तु बन्धु

ऽ राउ बिरमउ राउ बिरमउ प्रीति अति नेह।
ऽ अधिक मया सुलतान कीन्हीं चित चिंता व्यापी नहीं ॥
ऽ देखि सेव सुलितान रीझउ।
ऽ साठि सहस संभलि सरसु दीयो देसु सुलितान।
ऽ रहिउ राउ समदिउ नहीं घर चिन्ता अभिमान ॥७९॥ १६७

---

१ ख प्रति में यह पंक्ति निम्न रूप में है, "राउ राग रस खरौ सुजान। अइसइ वसु कीनु सुरितान ॥"

१३० सुवसु वसहि जे गवई गाउं । तिन्ह के खोज मिटावहि ठांउ[1] ।
१३१ संकहि मिलहि मइंडिया आई । कांध ठोक तिन्ह देहि कवाई ॥६२॥

(देवगिरि में मंत्रणा)

१३२ परजा भागि समुद्र ढिग रहई । दिवगिरि सुधि रामुदेव लहई ।
चित चिंता सुनि उपजी राई । मंत्री महते[2] लए वुलाई ॥६३॥
ऽ अरु वोले जोतिषी सुजाना । कोकु समुद्रिक पढे सयाना ।
जइसउ जाहि वुधि परवेसा । मंत्र प्रगासइ ताहि नरेसा ॥६४॥
साम दंडु अरु भेदु हथियारु । जइसें उनपहि होहि उवारू ।
ऽ वूझइ राजा कहि परवाना । मंत्रिन्ह मिलिकइ मंत्र सु ठाना ॥६५॥
कहहि सयाने मंत्र प्रगासा । दूहु पवारे भूमि विनासा ।
जौ विचरइगौ नसुरतिखांना । साथु सयन समुदय सुलताना ॥६६॥[3]
१४० जूझति डिगहि तुहारे पाई । तिन्ह पहि कोइ न जीवति जाई ।
ऽ सदा निसंकु न संका करई । अव सव कटकु अचानक परई ॥६७॥
ऽ कहइ सयाने मंत्री बयना । आए तुरक छिताई लयना ।
कइ वेटी दय निहचल होही । कइ ढीली जान वूझीयइ तोही ॥६८॥
१४४ जउ दुख राउ अपन पइ लहई । प्रजा देश धन निहचल रहई ।

(तुर्क सेना से संधि और रामदेव का दिल्ली प्रस्थान)

१४५ अइसे वचन मंत्रिन्ह के सुने । रामु विचारइ मनु आपुने ॥६९॥
१४६ ऽ[4] खान उमरा जे राना राई । गढ़ परि लीन्हे सवइ बुलाई ।

---

१ क प्रति में 'थांद मिटावहि नाउं' है । २ सचिव सयाने ।
३ मूल क प्रति में पंक्ति १३९ पर भी ६६ क्रमांक पड़ा है और पंक्ति १४० पर भी । ४ ख प्रति में १४६-१५१ पंक्तियां नहीं हैं । कथा सूत्र एक अर्धाली से मिला हुआ हैं "असो मतो किउ नरनाह । मील्यौ राउ मोल्हन की वाहु ॥" प्रस्तुत पाठ की जो पंक्तियां ख प्रति में नहीं हैं उनके आगे ऽ चिह्न लगा हुआ है ।

फुनि पूंछी कन्या की वाता । कुशल छिताई के हइ गाता । १८८
नाइ सीस पतिहा ऊत्तरिउ । अन्न पान रानी परिहरिउ ॥९०॥
अइसउ सुनि नयनन जल ढरिउ । मन हुलास चलवे कउं करीउ । १९०
कही वात आपुन नरनाथा । पाती देउं सुलितानहि हाथा ॥९१॥
अइसो मतो करइ नर नाहू । कहिहों कन्था तनो वियाहू ।
मंत्री वात कहइ समुझाई । किउं वन होहि खेल के राई [1]॥९२॥
तुम दुइ दासी दीइं करूपा । पातिसाहि जीय वसी अनूपा ।
तिन पहि मरम[2] लीयो सुरिताना । बेटी सुनइ न देहइ जाना ॥९३॥
गहि राखइ वेरिन्ह[3] ते धलाई । दई छिताई छूटिहइ राई ।
राउ जीभ लइ चंपी दंता । अइसो करम[4] न करई संता ॥९४॥
निसुरति उलूखांन जिउं आही । तिन समान मो मानइ साही ।
ऽ मंत्रिन्ह सरिसु राउ उचरई । मोकहु पापु द्रिष्ट क्यों करई ॥९५॥

मंत्री उवाच

मनुम तो स्वादहि को लहइ । जूवा खेलि को साची कहई । २००
[5]कामु रहित कामिनी न होई । झुठी साखि भरौ जनि कोई ॥९६॥
ऽ जिन्ह मंत्रिन को कहिउ न सुनो । तिन्ह राइन्ह दुख उपनो घनो ।
ऽ जिन गुदरई सुरतानहि राई । त्रिय लगि पाछें भए उपाई ॥९७॥
ऽ गढ तुरंग गज अरु नारी । इन्ह लगि विग्रह वाढइ रारी ।
राजा सुनी न तासु की वाता । गयो पाति लीन्हे परभाता ॥९८॥ २०५

(अलाउद्दीन से रामदेव का देवगिरि लौटने की अनुमति लेना और चित्रकार भेट में माँगना)

इहां मोहि दिन वीते घने । आए लिखे जे दिवगिरि तने । २०६
जंपइ रामुदेव नरनाहू । मेरे कन्या तनो विवाहू ॥९९॥ २०७

---

१ काम न होइ खेलतें राइ । २ भेद । ३ वेयरियां । ४ वात न कहई ।
५ ख प्रति में यह अर्धाली निम्न प्रकार है: काम रहित नाहीं कामनी । निपति मित्र न वि जानौ गुनी ।'

चौपाई

१६८ ऽ राजा की चिन्ता असमांनी । जीवति नाहीं घर केहूं जानी ।

(रानी रेखामती द्वारा रामदेव को छिताई के विवाह की व्यवस्था के विषय में पत्र भेजना)

१६९ तव रानी मंत्री[1] हकराई । कही वात तासिउं समुझाई ॥८०॥
१७० रे मंत्री तुम चित कबुद्धी । अजहु न करउं राइ की सुद्धी ।
विनु राजहिं[2] न चलाइ राजू । पठवहु[3] लिख्यो राइ कह आजू ॥८१॥
कन्या घर महु व्याहन जोगू । ऊधम करहि मइंडिया लोगू ।
जाके कुवारी कन्या होई । निसि भरि नींद सकइ क्यों सोई ॥८२॥
ऽ घर कन्या रिगु व्यापइ पीरा । तिन्ह कहुं चिन्ता अधिक शरीरा ।
ऽ भई छिताई समरथ वाला । चलइ हंस गति वचन रिसाला ॥८३॥
छटी देह उन्ह उल्हसिउ[4] हीयो । कामु शरीर वसेरौ कीयो ।
ऽ हृदय फोर निकरे कुच्च कूरा । मनहु मदन वइसनु कह मूरा ॥८४॥
ऽ सारिंगु नैन श्रवन जोगए । मानहु मदन निशानउं दए ।
वाली वेलि जाइ कुमिलाई । जउ न सींचीयइ वेरहिं[5] आई ॥८५॥
१८० ऽ वनिता वेलि तवहि पालुहई । जव पुरिसहिं आलंवी रहई ।
ऽ सुन्दरि विनु भोगएं वढाई । सुरति संगु निति नौतन जाई ॥८६॥
जिउं नित नीर कूवा कउ कढई । निरमल झरइ[6] उपर होइ चढई ।
भोग करति निति गुन कह गहई । तउ सुख जौ प्रीतम घरु रहई ॥८७॥
सवइ लिखे घर के विउहारा । पतिहा चले चारि असवारा ।
१८५ विरमे जाति कछू दिन वीता । ढीली नगर ते जाइ पहूता ॥८८॥

(पत्रवाहकों का दिल्ली पहुंचना और राजा की अपने मंत्रियों से मंत्रणा)

१८६ सोधि मिलानु राइ पहि गए । चरन वंदि कइ कागद दए ।
१८७ अरु पूंछइ घर को विउहारा । कहीं कुसल तनि सव परवारा ॥८९॥

---

१ उजीर । २ नायक । ३ समदो । ४ उनत भो । ५ अवसरि । ६ नीर ।

दीजहि हय गय कापुरे कनक रतन[1] भंडार। २२७
[2]राय सीसु अभिषेक भौ आनंदिउ परिवार ॥१०८॥

चौपाई

आनंदिउ देखति परिवारा[3]। जनु राजा कउ भयो औतारा।
जाचक समुदे करि मनुहारी। राइ चितेरो लियो हकारी ॥१०८॥ २३०

(चित्रकार द्वारा राजा को नवीन महल बनाने की सलाह देना)

पकरि बांह भीतरि गउ राउ[4]। लागिउ महल दिखावन ठाऊं[5]। २३१
फुनि बरखहि चउमासे मेहा। वेगे चित्र करहु इन्ह गेहा[6] ॥११०॥
कहइ चितेरो सुनि हो राई[7]। अएसे चित्रु करन किउं जाई।
यहु मई सुनउं पुरानहु पाठू। जीरन काया कापर काठू ॥१११॥
कहइ सयाने चतुर विशेखा। इन्हहि न चढई रंग की रेखा।
चित्रु न होइ पुरानी वानी। यह समराई हमारे जानी ॥११२॥
तबहिं रामद्यो विचारइ हीए। चित्रु होइ नौतन घर कीए। २३७

(महल निर्माण)

जे प्रवीन पाहन[8] सुतधारा। वीरा दीनौ राइ हकारा ॥११३॥ २३८
कमठाने[9] कहं आयसु भयो। अगनत दर्व[10] काम लगि दयो।
गुनी लंकु गीगौ गुन दासू। जानहि सिलप ते बहुत अभ्यासू ॥११४॥ २४०
बोलि जोतिषी साधी लग्ना। रची नीव सुभ नीके सगुना।
खेत्रपालु पूजिउ करि भाउ। अविचल होउ ग्रेह द्रिठ राउ[11] ॥११५॥
गही[12] नीव भारी चौराई। पुरिष सात[13] कइ मेरि भराई।
चौबारे चउखंडि चौडोरा। कलिचा बने कांच के मोरा ॥११६॥ २४४

---

१ कंकन कणै। २ याजक जन संतोषीउ आनंदीउ संसार। ३ संसार। ४ ले गयो। ५ महल दिखावन ठाढो भयो। ६ वेगि चित्र हमारे ग्रेह। ७ साहि। ८ प्राहर। ९ कमठानन १० द्रिव्या। ११ ठाउ। १२ गहरी। १३ पंचि।

२०८ कहइ अलावदीन सुलताना। रायहं समदउं होति विहाना।
तेरी सेवा भयो सुख मोही। मांगि रामुदेव तूठो तोही ॥१००॥
२१० नाइ सीस इउं जंपइ राउ[1]। यहु मो चरितु चित्रु पर भाउ[2]।
मेरे जीय इह[3] इच्छा अ.ही[4]। गुनी चितेरौ[5] समुदौ साही ॥१०१॥
रीझउ पातिसाहि इउं कहई। गुनी होइ गुन कउ संग्रहई।
लोभी सुकृत गवावइ सर्वा। कर्म अकर्म संग्रहइ दर्वा ॥१०२॥
कामी तउ चाहइ कामिनी। गुन कउ संग्रह करिहइ गुनी।
जइसे हंस परिहरइ नीरा। स्वाद बुद्धि[6] लइ आवइ[7] खीरा ॥१०३॥
जिउं औगुनहि गहइ चालिनी। तिउं मूरख जानहु निर्गुनी।
वोलि चितेरौ समुदिउ साथा। दई कवाइ आपुने हाथा ॥१०४॥
छत्रु सीसु दय हस्ति तुखारा। पहिरायो वीसासउ वारा।
२१९ चलिउ चित्रुहेरे लइ आपू। मानहु घालि पिटारे सांपू ॥१०५॥

(चितेरे सहित रामदेव का देवगिरि आगमन)

२२० मंत्री वरजहि करहि पुकारा। चलिउ वंधि गंठि अंगारा।
[8]विच्छू लयो हाथि कइ राई। मंत्रिन्ह तनी वात न सुहाई ॥१०६॥
ऽ घर तन चलति अतिरघन भए। दिवगिरि दुर्ग रामुदेव गए।
सर्वहि नगरि भयो उछाहू। कुशल सहित घरु गयो नरनाहू ॥१०७॥

वस्तु वंधु

गयो राजा गयो राजा नगर मंझारि।
ग्रेह ग्रेह आनंद भयो होहि गीत गावन वहू[9]।
२२६ ऽ घर घर गूडी ऊछरहिं गहरे सवद वाजित्र वाजइ ॥

---

१ वोलइ भूप। २ इह भूमि चित्र चरित्र अनूप। ३ छइ। ४ एक ५ चितारो। ६ स्वाद लवध। ७ होइ पविइ। ८ २२१-२२२ क्रमांक की अर्धालियों के प्रथम चरण ख प्रति में नहीं है। ९ वाजे वजाए।

चउवारे चउपखा सुदेसा । वरिखा बिरमंइ तहां नरेसा ॥१२६॥ २६४
सोने के पीपरि पंचासा । वरिखा वरखइं[1] बारह मांसा ।
गोमट खरबूजा आकारा । तिन्हहि पवांरी जरे[2] किवारा ॥१२७॥
५ चहुंघा खुटी कांच की भली । रहइ परेवा तहं जंगली ।
तिहं ठां सूवा सारो साखा । खुमरी बोलहिं अन अन भाखा ॥१२८॥
एक महल नीर कौ दुराउ । दीसइं तह वइसन कौ ठांउ ।
देखति बुधि न होइ सरीरा । चलति बूड़ीयइ गहर गंभीरा॥ १२९॥ २७०
हिलत्री कांच भांति कइ[3] करी । दीसइ[4] जनु कालंद्री भरी ।
जिहं ठां राइ तणी जिउं नारा । दीसइ[4] जमुना जल आकारा ॥१३०॥
जिनस जिनस मंदिरि गिन सारा[5]। अरु सब ग्रेह बने इकसारा[6]।
जब संपूरन भए अवासा । गयो चितेरो राजा पासा ॥१३१॥ २७४

(चितेरे द्वारा महल में चित्ररचना)

मांगि राई वानी पंच वरना । लाग्यो चित्र चितेरो करना । २७५
सुमिर गणेश गही[7] लेखनी । लागिउ बुधि रचन आपुनी ॥१३२॥
प्रथमहि लिखिउ सरस्वती रूपा । उकति चित्रु जिहं होइ अनूपा ।
रेखा धुनिरिति लिखिउ संजोगू[8] । नल दयमंती तनो वियोगू ॥१३३॥
भारथु रामायन चितरीयो । मृगया मांझ मनोहर करीयो ।
लिखिउ कोकु चउरासी भांती । औ चारौ अस्त्रीन्ह की जाती ॥१३४॥ २८०
हस्तनि चित्रनि पदुमनि संखनी[9] । चित्री तहां मनोहर वनी ।
चारि पुरिष चउहूं आकारी । अस गज नर पुर खरौ सुठारी[10]॥१३५॥
कवियन कहइ नरायनदासा । जब लागो चित्रीयन आवासा ।
देखन लोग नगर कउ जाई । चितइ चित्र तनु रहइ लुभाई ॥१३६॥ २८४

---

१ बरखइ नीर । २ तने । ३ भरी कुच । ४ क दीशइ । ५ जिनसार । ६ हेम जरित सोहइ सिजवारि । ७ साही । ८ नैषधि निरषधि लिख्यो संजोग । ९ पदमनि चित्रनि गज संखनी । १० अरु गज खरन खरे सुठार ।

२४५ एकते काठन पाहन पाटे । नव नाटक नव साला[1] ठाटे ।
   ऽ[2]नवनि रंग कुरि अति रवनीका । ठांव ठांव सोने के टीका ॥११७॥
   [3]वादल घनह[4] उठी घन घटा । रचे अनूप अटारी अटा ।
   छाजे भरोखा रचे अनूप । जिन्हहि उभकि ते रहे जे भूपा ॥११८॥
   कठछपर[5]सतखने अवासा । कंचन कलश मनहु कविलासा ।
२५० रची केरि कांच की कडारी[6] । रहिहिं भूलि अमु चतुर विचारी ॥११९॥
   बावन वस्तु मिलइ कइ वानी । अति अनूप आरसी समानी ।
   रची चित्रसारी चितलाई । देखत ही मनु रहिउ सिहाई ॥१२०॥
   मानिकु चौक ते मन मोहनी । रची अनूप चोर मिहचनी[7] ।
   कीये भौंहरे अन अन भांती । तिनमहि जनि अंधियारी राती ॥१२१॥
   वने हिंडोरे कंचन खंभा । मानहु उपजे उकति सयंभा ।
   करि सिंगारु जे अधिक विचारी । मानहु भरत की भरी सुनारी ॥१२२॥
   सभा जोरि जहं वइसइ राऊ । फटिक पीठ वंध्यो सो ठाऊ । [8]
   चकई चकवा कीए कडारी । जल कुकरी मटामरियारी ॥१२३॥
   तिहठां और जिते जल जीवा । भरे भरति की साजति नींवा[8] ।
२६० मच्छ कच्छ लघु दीरघ घने । ते सव चलहि द्रिष्ट कर वने ॥१२४॥
   सभा सरोवर सोभइ तइसो । हथिनापुरि पांडव कउ जइसो ।
   और राइ जे देखहि आई । वस न सकहि रहहि भरमाई ॥१२५॥
२६३ चंदन काठ कठाइल आना । ते ग्रीपम रितु हेम[10]समाना ।

---

१ नट सालन । २ ख प्रति में यह अर्धाली निम्नलिखित हैः रावन रंग कोरि रमनीक । लाजवर्द मुइ नषस अकीक ॥' ३ २४७-२४८ पंक्तियाँ ख प्रति में पंक्ति २५० के पश्चात हैं । ४ वादल महल । ५ खट छपर । ६ खांडारि । ७ मीचनी । ८ पंक्ति २५९ के पश्चात ख प्रति में निम्न अर्धाली हैः कमल कमोदनि पुरयनि पांन । झलमलहि सरवरै समान ॥' ९ घस । १० हिंम ।

देखे नट नाटक आरंभा । लिखिउ कोकु[1] चउरासी खंभा । ३०५
चतुर चितेरे देखी जिसी । करि कागदु लइ चित्री तिसी ॥१४७॥
त्रिनवनि चलनि मुरनि[2] मुसकानी । रचि रचि चित्र चितेरे बनी ।
सुंदर सुघर सो गरे[3] प्रवीना । जोवन जु वान[4] बजावइ वीना ॥१४८॥
नादु करति हर काउ मन हरई । नरु वापुरौ कहा धउ करई ।
इक सुंदरि अरु सुवन शरीरा । इकु मिश्री मिश्रित भई खीरा ॥१४९॥ ३१०
इकु सोनो अरु होइ सुगंधा । लहइ प्रयाति पयोगहि कंधा[5] ।
चित्र देखि वहुरी चित्रनी । आलस गति गयंदु गर्विनी ॥१५०॥
कवियन कहै नरायनदासा । गई छिताई बहुरि आवासा । ३१३

(चित्रकार का छिताई का पीछा करना और उसके चित्र बनाना)

पहरिउ वहुर कसुंभौ चीरा । गौर वरन ते स्वरन शरीरा ॥१५१॥ ३१४
कुच कंचुकी सोहियत स्यामू । मानहु गुंडरी दीन्ही कामू ।
मृग चेटुआ लगाए साथा । आपुन लए हरे जव हाथा ॥१५२॥
तहि चरावति बांह उचाई । कुच कंचुकी संधि होइ जाई ।
तव कुच मूरि चितेरे देखा । स्याम घटा जनु ससि[6] की रेखा ॥१५३॥
रहइ नयन मनु ताहि लगाई[7] । जीय ते[8] सुरति न कबहूं जाई ।
फिरति महल मह निरभौ भई । मूर्छा देखि चितेरहि गई ॥१५४॥ ३२०
चेत्यो तव चित्रंगु संभारी । लिखिउ रूप सो मनहि विचारी ।
जव जव द्रष्टि तासु की परी । तव तब बुद्धि तासु की हरी ॥१५५॥
तव तव तैसउ लिखिउ स्वरूपा । वाथइ पुहमि न और अनूपा । ३२३

(रामदेव द्वारा छिताई को लिए वर खोजने के लिए ब्राह्मण भेजना और उसके द्वारा द्वारसमुद्र के राजकुमार समरसिंह से सगाई करना)

ग्रेह प्रतिष्ठा कीन्ही तिसी । ब्रम्हा वेद कही ही जिसी ॥१५६॥ ३२४

---

१ चित्र । २ क मंद । ३ सघर । ४ जानि । ५ लहीइ परइ प्रियागह कंध । ६ क सशि । ७ रहो तन मन ति तिहां लगाइ । ८ जीवत ।

२८५ जेते पंडित चतुर सुजाना । ग्रेह[1] आइ देखइ दिन माना ।
एक दिवस की कही न जाई । छते छिताई उभकी आई ॥१३७॥
दामिनि जिउं सुंदर सुकड[2] गई । देख चितेरहि मूरछा भई ।
रहिउ चितेरो चित्त लगाई । बहुरि न कबहूं उभिकी आई ॥१३८॥
जब जब सूंनौ होइ आवासा । तब तब देखि जाइ रगवासा[3] ।
२९० ऽएक दिवस की कही न जाई । विरह बिथा उमगी बहु भाई॥ १३९॥
ऽएकहि दिवस छिताई नारी । वीन बजावइ ग्रेह मझारी ।
२९२ [4]काम विथा तन खरी उदासा । आई देखन चित्र आवासा ॥१४०॥

(छिताई द्वारा चितेरे के बनाए हुए चित्र देखना)

२९३ ठोकति वीना निरखति नारी । रचि रचि राग सवारति सारी ।
गजगति चलइ मंद[5] मुसकाई । सखी पांच दस संगि लगाई ॥१४१॥
देखन चली चित्र की सारा । लिखिउ चित्र तहं विविध प्रकारा ।
लिखत चितेरौ दीन्हे पीठा । सुनिउं भुनक[6] तहं फेरी दीठा ॥१४२॥
रहिउं छिताई कउ मुह जोई । यह मानस[7] कइ अपछर होई ।
लागिउ चित्रु चित्तु होइ तइसो । जनु ठगु घालि ठगौरी जइसो ॥१४३॥
देखति चित्र फिरइ चहुंपासा । वीन सबद रस श्रवन उदासा[8] ।
३०० देखइ चित्र कोकु जहं कीन्हा । कामु कथा जो देखइ लीन्हा ॥१४४॥
आसन चित्रे विविध प्रकारा । सुभजे परी तरंगि रस सारा ।
आसन देखति खरी लजाई । आंचर मुंह मूंदै मुसकाई ॥१४५॥
सखिन्ह दिखावइ बांह पसारी । कहा आहि यहु कहउ विचारी ।
३०४ देखिउ चित्र सु भुज[9] विपरीता । चलहि भर्मु भागे भइभीता ॥१४६॥

---

१ गहि । २ दुरि । ३ तब देखनि आवई निवास । ४ ख में यह पंक्ति २९३ के पश्चात है । ५ मदन । ६ नेवर । ७ रंभा । ८ निवास । ९ सुरत ।

(समरसिंह की बरात का आगमन तथा विवाह)

चौपाई

करी साकती सौंजु संजोई । सुनि बिवाहु आयो सब कोई । ३४५
नाना राइ जुरे सय साती । चलिउ सउंरसी वनी बराती ॥१६६॥
अहिनिशि चले अतिरघन भए । दिवगिरि दुग्र विवाहन गए ।
करि आगौनी भयो आचारू । जइसइं दुहू वंसु विउहारू ॥१६७॥
मंडपु मइं मंडी सकलाती । तिह वइठी सभ जिती बराती ।
परजा लोगु नगर जे दोजा । दीजहि गारी ठइकइ चोजा ॥१६८॥ ३५०
कोकिला जिउं रागहि जे नारी । सुधा समान सुनावहि गारी ।
तिन्ह कौ वचन सुनति मनु हरियौ । भोजन स्वादु जीभ परिहरियो ॥१६९॥
छह रस सुनति जेई जिउं नारा[1]। भयो विग्राहु सुभ मंगल चारा ।
व्याहु राति जागी कामिनी । घूंघट घूमहि गज गामिनी ॥१७०॥
एक ते नारी मुरवहि नैना । गरे खांचकइ[2] बोलहि वैना ।
लटि मेले जे लटकिति फिरही । जोबन मदुमाती जिउं गिरिही ॥१७१॥
एकते खांम्ह गहे ऐंडाहीं[3] । जागी राति[4] ते खरी जंभाही ।
आए देश देश के राई । तिन्हहि दिखायो चित्र बुलाई ॥१७२॥
रीझ चित्रु मनु रहे नरेशा । समुदे आपुआपुने देसा ।
दयो दाइज्यो रामु भुवाला[5] । हीरा जरति[6] पिरोजा लाला ॥१७३॥ ३६०
दीन्ही मगिछइ दुरजन चूनी । जे निरमोलक जाइ न गुनी ।
गज मोती दइ हीरा हेमा । रहिउ रंगु अति वाढिउ प्रेमा ॥१७४॥
दासी दीन्ही सहसु सिंगारी[7] । गज सिंघली आहि ते नारी ।
भगवान नरायन तिह ठां थाना । दीन्हौ कर ते करन समाना ॥१७५॥ ३६४

---

१ जीवन वार । २ खोखरइ । ३ उडाहीं । ४ ज्वानि । ५ दीओ राउ रामुदेव दे भूयाल भुयाल । ६ पांच पांच । ७ यह चरण ख प्रति में नहीं है ।

३२५ भए समागर घर के कामा। विप्र हकारे राजा रामा।
बाला के मंगलफल[1] लेहू। तुम वर शोधि छिताई देहू ॥१५७॥
फिरिहू देश दिशंतर जाई। लाइक कउ वरु कहीयहु आई।
क्रिया कर्म वहु विद्या पढियो। दुहिता थहं जु कछू दिन वढीयो[2] ॥१५८॥
पुरिषा गति रसु जानंहु जहां। निहचइ कंन्या दीजहु तहां।
३३० व्याहु वैरी मित्रई प्रवानू। ए तीनउं चहीयइ समानू ॥१५९॥
चले विप्र आशिषु दय राई। ढोरसमुद्र गढ़ पहुते जाई।
पच्छिम दिशि अति उत्तिम ठाउं[3]। भगवान नरायन तिहि ठां राउ ॥१६०॥
ताकउ सुत सउंरसी सुजाना। मुद्रावंत सो मदन प्रवाना।
भानइ मुहिगिरि[4] फेरै नाला। वन्यो शरीर से द्रिढहि रिसाला ॥१६१॥
लागहि खंभुमाल वहु गुनी। वौलइ सुजसु तास कौ दुनी।
सव गुन राजनीत व्यौपराई। पर अस्त्री[5] पर दिष्ट न धरई ॥१६२॥
करि विसठारइ वाति चलाई। कंन्या दई सउंरसिह जाई।
कीयो तिलक लिखि लगन प्रमाना। आए प्रोहिति दिवगिरि थाना॥१६३॥
[6]कहिउ राइ सिउं कन्या दई। तवहीं सउंज वियाह की भई ॥१६४॥

वस्तु बंधु

३४० बूझि नरनाहु बूझि नरनाहु ते करहु विवाहु ॥
मंत्रिन्ह आपु बुलाइ कइ,
हेमु गढ़वहु रतन जरावहु, जइसौ करनहु जाई ॥
पाट पटंवर कुंजर घोरे, राखहु सौंजु संजोई ॥
३४४ पुस्ती नामो और मुसवर, देति विलंवु न होई ॥१६५॥[7]

---

१ नारिकेर पुंगीफल। २ रोहित तै दौनै दिन चढौ। ३ यह चरण ख प्रति में नहीं है। ४ मुदगर। ५ तीआ। ६ ख प्रति में यह अर्धाली निम्नलिखित रूप में है: "कही बात राजा सूं जाई। कन्या दई सुंरसो जाई ॥" ७ क प्रति में यहां छंद संख्या १६६ पड़ी है और ख प्रति में इसकी छंद संख्या १५३ डाली गई है। क प्रति में वास्तव में १६३ छंद ही होते हैं क्योंकि दो स्थान पर एक एक अर्धाली पर फालतू छंद संख्या मिलती है।

कंठ सुकंठ सिरी सोहंती । छूटि छूटी मोतिन्ह की पंती । ३८३
कुच कठोर जोवन वर चढे । जनु सर संधि जूझि नृप चढे ॥१८५॥
सुवन सुढारति कंचन कुंभा[1] । श्री फल से उपजे रस जंभा ।
रहे ते कुच कंचुकी उचाई । मदन गूँडरी बनी तनाई ॥१८६॥
गहिरि नाभि बखानइं कउनू । जानहु काम सरोवर भौनू ।
वाहइं जानि कुपउ[2]के नाला । ।। लगाए मिहदी लाल।[3] ॥१८७॥
नखु राख्यो वांई आंगुरी । सोहइ जानि कुंद[4] की करी ।
मध्य लंकु जन[5] वर रस माना । कुच भर टूटइ कौन नियाना ॥१८८॥ ३९०
त्रिवली सूछम रोम सुभाउ । कुचनि खंभु जनु दीयो सहाउ ।
कटि मेखला हइ खरे सुठाना । मानहु कामिनि तनी निसाना ॥१८९॥
जुगल जंघ कदली विपरीता । कुंकुम वरन पिंडुरी पीता ।
गरुव नितंब सो गज गामिनी । मूरछहि और देखि कामिनी ॥१९०॥
चरन अंगुरी नख की जोती । मानहु समुद सीप के मोती ।
सुंदरि जानिह संचइ सची[6] । चितु धरि चित्रगुपति सो रची ॥१९१॥
पहिरिउ अंग कसुंभौ[7] चीरा । गौर वरन सोवरन सरीरा ।
ऽ और रूप ताके को जनइ । भनिउं गुरू पहिं सुनिउ पुरानइ ॥१९२॥
एक एक आभरन उतारी । दयो छिताई ऊपरि वारी । ३९९

(सुहागरात)

गतु वासुर रजनीकर उयो । पउढन सेज सउंरसी गयो ॥१९३॥ ४००
मन दस वीस अबीर बिछाई । तापरि पलिका धरिउ बनाई ।
जानउं[8] कौनि सुगंधनि आई । मेदु अरिगजा औ रजिवाई ॥१९४॥ ४०२

---

१ खंभ । २ नलिनी । ३ राजहंस मधुरी लाल । ४ कुकुंद काकरी । ५ खीनता । ६ क कु कैसे । ७ दछन कौ । ८ पंक्ति क्रमांक ४०२ का पाठ ख में भिन्न है, तथा इसके पश्चात एक पंक्ति और है । ये दोनों अर्धालियां ख में निम्न रूप में हैं:—

(छिताई सहित बरात का द्वारसमुद्र लौटना)

३६५ चलिउ व्याहु कइ भयो अनंदू । ढोरसमुद्र गढ गयो नरिंदू ।
जवहि पालकी भीतरि गई । उतरिन छींक छिताइहि भई ॥१७६॥
रानी रही मोहि मुह जोई । यह रंभा[1] कि अपछर होई ।
तव आरति करइ कामिनी । देखि रूप मोही भामिनी ॥१७७॥

सिंगार छिताई कौ[2]

कुटिल केश ता[3] सोहहि वाला । कुच कठोर गति मधुर मराला ।
३७० मोतिन्ह मागु मदन की वाटा । रजनीकर समु तिलकु लिलाटा ॥१७८॥
सरद सोभती मदन प्रगासा । मदन चापु[4] सम भौं हइ तासा ।
मृग सावक सम सोहहि लोला । ओप्यौ कंचन इसउ कपोला[5] ॥१७९॥
वूकी हेम जनु अमृत सानी । नाकु कीर रसु कीन्हा वानी ।
रतन जरत तरिका तिह ताका । मनहु[6] मदन के रथ के चाका ॥१८०॥
भौंर[7] पंच अरु खुटी अनूपा । मानहु छत्र धरिउ सिरि भूपा ।
नाक नकफूली रतन जराई । रहिउ मीन[8] जनु वनसी लाई ॥१८१॥
[9] फुलिउ तिल देखिउ जल हीना । चितइ देखि जनु वेध्यो मीना ।
तिल कपोल पर विधना दीयो । मानहु काम चिन्ह कइ गयो ॥१८२॥
सुधा समान ते कीन्ह आधारा । जानि कुलाल पवारी धारा ।
३८० हीरा जोति दसन दरसाउ । कछूवक दारिउं वीजन्ह भाउ ॥१८३॥
ठोढी लीला सोहै वाला । जनु केसरि महं परिउ जंगाला ।
३८३ ग्रीव रेख संखु सम[10] तीना । आपुन ते विरंचि रचि[11] कीना ॥१८४॥

---

१ मानस । २ ख प्रति में यह शीर्षक दिया गया है । ३ सिर । ४ क चाकु । ५ ख में इसके आगे एक अर्धाली निम्नलिखित है :— धन धन तेरी ए आखि । भरी ही जाके जिउ की साखि ॥ ६ क में मनहु के पहले क लगा हुआ है जो निरर्थक है । ७ भूह । ८ क मैन । ९ जाने सुतौ रसिक परवीन । चिहइ चित्र जनु वेध्यो मीन ॥ १० क ग्रीव शंकु रेखा शम । ११ क विच्र चमचो ।

जिउं चकोर चंदहि[1]मनि गहिउ। तिउं निशि दूवहु प्रेम रंगु[2]रहिउ। ४२३
[3]कोकिल वयन कोगु गुन गुनी। कछूवक विधि सखियह्नि पहि सुनी ॥२०५॥
दोउ चतुर सुरति रसु रंगा। वहुतंइ उकति उपजावइ अंगा।
जइसउ कोकु काम गुन रंगा। जहां वार तिथि अंगु अनंगा ॥२०६॥
तइसइं चतुर कामिनी रवइ। छुवतिह अंग छिताई द्रवई।
रहे ते अंगु प्रेम लपटाई। खिनुकु मांहि निशि गई विहाई ॥२०७॥
रहति सेज सुख सब विश्रामा। दिवगिर वोले राजा रामा। ४२९

(समरसिंह और छिताई का देवगिरि लौटना तथा समरसिंह
का मृगया में अनुरक्त होना)

भगवान नरायन तिह नरनाथा। समुदिउ कटकु सउं रासी साथा ॥२०८॥ ४३०
चढि चउडोल छिताई लई। दिविगिरि दुर्ग्र रामु कें गई।
दीन्हे नौतन महल ठलाई। उतिरिउ तहां सउंरसी जाई ॥२०९॥
5 कवियनु कहइ नरायनदासा। दोऊ रहइ सुख सेज आवासा।
नित नवरंग आखारे होई। नट नाटक आवइ[4] सब कोई ॥२१०॥
सिघल धीय अधिक सुंदरी। उकति सील ते राखइ खरी।
सुघ अंगु देशी वहु रूपा। उकति नाच ते करहि अनूपा[5] ॥२११॥
निति[6]सउंरसी अहेरे फिरई। वरजि रहे पइ[7]कहिउ न करई।
वागुर रोपइ हिरन खिदाई। लीयइ कापर कोट वधाई ॥२१२॥
सव दिन वधइ वराहु निदारू। मारि मृगनि को करइ संघारू।
[1]कवहूं साथ छिताई जाई। गहै हरन कर घंट वजाई ॥२१३॥ ४४०

---

१ कई। २ तनौ मन हरई। ३ ख प्रति में ४२४-४२८ पंक्तियों का क्रम वदला हुआ है। ४ नाटीय। ५ पंक्ति ४३६ के पश्चात ख में दो अर्धालियाँ हैं : कंठ सुरंग कोकिल सम बानि। तंति पखापज ताल समान॥ रंग राग देसी नित दौज। कूर कपूर अवीर सुखोज॥ ६ दिन। ७ 'रहे पइ' के स्थान पर 'मंत्री'।

४०३ मलयागिरि मिलि केसरि घसी। छीटिउ महल जहां सउंरसी।
चोखउ चोवा मिश्रित मेदू । कहिउ न जाइ तासु[1]रस भेदू ॥१९५॥
अधिक सुवासु तेल ते लीयो। तिहां छंछारिउ जारिउ दीयो।
मेलि अरिगजा कीयो अनूपा। खेयो महल दखिनी धूपा ॥१९६॥
बीरा धरिकइ गयो खवासू। चलिहु छिताइ पिय के पासू।
आगू पाछ सुंदरि दस भई। पकरे तांहि सेज लइ गई ॥१९७॥
ठाढी होइ कइ रही लजाई। जइसे प्रथम रयनि के भाई।
४१० रहिउ सउंरसी वइन लगाई[2]। गई ते मंदिर महि पहुचाई ॥१९८॥
मदन बान जव[3]जाइ न सहिउ। विहसि सौरसी अंचल गहिउ।
छोरति कर कंचुकी लजाई। फूंके दिष्टन दीया बुझाई ॥१९९॥
भयो मिलापु[4]मुख कंपी देहा। चलेउ प्रसेदु ते जुरति सनेहा।
अधर पान[5]करि कुच गहि लेई। छुवन न अंग छिताई देई ॥२००॥
घूंघट वदन तरहंडौं कीयो। दोऊ हाथ लाइ उरि लीयो।
कठिन गांठि सो विधि जे दीनी[6]। छोरिन्हि तवहिं सउंरसी लीनी॥२०१॥
नना नामु तिरी[7] उचरई। तव चित चउंप चौगुनी[8] करई।
रहे ते दोनो संगु लपटाई[9]। संकइ सकुच न बीरी खाई ॥२०२॥
चतुरन सोहइ देखइ नैना[10]। हरुवे वोलइ मधुरे वयना।
४२० करइ[11]दिष्ट दीपक उंन जाई[12]। फिरी सखी ते सव वहुराई ॥२०३॥
अइसउ वचन छिताई कहिउ। मानहु प्रेम सुरति रस लहिउ।
४२२ सुंदरि मधुर सुनावइ सादू। अति सुख भयो मनहि अहिलादू ॥२०४॥

कस्तूरी कूकमा कपूर। गवरा अगर वास को मूर॥
जाने कुं अन सुगंधन आदि। साख तरपती मेद ज बाध॥

१ वास। २ यह चरण ख में नहीं है। ३ तन। ४ बिमान। ५ प्रकार। ६ द्रिढ विधना दइ। ७ नारि। ८ चत्रगनी। ९ तथा १०—ये चरण ख में नहीं हैं। ११ दुरि। १२ मंदी आउ।

राजा भरथरी उवाच

वस्तु बंधु

कहइ जोगी, कहइ जोगी, सुनहि रे मूढ़। ४५६
तोहि वुद्धि विधना हरी, करसि पाप वन जीव मारहि[1]।
जन भूलि मूरख चेत चित महि, वन खंडहि जीव न मारही ॥
चउरासी लख जीव हहिं जे, पर जीउ आप समान।
अइसा पदु जोगी भनइ, सुनि हो मुरख अयान ॥२२२॥ ४६०

चौपाई

पर जीउ आपुन एक समाना। यह हइ मूल धर्म कउ ठाना।
सुनि सौरसी न करई कहियो। उतरि तुरी सइं हिरना वहियो ॥२२३॥
तवहिं भरथरी लियो छंडाई। दीन्हौ ताहि सरापु रिसाई।
मेरौ वचन मेटीउ अवसा। तो धन परई[2] पराए वसा ॥२२४॥
निफुल न होइ सिध्य कउ भाई। सकुचि सचिंत भयो सुनि राई।
भूलौ भवंति फिरइ उजारी। चाहइ बाटि छिताई नारी ॥२२५॥
कीयौ सिंगारु सेज कउ साजा। रहिउ नाह वाहरि निसि आजा।
उझकि झरोखा लेइ उसासा। विषु चंदन चंदा कउ वासा ॥२२६॥
वनु महि वसिउ राउ सौरसी। तपत होइ देखइ तनु ससी।
करहि सखी सीरे उपचारा। होहि ते सबइ अगनि की झारा ॥२२७॥ ४७०
दूजे दिवस भानु आंथयो। दुचितौ हीं घर सउंरसी गयो।
रही छिताई निसि कुमिलाई। गाढ आलिंगन कीयो आधाई[3] ॥२२८॥ ४७२

---

१ क प्रति में इसके आगे पाठ है "भलो वुरो चीन्हइ नहीं, चित चेत मूरख अजान तू, मन मांहि की न विचारहि।" इससे वस्तु छंद भ्रष्ट हो जाता है। ख प्रति के सभी वस्तु छंद अशुद्ध लिखे गये हैं। उसके प्रति-लिपिकार को इस छंद का ज्ञान नहीं था, अतः उसके पाठ से इस छंद का पाठ ठीक करना संभव नहीं है। उस टेढ़ पंक्ति को निकाल देने से छंद भी ठीक हो जाता है और अर्थ भी। २ क परौ। ३ ख में यह पंक्ति निम्न रूप में है: 'निसि आलिंगन कीधउ धाइ। गाढी भीड़ रही पछिताइ।"

४४१ वरजइ रासुदेव नरनाहू । तुम्ह जनि कुंवर अहेरे जाहू ।
मृगया दसरथ गो वलवंडू । मृगया मूवौ जे राजा पडू[1] ॥२१४॥
४४३ कहहि सयाने दिनि समुझाई । मृगया वहुति विगूचे राई ।

(समरसिंह को योगी भरथरी द्वारा शाप)

४४४ एकहि दिवसि ते फिरत अखेटा । भई आंथएं मृग सिउं भेटा ॥२१५॥
देखि ताहि सिउ ताजन[2] मेलिउ । भागिउ हिरना चमकी चलिउ ।
भयो सउंरसी साथि पिछाई । सब निसि फिरिउ ताहि गुहनाई ॥२१६॥
[3]भागौ मृग गयो गति गाह । राउ पिछंडइ हाक्यो जाइ ।
राइ भरथरी जहा निवासा । थकि थकि मृग तह लेइ उसासा ॥२१७॥
सिध समाधि रहिउ चितलाई । हाकिउ हिरन सउंरसी जाई[4]।
४५० जोगी जागि कहिउ इउं वइना । कहा गुन हकय आयो हिरना ॥२१८॥
जौ गुनहीं आसमु मोहि गहई । वांचहि संतु सिध्य इउं कहई ।
ए त्रिनु चरहि वसइ उदाना । विनु अपराधहि वधइ अयाना ॥२१६॥
सुनि जोगी जंपइ सउंरसी । मरन वुद्धि तेरे जीय वसी ।
आपहि हिरन जीयति गहि मोही । मृगु वदले वधि चलिहउं तोही ॥२२०॥
४५५ कहइ राउ भरथरीय विचारी । मृग न देउं सिरि मेरे सारी[5] ॥२२१॥

---

१ पंक्ति ४४२ के चरण ख में परस्पर स्थानांतरित हैं तथा इस पंक्ति के पश्चात ख में निम्न अर्धाली और है जो क में नहीं है "मृगया राइ बहुत दुख सहइ । मृगया दसरथ दुख तन रह्यौ ॥" २ तुरी । ३ पंक्ति ४४७ ख प्रति से ली गई है । क प्रति में यह अर्धाली निम्न रूप में है "जहां राइ भरथरी निवासा । हिरन भाग गयो राजा पासा ।" प्रसंग को देखते हुए क प्रति की यह पंक्ति व्यर्थ ज्ञात होती है । ४ पंक्ति ४४६ के पश्चात ख में एक अर्धाली और है जिसमें पहली अर्धाली का भाव ही दुहराया गया है । वह गलत है । ५ ख में ४५५ के पश्चात एक पंक्ति और है : "इउ रे अवस जीव मारौ जाइ । तू इन मारन पाछौ जाइ ॥"

(चित्रकार द्वारा अलाउद्दीन को देवगिरि से भेजी गई भेंटें सौंपना)

सीसु नाई तिहं कीयो[1] सलामू। अबहि नाहि कहिवे कउ कामू[2]। ४८७
यहु जे[3] सौजु दिविगिरि की आही। सौंपी जामदार कउं साही ॥२३६॥
कहइ अलावदीन इउं भूपा। यहु दिविगिरि कपूर अनूपा[4]।
ताकी आगुर दस की षरसा। देखि ताहि रीझी सव परसा ॥२३७॥ ४९०
दिविगिरि तनी दासी दुइ आही। हसी एक सुरतानहि चाही[5]।
ह ति[6] परी सुलतानहि दीठी। सकुचि हीए[7] तिनि फेरी पीठी ॥२३८॥
तव पूछी सुलतान वुलाई। तुम क्या हसी सु कहु समुझाई।
दासी कहइ सुनहि[8] सुलताना। इह भौ[9] मूरख लोग अयाना ॥२३९॥
तुम्ह रीझे यह[10] देखि कपूरा। रानिन्ह[11] के गहने को चूरा।
जिसउ[12] कपूर रामदिउ खाई। ता रसु भेदु कहिउं नहि[13] जाई[14] ॥२४०॥
चितइ चितेरे तन सुलिताना। तव तिह साखि भरी दय काना[15]।
पातिसाहि जीय रहिउ[16] विचारी। वहुराई सब सभा जुहारी[17] ॥२४१॥
आपुन साथि चितेरौ लीयो। तव उठी गयर[18] महल महिं गइयौ।
जिसौ छिताई कउ व्योहारू। लाग्यो दुष्ट करन[19] विस्तारू ॥२४२॥ ५००

---

१ ख अनु लै उसासु तिण करी। २ ख 'मइ सइ हथि काढे अंगार। नयन ते हर्न अ जग्गो छारु।' ग 'सैहथ काढि लीयो अंगारा। नैन तेह तनु जरि भौ छारा। ३ ख जुतौ, ग जिती। ४ कहइ अलाबदीनु सुरितानु। ईहु कपूर अति फरस समानु। ५ ख हसी त उपरि उच्यौ चाहि, ग रही उपरा उपर चाहि। ६ ग तहां। ७ ग संकि सकुचि। ख में यह चरण तथा आगे की अर्धाली का पहला चरण नहीं है और उसका दूसरा चरण 'तुम्हि क्या हसी कहौ किन धीठ' है। ८ ग सुनौ। ९ ख तथा ग भूमि। १० ग या। ११ ख रानी। १२ ख जेतौ, ग जुतौ। १३ ख ताकी उपम कही, ग ताकी महिमा वरणी न १४ ख में एक अर्धाली इसके आगे और है 'एतो कहत साहि परिजरयौ। रोस अग्नि इति उत फिर्यौ। १५ ग तिहि थान। १६ ख तिह रह्यो। १७ ग बहुरि सभा सब कियौ जुहार। १८ ख तथा ग गैर। १९ ख कहन।

(चित्रकार की देवगिरि से विदाई और उसका दिल्ली लौटना)

४७३ अति सनेहु[1] तें होइ बियोगू । अधिक भोग तें बाढइ रोगू ।
अति हांसी तइं होइ विगारा । जिउं कइंरौ पांडव बिउहारा ॥२२६॥
अति स्वरूप सीता कउ हरना । अधिक विपइ रावन कउ मरना ।
ऽ अधिक दान बलि गयो पतारा । अधिक न कछू भलौ संसारा ॥२३०॥
तिउं सउं रसी अधिक सुख राउ । सुनहु चितेरौ करइ उगाउ ।
ऽX [2]सब देखी दिवगिरि की वाता । गुदरइ पातिसाहि पहि जाता ॥२३१॥
दिविगिरि नाथ रामुदेउ राई । समुदि चितेरहि दई कवाई ।
४८० बरसइ चारि चितेरौ रहिउ । पुनि बाहुरि ढीली सामुहिउ ॥२३२॥
दीन्ह भेंट नृप रामु भुवाला । भीमसेन कर्पूर रिसाला ।
बहुति रतन निरमोलिक जरे । हयवर कापर[3] आंगू धरे[4] ॥२३३॥
कहु रे[5] दिवगिरि तनी कइफीती । रामुदेव[6] राजा कइ रीती ।
बूझइ ढीली कउ नरनाहू । कहू वे कइसइ भयो वियाहू ॥२३४॥
अरु मुखि देखि कहइ सुलिताना । तुझहि भई जेहमति कछू जाना[7] ।
४८६ऽ गइयो नयन वदन कुमिलाई । भयौ दुखारौ दिविगिरि जाई[8] ॥२३५॥

---

१ इस स्थल से ग प्रति का पाठ प्रारम्भ होता है । उसमें इस छंद की क्रमांक संख्या २२५ है । इस छंद की ख प्रति में क्रमांक संख्या २२२ डाली है । क प्रति में २२६ क्रमांक संख्या पड़ी है । २ जो पंक्तियां ख प्रति में नहीं हैं उनके आगे हमने अन्त तक ऽ चिह्न लगाया है । ग प्रति में जो पंक्तियाँ नहीं है उनके पहले X चिन्ह लगाया गया है । जो पंक्ति ख तथा ग दोनों ही प्रतियों में नहीं है उनके पहले ऽX चिन्ह लगाए गये हैं । ३ ख हेमत वक करि । ग लै हैवति के । ४ ख में इस अर्धाली के चरण स्थानान्तरित हैं और इसके आगे निम्न पंक्तियाँ और हैं : हाथी गज सिंघलि दरिआइ । तेजी तुरत दिए सुरंगाइ ॥ सुरंग चकोर नुवटा सार । जे दखणी बस्त विवहार ॥ करि सलाम ठाढौ हुइ रह्यो । पाति साहि तहां पूछ्उ ॥ ५ ख तथा ग कहिवे । ६ ख तथा ग खूबै खैरीत । ७ ख में ४८४ तथा ४८५ पंक्तियां स्थानांतरित हैं । ८ ख में यह अर्धाली नहीं है और ग में निम्न रूप में है 'मुंह दूबरौ गयो कुम्हिलाइ । कीयौ दूबरौ देवगिरि राइ ।

(अलाउद्दीन का देवगिरि पर आक्रमण)

ऽ बोली उमरन्ह सिउं इउं कहियो। हउ दिविगिरि चाहउं विग्रहियो। ५१९
ऽ धावहु साजि अचानकि धारी। ल्यावहु जीयति छिताई नारी ॥२५२॥ ५२०
देस देस पठयो फुरमाना। सजि आए सब उमरे[1] खांना[2]।
ऽX करि सलामु सब ठाढे होही। आपहिं साहि छिताई तोही ॥२५३॥
ऽX ता दल संख्या कहउं प्रवाना। विहसउ अलावदीन सुलिताना॥२५४॥

वस्तु बंधु

ऽ चलिउ सुलतान, चलिउ सुलितान, करवि अति कोह[3]॥
ऽ वोलि खान उमराउ सब, हय हाथी दे शयल[4] वांटी।
ऽ लहवर लाख[5] बुलाइ तब कहिउ बाटि काटीयहु घाटी[6]॥
ऽ वन बांके वेहड़ खनहु, फते देइ खुदाई[7]।
ऽ चलिउ साहि अलावदी, चढि[8] नीसान बजाई ॥२५५॥ ५२८

(तुर्क सेना का देवगिरि पहुँचना)

छंदु रूप

ऽ चलियउ[9] नीसाना करत[10] पयाना, जुरे[11] उमरा खांना। ५२९
ऽ ते तुरीय[12] पलानइ कवन वखानइ, सवदु न सुनीयइ[13] कांनइं॥ ५३०
खिलची जु[14] खुरेसी, राकस भेसी अरु लोदी लंगाह[15]।
खरे[16] जुलवानी, ईसफखानी[17], सूरे सयन अथाह॥ ५३२

---

१ ख आए सवे ऊबरे, ग उम्मरा। २ पंक्ति ५२१ के पश्चात ग में एक अर्धाली और हैं "दलु चतुरंगु मिल्यो अति आइ। अगनित सेनु न बरन्यौ जाइ॥" इसके आगे 'चल्यौ सुलितान' वस्तुबंध छंद है, पंक्ति ५२३ तथा ५२४ ख तथा ग दोनों में ही नहीं हैं। ३ ग रोस। ४ ग सिलह। ५ ग हल कलखु। ६ ग कहे घाट औघट संवारण। ७ ग वन वेहड औघट सकल सौंसर करहु खुदाइ। ८ ग छतिस। ९ ग वज्जि। १० ग हुव। ११ ग सजे। १२ ग बहुसेन। १३ ग सुनि जै। १४ ग जुर। १५ ग लोदी अरु लंगाह। १६ ख जुर, ग जुरि। १७ ग जाति खुमानी।

५०१ यहु रे नीच कउ आहि सभाऊ[1]। रचि रचि बुरी कहइ करि[2]चाउ।
तइसउ चारु जानीहू[3] बुरौ। जइसउ स्वान सयानो खरौ[4] ॥२४३॥
जतनन[5] भांड़े धरहु उतारी। वस्तु खाई तामह की झारी।
अपुनौ काजु बुद्धि कइ करई। वाहुरि भांडे धरइ न परइ ॥२४४॥
कहौ ते लावन लाख लगाई। एक जीभ किउं वरनिउं जाई।
५०५ जइसौ हो ता तनौ चरित्रा। कागदु काढि दिखायो चित्रा ॥२४५॥

(छिताई का चित्र देख कर सुल्तान का कामासक्त होना)

५०६ देखति चित्र वान जस लागू। देखि चित्र वाढौ अनुरागू।
देखि ते चित्रहिं मूरछागत भई। मानहु सो उठि आगें ते गई ॥२४६॥
डरि परि चित्र धरिउ सुलितान। पानी पीइ न खाई खाना।
५१० श्रवन सादु रस मरहि कुरंगा। नयन नेह जिम जरहि पतंगा[6] ॥२४७॥
हस्ती सुरति रंगु रस खीना। रसना रसु ते वधावहि मीना।
परमल प्रान भउंर परिहरउ। तिया इसनेही निज मनु मरीउ[7]॥२४८॥
मरहि एकेंद्री लगि जे सांचा। नरु किउं जीवइ व्यापइ पांचा।
हयवति[8]हरमु हेंदुनी[9]जाती। तासिउं चित्त वसइ दिन राती ॥२४९॥
तंखिन[10]चित्र दिखाए तासू। देखि रूप सो लेइ उसासू।
हयवति हरमु कहइ करि भाउ। जीयति छिताई मोहि दिखाउ ॥२५०॥
छलि वलि बुद्धि कपट कइ जाही[11]। अव लइ आउ छिताई साही*।
५१८ जवहि चितेरे चित्र दिखाई। विरह विथा तन वियापी आई ॥२५१॥

---

१ ख इहरे नीच को सरीर। २ ग त्यौं। ३ ख तथा ग जानिौ जै। ४ ग इसकी अर्धाली के चरण स्थानांतरित हैं। ५ क जतमन। ६ ग पर जरै अनंग। ७ ख कहा सु नर निज नेही करै, ग नर वापुरौ कहा धौं करै। ८ ख हैंवति, ग हइमति। ९ ख हिंदुनी, ग हयंदुनी। १० क दोउ। ११ ग जाहि।

* क प्रति में यहां छंद संख्या २५२ पड़ी हुई है। इस प्रति में इसके आगे छंद संख्या नहीं डाली गई है।

सुलतानी बांदिन कइ खैली[1]। फौजइ गई देस महि फैली[2]। ५४६
वसति नगर पुरु उत्तिम थाना[3]। खोद खेत कीन्हे मइदाना[4] ॥२६०॥
मारहिं तुरक भीत सिउं भीती। ढहहि देहुरे करहि मसीती।
फइलिउ कटक देश महि जाई। तब सुधि लही रामुदिव राई ॥२६१॥
तब बुलाइ[5] पीथा[7] परिगहिउ[8]। तासिउं कोपि[9] रामुदेव कहिउ। ५५०
कउनइ मइंडीसा आहि नरेसा। जो रे उजारहि हमारौ देसा[10] ॥२६२॥
SX दखिन राजु न मो समु आही। ढीली क्रिपा करइ मो साही।
तब देखन पठयो दउरहा। चहु दिसि[11] धूंवा देस महि कहा ॥२६३॥
गए जासूस बात सब लेना[12]। तब देखिउ तुरकन कउ सइना[13]।
SX कटक मांझ घेरा जउ सुनिउ। सोइ वचन राइ सिउं भनिउ ॥२६४॥
कहिउ राइ सिउं सब विउहारा। कटकहि नाही वारापारा।
जब दिविगरि देखी सुलिताना। बजवाए गहिरे नीसाना ॥२६५॥
चाकौ बांधि चलिउ चढि चाई। लागी लागि वाजनइ कु घाई। ५५८

---

१ ख सुलतान वदन की खेलि, ग सुलतानी बंदनि की खैलि। २ ख तथा ग प्रति में पंक्ति संख्या ५४७ पंक्ति संख्या ५४६ के पहले हैं। ३ ख कूकरा उडान। ४ ख तथा ग खेह। ५ ख तथा ग सुलितान। ६ ख तब बोल्यो, ग बुलवायो। ७ ख पीपो, ग पीपा। ८ ख तथा ग परगही। ९ ख तथा ग बात। १० ख कुण विदारइ हमारो देस। ऐसो मांडीया कुन नरेस, ग इसौ भिडैया निपट नरेस। रहै न सुचित लाग्यो जा देस। ११ ख देखइ, ग चहूंधा। १२ ख गए बाबसू तब सुधि लेण, ग गये दौरहा बाबसू लैन। १३ पंक्ति ५५४ के पश्चात ख तथा ग प्रतियों में एक अर्धाली और है: 'चितवइ चित धर दिष्ट पसारि। मनह सेत सरि छंडी पारि।'

५३३ वलच वलोरी[1] वावर गोरी, अरु तरगंडी तुंगा[2] ।
ऽ पुरुष सुनामी स्वामितु कामी, मन रुप जूझहि लोगा ॥
नउहानी सरवानी साजे, किररानी कर पोचा ।
ऽ× अंग दवइतर मोची लाहौरी, मूछउरीपविजाता ॥
ऽ× पठान तिरानी सुंदर सइदानी, कंबो मसवानी जाता ।
मिले खुरुमली प्याजी न्याजी फउजें साजी नउहा नीदय पोचा[3] ॥२५६॥

चौपाई

ऽ महा मलेछ निरदई पोचा । चले ते वंवर वरी[4] वलोचा ।
५४० उलूखान ढिली दलु रहिउ । आपुन पातसाह सामुहिउ ॥२५७॥
मुह राते मोटे गरदना । मुंडले मूंड कवाएं कना[5] ।
डाढी मूंछन राते वारा । मुगल जाति दल साठि हजारा ॥
पंच पंच मन की हाथन गुरजा । ढोवा चढे[6] गिरावति[7] बुरजा ॥२५८
पातिसाह की जिती पलाना । वाढे कथा जु करउं[8] वखाना ।
५४५ दिन दल कूच चलइ ठकुराई[9] । छठे मास दिवगिरि ढिग[10] जाई[11] २५९

---

१ ख बालक बोरी, ग वलक वलोची । २ ख अर तर गंडी तोंग, ग औ रन रंगी तोग । ३ ख तथा ग दोनों प्रतियों का तुर्की सेना सम्ब-न्धी पाठ अव्यवस्थित है, ख का तो अत्यन्त भ्रष्ट है । पाठ भेद के स्थान पर यहाँ आगे की पंक्तियाँ उद्धृत करना उपयोगी होगा : ख नोहानी कंबो वसबानी घरे घुरमली वलोच । न्याजी पाजी फौजइ साजी महा निरदई पोच ॥; ग राखस नामी स्वामिति कामी रणरूपि जूझहि लोग ॥२५३॥ किरराणी नौहानी सिरजानी कंकर तारण दार । मेच्छ खिलासी सूर सूखिवा लाहौरी दल भार ॥ कंकर बंकर फौज भयंकर मादी जाति पटान ॥२५४॥ सुंदर खानी जुरि सैदाणी पुरछेरी जैदार । कबोमसवानी जाति कुताणि खिरी खुरमली वलोच । न्याजी पाजी फौजी महा मीर दर पोच ॥२५६॥ ४ ग ववर वली । ५ ख कपाए पांन, ग कपाए कान । ६ ख तथा ग ढाहि । ७ ग ढहावै । ८ ख कहुँ, ग कहौं । ९ ख दिन दस कोस चलत कटकई । १० ग गढ । ११ ख तथा ग गई ।

ऽX एराकी ते वना विधि भलइं । वोल चाल हरी एहां सुलइं । ५७९

ऽX एक वालकंउपहि तुरी । धावति धरन न लागइ खुरी ॥२७७॥ ५८०

ऽX एक ते खुरासान की जाता । चलिवौ करहिं दिवस औ राता ।

ऽX भूलि छुवहि ताजनौ रिसाई । दोऊ चलन रहइ उरि लाई ॥२७८॥

ऽX नत्रमि न जानहि सूधी रागा । द्रिढ असवार रहिह गहि वागा ।

ऽX महीया वहुत हंस के रूपा । कंचन काठी कंठ अनूपा ॥२७९॥

ऽX अति निरमल चमकति असमाना । किरन तेज जनु प्रगटइ भाना ।

ऽX हरिह और कररीय अनंता । जिनकी ठेलि गिरहि मइमंता ॥२८०॥

ऽX पाखर डावि चले असवारा । डावि चले छत्तीस हजारा ।

ऽX तेगु तेज जनु दामिन करई । तिनके डर सब धर करमरई ॥२८१॥

ऽX डरिउ मेरू कंपिउ असमाना । हय खुरि घूरि लोपि गयो भांना ।

ऽX चलिउ साहि दल कूच पलानी । मुगल जाति वइ कहउं वखानी ॥२८२॥५९०

ऽX धूंम खंज उजवक अपारा । चले मुगल सव विविध प्रकारा ।

ऽX अगमु तेज भाषा गंभीरा । जिन्ह देखति करमरहि शरीरा ॥२८३॥

ऽX वेलि गरिष्टि मोटे गरदाना । नान्हीं आंखि क्रोध असमाना ।

ऽX गिजविजाइ बोलइं पारसी । नयन चमक्कहि जनु आरसी ॥२८४॥

ऽX कमरि तवल कर गुरजइ लए । अति परचंड निकर्कस भए ।

ऽX मानस तिनका कइ आकारी । तिन जिउं काटत होइ न वारी ॥२८५॥

ऽX तीन सहस हस्ती मयमंता । जनु ससि किरन ऊजले दंता ।

ऽX घंटा नादु अंवारी परई । डिगइ धरनि वासुग करसरई ॥२८६॥

ऽX प्यासौ कङक करमरइ वीचा । आगों पान्यो पाछइ कीचा ।

ऽX मशकइ चलहि लाख द्वै ऊंटा । अमली जीवहि एकइ घूंटा ॥२८७॥ ६००

ऽX कूच साहि तव कीयो रिसाई । दिवगिरि गढ़ तव मइलिउ जाई ।

ऽX हइ हस्ती वावहि चउपासा । उठीं गरद छायो अकासा ॥२८८॥ ६०२

(द्वितीय खण्ड)

(कवि देवचन्द्र की प्रस्तावना)

५५९ ऽX आधी कथा सुनति सुख भईयो। हसि दिउचंद कवि बूझन लईयो।।२६६

५६० ऽX काहि कविदास हीए धरि भाऊ। जिसउ छिताई करिउ उपाऊ ।

ऽX सरस कथा मेरे जीय रहई । कीरनि चलइ दमोहर कहई ।।२६७।।

ऽX काइथ वंस तमोरी जाता । गोवरगिरी तिनकी उतपाता ।

ऽX तिनकौ वंध्यौ दिउचंदु आही । कही कथा सुख उपन्यौ ताही ।।२६८।।

ऽX धर्म नीति मारग विउपरही । त्रहुति भगति विप्रन की करही ।

ऽX देवीसुत कवि दिउचंदु नाउं । जनम भूमि गोपाचल गाउं ।।२६९।।

ऽX जइसी सुनी खेमचंद पासा । तइसी कवियन कही प्रगासा ।

ऽX प्रथम नवनि गणपति कह होई। सुनि चउपही हसउ जनि कोई ।।२७०

ऽX जहां होइ पद्द अच्छर हानी । गुनी चतुर तुम लीजहु वानी ।

ऽX आधी कथा नरंइन कही । संपूरन दिउचंद उचरी ।।२७१।।

५७० ऽX जसु पत्रह कीरति लिख लेहू । पढ़वे करहु गुनीजनु देहू ।।२७२।।

दोहरा

ऽX विहसि दमोदर पूछियो, कह दिउचंदु समुझाई ।

५७२ ऽX किसइ छिताई वसि परी, कइसे हारिउ राइ ।।२७३।।

चौपाई

५७३ ऽX कइसें राउ हारि गढ़ गईयो । कइसइं जूझ दुहूं दल भइयो ।

ऽX कइसइं दूती कीयो उपाई । यहु कविदास मोहि समुझाई ।।२७४।।

ऽX कइसइं दिगिरि ढोवा करिउ । किउं सौरसी मिरगु वन धरिउ ।

५७६ ऽX किउं सुंदरी गही वसि साहो । सो सव कथा कहउ निरवाही ।।२७५।।

(देवचन्द्र द्वारा सुल्तान की सेना का वर्णन)

५७७ ऽX साहि कटक वरनउं दल घनौ । ना को सूझइ परु आपुनौ ।

५७८ ऽX पुरु धप चलई पोईया थाकू । तेजी तुरकी गूंठ उलाकू ।।२७६।।

ऽ× जिउं तूमरी सुनहि हो राई । ऊपर नीकी होए कुभाई ।   ६२५
ऽ× जौ फोरिय तौ करुवी होई । अइसौ नीच जानियहु लोई ॥३००॥
ऽ× जइसइं सर्प सुनहि हो राई । पोसहि सव रसु दूध पियाई ।
ऽ× अंतरु डसुत न लागइ वारा । अइसे नीच तने व्यौहारा ॥३०१॥
ऽ× मुख रसु रहइ क्रोध जीव कीयइं । जइसइं घूत कतरनी लीएं ।
ऽ× स्वान पूंछ हइ जइसी राई । होइ न सूधी सुनि सतिभाई ॥३०२॥ ६३०
ऽ× इन गर्वन भूलइ जो कोइ । सुनहि राइ ताकउं दुख होई ।
ऽ× कही चितेरे कुमति वढ़ाई । लियौ पातिसाहू पलनाई ॥३०३॥
ऽ× कर्म मेटि न सकई दई । भावी होनहार सो भई ।
ऽ× विधिना सुख दुख लिखिउ लिलारा । कोहइ ताकउं मेटन हारा ॥३०४॥
ऽ× तासउं मंत्री विनवहि सेवा । अवहि पिराइत वोलहि देवा ।
ऽ× तिन्ह कह गढ कौ देहु अभारा । अइसउ मंत्रिन्ह परिउ विचारा॥३०५॥ ६३६

(गढ़ की सज्जा)

ऽ× लयो पिराइतु राइ बुलाई । सभा जोरि वइठे सिरु नाई ।   ६३७
ऽ× आए कमन भवानीदासा । मंत्र मूल बुधि कौ परगासा ॥३०६॥
ऽ× अरु वलिभद्र सूरीवां गनौ । साचौ मतौ चलइ तिह तनौ ।
ऽ× मदनसिंघ चतुरंग असेसा । जिह बसु कीयो मालवौ देसा ॥३०७॥ ६४०
ऽ× किसनदास गुन लहउं न पारा । राजसिंघ प्रगटिउ संसारा ।
ऽ× पीथू परगह लखमीदासा । सभ तइसेही बुद्धि प्रगासा ॥३०८॥
ऽ× अरु कुटवार जोगनीदासा । साति साखि दिवगिरि महि वासा ।
ऽ× अरु परधान भाउ भगवाना । करइ मंत्र सांचो परवाना ॥३०९॥
ऽ× जिते सूखिआ वइसे आनी । वढइ कथा जौ कहउं वखानी ।
ऽ× जइ हउं सभा बरनि कइ कहउं । लिखन चौपही अन्त न लहउं ॥३१०॥
ऽ× करु जोरइ अरु बिनवहि सेवा । गढ़ कौ साजु करहु तुम देवा ।
ऽ× जिउं गढ ढोवां लयो न जाई । करहु मंत्र इउं जंपइ राई ॥३११॥ ६४८

(अलाउद्दीन का देवगिरि पहुँचना तथा रामदेव को दूतों द्वारा सूचना)

६०३ SX जब दिवगिरि देखिउं सुलिताना। भउ अरु वाजिउ रनिसाना।
SX दिवगिरि गढ फिरि देखिउ साही। कहूं लगाउ न देख्यो ताही॥२८६॥
SX मंत्रिन्ह कीन्हउ मतउ दिढाई। चढी फौज किउं लीनउं जाई।
SX नातरु आधि सवाधी होई। कीयो कुमंत्र हसइ सब कोई॥२९०॥
SX जब ए वचन सुनइ सुलिताना। गढवइलीथां भए मिलाना।
SX कारे पीरे राते हरे। वीस कोस भरि डेरा परे॥२९१॥
SX गढ के साह तमासे रहई। तथा वरन कवि दिउचंद कहई।
६१० SX वाजइ सवद ढोल अनिवारा। पातिसाहि सुख भयो अपारा॥२९२॥
SX तव जासूस पहूतो तहां। राजा रामुदेव हउ जहां।
SX मइ देखे हइ हस्तिन जूहा। छत्र डंडु सुलतान समूहा॥२९३॥
SX लशकर वहुति अंति को लहई। सीसु निवाइ दूत यो कहई।
SX पाइ लागि सो विनवइ सेवा। मंत्री वोलि पूंछियहि देवा॥२९४॥
६१५ SX अव गढ साजि गुसाई करहू। करहु मंत्र आरस परिहरहू।

(रामदेव द्वारा मंत्री से मंत्रणा)

६१६ SX राजा मंत्री लए हकारी। करहु मंत्र जीय मांझ विचारी॥२९५॥
SX कउन काज आए सुलिताना। किउं यहु वयरु कीयो परवाना।
SX किउं हितु वोलि क्रोध संग्रहियो। करहु मंत्र यों राजा कहियो॥२९६॥
SX वोलहि मंत्री वारौ वारा। अव तुम वूझहु होए विचारा।
६२० SX जब हम तुम पहि ढीली गए। हम वरजत तुम विलखे भए॥२९७॥
SX कन्या नाम लेहि जनि राई। कही वाति तास्यउं समुझाइ।
SX सोवति लीनउ काल जगाई। लियो चितेरो साथ लगाई॥२९८॥
SX तुम भूले ओरहीं नरेसा। अव हम कह पूंछहु संदेसा।
६२४ SX अवहि राइ तुम सोचहु होए। आयो काल चितेरो लीए॥२९९॥

ऽ× आजु कुदिन हइ निसुरतिखांना । तातइं मइं फिरि कीयो मिलाना । ६७३
ऽ× काल देखीयहु मेरे कामा । जइसइ हउं करिहउं संग्रामा ॥३२४॥
ऽ× सब काहू सउं म ऽ उ दिढाउ । वडे गजर[1] ढोवा फुरमाउ ॥३२५॥

वस्तु बंधु

ऽ× कहइ नसुरति, कहइ नसुरति, सुनहि सुलतान ॥
ऽ× बोली उमरा पूँछीए, अब जी मंत्र विचारि ।
ऽ× करहु मंत्र जे जाहि सूझई ।
ऽ× कटक ढंढोरो फेरिए कहिए सबन्ह बुलाइ ।
ऽ× वडे गजर परभाति ही अरहु कोट सउं जाइ ॥३२६॥ ६८०

चौपाई

ऽ× कहिउ सयन जे सबइ बुलाई । दौत अरहु प्रकोटा जाई ।
ऽ× नसुरतिखान कहिउ विउहारा । पातिसाहि सुख भयो अपारा ॥३२७॥
ऽ× खूब मंत्र परगासिउ मोही । यहइ जानि हउं पूछउं तोही ।
ऽ× सो मंत्री जो कान न करई । पूछति मंत्र धरम जीय धरई ॥३२८॥
ऽ× खान उमरावन दय फुरमाना । जइसें ढोवा करहु विहाना ।
ऽ× तब जनाब सब काहू दयो । पह फाटी भुनिसारौ भयो ॥३२६॥ ६८६

(तुर्कों का आक्रमण और पहले दिन का युद्ध)

ऽ× चढे कोपि रन तुरक रिसाई । प्रथम कोटि सिउं लागे जाई । ६८७
ऽ× हेंदु तुरक लरे संभारी । भई बहुति पाथर की मारी ॥३३०॥
ऽ× दरीयाखांन कोपि कइ गयो । तहां जूझ हेंदुन सउं भयो ।
ऽ× उत्तर मानकचंद सुजाना । दुहु दल उपजिउ गीध मसाना ॥३३१॥ ६९०
ऽ× भई बहुत पाथर की मारी । मलक ओटि दय रहे संभारी ।
[2]एकन कर काढी तरुवारी । मूंडन टोपा धरे संवारी ॥३३२॥ ६९२

---

१ क प्रति में मूल में गरजर है जो स्पष्टतः अशुद्ध है । २ पंक्ति ६९१ से ख तथा ग का पाठ पुनः प्रारम्भ हो जाता है, परंतु इसके पहले उन पाठों में एक अर्धाली और है : ख 'पुर धप धपे धपीए धाप । तरकन काढ़ि चढ़ाए चाप' ग में प्रथम चरण का 'पुर पुर बंधे इक इक धाप' पाठ है ।

६४९ ऽ×मंत्री मंत्र प्रगासइ वयना । और समाह पठावहु लैना ।
६५० ऽ×चारि पउरि चउहूंथा साजी । अति गंभीर दमामे वाजो ॥३१२॥
ऽ×कोटि कंगूरा गुरिज समाना । करी साकती राइ सम ना ।
ऽ×रोपे जंत्रु मगरवो जाई । आपुन फिरइ रामदिउ राई ॥३१३॥
ऽ×भारे भरि गुरुजनि परि धरई । गढ की साजि चउहूंथा करई ।
ऽ×सूरसेन हुउ बलीय अपारा । सूर बहुति प्रगटिउ संसारा ॥३१४॥
ऽ×रामुदेव कहुं सीस उ नाई । उतर कोटि वइठिउ जाई ।
ऽ×कलूसेन कहुं आइसु भइयो । साजि सयनु पछिम दिसि गइयो ॥३१५॥
ऽ×नाथादिउ कहु भयो फुरमाना । अति सूरो जोय बुधि प्रधाना ।
ऽ×साजि सयनु लीयो समुहाई । पूर्व कोटि वइठउ जाई ॥३१६॥
ऽ×माणकचंद कहुं वीरा दीयो । तिहं सिरु नाइ पयानौ कीयो ।
६६० ऽ×गयो साजि दछिन कइ वारा । रन रुपि रहे लोह की वारा ॥३१७॥
ऽ×साति साखि दिउगिरि आवासा । वने कंगूरा गढ चउपासा ।
६६२ ऽ×दश दश सुहुरु कंगूरन वानी । रहे रोपि स्वामी हित जानी ॥३१८॥

(अलाउद्दीन द्वारा अपने सेनापतियों से मंत्रणा तथा दूसरे दिन सवेरे ही आक्रमण करने की योजना बनाना)

६६३ ऽ×अइसउ साजि करइ चउहाना । सुनइ अलावदीन मुलिताना ।
ऽ×कहा सोर दिवगिरिहि संभारी । मंत्री लीन्हउ साहि हकारी ॥३१९॥
ऽ×निसुरति खांन कहइ सिरु नाई । साईं वडउ रामदिउ राई ।
ऽ×गढहि साजि चउहूंथा फिरई । शंका कछूव न मन महि धरई ॥३२०॥
ऽ×सुनी अलावदीन रिसु वसी । कुता करइ चरिख सउं ससी ।
ऽ×विप्र वेदु पढ़ि पारइ वाटा । हेंदु लेइ तुरक की खाटा ॥३२१॥
ऽ×पातिसाहि रिसु करी अपारा । उंदर के डर भौ मंजारा ।
६७० ऽ×दादुर विस हरु सउंत्रम करई । जंवुक जाई सिंघ सउं लरई ॥३२२॥
ऽ×मरन (समै) जौ चैंटी होई । उठहिं पंखु जानइ सब कोई ।
६७२ ऽ×कोटि ढाहि मारउं मइदाना । रुपि जे रहिउ ग्रहु निहचइ जाना ॥३२३

जीवा बाघा जीवारामू[1] । जमधरि जोरि करइ संग्रामू ।   ७०६
भाना देउराई[2] जूझारू । धीरे बसइ कटक खइंकारू ॥३४०॥
देई सुवस[3] साथ सौंरसी । हेंदुन फौज एक होइ धसी[4] ।
लए नराजी ओडन हाथा । पाइक लाख सउरसी साथा ॥३४१॥
बरनि कहइ को तिन को जाती । बाजन बाजहि दछिन भांती ।   ७१०
धाई तुरक भसी[5] ठकुराई । खरिभरि एक खेत मित जाई[6] ॥३४२॥
लागी होन दुहूं दल मारू । जिउ भादउं घनु बरिखा सारू ।
हेंदू मारे टारे न टरही । पाइक पेटि घोरे कटकरही[7] ॥३४३॥
जिउं जिउं होहि मुहमिलि मीरा[8] । मारहि लाख लखउरी तीरा ।
रहहि न ते अंगह महि काटी । निकसहि तीर सनाह महि फाटी ॥३४४॥
पइंड साठि[10] असवारन छोडी । रहे ते बीर फौज मुह ओडी[11] ।
पइठे जिते घोरे कटकरही । टारे वीर न पाछे परही[12] ॥३४५॥
संगु श्रृंगारु काटि कइ गयो । खांन उमरावन्ह कह जम भयो[13] ।
जहां उठिउ सउंरसी संभारी[14] । हनइ वीर हाके परिचारी[15] ॥३४६॥
घाघा[16] वाघु रहिउ रन रोही । पीपा पइठिउ परदल छोही ।   ७२०
खरथू खरगू ते खांडिन्ह लरही । भाजहि जूझ तुरकु भरहरही[17] ॥३४७॥
बाघा सिउं भयो गीध मसाना[18] । जुझिउ तहां मुहबतखाना ।
पीलवान पेलहि मइमंता । ठां ठां होहि महा चउदंता ॥३४८॥   ७२३

---

१ ग बाघा जी सु महा वरियाम । २ ग भीमा जी देवरा । ३ ग धीरा धंस्यौ कटक खैंकार । ३ ग ए सब सुहर । । ४ ग ह्यंदू फौज हांक दै धसी । ५ ग धसत । ६ ग खिभिरी खेत एक ह्वै गई । ७ ग ह्यंदू रुपे न टारे टरैं । पाइक पैठि धुरकरी करैं ॥ ८ ग फौजें भई मुहामुंह भीर । ९ ग परहिं । १० ग पैदासक । ११ ग रुपे मिटै नहिं ओडन ओडि । १२ ग पैंदाटनक टेकि ठकुरई । गज घटान ते टारी टरई ॥ १२ सागा काटि सांगि लै गयौ । खांन उम्मरणि कौ जमु भयौ ॥ १४ ग पचारि । १५ ग हांक दै संभारि । १६ ग बाधा । १७ ग भोजा भिरत साहि खरभरयौ । १८ ग बाघा सों भोगी घमसान ।

६९३ एकन गही सइंहथी हाथा। पर दल[1]चले बीस दस साथा ॥३३३॥
चोटादार[2] चोट आगरे। तिन सिरि टोपा सउंसर धरे[3]।
देखि फउज हेंदुन[3]असवारा। धसे पेलि पौरही[4] किवारा ॥३३४॥
जइ तेजा[5] जे गांगा[6] गोगू। सांवतु[7] संगु भिखारी[8]जोगू।
रूपा रेदर[10] रनमलु रयना[11]। धसे देखि तुरकन कउं सयना ॥३३५॥
भोजा भाना वयरीसालू। परे राइ परिगहि हेमालू[12]।
× जूझे पलटी झाउ अहीरू। गांगे धोवो रनह गहीरू ॥३३६॥
७०० कीका सोझाचा हरिचंदू। दल विचाल ते परहि न बिन्दू[13]।
× सारिंगुदास दखिनी वीरू। उधरनदास महा रनधीरू ॥३३७॥
खरथू खरगू धारम घीधूं। झाला झगरू डगरू वीधूं।
दावा देवीराइ[15] जुझारा। पामा पचभैया परमारा[16]॥३३८॥
सौंजि संजौनी गउरवे धसे। पहिरि कवचि करि असवर कसे[17]।
७०५ चढीयो पेमराज[18]चौहाना। गढ रावत कहिए अगवाना[19]॥३३९॥

---

१ ख पदरक, ग पदरकि। २ ख जे चटकला, ग जे चुटकरा। ख 'तिन सिर टाटर सौंसर करे' ग 'तिन सिर टोपा सौंसर धरे'। ३ ख हिन्दू, ग ह्यंदू। ४ ख धसे फौज के ठेलि। ५ ख जैतौ जाजौ। ६ ख जागो ग गंगो। ७ ख सइहथ। ८ ख तथा ग भाखर। टिप्पणी-'भाखर' शब्द के आगे के पाठ का ख प्रति का एक पत्र अप्राप्य है। उसका पाठ आगे पंक्ति ८३४ के शब्द 'समान' (जो उसमें समान है) से प्राप्त होता है। इन पंक्तियों के सामने ऽ चिन्ह नहीं लगाया गया क्योंकि यह जानना सम्भव नहीं है कि ख पाठ में कौन पंक्ति थीं और कौन नहीं थी। ९ ग भोग। १० ग रूंदा रूपा। ११ ग रैण। १२ ग परे रौरि परिगाहन माल। १३ ग देल्हा सौंझा दल को दंद। १४ ग खरहथ खरघा घाटम घाघ। झाला झगर गाडरा वाघ॥' १५ दामा अरु देवरा। १६ क औपुर पंची अहड़ अकारा। इस चरण क ग प्रति का पाठ ग्रहण किया गया है। १७ ग सोमा जी सोनगरा धस्यो। पहरि कवचि करि टोपा कस्यो॥ १८ ग पामा जी। १९ ग गाढे राइ तनौ गुर ग्यान।

भयो भुइचाल चाल उचरही[1]। फिरहि जूझ जीय लज्या धरहीं। ७४०
× ओडनि खांड गुरिज तरवारी । मूए सूर सूरन्ह कउं मारी ।।३५७।।
करहि ते आवहि नाव सुराउ । जिनकें नाही अति अति आउ[2]।
× सुमरि खुदाय तुरक अति अने । जीय धरि मरग आइ जुटि वने ।।३५८।।
तिउं बहुरी तुरकन की अनी । जिउं पहरहि फूलन्ह कामिनी[3]।
तिउं वहुरइ घाइल असवारा । जिउं गेरू खेलहि फगुहारा ।।३५९।।

दोहरा

को को न हूवा को कोन गया[4], मीरां के परसाद ।
अन गंजे सिरि[5] गंजीयइ[6], जिउं जिउं कंठ ते[7]साद ।।३६०।।

चौपाई

[8]× [8]दरियाखांन जूझ रन परिउ । तब महमूंद अपनपउ लरिउ ।
[8]× गयो कोपि सामुहिउ रिसाई । प्रथम कोटि सउं लागिउ जाई ।।३६१।।
[8]× पाथरु बहुति परे असमाना । परिउ जूझ रन गए पराना । ७५०
[8]× जूझे ताहि साहि रिस भई । सवइ सयन तब सामुहि गई ।।३६२।।
[8]× घेरउ गढ़ अइसे चौपासा । जनु ससि दिनियरु परसु अकासा ।
[8]× मार मार चौहूंघां करही । अति निशंकु जीय शंक न धरही ।।३६३।।
[8]× एक मूठि छूटहि सरु कोरी । उठति हाथ मारहि ते फोरी ।
[8]× अइसउ गढ चौहूंघा भयो । वेटिन मधुमाखी कउ लयो ।।३६४।।
[8]× तुरकन दई ठाठरी ओटी । हस्ती आनि भिकायो कोटी ।
[8]× तुरकन दर गढि तरहर गए । हेंदुन कोपि तवहिं भरि लए ।।३६५।। ७५७

---

१ ग चालु भयौ चालु चालु उचरै । २ ग करानति आवहि नाम बराउ । जिनकी नहीं इतनी आउ । ३ ग ज्यों कुसंभी पहिरैं बाननी । ४ ग क्या क्या हुवा क्या होइगा । ५ ग भी । ६ ग गजियै । ७ ग जौलो कंठहि । ८ ७४८ से ८१८ तक की पंक्तियाँ ग प्रति में नहीं हैं । संभावना यह है कि वे ख प्रति के अप्राप्य एक पत्र में भी नहीं होंगी ।

७२४ सहि न सकहिं हेंदुन की भीरा। तब मुख मोरि भरहरे मीरा।
चल्यिउ छत्र डगमगिउ चौडोला। बाउ उडान सि फिरी मगोला॥३४६॥
गहि रोपी करि काढि कमाना। बरिखन लागिउ पंथु समाना।
इक इक मूठ लोह भल[1] साठी। तब पइठी पइदल रन गांठी[2]॥३५०॥
कीन्ही ठेलि साहि कैं उजीरा। पइं दोइसहि प्यादेन्ह भीरा[3]।
चपी[4] देखि हेंदुन की अनी। तब पइठउ पाइकु दखिनी॥३५१॥
७३० तब लइ गयो सो अनी पचारी[5]। जूझे तहां पयादे चारी।
फिरे देखि हेंदुन्ह असवारा। कोपि काढि पइठउ करवारा॥३५२॥
तुरकन कटकु[6] तइसें भरहरहीं[7]। मानहु लेजु ग्रीव महिं परिहीं[8]।
फिरि पाछे नहि चाहइ कौना। जूझे सलहदीन औ जौना[9]॥३५३॥
परे खेत तहं पेखा तोगू[10]। सुत समु भा सुलितानहिं सोगू[11]।
एक नासु वाहर[12] वाजीदा। भए कनोजी पीर सहीदा॥३५४॥
जिहि लरयो सो मायो गोगू[13]। तहां परिउं सोल्हन कउ लोगू।
× जानहु पतझर झारे पौना। खरगु घाइ घूमिउ जिउं वौना॥३५५॥
हुतौ रामुदेव कउ खवासा। सांसु दीयो[14] नामइं शिवदासा।
७३६ उझकति कोटि हवाई हयो। द्रिष्ट[15] प्रहार हंस उडि गयो॥३५६॥

१ ग मन। २ तव काटी पैदल की गांठि। ३ ग तव भ्वैं दई पयादैं भीर। ४ ग चली। ५ ग लै गए मुगलनि अनी उसारि। ६ ग सेन। ७ खरभरी। ८ ग मनहुं लेजु गिरवर ते परी। ९ ग मानहु पातोहर टारयौ पौंन। ग प्रति में आगे की पंक्ति में जौना का उल्लेख जैनदीन के रूप में आया है। १० ग तारवौ तोग। ११ ग प्रति में ७३४ संख्या की इस पंक्ति के पश्चात एक अर्धाली और है: जूझ्यो जैनदीन अज्जून। गुरुज घाइ सिरु है गौ चून।' क प्रति में जैनदीन के मारे जाने का उल्लेख ७३३ पंक्ति में आ चुका है। १२ ग वारह। १३ ग जहां लरयौ सोनगरा गोग। १४ ग सीसौदिया—यह पाठ अनर्थकारी है, सीसौदिया उस युग में खवास का काम नहीं कर सकते थे। प्रतिलिपिकार सांसु दियो लिखना चाहता था और सीसोदिया लिख गया। १५ ग दुद्रिढ।

ऽX पातिसाहि सजि आपुन गयो । तहां बहुत दल ढोवा भयो । ७८०
ऽX अति भरु भयो कोट तरु जाई । परुकोटा घाल्यो खहराई ॥३७७।
ऽX गिरिउ कोट खहरीयो पगारा । चपे बहुत को जानइ सारा ।
ऽX हैवतखान गइयो रिसि भरिउ । बहुतइ जूझि खांड मुखि परिउ ॥३७८॥
ऽX ढका कटारी ओथाओथी । परी जूझिकइं अगनित लोथी ।
ऽX धायो वीरुसाहु परिहारा । तिह अति करी तुरक दल मारा ॥३७९॥
ऽX साति मलक मारे समहाना । परे खांड मुख गए परानां ।
ऽX वाहि परत आयो मलखांनां । हुतौ राइ राम कउ परानां ॥३८०॥
ऽX दोउं कोपि भिरे असमांनां । अरु रावत उधरन चउहाना ।
ऽX देखि कोटि तर विपरीत मारू । भागे मलिकु जीयमइं सतु हारू ॥३८१॥
ऽX साह सयन देखिउ भहराना । उठिउ कोपि कइ मुहबतिखांना । ७९०
ऽX बहुत जूझि हेंदुन सिउं करियो । ता सिरु टूटि कोटि तरु परियो ॥३८२॥
ऽX उठे कमुंध न जाणइ सारा । रुंड मुंड दीसहि विकरारा ।
ऽX हय हस्ती मानस कौ मांसू । खुरु खुरु काटि भयो बटबांसू ॥३८३॥
ऽX गोरा परइ जूझ महि आई । मारहिं बीस दस निफल न जाई ।
ऽX चोट लेइ भाजहि भहराई । हेंदु कुररी देहि रिसाई ॥३८४॥ ७९५

(अलाउद्दीन का छत्रदंड भंग)

ऽX जंत्रुधार बोलिउ तब कोपी । गुरु जांघा तनि की करि रोपी । ७९६
ऽX विनवन लागिउ माथउ नाई । जो आइसु देइ रामदिउ राई ॥३८५॥
ऽX रातौ झंडा जापर दीसा । सेतु छत्र सोहइ ता सीसा ।
ऽX घिरे असंख ते उमरा खाना । मांझ अलावदीन सुलिताना ॥३८६॥
ऽX बहु जु अलावदीन सुलितांना । मारउं ताकि देहु फुरमाना । ८००
ऽX तवहीं बरजे राजा रामू । साधु करइ किउं अइसौ कामू ॥३८७॥
ऽX जब हउं सेवा ढीली गइयौ । करतउ मया निरंतन भईयौ ।
ऽX परु के कहे संग्रहिउ आई । यहि न दोष कहइ इउं राई ॥३८८॥ ८०३

७५८ ऽ×तहां मार पाथर की परी । रहे मलिकु सिरि दय ठाठरी ।
ऽ×भारी भरु जव देहि लुढाई । ठाठरि टूटि चून होइ जाई ॥३६६॥
७६० ऽ×देखि मारु भाजहि भहराई । कोऊ कोट न नीयरे जाई ।
ऽ×हेंदू कुररी देहि रिसाई । गढ तहीयां से भूज्भ कराई ॥३६७॥
ऽ×चढिउ कोपि रन ईसफखांना । हाथी चढि आपुन समुहांना ।
ऽ×ताके साथ सातसइ मीरा । हाथ उचावति वेधहिं तीरा ॥३६८॥
ऽ×भर की संख्या गनी न जाई । जिते परहि गढ़परि ते आई ।
ऽ×गुरिजि जंत्रु छूटहि असमाना । तिह तकि मारिउ ईसफखाना ॥३६९॥
ऽ×लागति चोटि खांन करमरिउ । हस्ती सहित जूभ रन परिउ ।
ऽ×जव रन मारिउ ईसफखाना । सुनि अलावदीन विलखाना ॥३७०॥
ऽ×सांची वाति कहउं हौं तोही । ईसफखान मुए दुख मोही ।
ऽ×विनु पंखहि पंखी हइ जिसौ । हउं तौ ईसफखांन विनु तइसौ ॥३७१॥
७७० ऽ×जाकेवल मइं करी पलाना । तउ मइं दिउगिरि छेकी आना ।
ऽ×याथइं वली न दूजौ औरा । याके वल तोरिउ चीतौरा ॥३७२॥
ऽ×वहुती भूमि जासु वल लीयो । मूल मंत्रु जव आई सु दीयो ।
ऽ×वार वार गुन कहजई काई । रन रुपि लरइ सामुहिउ जाई ॥३७३॥
ऽ×अव सिरु काजु हमारे दीयो । पातिसाहि जीमहि दुख कीयो ।
ऽ×तवहि साहि लीनउ ऊसासू । देखिउ गढ़तन चौहूं पासू ॥३७४॥
ऽ×कोपि करइ जीय मांभ रिसाई । अरे तुरक सभ गढ सौं जाई ।
ऽ×उठिउ कोट तर गीध मसाना । जूभिउ तहां वहादरखांना ॥३७५॥
ऽ×देखि मार जे चले पराई । कोई कोटि न नीयरो जाई ।
७७६ ऽ×और न्हृति को जानहि सारा । रुंड मुंड दीसहि विकरारा ॥३७६॥

... स्पष्टतः ... से लिख गया है । प्रसंग

ओछे घाइ जिन्ह भए सरीरा । एक सइन देइ मांगइ नीरा । ८२४
लागी जिन्हहु विषमु[1] तरवारा । गए कुम्हेड़ा जिउं निरवारा ।।३९९।।
गुरुज घाउ जे मुगलन हए । तिन सिर फूटि फूट लौं[2] गए ।
परी ते उपराऊपर लोथी[3] । भिरे माल[4] जन ओथाओथी[5] ।।४००।।
हते जे हीए सामुहे सेला । परे पुहमी लोटहिं बगुमेला ।
फुनि वहुरे छाई असवारा[6] । जिउं गेरू खेलहिं फगुहारा ।।४०१।।
परे जूझ हाथी सइचारा । ते दीसहि जनु नदी किरारा[7] । ८३०
ढाले नेजे इउं रन रहे । रुधिर नदी जिउं तरवर बहे ।।४०२।।
टोपा सउं सम भीज[8] मसाना । बूडे तहां ते उमरा खांना[9] ।
विनु सिरु महा महावत हए[10] । तरवर पाति[11] लहर जनु भए ।।४०३।।
एह विधि जूझ महानइ वही[12] । विचल फौज तुरकन की रही ।
दीयौ कोट तरु तंबू तानी । चहु दिसि तुरक अवासे आनी ।।४०४।।
मेले तुरक लोगु अरुझने । आपापऊ वोइ सबइ डराने[13] ।।४०५।।
(रामदेव द्वारा समरसिंह को द्वारसमुद्र जाकर सेना लाने के लिए भेजना)

वस्तु बंधु

कटक मेलिउ, कटक मेलिउ, घेरि चहूं पास ।।
ससहु राहु चंद्रहि[14] गिलइ,
होहि जूझ नित मार गांचइ लइ प्रधान नृप मते मिलाउ[15] ।। ८३६

---

१ ग तरपी । २ क ते सिर जानहु चून होइ । ३ ग परी जि लोथिनि ऊपर लोथि । ४ ग मल्ल । ५ ग बोथा पोथी । ६ ग जे बहुरे वाइल असवार । ७ ग माणौ साइर तनी करारि । ८ यहां से ख प्रति का पाठ पुनः प्रारंभ हो जाता है और उसमें यह शब्द 'समांन' लिखा है । ९ ग टूटि सनाह भए सौ थान । १० ख मन सर माहि महाबत वह्यो, ग बिन सिर मांझ महाबत रहे । ११ ख पौन । १२ ख महनइ भई, ग महा नौ भई । १३ ग ज्यौं ज्यौं गढु लगतौ दलु होइ । परजा मन डरपै सब कोइ । १४ ख तथा ग ससिहर । १५ ख तथा ग में 'लइ प्रधान नृप मते मिलाउ' नहीं है ।

८०४ SX जाकउ आइसु तुम्हपहिं लहई। मारौं ताकि गुनी इउं कहई।
SX बोलइ तवहि रामद्यौ राई। छत्रुधार मारहि करु भोई ॥३८९॥
SX दयहउं चूरा वामन नोही। तूं गुन आज दिखावहि मोही।
SX दीन्ही बात कही किलकारी। छंत्रु दंडु तिहकेरौ मारी ॥३९०॥
SX गोग फूटि गयौ चउपासा। एक मूठ मारीयो खवासा।
SX लागनि जीव निकर ता गयो। देखति साहि अचंभउ भयो ॥३९१॥
८१० SX तवहि रामदिउ राहइ घनौ। अब मइं गुन जानिउ तो तनौ।
SX भयो कटिक महि हइहइकारा। तव स(व)मंत्री करहिं विचारा॥३९२॥
SX सुनि हो अलावदीन सुलिताना। अवहि असउं न भयो परवाना।
SX छत्रुदंडु गौ रायहं हयो। गयो टूटि असुभ यहु भयो ॥३९३॥
SX अव माइं फिर चलउं मिलाना। कीजौ ढोवा वहुरि विहाना।
SX अवहीं भई गोधूर क वारा। परु आपुनौ न जानई सारा ॥३९४॥
SX अइसौ मतौ करउ परवाना। छोड्यौ ढोवा गए मिलाना।
८१७ SX बीच मांझ जव नौवति भई। ताकउ मरमु न जानइ दई ॥३९५॥

(दूसरे दिन का युद्ध)

८१८ SX गई रयनि तव ऊग्यो भाना। गहिरे सवदु वाजिउ नीसाना।
[1]जूझइ सूर परे विकरारा। मानहु छांके गिरहिं गंवारा ॥३९६॥
८२० ठां ठां वाइल तोरहिं थाई[2]। इहहींके अव कीए खुदाई।
कंत सेवक कीन्हे करतारा। घरु संभारि करहि करु छारा[3]॥३९७॥
घरु राई धरणी महि लोटहि। एकते चलहि वृछि की ओटिहि[4]।
८२३ जूझन हार जे हुते[5] अनाथा। विरले मुह महि घालइ हाथा[6]॥३९८॥

१ यहां से ग. प्रति का पाठ पुनः प्रारंभ हो जाता है। इस छंद की संख्या उस प्रति में २६३ है। २ ग. थाई। ३ ग. जूझे दिल्ली के दरबारा। ग. प्रति का यह पाठ अर्थहीन है। ४ ग. घर छुड़ाई धरणी में लुटाइ। [illegible] अलुटाई॥" ५ ग. हने। ६ ग. विहरत मुंह में मेलें हाथा।

अइसउ जबहि[1] छिताई सुनिउ। सजल नयन करि[2] माथउ धुनिउ। ८५६
SX प्रिय के वयन सुने जब नारी। विरह बान जनु मनमथ मारी ॥४१४॥
आंसू नयन दिए ढरकाई। पागु[3] सौंरसी पोंछतु जाई।
कइ मोहि अपुने संग लगाउ[4]। कइ बिनु कोरा[5] बांटि पियाउ ॥४१५॥
कइ मोहि वेगु भाजि लै आजू। नातरि सबहि बिगरिहइ काजू। ८६०
परिवसु बास परी सुंदरी। तिहठां बुद्धि विधाता हरी ॥४१६॥
सुनइ न कहउ न बरजई रहई। बहुरौ[6] वचन छिताई कहई।
दय किछु चिन्ह अपुनौ नाहा। जो देखें जीउ रहइ घट माहा ॥४१७॥
कंठमाल सोने की गीवा। दीनी मनहु प्रीति की नीवा।
बागौ सौं जमधर[7] दछिनो[8]। इतनी सौंज दई आपुनी ॥४१८॥
जे किछु गहिनौ पहिरे नारी। चलति सौंरसिहिं दीयो उतारी।
पीय कउ बागउ पहिरिउ अंगू। जमधर[9] लीनइ सोवइ संगू ॥४१९॥
कंठमाल जपमाला करी। पिउ पिउ जपति रहइ सुंदरी।
बाला[10] अन्नुपान परिहरीयो। कुस संथरी बिछौना करियो ॥४२०॥
चोवा पुहप न बासु अन्हाई[11]। दिन उठि[12] शिव की पूजा जाई। ८७०
इह विधि रहइ छिताई नारी। धसिउ सौंरसी मनहि बिचारी[13] ॥४२१॥ ८७१

(अलाउद्दीन को समरसिंह के चले जाने का समाचार मिलना तथा राघव चेतन से उसकी मंत्रणा)

देवगिरि छोडि[14] सौंरसी गईयो। पातिसाहि मनु धोखउ भइयो। ८७२
मनमहि धोखउ उपनौ साही। गई छिताई संगहि ताही ॥४२२॥ ८७३

---

१ ख ऐसो बचन, ग इतनौ जबहि। २ ग हुवै। ३ ख पगई, ग पागा। ४ ख लेइ भजाउ, ग संग भगाउ। ५ ख करवो, ग कोरौं। ६ ख तथा ग बाहुरि। ७ क जमधुर। ८ ख दखिणी, ग दख्यणी। ९ क जनुधर। १० ख रानी। ११ ख सचल सीस सीलइ जल न्हाइ, ग सचल चीर बिनु तेल अन्हाइ। १२ ख दिव धासि, ग दिन कौ। १३ ख मंझारी। १४ ग उतरि।

८४० निसि वासुर ढोवा करहि सोनित[1] वहइ प्रवाह ।
मिलि वीर नृप ते मंत्र गनहि कहा करइ नरनाह[2] ॥४०६॥

चौपाई

छेकउ गढ नहि आवहि हाथा । कीन्हौ मतौ रामु नरनाथा ।
तव सौरसी लीयो हकराइ[3] । तास्यौं वात कही समुझाई[4] ॥४०७॥
राने[5] मन महि देखु विचारी । लइ वस साथि[6] छिताई नारी ।
जो तूं खेम कुशल घर जाही । यहु अलोक सभ हम कहं आही ॥४०८॥
तउ सौंरसी नाई सिर कहीउ । हउं याही दिन कारन[7] रहिउ ।
हम नृप[8] पूत मरहि रण काजा । भागे गोत वंसु वहु लाजा ॥४०९॥
सामी संकटे[9] छाडनहारा । महा नरक गति परहि गंवारा ।
दसएं दाउ जे छांडहि[10] मीचा । ताते और न दूजौ नीचा ॥४१०॥

॥रामोवाच॥[11]

८५० यहु गढ गाढउ किन[12] विग्रहीयो[13] । तूं कर वेग हमारो कहीयो ।
ढोरसमुद्र कउ गढ पलनाई[14] । देवगिरि दुर्ग छुड़ावहु आई ॥४११॥
८५२ वीरा देइ रामु नरईसा । चलिउ सौरसी नायो सीसा ।

(समरसिंह की छिताई से विदाई)

८५३ घरकंह गयो छिताई पासा । जहां हुती सतखने अवासा ॥४१२॥
कहिउ छिताई सिउं नृप[15] वयना । लियाउं[16] ढोरसमुद्र कउ सयना ।
८५५ तूं जिन चिंता करहि वरनारी । देखु आपुन मनसि[17] विचारी ॥४१३॥

---

१ श्रवनन । २ ख तथा ग छटौ मासु छेकैं भयौ गांउ न आवै थाह । ३ ग तुलाइ । ४ ख कही वात तिहां सर सवइ सारि । ५ ख तथा ग राणे । ६ ख तूं धसि जाइं । ७ ख हुं इण कारण ईहां । ८ ख तथा ग रज । ९ ग संकरै । १० ख दसरइ जे छोडै; ग दसमै दाइ जु छोडै । ११ ग राजा रामचो वाच । १२ ख करि; ग कै । १३ ग निग्रहो । १४ ख ढोल समुद की दलु पुण ल्याव; ढोर समुद्र गढ पचल पलनाइ । १५ ख आ, ग यह । १६ ख ल्याव । १७ ख तथा ग हियई ।

ऽ भौ चेतन परि अधिक गुमाना । रोस भरियौ बोलइ सुलिताना । ८९०
मइं क्या कीया देवगिरि[1] आई । मलक मीर घाले[2] जूझाई ॥४३१॥
अरु मोहि भई देसमहि गारी । ल्याए भले दछिन की नारी[3]।
राघौ मोल्हन दिऊ जे सरमू[4]। ए सब जानहि गढ कउ मरमू ॥४३२॥
और जे भेद राइ कउ लहही । मोसौं कूर न कबहूं कहही ।
जौ न छिताई अबकइं लेऊं । तौ निज सीस देउगिरि देऊं[5]॥४३३॥
बेग मंत्र परगासउ आई । नातर सबउ[6] मराउं ठाई[7]।
ऐसी बात सुलितांन ज कही । राघौचेतन मन माहिं रही[8]॥४३४॥ ८९७

(राघवचेतन की चिंता तथा पद्मावती देवी द्वारा मार्ग दर्शन)

दोहरा

आसा बरी[9] न कीजीयइ, ठाकुर न कीजइ मित्त । ८९८
खन तातौ खन सीयरौ, खनु बयरी खनु हित्त ॥४३५॥

चौपाई

खनखन वयरी खनखन मीता[10]। थिरु न रहइ ठाकुर कउ चीता । ९००
आपु सुहाती सब कछु करई । पर दुख आपु न हीयरे धरई ॥४३६॥
ऽ ठगु ठाकुर औ मीत सुनारा । ए तौ जइसी खांडे धारा ।
ऽ सिघ सरपु आपुनउ न होई । ठाकुर मीत करउ जनि कोई[11]॥४३७॥ ९०३

---

१ ख देस महि। २ ख मारे, ग मासये। ३ ख ढूढत फिरइं पराई नारी, गचाहुहुं फिरयौ पराई ।४ नारीख राघौ चेतन नै जइ अम, ग राघौ मोल्हन अरु जै समु । ५ यह अर्धाली क, ख तथा ग तीनों प्रतियों में इस स्थल पर है और पहले पंक्ति संख्या ८८१ के स्थल पर भी तीनों प्रतियों में है। ६ ख दौति, ग दौत । ७ ख ताहि । ८ यह अर्धाली केवल ख प्रति में है, क तथा ग प्रति में नहीं है। ९ ख बइरी; ग बड़ी । १० ग ठाकुर खन बैरी खन मित्त । ११ ख में इसके स्थान पर यह अर्धाली है : ठाकुर मीत करइ जिन कोइ । अयसी बात कहइ सब कोइ ।

८७४ ढोवा करति होइ दिन हारी । राघौचेतन लीयो हकारी ।
मेरौ कहिउ न[1]मानइ राउ । वेटी देइ न छांडइ ठाउं ॥४२३॥
सेवा करइ न कुतवा पढई । अहिनिसि जूझि वरावरि[2]चढई ।
५ धसि सौंरसी देसंतरु गयो । अति धोखउ मेरे जीय भयो[3]॥४२४॥
रनथंभौर देवल[4]लगि गयो । मेरौ काज न एकौ भयो ।
इउं बोलइ ढीली कउ धनी । मइ चीतौर सुनी पदुमिनी ॥४२५॥
८८० वंध्यौ रतनसेन मइं जाई । लइगौ वादिल ताहि छंडाई ।
जौ अवके न छिताई लेउं । तौ यहु[5]सीसु देवगिरि देउं ॥४२६॥
५ जहुमति भई[6]कहइ यों साही । क्या कीजइ किउं देउगिरि ढाही ।
हम नाही दिवगिरि सिउ काजा[7]। देहु छिताई भुंजहु राजा[8]॥४२७॥
चेतन चेतहु[9] मंत्र सुवुधी । गढ़ ऊपर की आनहु[10]सुधी ।
५ किधउं छिताई हइ गढ माही । कइ सौंरसी गयो लइ ताही ॥४२८॥
जब सो ढोलसमुद्रह गई । तब सो दल[11]साजौ ठकुरई[12]।
वंधि समुद्रहि उतरउं पाटा । जिउ रावनहि राम कियो घाटा[13]॥४२९॥
जो तौ छिताई हइ गढ़ माही । तउ ढोवा कइ लीजइ ताही ।
८८९ वेगु मंत्र तूं करहि इताला[14]। नातरु दौत[15]कढ़ाऊं खाला ॥४३०॥

---

१ ख तथा ग वसिठारौ नहिं । २ क दिनहिदि, ग करण ही । ३ ख में यह अर्धाली नहीं है, परन्तु ख तथा ग में एक अर्धाली और है 'किधुं छिताई गढ माहि रही । किधुं सौंरसी साथु सांमही ।' क प्रति में यह अर्धाली पंक्ति क्रमांक ८८५ पर है । ग प्रति में भी इस प्रसंग पर पुनः यह अर्धाली है । ४ ग देवै । ५ ख निज, ग तो । ६ ग इतनी बात । ७ ग गई छिताई विनस्यौ काजु । ८ ख हमहि छिताई सूं वहु राज, ग हमहि कहा दिवगिरि सौं काजु । ९ ख चेतन चितहि, ग चेतन चेति । १० ख ल्यावु । ११ ख सिदल, ग सैदल । १२ ख कटकई । १३ ख जिउं रामइ रावन कौ घाट, ग रामचंद्र ज्यौं कपि दल टाट । १४ ग दरहाल । १५ क सुनह ।

पठवहु दूती¹ गढ़ [संझारी । ते सब सुधि कहहिगी, नारी । ६२२
एहु सोचति भिनुसारो भइयो । तौ लागि साहि हकारौ गइयो ॥४४७॥ ६२३

(राघवचेतन द्वारा गढ़ पर दूतियाँ भेजने की अलाउद्दीन को सलाह देना)

राघौचेतन कह लइ गए³ । पातिसाहि पहि ठाढे भए⁴ । ६२४
पूछइ साहि क्रोध सिउं बाता । मंत्र मोहि अब कहीयइ ताता⁵॥४४८॥

कवि नरायनदास उवाच⁶

तब राघौचेतन उचरई । मंत्रु एक मेरे मनि फुरई ।
लीजइ दूती भली हकारी⁷ । ते सब कहहीं बाति विचारी⁸॥४४९॥
खूब खूब खुदिआलम कहिउ । भलउ मंत्र तेरे जीय रहिउ ।
जिन्ह मुनि तपा लीए सब⁹ धूती । चेतनि चितइ ल्याउ सो दूती ॥४५०॥
पातिसाहि कउ आइसु भयो । चेतन दुइ दूती लै गयो । ६३१

(दूतियों का वर्णन तथा उनसे अलाउद्दीन की मंत्रणा)

और अनूप और ते बोली । मुनिवर मोहइ जाति तंबोली ॥४५१॥ ६३०
बारिन¹⁰ जाति नाउं धनिसिरी । मन मोहनी मालनि मनिसिरी¹¹ ।
बोलहिं देश देश की भाषा । सती बिगोई अगनित लाखा¹²॥४५२॥
तिरी चरित ते¹³ खरी सुजाना । बूझी बोलि आपु सुलिताना¹⁴ ।
ऽकहइ अलावदीन समुझाई । छल बल छलहु छिताई जाई ॥४५३॥ ६३५

---

१ ख बसीठन । २ ग तेही आनी देहि की नारि । ३ ख चेतन हसत रावरै गयो, ग राघौ हसत रावरहि गयौ । ४ ख माझ दाष बलि ठाढो भयो । ५ ख कछु न कही गढ़ की बात, ग बेगौ मंत्र प्रगासहि तात । ६ यह शीर्षक ख प्रति में नहीं है, केवल क तथा ग में है । ७ ख पठवहु दूती गढह मंझारि । ८ ख तेही आणि देइगी नारि, ग तिन सों कहियै बात उसारि । ९ जे मनु तपु जु लैहि पर । १० ख तथा ग नाइन । ११ ख देन-सिरी, ग दूसरी । १२ क सखिय वियोगिनि अगनित लाखा, ख सती बिउगी अगनित लाख । १३ ग कै । १४ ख प्रति में इस पंक्ति के पश्चात एक अर्धाली और है जो क तथा ग में नही है : तुम थीं बोल हमारौ रहइ । बारंबार साहि इउं कहइ ॥

६०४ जइसे रतन[1] कटाई पाना। तिउं ठाकुर जानियउ निदाना।
पलटु पत्र[2] कर कंटकु ग्रहई[3]। इहि गति मति सति ठाकुर रहई[4] ॥४३८॥
तूठे करहि दरिद्रहि हानी। रूठे मारि वहावइ पानी।
एह सोचि उठि डेरहि[5] गइयो। भो[6] दिन अस्त सूर्य आंथइयो ॥४३९॥

दोहरा

चेतुन हीए विचारई, जीय ते चेतइ बुधि।
किउ सुरखुरु सुलितान सउं, किउं आनउं गढ़ सुधि[7] ॥४४०॥

चौपाई

६१० को गढ सुधि कहइ सुलिताना। किउं मो बोल चढ़इ परवाना।
किउं परतीत साहि मोहि करई। किउं मेरौ जग[8] अपजसु[9] हरई ॥४४१॥
जव हसि[10] साह पुंछतौ वाता। सुन ते वचन हीयौ ससताता[11]।
अव सो बुधि विधाता हरी। जवहि साहि कुमया मनु करी[12] ॥४४२॥
झंखइ[13] चेतन लेइ उसासा। अव मो गई कुटुंब[14] की आसा।
अव मो भई देस महि लाजा। साहिव मोहि मारइ[15] बेकाजा[16] ॥४४३॥
कत्त सो[17] विधाता मो मति दई। कति पहचान साहि सिउं भई।
मांगि मांगि महु खातौ[18] भीखा। कहा विधाता लाई[19] सीखा ॥४४४॥
जपिउ मंत्र पदुमावति तनौ। अरु गुरु नामु लीयउ आपनौ।
चेतन निसि झंखति जागीयो। नयन नींद सो झंपन कीयो[20] ॥४४५॥
६२० पदुमावती हंस आरूही। चेतन सरिस समछा[21] कही।
६२१ जौ तुम्ह चितवन[22] कीनौ मोही। सिध दान वर[23] दीनौ तोही ॥४४६॥

---

१ ख जैसो खलट। २ ख पलटत पत्र, ग पलटतु ही। ३ ख गढइ, ग डसै। ४ ख असी मति सत्र ठाकुर रटइ, ग यहि मति गति ठाकुर चित बसैं। ५ क ग्रेहहि। ६ क ता। ७ ख किं कहीइ आसुधि। ८ ख जस। ९ ग क्यों मो सुजसु पुहुमि विस्तरै। १० ग ही। ११ ख तवहु मेलति तैसी धातु; ग त्यों यां बुधि त्यों फुरती गात। १२ क री। १३ ग तंपिन। १४ ख जीवन। १५ क मार। १६ ख अकाज। १७ ख तथा ग मो। १८ ख कणवृत पेट भरत हूं, ग कणव्रिति पेट्ठ भरितौ करि। १९ ग दीनी। २० ख टवको लागीउ, ग झवकौ लागियौ। २१ ख आइ इउ, ग वात यह। २२ ग चिंतन। २३ ग मैं।

कवि रतनरंग वाच[1]

ऽ दूतिन्ह सरिसु साहि इउं कहियो। तुमथइ बोल हमारी रहियो। ९५२

ऽ बोलइ ढीली तनौ[2] नरेसा। तुमहि देउं संभलि कउ देसा ॥४६२॥ ९५३

(दूतियों द्वारा गढ़ का अगमता और अभेद्यता का वर्णन)

दूती[3] कहइ सुनहु हो स ही। हम गढ़ ऊपर कइसइं जाही। ९५४

ऽ जौ गढ जानि[4] लहन एह भेसा। हुवइ दाउ सुनि साहु नरेसा[5] ॥४६३॥

ऽ कोट विषम गढ़ दुर्ग असेसा[6]। कउंन जतन कइ करहि प्रवेसा[7]।

ऽ लोह जरति तह वज्र किवारा। घाटिहु[8] वइसे विषम जुझारा[9] ॥४६४॥

ऽ कोट कंगूरन ढारी गचा। वहुविधि जतन विधातइं रचा।

भरइं ढेकुली तीर समाना। गढ़ पर पंखि न पावहि जाना ॥४६५॥

ऽ दूती भनहि सुनहि मुलताना। गढ ऊपर किम पावहि जाना। ९६०

गढ़ उपर जौ पावहि जाना। सांचे बोल करहि परवाना ॥४६६॥

ऽ× कितीकि बात छिताई तनी। हम आनहि जखिनी नागिनी।

ऽ× मिरत लोक की कितीकि वाता। आनउं रंभहि लाइ संघाता ॥४६७॥ ९६३

(गढ़ में दूतियों के प्रवेश करने की युक्ति)

ऽ× सुनी बात दूतिन की साही। अमरिसि कोप कीयो मनमांही। ९६४

ऽ पातिसाहि मन विसमउ कीयो[10]। चेतन क्रूर मंत्र मौ दीयो ॥४६८॥

ऽ मासु साति गढ छेकइं[11] भइयो। इकइक दिवस वरस बर गइयो।

ऽ अब दूती किउं गढ़ पर जाही। कहु किसि बुद्धि कहइ यों[12] साही॥४६९॥ ९६७

---

१ यह शीर्षक क तथा ग प्रतियों में है, ख में नहीं है। २ ग बोले करि कै मया। ३ ख दासी। ४ ग चढ़न। ५ ग चुकवहिं सबहिं निसचै नरेस। ६ ग नवेसु। ७ ख में इस अर्धाली का पाठ है : 'कोट विषम गढ विष्रम भूझार, लांघइ बैठे भले झूझार।' ८ ग लंघेनि। ९ ख में इसके आगे डेढ़ अर्धाली और है : 'वहइ हवाई गोला गोली। अरहट यंत्र वहइ ढीकली॥ तीर तुरकते कठिन कमान।' १० ग भयौ। ११ ग घेरे। १२ ग कहौ बुद्धि यौं बोलै।

९३९ ऽदेउं कापरे कनक पसाउ। तुम्हिं निवाजउं करउं उमराउ।
लाख तुरी पछिम[1]के देउं। औ जे कहउ से कहीउ करेउं[2]॥४५४॥
ऽमो दिल वसइ चित्र कउ रूपा। ताते मोहउ भयो वहूता[3]।
ऽ×हठ कार(न) हउं आयो दूरी। परधन कारन मरउं विसूरी॥४५५॥
९४० ऽअरु टूटउ राजा सिउं नेहू। ए गोहि भइयो वहुति संदेहू।
दू मह होतउ एक न भयो[4]। ताते मइ तोसौं वीनवीयो[5]॥४५६॥
नाक पकरि तव वारिनि[6]कहई। मोपहि सतु न सती कउ रहई।
हउं मोहउं जखिनि किंनरी। खिनुक वाति पइ चाहइ सुनी[7]॥४५७॥
मइगल सौं मइगल वसु होइ। मृगु सिउं मृगु फांदइ सव कोइ।
त्रिया कौ भेदु त्रीया पइ लहहीं। अइसौ वचन सयाने कहहीं[8]॥४५८॥
ऽमालनि पइज करइ समुझाई। मानसु लागि पचारहु काई[9]।
ऽपाहन की पुतरी मठ[10]होई। कहि वातइ पलुहावउं सोई[11]॥४५९॥
ऽवारनि[12]कीए भगवे कपुरा[13]। कीन्ही मसवासी की करा[14]।
ऽ×तपा तपोधन चलीं ते वारा। लइगो राघौ साहि दुवारा॥४६०॥
९५० ऽकहइ साहि दूतीन्ह सिउं वाता। तुम गढ़ जाहु चढहु अधराता।
९५१ ऽ×वहुति जतन कइ कीजहु कामा! जइसइ लखइ न राजारामा॥४६१॥

---

१ ख पाछइ, ग पाछे। २ ख में एक अर्धाली का एक चरण इसके पश्चात और लिखा हुआ है 'अर तुम्ह दीउ संभरि का देस', परन्तु उसका दूसरा चरण नहीं है। क तथा ग प्रति में वह ९५३वीं पंक्ति में है और ख में भी उस स्थल पर वह दुहराया गया है। ३ क अनूपा। ४ ख मो अति होइ छिताई रही। ५ ख वीनइ, ग वीनयौ। ६ ख तथा ग नाइन। ७ ख किती एक बात छिताई तनी। हुं आनु किनर नख्यनी॥ मृत्यु लोक की किती एक बात। अव ले आवु छिताई साथ॥, ग हौं कन्या आनौ जछिनी। छिनक बात पै चाहौं सुनी॥ ८ ग मन मैलो साहिब सौं कहै। ९ ग मोपै सतु सतुवंती कौ जाई। १० ग मढ़। ११ ग बातनि हूंका ग्राउं सोइ। १२ ग नाइन। १३ ग भगौहे तिस्तरा। १४ ग में इसके आगे एक अर्धाली और है : मालिनि करि तन औरै बात। दोऊ दूती एक संघात॥

ऽ मो मनि बुधि अइस हुइ आई[1]। दिवगिरि दुरग[2] देखउं निकुताई। ९८०
ऽ तीजउ[3] हुकुम जो मेटहि मोही। चेतन अइस[4] न बुझियइ तोही ।।४७६।।

चेतनि वाच[5]

ऽ एही कुमति तइं कीयो उपाउ। मोहि अलोकु न साहि लगाउ[6]।
ऽ तेरे मरन मोहि अति गारी। अहो साहि जिय देखि विचारी ।।४७७।।
ऽ कूरी मतौ[7] साहि तुम कीनौ। मोपहि मंत्र जाइ किउं दीनौ।
जो वरजउं तउ मारहि मोही। करहि साहि जे भावहि तोही ।।४७८।।
ऽ चेतन सिउं साहिव इउं कहई। तूं करि बेगि जो मो मन रहई।
वारवार हउं विनवउं तोही। दिवगिरि दुर्ग दिखावहि मोही ।।४७९।।
ऽ हौं सिरि साहिव देखि विचारी। तूं मेटहि मेरी मनुहारी।
ऽ और होइ तउ हरउं पराना। तूं मेटहि मेरौ फुरमान ।।४८०।।
ऽ तव राघौ जानिउ जीय माही। क्रोधवंत हइ[10] मोसउं साही। ९९०
ऽ मेट सकइ को वचन तुम्हारा। चढीयइ वेगि दुपहरी वारा[11] ।।४८१।।
उठि खलाइ[12] पहिरी पइजारा। और न कोई जानइ सारा।
ऽ कालौ वागौ पहिरउ अंगु। भयो साहि कछु औरहि रंगु ।।४८२।।
ऽ म.थे कारी सोहइ खोला। अरु करु सोहइ लाल गलोला।
ऽ फेंटी गोरा[13] लीने घने। जानहु साहि तरइयां बने ।।४८३।। ९९५

---

१ ग मो बुधि ऐसी भई व आहि। २ ग सब। ३ ग चेतनि। ४ ग ऐसी यह। ५ यह शीर्षक केवल ग प्रति में है। ६ ग मोहि अलोक अलोकी नाउं। ७ क मंत्र। ८ क हमारौ कहई। ९ ग तूं मैं दीनौ जीवनु जान। १० ग क्रोध रूप भयौ। ११ ग में इस अर्धाली का पाठ है 'बेगि चलौ जनि लाउ वार। चढियै जाइ दुपहरी वार।।' १२ ग खल्याइ। १३ क गलोले, गोरा ग प्रति से लिया गया है क्योंकि गुलेल के साथ अनेक गोलों का उल्लेख ही संगत है।

६६८ ऽतउ चेतन उठि देइ असीसा । सुनि ढीलीपति साहि नरेसा[१]।
६६९ पठव वसीठ नगर[२] मंझारी । तिनके साथि चढइ उड नारी ।।४७०।।
(अलाउद्दीन द्वारा स्वयं देवगिरि गढ़ में जाने का विचार करना)
९७० पकरि साह राघौ की बांहा । लइगयौ महल भीतरे मांहा[३]।
जौ तेरे चित अहइ सुभाउ[४]। देवगिरि दुर्ग मोहि दिखराउ ।।४७१।।
ऽचेतन कहइ सुनहि हो साही । तूं ढिलीपति साहिव आही[५] ।
ऽतुमहि गए बूडइ सव राजा । तोहि गए सत्रु होइ अकाजा ।।४७२।।
तोरे गए कटक महि सोरा । औ तुम गए न रहिहइ ठौरा ।
तोहि पहिचानइ राजा रामू । तोहि गहति सव होइ अकामू[६]।।४७३।।
ऽहठि लगि सिंघु[७]लेन नहि जाई । हठ मयमंत[८]गहइ किउं धाई ।
ऽहठ तजि साहि विप्र इउं कहई । तुमहि गहति किछु वंदु न[९] रहई।।४७४।।
ऽमइ जु कहिउ तुमहीं सिउं पेटू[१०]। मेरौ कहिउ विप्र जनि मेटू[११]।
९७९ ऽमीत[१२]जानि हउं विनवौं तोही । दिवगिरि दुरग दिखावहु मोही।।४७५।।

---

१ ग सुन दिल्लीपति करहि न रीस। ख प्रति में एक अर्धाली द्वारा यह प्रसंग जोड़ा गया है 'चेतन कही साह सूं बात। उन न काहू कीनी तांति ।।' २ ख गढह, ग गढ। ३ ख में पाठ है 'तब उठि पकरी चेतन वांह । लै गयौ भीतरी महल की छांह ।।' ४ ख तथा ग 'जौ ता चेतनि चित्त सुभाउ ।' ५ ख में इस अर्धाली का रूप है 'तब चेतन उठि देहि असीस । सुनहु ढीलीपति साहि नरेस ।।' और आगे एक फालतू चरण है 'अइसै मंत्र दीउ कुं जाइ ।' ६ ख विकाम, ख में इसके आगे विना तुक के दो चरण और हैं 'तबहि रोस साहि चितु कीउ । तू मेटइ मेरू फुरमान ।।' पंक्ति संख्या ९७५ के पश्चात ग प्रति में निम्न-लिखित अंश और है:—
"सुलतानवाच—कपट रूप तूं होइ वसीठ । हौं जु पगादौ आगै धीठ ।। तू चलि जाह राइ कै पास । हौं देवगिरि देखौं चौपास ।। चेतनिवाच—"
७ ग स्यंघु । ८ ग मेगलु । ९ ग वंधु । १० ग मैं भी कहा आपनै पेट । ११ ग मेरा कह्या ब नाही मेट । १२ ग मंत्रु ।

(तृतीय खण्ड)

(अलाउद्दीन का बाग और सरोवर देखना)

ऽ पुनहु सभा सब[1] मनि धरि भाउ । जइसौ लागौ होन उपाउ । १००२
ऽ राघौ तबहि राउरइ गयो । आपुन साहि नगर महि गयो[2] ॥४८७॥
ऽ देखइ राजा तने अबासा । देखे रंगु सुपेदा पासा[3] ।
ऽ देखे मंदिर अनवन[4] खंभा । जहां होहि अखारे नटरंभा ॥४८८॥
ऽ [5] रावट रंगु भामिनी[6] जरौ । तामहु फटकु सुपेदा परौ ।
ऽ फटिक सिला बैइठकु अतिबने । मानहु छाए मंदिर तने ॥४८९॥
ऽ चारौ घाट पटाइल पाटी । नीर भरहि सुंदरिन के ठाटी ।
ऽ बाला अबला प्रौढ़ा नारी । भरहि नीर निरमल पनिहारी ॥४९०॥
ऽ तिनकउ रूप बरन जउ कहउं । कहत कथा कौ अंत न लहउं । १०
ऽ गहिरवंत कछु कहियउ न जाई । द्रिष्टवंत देखी चकराई ॥४९१॥
ऽ सोहइ कमल कुमुदिनी फूला[7] । भंवर पेखि रसु लंघन तूला ।
ऽ निबसहि हंसु हंसुनी संगू । अरु आनंद कुरलहि वहुरंगू ॥४९२॥
ऽ कुरलहि चकई चकवा चकोरा । बन बइठे फुनि[8] गुंजहि मोरा ।
ऽ ढेंकु पंखि मटवारी[10] घने । जलकुकरी पंखी तहं बने[11] ॥४९३॥
ऽ सारस संगु[12] हंस उनहारी । निवसहि[13] हंस सरोवर पारी ।
ऽX बहुति पंखि सा रवहि अपारा । देखइ साहि सरोवर पारा ॥४९४॥ १७

---

१ ग सभासध । २ ग भयौ । ३ ग रंगु सु परम विलास । ४ ग अनअन । ५ पंक्ति १००६ से १०१७ तक ग प्रति में पंक्ति १०३१ के पश्चात दी गई हैं । ६ ग मुमानी । ७ ग पान । ८ ग बास रस भूलहि न्यान । ९ ग के जीव । १० ग मटमारे । ११ ग आरि अनगने । १२ ग बग्ग । १३ ग निमसहि ।

९९९ चेतन साज सुखासन लयौ । आगे साहि पयादौ भयो[1] ।
लीनी[2] दूती संगु लगाई । दिवगिरि दुर्ग पिहूत्ते[3] जाई ॥४८४॥
चढिव साहि दिवगिरि गढ़ गयो । चेतन चतुर मंत्रु तव ठयो[4]।
पठई दूती महल मंझारी । सोधहु जाहि छिताई नारी ॥४८५॥
१००० ऽधन सु वंसु राधौ तो तनौ । धन सो राति जननि जेइं जनौ ।
१००१ ऽधन सो दतु पूरवलउ कीयो । आगे साहि पियादौ भयो ॥४८६॥

---

१ ग कियौ । २ ख लीधी । ३ ख चढे तब, ग चढे ते । ४ ख प्रति में पंक्ति संख्या ९९८ तथा ९९९ के स्थान पर केवल एक अर्धाली है पठई दूती कुवरि के पास । चेतन पहुते राइ अवास ॥' ग प्रति पंक्तियों का क्रम बदला हुआ है, पहले १००० संख्यक पंक्ति है, फि १००१, फिर १००२, फिर ९९८ तथा अन्त में ९९९ । क प्रति का क्र ही अर्थसंगत है ।

देखे सागर गहिर गंभीरा। लहरि तरंगु[1] झकोरइ नीरा[2]।
मलयागिरि चंदन आसेसा। परमल वास भूलीयो नरेसा ॥५०२॥

छंदु जाति[3]

कुसम कुंद मचकुंद मरुवो, केवरो केतुकी कल्हार।
गुलाल माल सेवंति जंभीरी, कमदु छुहारे बहुत अपार ॥५०३॥
अति पवित्र चंपकु पारजाति कूजौ जाही जूही कुंद निवारि।
पुहुप जाति कविदास जंपइ जाति फूलन्ह की गने को पार ॥५०४॥ ३

---

१ ग उतग। २ ग प्रति में इसके आगे निम्न-लिखित अर्धालियाँ और हैं 'खिन इकु बैठो सरवर तीर। बैंटि साह तहं अंचयौ नीर ॥ विरह ताप मदन सर हयौ। चलिव साह फुलबाटह्नि गयो ॥ मलतु अरु केतकी कल्हार। राइ चंपौ केवरौ अपार ॥ इनके पश्चात पंक्ति संख्या १०३३ है और पुनः तीन अर्धालियां हैं: श्रवन सुसाद पंछि के घनै। मानौ बान मदन के हने ॥ नैनन रस सोभा लखि लई। घ्रान बासुना ते त्रिपतई ॥ वर्णौ जाति नामु तिन तनौ। रतनरंग गुनीयन गुन गनौ ॥ ३ ग प्रति में यह छंद तथा तीन अर्धालियां भिन्न रूप में दी गई हैं:—

कुसुम कुंद मचकुंद मरुवौ केवरौ केतुकी कल्हार।
गुलाल सेवती मोकरो सुंदर जाइ।
महंदी पदमाख केवरौ अतिवर्ष चंपग पाइ।
जाति कूजौ जुही अति गनि रही महकाइ।
सवन दार्‌यौ दाख कमरख नार्‌यंग निबुवा नारि।
बादम्म अंम जंभीर खारिक सघन सरवर पारि।

चौपाई

कुंद खिरणी जाती फुलबादि। गनत त्रिच्छ को जानै आदि।
लौंग लाइची वेलि अनूप। चंदन बन देखे महि भूप ॥
केसरि केरा केरि के मूर। उपजहिं भीमसेनि कपूर।
तहां प्रसाद विस्न सिव तनौ। धजा उतंग कलस अनि बनौ ॥
देखि साहि जी चितयौ यौ र। यहुं निजु धरती आसिख ठौर।

१८ ऽ पुरइन पत्र सरोवर छाई। वहु फुलिवारी रही महकाई।
ऽ देखे कलश ते कंचन तने। देखे तोरन जे अति वने ॥४९५॥
२० ऽ सोवन पीपर साख अवासा। जिन महि वरिखा[1] वारह मासा।
ऽ फटिक शिला भौ अधिक बनाउ। सभा जोरि[2] जहं वइठइ राउ ॥४९६॥
ऽ देखे चित्र चितेरे तने। इंद्र भवन जनु सुरगहि[3] वने।
ऽ ब्रह्मलोक जहं[4] ब्रह्म निवासू। जनु हरि विस्न तने कविलासू ॥४९७॥
ऽ देखे मानिक चौकु अनूपा। देखि साहि तव तजीउ भूखा[6]।
ऽ देखे मस्तिगुरे[7] मयमंता। गज सिंघली ते सोभित दंता ॥४९८॥
देखे ताजी[8] तुरी तुखारा। जे महि फिरहि न लावहि, वारा[9]।
ऽ देखे सुभट[10] अपरवल[11] वीरा। जे रन गरजहिं[12] साहसु धीरा॥४९९।
ऽ देखे भर अरु तीर कमाना। जिनपहिं पंछि न पावहि जाना[13]।
ऽ× देखिउ ताल सरोवर थाना। उत्तिम लोग करहि असनाना ॥५००॥
३० ऽ देखे हाट वजार असेसा। देखइ साहि गरीवी भेसा[14]।
३१ फिरति साहि जे गएहु[15] तहां[16]। अगमु जे राम[17] सरोवर जहां॥५०१।

---

१ ग वरसहि मेह बारहौ मास। २ ग साजि। ३ ग इन्द्रहिं। ४ ग जनु। ५ ग मानहुं ईस तनौ कइलास। ६ ग भूख तजै जिन देखत भूप। ७ ग मतंगुरे। ८ ग तेजी। ९ ग जे महि फिरहि महूरत बार; ख देखे घर मंदिर वाजार। १० ग सुहर। ११ ग आपु चलि। १२ ग गंजहिं। १३ क और ख में यह पंक्ति नहीं है, केवल ग में है, भर=भारी पत्थरों के समूह के देखने का वर्णन स्वाभाविक है, क्योंकि तुर्कों के प्रत्येक आक्रमण को सामना इन पत्थरों के द्वारा भी किया जाता था। १४ ख देखे दिवगिरि गढ़ मढ़ देस। ग में इसके आगे एक अर्धाली और है : देखे सवै जु कुआ निवान। देखे सभा सरोवर थान। १५ ख देखत देख साहि गौ, ग फिरत फिरत साहि गौ। १६ यहां से ख प्रति के दो पन्ने नष्ट हो गये है। ख प्रति का पाठ पुनः ११४३वी पंक्ति से प्रारम्भ हुआ है। ख प्रति में कौन छंद थे और कौन नहीं ये यह जानने का साधन न होने से इन पंक्तियों में ऽ चिह्न नहीं लगाया गया है। १७ क मान।

सिंसिर[1]चकोर हंसु सर चवइ। विरहिनि विरह अधिक तन तवई। ५४
कोइल सुरंग सुनावई वयना। विगलति मनु सुंदरि के नयना ॥५१३॥
मस्तु परेवा गुटक[3] गंभीरा। व्यापी अधिक काम की पीरा।
भइमइ[4] चक्रित सरवर तीरा। काम विथा अति[5]लहर शरीरा[6]॥५१४॥
सरवर देखि अधिक दुख भइयो। चकउ छोड़ि[7] चकई संगु गइयो।
मो पापिनी जनमु कति भइयो। मोतजि नाहु[8]विदेसहि गइयो ॥५१५॥
मो मुख देखत चक्र[9]विछोहा। मो मुख देखत पंखिन कोहा। ६०
सुनि री सखी मइन सुनि वइना[10]। व्यापी काम कटक की सइना॥५१६॥
मइन चोट[11]व्यापी अति खरी। जिउं जल सीत[12]कमल पांखुरी।
मो दिनियर म कंतु अगारा। को अव[13]सीत बुझावन हारा ॥५१७॥
जब फग परहि[14]कंतु की मइना। तब देखिहौं तुम्हारी सइना।
तजि दुख सुंदरि[15]आप सरीरा[16]। बहुरउं खेलइ सरवर तीरा[17]॥५१८॥
व्यापी विरह मदन[18]की तापा। बोलहि पंखी हीयो सुठि कंपा[19]।
निवसहि[20]पंखि सरोवर संगा। आपु अनंदु करहि बहुरंगा ॥५१९॥
हंस सबद सरवर मंझारी। तटि[21]उपकंठि मनोहर नारी।
अति फुलबारी चहुंदिसि[22]घनी। सिरि घट नीर भरहि भामिनी[23]॥५२०॥६६

---

१ ग कीर। २ ग सारस सवद सुनावै पीव। विकसित बदन सुंदरी जीव। ३ ग घुटक। ४ ग भौ भै। ५ ग विष। ६ ग प्रति में इसके पश्चात एक चौपाई और है : लोग कहैं सब सीतल नीर। मो बिरहनि विष दहै सरीर। मो मंदिर नहिं सेज सुहाइ। चलहु सरोवर खेलैं जाइ॥' ७ ग बिछुरि। ८ ग कंतु। ९ ग चकई। १० ग सुनि सुनि सखी मैनसुख वैन। ११ क तथा ग दोनों प्रतियों में 'चोर' पढ़ा जाता है, परन्तु प्रसंग को देखते हुए चोट ही होना चाहिए। १२ क सीप। १३ ग सो विष। १४ ग पिरि परै। १५ क सुंद। १६ ग सरवर तीर। १७ ग बनसी नीर। १८ ग विष अति मदन विरह। १९ ग पंखी सबद सुमिरि सुख आप। २० ग निमसहि। २१ ग वट। २२ ग चहुंघा। २३ ग कामिनी।

चौपाई

३८ × नीवू जामुनि बेलि अपारा। कइथ कनैरी पाडल सारा।
× सोवन पंखी दाखि मंझारी। नाना रूप वनी फुलिवारी ॥५०५॥
४० × रूप सघन घन सरवर पारा। वहुत वृछि को गनइ न पारा।
४१ लौंगु लाइची वनी अनूपा। चंदन वनु देखिउ मह भूपा ॥५०६॥

(राम सरोवर के तीर पर छिताई)

४२ देखिउ रामु सरोदिक[1] तइसउ। पुहमी मान सरोवर जइसउ।
तिहपरि गई[2] छिताई नारी। खेलइ बनसी सरवर पारी[3] ॥५०७॥
× निकट महल के सरवर आही। कपट रूप देखइयहु साही।
सोवन सांटि पाट की डोरी। लीन्हे वनसी पीय औसेरी ॥५०८॥
पिय कौ बागौ पहरे अंगू। सखी वीस दस ताके[4] संगू[5]।
मध्यम चालि वरर सम लंका[6]। वदन संपूरन उयो मयंका ॥५०९॥
विछुरि चकोर चकुई संग गइयो। वाला वदन चांद निरमइयो[7]।
अरुण[8] कमल संपुट गयो वंधी। अलि चलि गए सरोवर संधी ॥५१०॥
५० × भरी काम दुख मांझ वियोगी। दुख विरहनि कइ दुख वयरागी।
पेम बिछुरि चकुई चलि गई। अंतरि करिल सरिल सरचई[9] ॥५११॥
प्रजलित मदन पेम के जोगा। व्यापी काम पंखि कइ सोगा[10]।
५३ इक कोकिलि औ चकई मोरा। जिउं[11] वसंत रितु[12] सलिल झकोरा५१२

---

१ सरोवरु। २ ग परसंग। ३ क सरू मझारी। ४ ग वाला। ५ ग प्रति में तीन अर्धालियां और हैं: "ग्रीव माल जमवर द्रढ़ अंग। तरि वन ते ज हीर मनि अंग॥ कुसुम [illegible]ग लाल ओढ़नी। बनिता बनी काम मोहनी॥ पंकज दल लोचन अति चंग। दसन पांति सोहियै सुरंग॥" ६ ग मधु मनि तिलक कुंभ गज नंक। ७ ग उग्गयौ। ८ क और। ९ ग अंतर कुरल सरल सांचइ। १० ग अधिक काम की रोग। ११ ग इकु। १२ ग अरु।

(मदनरेखा द्वारा अलाउद्दीन की भर्त्सना)

× भूलिउ साहि दुखित गनु भइयो। वदन साहि को धुरि मिलि[1] गइयो। ८६
जिह डर डरपइ सकल जहाना। जिह डर डरपइ राजा (रा)ना[2]॥५२९॥
जेइं जीते सब भुवपति राई[3]। विषमु दुर्ग गढ लीन्हें जाई[4]।
जा पाछें नउ लख किकाना[5]। सो मइ पकरिउ नीके बाना॥५३०॥
या[6] परताप सकल जगु जितिउ[7]। ए सब राइ त्रिनहिं सम गिनिउ[8]। ९०
अब सीझौ राजा कउ कामू। याहि गहित सब भागौ व्यामू[9]॥५३१॥
तूं आलमु ढीली पति तनो। सारहिं नाउ वेगि[10] आपुनो।
तइ हम कह गढ कीयो उपाउ। तुमहीं गहि राजा पहिं जाउ॥५३२॥
तुम डर दुख कुंवरि कहं भयो। अजुगत अंत हमारौ लयो।
गयो सौरसी लेन समाहा। ढोरसमुद्र की सइन अथाहा॥५३३॥
इतनो दुख तुम आए भयो। सहीयइ सो जु सहावइ दयो।
अब सुख भयो सबनकौ कामू। सुख सोवइगो राजा रामू॥५३४॥
× इतौ बोल जुवती जब कहिउ। इतउ कष्ट तुम आएँ सहिउ।
भंजन गढ़न पुरिष जे आही। तिह कें जोर नाहि सुन साही[11]॥५३५॥
सेवा करत सदा चित रामू। दिल महि सुमरइ तेरउ नामू[12]। १००
दिवगिरि दुर्ग जाहि गढ़ आही। सो राजा किउं सेवइ काही॥५३६॥
मंत्रिन मंत्र कीयौ ठहराई। मिलिउ राउ नसुर्रात कह जाई।
बरष तीन दासी यौं कहिउ। तुम कह राजा सेवति रहिउ॥५३७॥
सोऊ प्रीत न राखी चित्ता। ठाकुर अंत होइ नहि मीता।
सेवा प्रीति न जाने हीयैं। जब जब बुरी देखियैं कीयें॥५३८॥ १०५

---

१ ग प्रति में इस अर्धाली के स्थान पर यह अर्धाली है : 'दासी चितु बहुतु गहगह्यो। मैं व साहि आलमु है गह्यो॥' २ क में केवल ना है, ग में यह चरण इस रूप में हैं 'जिहि संकोच्यों राजा रामु।' ३ ग साहि। ४ ग दाहि। ५ ग किक्यान। ६ ग जिहि। ७ ग जित्यौ। ८ ग इहि कोउ त्रिन मात्र न गिन्यौ। ९ ग सुख रहि है रामू। १० ग वेगि प्रगासि नामु। ११ ग ताकौं जोरु सुहाइ न साहि। १२ ग सेवा करत कियौ जी दापु। अब भौ उदै तुम्हारौ पाप॥

(अलाउद्दीन का मदनरेखा द्वारा पहिचाना जाना)

७० × देखइ साहि चरित्रु संभारी । सव चरित्र मनु माझ विचारी[१]।
देखति साह अधिक सुख भइयो । गहि गलोल कर गोला लइयो॥५२१॥
नाखइ गोला साह सधीरा । उडहि पंखि वइठहि सरु तीरा ।
फेरइ वांह कांधु पर देई । तव चित काढि फेंटि सिउ[२] लेई ॥५२२॥
मेले[३] गोला जब दुइचारी । चरचइ तवहि छितांई नारी ।
तव सुंदरि उपनो मन[४] माही । कपट रूप कोइ साहिव आही॥५२३॥
मइनरेख समुझाइ पठाई[५] । आपुन मंदिरि पहुँती जाई[६]।
दिष्ट दुराइ तासु पहि गई । जाइ पिछौडे ठाढ़ी भई ॥५२४॥
मेलइ गोला सरवर मांही । मागइ साहि पिछौंडी वांही ।
जानहु मोकउं देइ खवासू । कीनौ तवहि साहि[७] विसवासू ॥५२५॥
८० जव जव हाथु कांध पर देइ। तब तव मांगि दासिपहि लेइ[८]।
परहि गोरा सरभर मंझारी । उडहि पंखि जल पंखि संवारी[९]॥५२६॥
उडहि पंखि सहु भई अखेटा[१०]। तब उठि गही सुंदरी फेंटा ।
नाखिति गोला एकइ[११] रहई। तवहि साहि[१२] सिउं दासी कहई॥५२७॥
इहां तुहारउ कहां खवासू । मांगहु गोरा काके पासू ।
८५ भए चक्रित साहि तिह ठाई[१३]। कहां बुधि तइं हरी खुदाई ॥५२८॥

---

१ ग प्रति में यह अर्धाली इस रूप में है : बदन सुकोमल नैन सुढार। देखै चरित सु सरवर पारि। २ ग बहुरि समझि फैंट तें। ३ ग नाखे। ४ ग जान्यो जी। ५ क सिउं कहिउ हकारी। ६ क नारी। ७ ग साहि जीव। ८ ग तब तब दासि अबोलै देइ। इसके आगे ग प्रति में एक अर्धाली और है : 'खेलत साहि घरी द्वै भई। बहुत पंखि गोरा सर हई ॥' ९ ग उठैं पंखि वैठैं सर पारि। १० क सरु भए अखोटा। ११ ग एकु न। १२ ग दासि। १३ ग जीय आई।

समउ विचारे जे चलहिं, और अपुनी बुद्धि[1] । १२२
तिनके कारज सिधि[2] चढहि, जिउं हनवंतहि सुधि[3] ॥५४७॥ १२३

(अलाउद्दीन द्वारा अनुनयविनय करने तथा घेरा उठाने और धन देकर चले जाने का वचन देकर दासी से छुटकारा पाना)

चौपाई

पातिसाह बाच[4]

हौं आलमु सिरि साहि नरेसा । देखन दुर्ग कीयो परवेसा । १२४
मइनरेह हौं विनवउं तोही । करहि सरन सुंदरि तूं मोही[5] ॥५४८॥
मइं गंजे गढ़[6] साहि नरेसा । लीने बहुते दुर्ग्ग सुदेसा ।
अब सुंदरि तेरे बसि[8] परिउ । करइ जीव जो चाहइ[9] करिउ ॥५४९॥

दोहरा

अपने अपने देस मंहि[10], सब कोउ मंडइ आरि[11] ।
खंखरि होइ दुलंभरी[12], गिरिवरि चढई संभारि[13] ॥५५०॥

चौपाई

अब सो पिरहि पराइ परीयो । मोपहि वरन न जाइ उचरियो[14] । १३०
मइनरेह गढ छांडउं तोही । दीयो वचन जो मेलहि मोही ॥५५१॥
तब सुंदरि जीय करइ विचारा । अब हउं नाउं करउं सइंसारा ।
डांडि[15] देउं हौं ढिली नरेसा । मोहि करति उबरइ सब देसा ॥५५२॥ १३३

---

१ ग अरु जी करै कुबुद्धि । २ ग सीरध । ३ ग सिधि । ४ यह शीर्षक केवल ग में है, क में नहीं है । ५ ग अदगु दागु दै सुंदरि मोही । इसके आगे ग में एक चौपाई और है "लै छोरी सुपगनि सिरो धर्यो । बहुतुग दीन भौ बिनुती करै । मैनरेह हौं बिनवौ तोहि । राखहि सरण सुंदरी मोहि ॥ ६ ग जीते बहु । ७ ग दलपती देस । ८ ग पिरि । ९ ग करहि जु तोहि चाहिजै । १० ग देसरां । ११ ग रारि । १२ ग दुरलभौ । १३ ग म्यंत पराई पारि । १४ ग मोपहि बलुब जाइ ज्यौं कर्यो । १५ क छांडि ।

सुलतान वाच[1]

१०६ वेखत्ररि सुंदरि, होइ न साही । देखि विचारि आपु जीय माही ।
× हउं राघौ का सेवक आही । वहि गौ रावर राजा पाही ॥५३९॥
अइसे रूप साहि किउं होई । आलम दुनी कहै सव कोई ।
१०९ तव हसि दासि साहि सनु[2] कहइ । अब निज राउ तोहि विग्रहइ[3] ॥५४०॥

(अलाउद्दीन का अनुताप)

११० सुनतहि वचन वदन गडि[3]गयो । अंग पसेउ वहुत दुख भयो ।
पातिसाहि जीयअति पछिताई । सिरु नीचउ कइ रहिउ सकाई[5] ॥५४१॥
वदन मलीन देखियइ काहा[6] । जनु ससि गहन चंपीयो राहा ।
मइ न कहिउ राघौ कउ हूवौ[7] । रूप पतंग दीया जलि मूवो ॥५४२॥
अरु मो भई पुहम मइं गारी । ढूंढत फिरौं पराई नारी[9] ।
अव वूडिउ ढीलो कउ राजू । मरन दुर्ग मो[10]भयो अकाजू ॥५४३॥
तरहंड वदन साहि कइ रहिउ । महा कष्ट जौ दासी कहिउ[11] ।
तवहि साहि[12]सोचहि जीय मांही । किउ उवरौं या दासी पाही ॥५४४॥
मेरौ सिल तरि चांपिउ हाथा[13] । अव किह गुन कइ काढौं हाथा ।
× सिंघु परिउ अव जंबुक दस्ता । उतरि गयो गज मस्ती मस्ता ॥५४५॥

दोहरा

१२० परदारा कहं परघरह, मंडहि जीवति रारि ।
१२१ जनम जीव रोसहि तजहि, सहहि दासि की गारि[15] ॥५४६॥

---

१ ग प्रति में यह शीर्षक है । २ ग सौं । ३ ग निग्रहै । ४ ग दुरि । ५ ग सु बदन कुम्हिलाई । ६ ग कयाह । ७ ग कियौ राघौ को कह्यौ । ८ ग रूप दिया पतंग परिदह्यो । ९ ग कामु विथा सोधनु कइ नारी । १० ग गढ । ११ न में यह अर्धाली इस रूप में है 'तिहि चितु डिढ़ न साहि कौ रह्यौ । महा दुखारौ दासी गह्यौ ।' १२ क में साहि शब्द नहीं है ग में है । १३ ग मो कर सिल तर चप्यौ अकथ्थ । १४ ग हथ्थ । १५ ग में यह दोहा इस रूप में है 'पर दुर्गह अरु पर घरह जे कोइ मंडै रारि । खुआरि होइ दुरलभी स्यंत पराई पारि ॥

मइनरेख चलि मंदिर गई। छांडी फेंट साह की दई। १४८

ऽ बइठिउ साहि कलारी[1] हाटा। चाहइ राघौ की तहं[2] बाटा॥५६०॥ १४६

(राघवचेतन का संधि प्रस्ताव)

राघौ तबहि सु रावरि गयो। उठि सु राइ अंकमु भरि लियो॥५६१॥ १५०

अरध सिंघासन दीनउ टारी। अरु अति बहुति कीन मनुहारी[3]।

पातिसाहि जौ[4] दई रसाला। सो लै आगइ धरी भुवाला॥५६२॥

राघौ कहौ[5] कटक[6] की बाता। पूंछइ राउ साहि कुशलता[7]।

पहिलइ जूझ कौन रन परियो। कौन काज तुम एवौ करियौ[8]॥५६३॥

किउं आए तुम लए[9] रिसाला। किउं पठए तुम साहि भुवाला।

राघौ कहइ साहि के बोला। सुनइ सभा सब गहिर अमोला[10]॥५६४॥

जे उमराउ जो गढ कह अरे। सइना सहित सकल रन परे।

मो तोहि प्रीति अधिक जो भई। तइं दोइ दासी मो कहुं दई॥५६५॥

तासु क्रोध[11] घेरौ गढ तोही। कहइ साहि पातिगु नहि मोही[12]।

ऽ× मांगइ सबइ[13] दर्व तुम्ह तनो। देहि निसानु गहिर आपुनो[14]॥५६६॥ १६०

---

१ ग तलहटी। २ ग केरी। ३ ख में इसके आगे एक चौपाई और है : 'चेतन कहौ एह परि ठई। सेवा करी सु निफल गई। हो रामदेव कुण पर जाउ। मोल्हन चेतन ए गुण आहि॥' ४ ख जे। ५ क कहहि। ६ ख लसकर। ७ ख तथा ग में ये दोनों चरण स्थानांतरित हैं। ८ ख कुं उण कारण तुम गढ परि चढै, ग कौन काज तुम यह गढ घिरयौ।, क में एवौ को एतौ भी पढ़ा जा सकता है। ६ ख अब लीइ। १० ख सुणौ सभागढ बैठे टोल।, ग बैठे सुनै सभा के टोल। ११ ख बोल। १२ क कहइवि पुनहि पातिखु मोही, साहि बोलु क्यौं कहिजै तोहि। १३ क सनइ। १४ ख में इसके आगे चार अर्धालियां और एक फालतू चरण और है "अब क्या कहौ साहि परमाण। मान जोगु तु मानु आण॥ चेतन कहइ सुनइ हो राइ। पातिसाहि ए लइ ण जाइ॥ मागइ गरथ अरथ भंडार। मांगइ हाथी घोड़ा सार॥ मांगइ देस वेस अरि ठाण॥ मांगइ गुहरि गढ गाजनौ। मांगइ बहुत बाजणौ॥'

११३४ पकरे लएं राउ पहिं जाउं । तउ मेरौ न[1]चलइ कलि नाउं ।
हउं दासी तूं[2]साहि नरेसा । छांडउ साहि करउ मुख लेसा ॥५५३॥
मइन गनइ साहि[3] कोरहि तने । ताके कोरि बहत्तरि गने ।
लिखिउ लेख[4]दइ वीच खुदाई । दउत दर्व तोहि देउं चढाई[5]॥५५४॥
ऊपरि नाउ दासी कउ दीयो । लिखि पाती ता कर सउंपीयो[6]।
× कागद दीयो मइन सुख हाथा । आपुन साह उवारिउ माथा ॥५५५॥
११४० मइन रेह वोलइ सुंनसाही । वचन दिढाउ मोहि दय जाही ।
छांडहु जौ दिवगिरि कौ देशा[7]। जेजे[8]लागहिं राम नरेशा ॥५५६॥
दीन लागि जौ वोलहि आफू[9]। तौ छोड़उं जौ छुवहि मुसाफू ।

सुलतान वाच[10]

जूठउ वोल जाहि जउ[11]मोही । पाछइं करइ जो भावइ तोही ॥५५७॥
मोहि न हुतौ देस सउं कामू । अर मोहि[12]भावत राजा रामू ।
मोहि अति हीए[13]छिताई रही । लिखि कइ चित्र चितेरे[14]कही॥५५८॥
मइन रेह हउं[15]विनवउ तोही । जो तूं कहहि सो करवे[16]मोही ।
११४७ करउं कूच दिन होत विहाना । पांन[17]खाउं तउ सुवर हरामा ॥५५९॥

---

१ क में जे है, परन्तु संदर्भ को देखते हुए न होंना चाहिए । ग प्रति में भी यहां न है । २ ग यहु । ३ ग नव । ४ ग कर्‌यौ पत्र । ५ ग यौं पहुंचाइ । ६ ग दिल्लीपति तरहौं मांडियौ । ७ ग छाडहि दुर्ग औरु सब देस । ८ ग जेतौ । ९ ग ऐसो बोल देहि मो आपु । १० ग में यह शीर्षक 'मोहि न हुतो' के ऊपर है, पर पंक्ति संख्या ११४३ भी सुलतान का कथन ही है । ११ ग जान दै । १२ यहां से ख प्रति का पाठ पुनः प्रारंभ हो जाता है जिसमें पाठ 'मो मन भावइ राजा रामू' ज्ञात होता है क्योंकि प्राप्त पत्र मे 'न भावइ राजा रामू' से पाठ प्रारंभ होता है । १३ ख मेरइ चिति, ग मो अति हियै । १४ ग चितौरइ । १५ ख हूं, ग सुनि । १६ ख करणो, ग करनो । १७ ख पाण, ग षाणा ।

अब जो पकरि कटारउं कांना[1]। तउ मो कहा करइ सुलितांना[2]। १७९
बरिख साति[3] सो घेरे रहइ। होइ न कछू राइ यौं कहइ[4] ॥५७६॥ १८०

दोहरा

राघौ चेतन वाच[5]

उतहि मरावइ साहि मोहि, इत तूं मार[6] नरेस।
चेतन चितह[7] बिचारीयो, ना जोगी दरवेस ॥५७७॥

चौपाई

जइतन जाजे[8] कीन्हउ बीचा। दूत न मरियइ निसुनहु भीचा[9]।
उठि कर पकरेउ वयरीसाला। दूत न मारौ जाइ भुवाला ॥५७८॥
इहु मइ सुनिउं पुरानहु दीठा[10]। बोलति आए वोल[11] बसीठा।
बेग वसीठ पठइ दय राई[12]। साहि दूत नहि मारिउ जाई[13]॥५७९॥
क्रोधवंत होइयो भुवारा। बेगि उतारि न लावहि वारा।
उतरिउ राघो साहि समेता। गढ महि रहिउ राहु औ केता ॥५८०॥ १८८

(अलाउद्दीन और राघवचेतन का लौटना तथा गढ की बातें करना)

राघौ साहि एकठे भए। उतरि दुर्ग्ग गढ डेरा गए। १८९
बूझइ साहि छिताई सारा। राघउ कहइ सबइ विउहारा ॥५८१॥ १९०

---

१ ख अब तुं सु ज हतूं पुराण। २ ख तथा ग में एक अर्धाली और है : ख हुउ गढपति असंपति दलपतो भूप। तूं विण जइ त्रिण राजा रूप।, ग हौं गढ गाढौ गढ मैं भूप। तू निवरण विणजारी पूत। ३ ख सहस बरस, ग बरिस एक। ४ ख मोरूं कछु न तुम्ह थै होइ। ५ ख ईहां चेतन वाचः, यह शीर्षक ग प्रति का है, क में शीर्षक नहीं है। ६ ख राइ, ग रीस। ७ ग मनह। ८ ख जइत जाजै, ग जैता जाजै। ९ ख दूत न मारण जाइ मीच, ग दूतहि राइ न कीजै मीचु। १० ख पाठ, ग पीठु। ११ ख बोल करडा बोल, ग बोल करुए बोल। १२ ख पठवो वसठि वेगि पहिराइ। १३ ग कीरत तारि पुहमि चलि जाइ।

१६१ × जौ तूं राजा बूझहि मोही । साहिब बोल बुझावउं[1] तोही[2] ।

ऽ×विष्टारा जो सांचु[3] न कहई । कुंभीपाक नर्क सो परई ॥५६७॥

ऽ×हउं बंभन तू राजा आही । कउल परेतइं सेविउ साही ।

ऽ×इहां तुरक किउं आवइ राजा । गाढी ठाउं विप्रन कउ काजा ॥५६८॥

ऽ×जौ गति कहउं साहि के वचना । जिउं राजा मेरे सिरि रचना ।

ऽ×जौ मारहि तौ कोउ न राखइ । विष्टारा तउ सत्तइ भाखइ ॥५६९॥

ऽ×मांगइ साहि दखिन कउ राजा । मांगइ हस्ती सिघली साजा ।

दय मनि कंचन तुरी तुरंगा । दय मदि गजि रे रहय जिउं रंगा[4] ॥५७०॥

१६९ दय गढ़ छोडि वचन दय मोही[5] । कन्या देहि रहइ पत तोही ।

(रामदेव का क्रोधित होना तथा सभासदों द्वारा राघवचेतन की प्राणरक्षा)

१७० × सुनति वात[7] राजा कोपीयो । जनु कन्हर वासगु गरबीयो[8] ॥५७१॥

× जनु कि सिंघ पर डेली परी[9] । जनु कि भीम खेलइ आवरी[10] ।

सुनी जवहिं[11] चेतन की वाता[12] । अति रिस कोपि पसीनो[13] गाता ५७२

ऽ×जानुकि पंडौ कइरौ रना । करन जंप जन भौ दरसना ।

ऽ×जानिकु जरासिंधु बिउहारा । मथुरा कोपि उजारन हारा ॥५७३॥

जानहु घन[14] गरजहि[15] असमाना । करते काढी कोपि कमाना ।

ऽ×गहि कमान तव वोलइ राउ । करउं जे मय न हृदय महि घाउ ॥५७४॥

ऽ×अइसे वचन दुष्टनहि कहा । संधि तीर क्रोधित कर गहा ।

१७८ अरे ढीठ[16] हउं मारउं तोही । अइसे वचन कहइ किउं मोही ॥५७५॥

---

१ ख जो कहोइ तोहि । २ ख में पुनः पहले की दो पंक्तियां दुहरा दी गई हैं परन्तु वह भूल स्पष्ट है । ३ क शत्रु । ४ ख दइ मणि सुंदरि सरस तुरंग । मत्त गयंद सिघली झुंड, ग दै मणि सुन्दरि तुरत तुरंग । दै गज मत्त रहै ज्यौं रंग ॥ ५ ख देवगिरि । ६ ख वचइ जीअ ताहि, ग वचै जी ताहि । ७ ख एतौ सुणत । ८ ख जागीउ । ९ ख मनहु सिंघ कोप्यौ केसरी । १० ख आंवरी । ११ ख सुणत राउ । १२ ग राजा कोप चढ्यो सुनि बात । १३ ख कोपीउ । १४ ख तथा ग मेघ । १५ ख गाजउ, ग बरसै । १६ ख तथा ग दुष्ट ।

आजु साहि गढ़ ऊपर चढ़िऊ। अइसी भयो दासि इउं पढिउ[1]। २०७

मइं पकरिउ गढ साहि नरेसा। वस्त्र गरीवी मलिने भेसा[2]॥५६०॥

गोरा हाथ गिलोल कर लए[3]। पंछी वहुत सरोवर हुए[4]।

मांगइ गोरा पांछे बाहा। तातइं मइ चरिचउ मनमाहा[5]॥५६१॥ २१०

मइ करु दीयो पींचीया[6] तोरी। डांडिउ साहि वहत्तर कोरी।

लिखिउ पत्र दय वीच खुदाई। दउत दर्व मो देइ चढाई[7]॥५६२॥

वाचा वंधु तहां मइं लीयो[8]। मो कहु साहि पत्र लिखि दीयो।

आपिउ पत्र राइ के[9] हाथा। देखिउ वांचि आपु[10] नरनाथा॥५६३॥

मइ अति कीयो वहुतिकइ माना[11]। झूठ न कहउं राय की आना[12]।

मार मार सव काहू कही[13]। डहकी काहू छयल सुंदरी[14]॥५६४॥

उहि[15] आलमु सिरि साहि नरेसा। उह[16] किउं होइ[17] गरीवी भेसा[18]।

ऽ×एक कहहि राजा तनु सयना। सांचें दासी कहत हइ वयना॥५६५॥ २१८

(मदनरेखा की सत्यता की परीक्षा)

जो तइं दासी पकरिउ साही। तउ तौ वचन धरइ[19] जीय माही। २१९

ऽ×कहिउ राउ सौं दासी विचारा। साहु चलिउ लइ कटक संभारा॥५६६॥ २२०

---

१ ख राउ रामदेव ततखिण सुण्यो; ग सो तुम सुनौ दासि यौं पढ्यौ। २ ख तथा ग वस्तर मलिन गरीबी भेस। ३ ख हाथ गिलोल गोरा करि लए।; ग गहि गिलोल गोरा कर लयौ। ४ ख सरवर पांखि बहुत उन हुए।; ग उन–तिन। ५ ख तब मइ लख्यो सुएयो इहु साहि। ६ ख पुंचीया; ग पहुंचिया। ७ ग तो यो पहुंचाई। ८ ख साहि मो कीउ; ग तहां मो भयौ। ९ ख साहि कइ। १० ख बाचा देखि राउ; ग देख्यो वाचि तबहि। ११ ख मइ तो पकरयो नीकइ बान, ग मैं अति बहुत मल्यो ता मान। १२ ख मोरू करी बहुत मनुहारि। १३ ख कोई करी; ग काहू करी। १४ ख डहकी छयल कह तो तिरी। १५ ख उ; ग वह। १६ ख सो; ग वह। १७ ख तथा ग करै। १८ ग दुर्ग परवेस। १९ ख तोरू बोल धर्यौ, ग जौ तो बोल धरै।

१९१ कहइ साहि दासी की[1] वाता । राघौ जीभ रहिउ लइ दांता[2]।
१६ मेरौ वोल न तुम (म)न[3] धरहु । भए पतंग राइ तुम मरहु[4]॥५८२॥
जो वरजउं तो मारहि[5] मोही । ताते वचन न मेटउ तोही ।
तुमहि[6] न कोई कहतउ बुरौ । मोकहु अपजसु होतौ खरौ ॥५८३॥
सवकोउ कहतौ अइसी वाता । राघउ गढ लै चढिउ संघाता ।
दूतो कइ पकराइउ साही । अइसी सव कहते जीय मांही ॥५८४॥
वुरी भई थी[7] राघौ कहई । अइसैं और न आवन लहई ।
मोकहु अपजसु होतउ घनौ । अरु बूढतउ राज तुम तनौ ॥५८५॥
१९९ करु खइराति जनमु भा नयो । आपुन साहि वधाई ठयो[8]।
१९ (मदनरेखा द्वारा रामदेव की सभा में अलाउद्दीन के आने का समाचार कहना)
२०० लागे घुमरन गुहरि निसाना । पांच सवद वाजइ अतिवाना[9]॥५८६॥
१' उतरि वसीठ जवहि घरि गयो । तवहि राय जी अति सुख[10] भयो ।
वइठौ छजे छत्र दय राई । आजु कटक वहुतइ कहराई[11]॥५८७॥
तव वोलिउ पीपा परधाना । होइहइ कूच हमारे जाना ।
लोगु कसइ[12] अपुनौ समुहाउ[13]। ताते कटक होइ कहराउ ॥५८८॥
इसि[14] अंतर दासी चलि गई । जाइ राइ[15] पइ ठाढी भई ।
२०६ हाथ जोरि कइ कीयो जूहारा[16]। लागी वात करन विस्तारा[17]॥५८९॥

१ ख नी । २ ख जीभ चंपी धरि दांत, ग रह्यो जीभ दै दात । ३ क में केवल न है, भूल स्पष्ट है; ख तथा ग चित । ४ ग फिरहु । ५ ग डाटी । ६ ख तुम्ह सूं, ग तो सौं । ७ ग ही । ८ ख में यह अर्धाली इस रूप में है : घरि घरि साहि वधावु कीउ । आपण साहि दमामुं दयौ ॥ ९ ख बाजाग्ग, ग गाहिराग । १० ग दुख । ११ ख गाहरु कहलाउ; ग कछु कहलाउ । १२ क करइ । १३ क समुझाउ, ग असवाब । १४ ग इति । १५ ग साहि । १६ ख हाथ जोर वीनवीउ व्योहार । १७ ख लागी कहण साहि व्यौहार; ग लाग्यौ कहन सबै व्योहार ।

[1]साजि अंबारी[2] ढालि[3] संदूका। उचकिउ कटक आगली धूका[4]। २३५
दीनौ बदरा दुर्ग्ग चढाई। लीयो पत्रु आपनौ मगाई[5] ॥६०४॥
भली भली दासी गढ होइ। उचकिउ[6] साहि पुंजि सी खोइ।
५×पीपइ की बुधि विधना हरी। झूठई दासी अपनी बुधि करी॥६०५॥ २३८

(मदनरेखा के कहने पर अलाउद्दीन का पुनः आक्रमण)

तब बोलिउ पीपइ[7] परिगही। मइ जु राइसिउं तबही कही। २३९
५×दासी कहइ साहि घरु जाई। अइसी बाति राउ पतियाई॥६०६॥ २४०
जौ तूं दासी चतुर सुजाना। फेरि आनि मिलवहि सुलिताना।
बैठी छाजे मइनसुख भनइं। आपन साहि बागु धरि सुनइं ॥६०७॥
जो हइ मो तोहि बोल प्रमाना। तौ गढ गिरिदु करहि सुलताना।
बोलै कटकु साहि सब फेरी। मेलिउ दुर्ग्ग चहूंदिसि घेरी ॥६०८॥
तबहि तमकि गढ घेरा[8] करिउ। भयो सचिंत तरहटी फिरिउ।
क्रोध रूप सब साहि कुरंगा[9]। चहुंघा चहुंदिस चली[10] सुरंगा[11]॥६०९।
जाइ ठान निरगंध समाना[12]। ऊपरवानी नार कमाना।
गोरा गुरिज ते मारहि मीरा। जनु आकास घन गर्ज गंभीरा[13]॥६१०॥
खरहरि कोटि परिहि धरिमाना। खनक मांझ चुनि लेहि पठाना।
इतिउति मार चहूंदिसि होइ। क्रोधवंत भए साहिब दोइ ॥६११॥ २५०

---

१ ख तथा ग में इसके पहले एक अर्धाली और है : जे जे कला कही सुंदरी। ते ते कला साहि सब करी। २ ख अंबाडी। ३ ग लाल। ४ ख थोक, ग खूब। ५ ग मिलाइ। ६ ग उलट्यो। ७ ख पीपो, ग पीपा। ८ ख तथा ग ढोवा। ९ ख पातिसाहि सुरंग, ग रिस साहिस त्रंग। १० ग लगी। ११ ख में इसके आगे एक अर्धाली और है : 'कविअण कहत नराइनदास। पठइ साहि छिताई पासि ॥' यह स्पष्टतः भूल से यहां लिखदी गई है। १२ ख कही गढ ठठरी दुरग समांन, ग ठरी ठाटरी दुगु समाण। १३ गोल गुरज चले वड मीर। पवन वेगि सर मारूं स तीर ॥, ग गुरज गुरज तकि मारहि मीर। जनु अकाल घनु गरज गंभीर ॥

२२१ कहइ राउ करवावहि कूचा[1]। गढ ग्रह गहन जे होइ अभूचा[2]।
बेगि कटक उचकावहि आजा। तौ तोहि देउ अरध गढ राजा ॥५९७॥
ऽ×जहां कोट पर ऊँच अवासा। चढी जाइ तहं ऊपरि वासा।
छाजे चढ़ी मइनसुख नारी। पातिसाहि सिउं कहइ हकारी ॥५९८॥
हउं दासी तुम साहि नरेसा। छाडहु देस करहु मुख लेसा[3]।
छांडि देस लोगन निसतारहु। अहो साहि वाचा प्रतिपारहु[4]॥५९९॥
पहिरहु कारौ बागौ[5] अंगा। चढहु साहि काले जे तुरंगा[6]।
कालौ छत्र राइ सिरि धरहु[7]। गढ के बोल[8] तुम चित मइ करहु[9]॥६००॥
× तव मनु जानि कहइ सुलिताना[10]। अब हउं वचन करौं परवाना[11]।
२३० × वचन कीयो राजा हरिचंदा[12]। भरीयो नीरु नीच घर कंदा[13]॥६०१॥
वचन[14] लागि बलि गए पताला[15]। करउं कूच इम[16] कहइ भुवाला।
करन सो कवचु आपीयो इंदू। वचन सादु धर धरनि फनिंदू[17]॥६०२॥
होत दौत ना[18] हनौ[19] निसाना। कीन्हौ साहि वचन परवाना।
२३४ दीनी विदा[20] पेस पेसरी। लादे बहुति[21] ऊंट बेसरी[22]॥६०३॥

---

१ ग करि वहै विचारु। २ ख गढ गो ग्रहण होइ जो मूच, ग गढ ग्रह ग्रहन होइ क्यों कूंचुं। ३ ग अलवेसु। ४ ख प्रतिपाल, ग प्रतिपारि। ५ ख वेसु जु। ६ ख काले हइवर चढइ तुरंगि; ग चढ्यौ साहि कर रीस तुरंग। ७ ग करै। ८ ख लेखु। ९ ख बचन चित धरौ, ग अवहि चित धरै। १० ख तब ते साहि ज करइ बिचार। ११ ख बोल बचन करइ प्रतिपाल। १२ ख वाचा बंध हरीचंद भयौ। १३ ख भरे नीर नीच घर रहो। १४ ग बाचा। १५ ख पयालि। १६ ख करै कूच हम, ग करयौ कूंचु यौं। १७ ख करण कवच आपीउ नरिंद। वचन धरणि सिर लीउ फणिंद ॥, ग बचन कवचु करणहि हित दयौ। इंदु बचन सीसु धरि लयौ। १८ ख दल। १९ ख कीनु, ग होइ। २० ग दाम। २१ ग बलद, ग लाला। २२ ख केसरी।

(दूतियों का छिताई से मिलना)

नराइनदास वाच[1]

तब दूती[2] दोइ रावरह गई । जाइ[3] दूवारे ठाढी भई । २६३
पूछी[4] जाइ छिताई सारा । रचिउ रास वइ कहइ प्रतिहारा[5] ॥६१८॥
दूती महल भीतरी गई । कुंवरि बुलाइ आपपहि लई[6] ।
पहुंचे पहुंचो[7] कमंडल हाथा । दूनो दूती एकहि[8] साथा ॥६१९॥
पहिलइहीं[9] गइ मसवासी ठारा[10] । भीतरि लई छिताई सारा[11] ।
सुनि[12] मसवासी लई हकारी । आसन दीयो[13] समीप बइसारी ॥६२०॥
भागीती[14] कौ तिलक लिलारा[15] । हाथ सुमिरनी गरि जपमारा[16] ।
रामु नामु कइ टोपी सीसा । कर तुलसी लइ दई[17] असीसा[18] ॥६२१॥ २७०

छिताई वाच[19]

कहहु तपोधन अपुनी बाता । कौन कौन[20] तीरथ कीय जाता ।

दूती बाच[22]

मकर प्रियागु वरत[23] हम कीए । गया पिंडु[24] पुरुखन कह दीए[25] ॥६२२॥ २७२

---

१ यह शीर्षक केवल ग प्रति में है । २ ख दूती तबहि, ग दूती तजिव । ३ ख सीह, ग सिंह । ४ ख बुझी, ग बूझी । ५ ख दासी असीस कही व्यौहार, ग व्यौरौ सबै कह्यो प्रतिहार । ६ ख दुती बुलाइ आप पइ लई । आगी छिताई ठाढ भई ॥ ७ ख पीछी उलछी, ग पौहंची पानि । ८ ख एकणि । ९ ख पहिली, ग पहिलु । १० ख तथा ग बार । ११ ख नारि । १२ ख ते । १३ ख डाली । १४ ख भगवति । १५ ख तिलक बन्यो ललाट । १६ ख जंपइ रामनाम मुख पाठ । १७ ख दीन्हो, ग दई । १८ ख में इसके आगे एक अर्धाली और है : सुनत छिताई आसन दीउ । बौड भोग आनि थिति ठयौ ॥ १९ यह शीर्षक ख तथा ग दोनों प्रतियों में है, क में नहीं है । २० ख कुण कुण । २१ ख की । २२ यह शीर्षक केवल ग प्रति में है । २३ ख व्रत, ग मकर । २४ ख खंडु । २५ ख तथा ग विधि पूरब दीयौ ।

२५१ चढहि मुगल जनु वंदर लंका। जीय न धरहि मरन की संका[1]।
गढ तर दुर्ग दंत[2]की ओटा। बहुतक हनहि खरहर्रिहि कोटा[3]॥६१२॥
दुर्गम तीर चलहि[4]असरारा[5]। टिकहि न साहि तने असवारा[6]।
[7]छिरकहि ताते तेल निकंदा। तिउं तिउं कोपइ साहि नरिंदा[8]॥६१३॥
गढ परि उठइ न पावइ हाथा। तीरन बेधि ते करहि अकाथा[9]।
देखि मारि[10]पीपइ परगही[11]। जीय महि लाज बहुत तेइं कही[12]॥६१४
सनमुख जाइ साहि सिउं लरियो। बहुतक[13]मारि जूझ धर[14]परियो।
तिहं कह राजे अति दुख कीयो[15]। कालु हकारि[16]आपु पहि[17]लीयो६१५
हम सइ हाथ कइ[18]लीयो अंगारा। मेटन हार कौन[19]सइंसारा[20]।

(रत्नरंग की प्रस्तावना)

रतनरंग वाच[21]

२६० रतनरंग कवियन बुधि ठई[22]। समौ विचारि नाथ[23]निरमई[24]॥६१६॥
गुनीयन गुनी नरायनदासा। तेमहि[25]रतन कीयो परगासा।
२६२SX रतनरंगु अनमिली मिलाई। जेइं रे सुनी तेहि अति मनु भाई॥६१७॥

---

१ ख धरइ तेग की मारु निसंक। २ क गाचर दंत दुर्ग, ग गढ जर दुर्ग दांति। ३ ख में इसके आगे एक अर्धाली और है : चक्रचूर गढ विढ मुगलांण। इह बिध झूझूत गिध्र मसांण। ४ ख अति भर दुर्ग वीर, ग अति भर दुर्ग चलइ। ५ ख असराल। ६ ख गढ कर लोक भिडइ भडमार। ७ इसके पहले ख में एक अर्धाली और है 'एक भागइ एक आगइ सरइ। इक इक घाइ घूमइ धरि परइ॥' ८ ख छिरकइ तेल तांता भीड मार। ऊंचा नीचु चितवन चाल। ९ ख रिख रंग दुइ भिडइ भडवाथ। १० ग जूझ। ११ ख परगह्यो। १२ ख धरे भर भयौ। १३ ख बहुतन। १४ ग रण। १५ ख तबहि राय जीय महि दुख भयौ। १६ ख बुलाइ। १७ ख तथा ग कौ। १८ ख सांम्हउ ली धरि। १९ ख मेट न कोइ न को। २० ख संसार, ग संसारु। २१ यह शीर्षक केवल ग प्रति में है। २२ ग लई। २३ ग कथा। २४ ख तथा ग वरणइ। २५ ख तथा ग वामहि।

तूं मृगुनयनी देखि[1] बिचारी । जोबन कौ फल जुवा न[2] हारी । २८५
जोवन रयण[3] पाहुणौ आहि । गए मूढ पाछे पछताहि[4] ॥६२६॥
तरवर काटि बहुरि पलुहई[5] । सरवर सूखि बहुरि जल बहई[6] ।
[7]अइसौ कहहि सयाने लोई । जोवन गयो बहुरि नहिं होई ॥६३०॥
संपति विपति होइ औ[8] जाई । ए सब सुखहि[9] कर्म कइ भाई ।
जोवन धन पाईयइ संसारा[10] । सुख चूकहि ते मूरख[11] गंवारा ॥६३१॥ २९०
चांपी जीभ छिताई दंता । तूं धिगु दूती दुष्ट असंता[12] ।
बिन सौंरसी पुरुष जे आना । पिता पुत्र ते बंधु समाना[13] ॥६३२॥
तब सुनि दूती दुचिती भई । अब यह पइज अकारथ गई ।
मेरौ नाहि कटक महि जाना । नाक कान काटइ सुलिताना ॥६३३॥ २९४

(छिताई का रत्नेश्वर महादेव के मंदिर में जाना)

ऽ×दूती इतनौ रहीं बिसूरी । जाता जाइ चलहु संग दूरी । २९५
शशि लोपिउ रवि गयो अकासा[14] । साथि छिताई सखी पचासा ॥६३४॥
चली ते रतनलिंग की जाता । दूनौ दूती चली संघाता ।
ऽ बहुति बात तिन कही बनाई । जइसें छिताई बहुरि पलुहाई ॥६३५॥
ऽ हम तो देखिउ तेरो अंता । तइ तउ गहिउ ग्यान कौ तंता[16] ।
ऽ तोसी नहीं एक चित[17] नारी । बहुत बाति हम कही बिचारी ॥६३६॥ ३००

---

१ ख तौं देखि आपणै हिइ । २ ख म । ३ ग रतन । ४ क में यह अर्धाली नहीं है, केवल ख तथा ग में है । ५ ख पालवइ, ग पालुहै । ६ ख तथा ग जल भरै । ७ ग में एक अर्धाली इसके पहले और है : बिछुर्यौ मिलै बहुरि हू आइ । कहैं सयाने बात बनाइ ॥ यह क तथा ख में नहीं है तथा अप्रासंगिक भी है । ८ ख कुणि, ग अरु । ९ ख सुणाइ । १० ख जोबन सुधा पाइ संसार, ग जोबन सुधनु आति संसार । ११ ख बावरे । १२ ख तू दूती दुष्ट अनंत, ग ऐसी बात कहैं क्यों संता । १३ क मम मोहि । १४ ख रवि लोप्यो ससि भयौ । १५ ग संतु । १६ ग तंतु । १७ क एकसी ।

२७३ बदरी बानारसी औ नेमुखारा[१]। कासी परसी कीयो केदारा[२]।
[३]हम षटमास द्वारिका रही। हम[४]दिढ़ भगति राम[५]की गही ॥६२३॥
भवरी भमतही[६] विधवा भई। दीक्षा हम कह[७] सतगुर[८]दई।
जगन्नाथ गोदावरि न्हाई[९]। और बहुत को कहइ बढ़ाई[१०]॥६२४॥
हौं पवित्र परमानंदु नाउ[११]। सेतबंधु रामेसुर जाउ।
तेरी भाउ[१२]सुनिउ हम[१३]काना। याते हम आई तो थाना ॥६२५
सुनति[१४]छिताई उत्तर दीयो। आजु पवित्र ठौर तुम कीयो[१५]।
दूती वाच[१६]
२८० कहु मोसउं[१७]अपुनौ बिउहारा। तुहि असि तिरि[१८]नहीं संसारा ॥६२६।
अति दुर्बली[१९]सचित[२०]सरीरा। कौन वस्तु की व्यापी पीरा।
बीरा खाहि न माथौ न्हाही। कहा दुख तेरे जिय माही[२२]॥६२७॥
छिताई वाच[२३]
भो पीउ[२४]पीर पिता[२५]की लाजा। इह गढ घेरेउ मेरे काजा[२६]।
२८४ मो तजि[२७]नाहु विदेसहि गयो। बहुत संदेहु मोरे जिय भयो[२८]॥६२८॥

---

१ ख बरत नेम वाणारसी पार। २ ख अरण फरस्यो केल्हण केदार। ३ ख में एक अर्धाली और है : बार च्यारि द्वारामति गई। नगर कोट देवी सुधि भई॥ ४ ख मइ, ग जिय। ५ ख राइ। ६ ख भामर भमत सु, ग भांवरि भंवतहि। ७ ख मोहि, ग हमहिं। ८ ग संतगुरु। ९ ख जाई। १० ख में यह चरण नहीं है। ११ ख में यह चरण नहीं है। १२ ग नाउ। १३ क तथा ख मइ। १४ ख सुनि, ग सुनिउ। १५ ख ठौर ए भयो, ग ठौर यह कियौ। १६ यह शीर्षक केवल ग प्रति में है। १७ ख तथा ग कहि मेरी। १८ ख तो सम तिरी, ग तोसी तिरी। १९ ख दुबरी, ग दुर्बल। २० ग सुच्यंत। २१ ख बात की, ग बात तो। २२ ख में इसके आगे एक अर्धाली और है : जांणी तेरा जीव की बात। ए दिन तोहि भोग बिन जात॥ २३ यह शीर्षक केवल ग प्रति में है। २४ क जीय। २५ क पीउ। २६ ख में यह चरण नहीं है। २७ ख लगि। २८ ख ए अंदेस विघाता दयो, ग यह संताप मोहि मन भयौ।

SX परकोटा पछिम की पौरी । तबहुं दुष्ट बिनइ करि जोरी । ३१३
SX तहं मूरति शंकर की आही । आवइ छिताई पूजन ताही ॥६४३॥
SX पहरु एक इकचित्त दिढाइ । शिवपूजा सो करइ सुभाई ।
SX दौत अरहु परकोटा जाई । लहहु छिताई सुनि सतभाई ॥६४४॥
SX पातिसाहि तव दई कवाई । यहु कहि बारी गयो समुझाई ।
SX पह फाटी भिनुसारी भयो । कोपी साहि दमामौ दयो ॥६४५॥ ३१८

(छिताई का शिवपूजन को जाना)

SX तवहि छिताई सखी हकारी । शिव पूजन चाली सौं नारी । ३१९
SX सखिन मांझ यौं दिपइ पुमाना । जइसी तारइ चंद समाना॥६४६॥ ३२०
SX चंपक वरन चीर पहिरंता । मांगु दिपइ मोतिन कइ पंता ।
SX दीसहि चंचल नयन विशाला । गरे रुलइ मोतिन कइ माला॥६४७॥
SX बहुत रूप को कहइ अपारा । वरनत कथा होइ विस्तारा ।
SX सखियन साथि छिताई लीएं । अरु सिंगारु सोरहों कीएं ॥६४८॥
SX गज गामनि सो पहुती तहां । मंडपु शिवशंकर कौ जहां ।
SX जव शिवशंकर पूजन गई । तबहि अलावदीन सुधि भई ॥६४९॥
SX सइनु असंख चलिउ समुहाई । दिउगिरि चहुंघा घेरी जाई ।
SX गयो अलावदीन सजि तहां । वारी कही समांसा जहां ॥६५०॥
SX बाजहि लागे सुहाए सादा । गढ अरु कटक होहि अति नादा ।
SX वैठो गुरिज रामदिउ राई । धसहि सूरिवां माधौ नाई ॥६५१॥ ३३०
SX सत्रह सहस धसाए आना । साजि कीयो परकोटा वाना ।
SX कारे पीरे राते सेता । सवरिवंत दीसहि वानेता ॥६५२॥
SX धसहि सूर स्वामी हित जानी । रहे रोपि परकोटा वानी ।
SX अति निसंक जीय शंक न धरई । स्वामी हेत सत्त मनु धरई॥६५३॥ ३३४

(रामदेव और अलाउद्दीन का युद्ध)

SX आइसु दीयो रामदिउ राई । सबइ अरे परकोटा जाई । ३३५
SX तब अलावदीन परिजरीयो । आपइ आइ कोट सिउं अरीयो ॥६५४॥ ३३६

३०१ रची अनूप[1]सुरंग सुतधारा[2]। आवति जाति न लागी वारा।
दूतिन देखिउ सिव कउ ठाउं। मन सुख भयो अब फावइ[3]दाउं ॥६३७॥
सवइ भेदु लइ दूनउं नारी। वहुरि गई ते कटक मझारी।
ऽ अति सुचित[4]ते खरी हुलासा[5]। पहुती पातिसाहि के पासा ॥६३८॥

छंदु जाति

कहइ दूती हमइ विगूती, बोलि तुमसिउं बयना।
हम देहिं बुधि तुम्ह करहु सिधि, चलहु साजि[6]लइ सइना ॥६३६॥
गढसिउं दछिन दिसि गनौ, कोस साति की उजारि।
३०८ ऽX तिहठां शिव की जात्रा लागइ, जांइ छितारी नारि[7]॥६४०॥

(रामदेव के बारी का विश्वासघात और अलाउद्दीन को छिताई का पता बताना)

चौपाई

३०९ ऽXबारी एक रामदिउ तनौ। नीच कर्म तिन कीनो घनौ।
३१० ऽXतब सो आई पहुंतो तहां। सभा अलावदीन हौ जहां ॥६४१॥
ऽXआइ जुहारिउ माथौ नाई। कहौं बाति जिहं होए समाई।
३१२ ऽXकहै दूती सुनहुं मो पासा। जौरे छिताई की हइ आसा ॥६४२॥

---

१ ख सुबुधि। २ ख सुत्रधार, ग सुतिधारि। ३ ग उपायो। ४ क सचित। ५ क उदासा। ६ ख तत खिण। ख गढ हुतइ दख्यण, जाउ तषिण सात कोस उजारि। आदि देवइ करत सेवइ तिहां पकरयौ नारि॥, ग गढ हुते बन जहां प्रसाद कोस साति उजारि। दिन मनि देवा करत सेवा तहां पकरहु नारि॥ इसके आगे ग प्रति में एक चौपाई और है: गढ ते दछिण दिसा उजारि। तिहठा जाइ छिताइ नारि॥ सिव पूजा दिन सुंदरि जात। पकरहु पातिसाहि परभात॥ क प्रति में आगे रामदेव के बारी का प्रसंग जोडा गया है और उसका भेद देना ~ ;छिताई के पकड़े जाने का कारण बनाया गया है, अतः यहां भी परिवर्त्तन किया गया है। देवचंद्र ने बारी का प्रसंग तथा एक और युद्ध का प्रसंग जोड दिया है जो ख तथा ग दोनों में ही नहीं है।

ऽX अरु जगमाल उठिउ हाकंतू । मारे मलिक न जानी अंतू । ३६१
ऽX मोउ जूझि कोटितर परिउ । चंडीदास पवेइया लरिउ ॥६६७॥
ऽX जूझइ भरथ महा बलवंडा । काटइ सूंड करइ दुइ खंडा ।
ऽX हाथ खरग लै उठिउ रिसाई । तुरक सैन उठियो भहराई ॥६६८॥
ऽX देखति साहि अचंभौ भयो । तव नसुरतिखां वूभन लयो ।
ऽX देखहु कटक जे हेंदू आही । वारौंवार सराहइ साही ॥६६९॥
ऽX ऐसे दस होते दल औरा । परती खांडु न छोडहि छौरा ।
ऽX जूझिउ भरथ कोटितर गिरीउ । देखति रामदेव परिजरिउ ॥६७०॥
ऽX याथें खत्री और न आही । जूझ जोग फुरमाउं जाही । ३६९

(हम्मीर के कवंध का युद्ध)

ऽX देखइ अलावदीन वरवीरा । जूझ काल कलि कुंवर हमीरा ॥६७१॥ ३७०
ऽX उठिउ कमंधु देखि सुलताना । विनु सीसहि आवइ असमाना ।
ऽX यहु वे मोहि अचंभौ घनौ । धरती परिउ सीस या तनौ ॥६७२॥
ऽX अव मो यहु सामुहौं आवंता । याकौ ऊतर देहु तुरंता ।
ऽX निसुरतिखान कहइ सिरु नाई । सुनहु कमंधु तने परिभाई॥६७३॥
ऽX तीस सहस रन परहि तुरंता । तबहि कमंधु उठइ देखंता ।
ऽX जौ तुम साहि भुइ धरहु हथियारा । परहि धरनि तौ होइ न वारा ॥६७४॥
ऽX तवहि अयधु डारे सुरिताना । परिउ धेकि धरि गए पराना ।
ऽX जिते वीर गढ़ ते ऊतरे । ते सब जूझ खांड मुख परे ॥६७५॥
ऽX हय हस्ती रावत को मासा । खुरु खुरु काटि भयो वटिवासा ।
ऽX जिउं भादउं घन पूरव वाई । गढ ऊपरि तौ रहे ते छाई ॥६७६॥ ३८०

(अलाउद्दीन का शिवमंदिर में जाकर छिताई को पकड़ना)

आगे दूनी दूती गई । तिहठां सुलितानहि लइ गई । ३८१
ऽX तबहि अलावदीन गौ तहां । मंडपु शिवशंकर कौ जहां ॥६७७॥ ३८२

३३७ ऽX तुरकन दई ठाटरी ओटा । हस्ती आनि भिकाए कोटा ।
ऽX डारि मगरवी वहु भर साजी । रहे रोपि ते चलहि न भाजी॥६५५॥
ऽX भरि भारे जव देहि लुढाई । ठाटरि टूटि चून होइ जाई ।
३४० ऽX भादउं घटा जनुकि सरवंगा । ऐसो दीसइ दल चतुरंगा ॥६५६॥
ऽX देखहि गढतल दिप्ट पसारी । मानहु सेतवंध की पारी ।
ऽX ओडनि लिए कुदाल रिसाई । सवइ अरे परकोटा जाई ॥६५७॥
ऽX खोदहि ओड करहि किलकारा । गिरत कोट नहिं लागी वारा ।
ऽX जवहि खांड परकोटा परी । कूदे मलिक सूरि बावरी ॥६५८॥
ऽX चढे तुरक चौहूंघां धाई । हाथन लई कमान रिसाई ।
ऽX धायौ सारू पवरहि वारा । तिह अति करी तुरक दल मारा॥६५९॥
ऽX मारे खान न संख्या जाना । परे खांड मुख गए पराना ।
ऽX वहुरि लरेउ कमतू वानैतू । औ चौहान सूरिआं जैतू ॥६६०॥
ऽX काकलि कुंवर पल्ह जांवलौ । जोगाजीत सूरिमा भलौ ।
३५० ऽX ए सव हाकि उठे चौहाना । मारे वहुति अंत को जाना ॥६६१॥
ऽX धायो मदनसिंघ परिहारा । खरगसिंह जोगनी पमारा ।
ऽX परे जूझ को जानइ अंतू । दुहु दल वहुति भयो आकूतू ॥६६२॥
ऽX जूझिउ छोकर लखमीदासा । जनु नटविद्या करइ अभ्यासा ।
ऽX अरु वलभद्र लरिउ रन मांडी । परिउ जूझि परि तजी न खांडी॥६६३॥
ऽX अरु पहिलाद पवेइया लरिउ । दसए दाइ प्रान परिहरिउ ।
ऽX नाथा दिउ जूझिउ वलबंडा । जिह चढि दछिनि लीन्हौ दंडा॥६६४॥
ऽX भीमसेन दल कीन्ही मारा । बाजी तहां खनाखन सारा ।
ऽX ताकी जूझ न वरिनिउं जाई । जूझति ताहि सराहइ राई॥६६५॥
ऽX भरथ कोपि रन समुहउं लरिउ । दसएं दाइ प्रान परिहरिउ ।
३६० ऽX भईया परे भयो दप छोहा । लीनौ कोपि चतुरभुज लोहा॥६६६॥

जानी जवहि[1] छिताई बाता। सुनहु अलावदीन मो[2] ताता। ४०३
जीय महि पापु न चितहि[3] साहि। हउं तेरी बेटी वर आहि[4] ॥६८८॥
ऐसो जवहि[5] सुनउ[6] सुलिताना। सीसु ढोरि तब मूंदे[7] काना[8]।
जिह लगि महि कीनी ठकुरई[9]। सोऊ बात न सीरथ[10] भई ॥६८९॥
लीलति[11] सांपु छचूंघरि[12] जइसे। भयौ वखानौ[13] मोकहु तइसे।
अति सुनि दुख सुलितानहि भयो। पायो रतन हाथतइ[14] गयो॥६९०॥ ४०८

(छिताई हरण)

पातसाहि जीय खरौ उदासा। पूजी आस न, भयो निरासा। ४०९
जौ छांडिहउं छिताई नारी। होइ अलोक पुहम महं गारी॥६९१॥ ४१०
ऽX लई तुरंगमु कुंवर चढाई। उलटि मिलानु तु मेल्यो जाई।
ऽX परिकोटा भयो पारि समाना। लोहू भयो पानी उनमाना॥६९२॥
ऽX रावत भए गगर आकारा। खले रूप होइ रहे हथियारा।
ऽX जूझे मलिक ते उमरा खाना। तेई भए मछ के बाना॥६९३॥
ऽX भई छिताई अइसे तूला। जन सरु मांझ कमल के फूला।
ऽX पातिसाहि दल कडहरु भइयो। भुजिबलि तोरि खेइ ले गईयो॥६९४॥ ४१६

(राजा रामदेव से संधि)

ऽX राजा रामुदेव पछिताना। उलटि तुरक फिरि कियो मिलाना। ४१७
ऽX मतौ कीयो तब निसुरतिखाना। सुनिहो अलावदीन सुलिताना॥६९५॥ ४१८

---

१ क प्रेम। २ ख सुणि हो साहि तू मेरो। ३ ख चितहो, ग चितवहि। ४ ख हूं बेटी सम तेरी आहि, ग हौं बेटी परि तेरी आहि। ५ ख तथा ग बचन। ६ ख कहइ। ७ ख मूंदे मूंद रहे तब। ८ ख प्रति में इसके आगे एक चौपाई और है: जो तू घालिस मोकूं हाथ। गरौ काट हूं मरखूं घात॥ सब लसकर देख्यौ दुख घणौ। तो लगि भूझ देवगिरि तणौ॥ ९ ख कटकई। १० ग सीरध। ११ ख गिलत। १२ ख तथा ग छछूंदरि। १३ क में 'पखानौं' भी पढ़ा जाता है जो उपाख्यान का रूप है, ख उपखाणौ। १४ ख हातै।

३८३ जवहीं जानिउं होत विहाना। आइ कियो शिव कुंड[1] स्नाना।
जबहीं शिव[2] मंडपु महि[3] गई। तुरकन घेर चहूंघां लई ॥६७८॥
ऽX जवहि तुरक देखे आवंता। बहुत दुख भयो तिन देखंता।
शिव शिव तब जंपहि सुंदरी। एकते सीस सारि भुइं परी ॥६७९॥
एकन कंठ कटारिन हुए। एकन डरहु हंस[4] उडि गए।
ऽX एकते जीभ खांड कइ मारी। एकन गरे आराई छुरी ॥६८०॥
मिटहि न अछिर लिखे जु सीसा। जूझी नार तहां चालीसा।
३९० ऽX कुंवरि न जानइ तिन आवंता। शंकर ध्यान धरइ निहचिंता॥६८१॥
ऽX पातिसाहि अइसी उचरई। जनु अपघात छिताई करई।
नाह वियोग पुरख के भेसा। दुखहूं महि देखीए सुकेसा ॥६८२॥
ऽX गए साहि सामुहीं बिचारी। पूजा करति गही सो नारी।
पहिचानी दूती तब कही। जीवति दस सुन्दरि सउं गही ॥६८३॥
३९५ देखी जवहि छिताई बाला। मन महि हरखिउ साहि भुवाला।

(अलाउद्दीन द्वारा छिताई को वेटी के रूप में स्वीकार करना)

३९६ ऽX तवहि छिताई जानिउं साहा। अव मो वचन एक निरवाहा ॥६८४॥
ऽX पाप दिष्ट जन चितवहि मोहि। पिता बरावर जानउं तोही।
ऽX जइसे रामुदेव जानंता। अइसी आंखन तो देखंता ॥६८५॥
ऽX जवहि रामुदिउ सेवा करी। तब तइं मया बहुत मनि धरी।
४०० ऽX वंधु बरावर कहउ प्रमाना। अव मो तूं कन्या वरु जाना ॥६८६॥
अपुने[5] पाछें लई चढ़ाई। भयो शरीर सुखारी राई[6]।
४०२ जवहीं हिदउ पीठिसिउ लागा। चावकु निछुटि निछुटि कर[7] वागा६८७

१ ख कीयौ कुंड वल। २ ख संपरि, ग सब। ३ ग गढ़ भीतरि।
४ ख प्राण। ५ ख आपण, ग आपुन। ६ ख भयो सरीर सुख बहुतिहां, ग भयौ सरीरह सुख अवि आई। ७ ख छूटिगो, ग बिछूटी।

SX कोस आठ सइ दिवगिरि कही। तिहि दिन ढीलो सूधि ज लही। ४३९
SX उलूखांन बहुति भयो चाउ। कीनउ तुरत निसानहि घाउ ॥७०६॥ ४४०
SX ढीली महि वाजे नीसाना। दिवगिरि गढ तोरिउ सुलिताना।
SX हयवति हरम सराहइ घनौ। आगे कीयो बोल आपुनौ ॥७०७॥ ४४२

(अलाउद्दीन की सेना का दक्षिण से लौटना)

SX जाकी कीरति पुहमी रहई। ते जीवहि कवि दिवचंद कहई। ४४३
SX कटक मुकामु एक दिन रहउ। कीनउ कूच साहि सामुहउ॥७०८॥
SX विरमति चल्यो साहि अनिवारा। बाढइ कथा जउं कहउं बिचारा।
SX विसधी चालि चलइ सुलिताना। चार कोश पइ करइ मिलाना॥७०९॥
SX सव भारओ धसिउ सुलिताना। आनि चंदेरी कीयो मिलाना।
SX गोपाचल गढ वाएं जानी। कटक परिउ कौंतलपुरि आनी ॥७१०॥
SX छांडि आगरौ बाइं वाटा। उतरिउ अनिवारइ के घाटा।
SX बहुति मिलान न अंतरु भयो। पातिसाहि तव ढीली गयो ॥७११॥ ४५०
दछिन आंनि फेरि आपुनी। गौ ढीली ढीलीपति धनी[1]। ४५१

(अलाउद्दीन का दिल्ली पहुँचना और शाही हरम में छिताई के रूप की प्रसंशा)

SX जितनी हरम हुती रनवासा। मुह देखन आई चहुंपासा ॥७१२॥ ४५२
SX देखहि वदन छिताई तनौ। सुख भौ बहुति साहि जी तनौ।
SX अइसे सवइ कहइ सुंदरी। धन वहि कूखि जाहि औतरी ॥७१३॥
SX सवहन मइं मुख सोहइ तिसौ। तारायन मइं चंदा जिसौ।
SX भौंह पसारि दिष्ट जव करई। पुरुष कहा सुंदरि मनु हरई ॥७१४॥ ४५६

(देवगिरि की दासियों को छिताई की देखभाल के लिए नियुक्ति)

जिनथें यहु उपाउ सव भयो। दुइ दासी लइ नसुरति गयो। ४५७
कवियन कहइ नरायनदासा। पठई साहि छिताई पासा ॥७१५॥ ४५८

---

१ यह पंक्ति ख तथा ग प्रति में पंक्ति संख्या १४७६ के पश्चात आई है।

४१९ ऽX राजा बडौ रामुदेव आही । सूधउ करि थापउ अब साही ।
४२० ऽX जीय कउ विकलपु ताकौ जाई । देहु हस्ति औ तुरी कवाई ॥६९६॥
ऽX सुनति वचन जीय महि सुख भइयो । भलौ मतौ नसुरतिखां दइयो ।
ऽX वेगि जाहि नहि लावहि वारा । कनक चवर अरु सहस तुषारा॥६९७॥
ऽX अरु लइ बडो हस्ती मयमंता । तापर सेत छत्र फहरंता ।
ऽX नसुरतिखांन चलिउ सिरु नाई । आयो रामुदेव पहिराई ॥६९८॥
४२५ ऽX कीनी बहुति राइ की काना । अपनौ थापि चलिउ हित जाना ।

(अलाउद्दीन के हरम में छिताई का प्रवेश)

४२६ हरमन मांझ गयो लइ साही । सुंदरि आई देखनि ताही[१] ॥६९९॥
भा वियोग अति बनिता बनी । तिहंक रूप देखहिं तुरकिनी ।
मदन बान अति व्यापी खरी । नाह वियोग दुख अति भरी ॥७००॥
सबहं तनौं जे चित विउहारा । हम किन पुरुष करी करतारा[२] ।
४३० भूलि भूमि ते रेखा करही । नयन धार पाइन तर परही ॥७०१॥
४३१ अति वियोग परवसि पछिताई । भोजन करइ न कछू सुहाई ।

(देवगिरि-विजय का समाचार दिल्ली पहुंचाना,

४३२ ऽX पातिसाहि समुझिउ चितलाई । निसुरतिखां तब लयो बुलाई॥७०२॥
ऽX जे फुरमान दिली महि दीयो । सो परवान चहियइ कीयो ।
ऽX सीसु निवायो निसुरतिखांना । मइं आग्या कीनी सुलिताना॥७०३॥
ऽX पाइ पाइ कोस परवाना । राखहि ढोल सुनहि सुलिताना ।
ऽX पातिसाहि दीनौ फुरमाना । वाजे कटकु मांझ नीसाना ॥७०४॥
ऽX तउ सब काहूं भौ फुरमाउ । वाजे ढोल उपजिउ सहु चाउ ।
४३८ ऽX वाजे दुइ सइ तीन हजारा । ढोल कउ भइयो सवदु अपारा ॥७०५॥

---

१ ख प्रति में इसके पश्चात एक चौपाई और है : रूपवंत देखी पदमनी । निंदा करइ सवइ आपणी ॥ परवस बांद तुरकन के परी । नाह वीउग अति दुख भरी ॥ २ ख प्रति में इसके आगे एक अर्धाली और है : देखी रूप व्यामोहित भई । इह दुख इन कत दीन्हौ दई ॥

कमल वास लीय अंग छंडाई । सकल नीर महि[1] रहे लुकाई । ४७२
जौ तइं हरी हंसु की चाला । मलिन मानसरि गए[2] मराला ॥७२३॥
होहि मंतु[3] ते केवलहु लीना[4]। तजहि देस छांडहि परवीना[5]।
ऽ इनह सवन की तइं गुन हरीउ। न्याउं वियोग विधाता करीउ[6] ॥७२४॥
दासिन पइ[7] राखी समुझाई । वहुति वात को वहइ वढाई[8] ।
ऽ अइसे[9] साहि छिताई लई । प्रगटी देस दिसंतर भई ॥७२५॥ ४७७

(अलाउद्दीन द्वारा संगीत का आयोजन)

ऽX पातर हकारावइ सुलिताना । दीयो अखारे की फुरिमाना । ४७८
ऽX नाद मृदंग कला परवीना । नाचहि चतुर प्रेमरसु लीना ॥७२६॥
ऽX तहां छिताई लई हकारी । पातिसाहि हसि कहिउ विचारी । ४८०
ऽX सुनहु छिताई पूछौं तोही । कछूक गुन दिखरावहि मोही ॥७२७॥
ऽX जो गुन सीखिउ जंगमु पासा । सो गुन सुंदरि करहि प्रगासा ।
ऽX तेरो भेदु मइं आजहीं लहिउ । बीन वजाव साहि यों कहिउ ॥७२८॥ ४८३

(छिताई द्वारा वीणा वादन)

ऽX पातिसाहि दीनौ फुरमाना । गही वीन डरपे असमाना । ४८४
ऽX जोइ गुन जंगमु पहि लीयो । सोई नादु कुंवरि तव कीयो ॥७२९॥
ऽX ज्यों ज्यों कुंवर वजावइ रागा । निकसि भूमि थइं खेलहि नागा ।
ऽX देखति साहि अचंभौ करई । सुनइ नादु चित काहू न टरई ॥७३०॥
ऽX जिते महल सतखने अवासा । घेरि पंखि वइठे चहूंपासा ।
ऽX एक भाग ऊपर ठहराहीं । राखइ नादु न जंगल जाहीं ॥७३१॥ ४८६

---

१ ख सजले जल माहि । २ क माल सिरि भए । ३ क हंसु । ४ ख होइ संत माननी मान, ग होइ जे संत मान कै मलीन । ५ ख तिजे देस के छंडे दान, ग तजे देस कै छांडे जीव । ६ ग प्रति में इसके पश्चात एक अर्धाली और है : तै सिर गुथी जु बैनी माल । लाजनि गये भुजग पताल ॥ परन्तु यह अर्धाली ग प्रति में पहले पंक्ति संख्या १४६६ पर आ चुकी है ७ ख इउ, ग यों । ८ ख का कहौं बखाण । ९ ग जैसे ।

४५९ × पातिसाह पठई सिखलाई[1]। अति दुखभरी[2]बुझावहु[3]जाई।
४६० गई ते नारि छिताई पासा[4]। बोली बोलहि दछिन[5] भासा ॥७१६॥
तुमती आहि[6] हमारी धनी। हमती दासी रामुदेव तनी।
४६२ यहु तो बात कर्मगति सारी[7]। अब दुख छांडि छिताई नारी ॥७१७॥

(दासियों द्वारा छिताई का रूप वर्णन)

४६३ तइं त्रीय संतन को गुन हरिउ। न्याउ वियोग विधाता करिउ।
[8]दुख तजि कियो छिताई रोस। अलि यौ आनि लगावहु दोस ॥७१८॥
[8]यहु उपाउ सब तुमही कर्‍यौ। अनु परवित्त लगावइ हर्‍यौ ॥७१९॥
दूती वाच[9]
तुम कचु कावरि[10]कीने वाला[11]। लाजन गये भुवंग पताला।
वदन जोति तुम ससि की[12]हरी। तू किउं सुख पावहि सुंदरी ॥७२०॥
हरे मिरग लोयन तइं वारी। ते मृग सेवहि अजौं उजारी।
कुंजर[13]कुंभ तोहि कुच भए। तउ गज देस दिसंतरि[14]गए ॥७२१॥
४७० तइं हरि कौ मधस्थल[15]हरीउ। तउ केहरि कंदरि नीकरिउ[16]।
दसन पांति अति दारौं भए। उदरि फाटि ते दारौं गए ॥७२२॥

---

१ ख कहौ वात जाई समझाई। २ ख करइ। ३ ख रहावु। ४ ग बिनती करि समुझावहि तास। ५ ग देस देस की। ६ ग कुवरि। ७ ग करी। ८ ये पंक्तियां क प्रति में नहीं है, ख प्रति में इसी स्थान पर हैं और ग प्रति में १४७५ पंक्ति के पश्चात हैं। ख प्रति का क्रम ही संगत ज्ञात होता है। छिताई के दुख निवारण के लिए दासियों ने पहले उसे क्रोधित किया और फिर आपना आशय समझा कर उसके क्रोध का समाधान किया है। ९ यह शीर्षक केवल ख प्रति में है। १० क वाकरि। ११ ख तइ कच कावरि कीन्हे बारि, ग तैं सिर गुंथी जु वैनी माल। १२ ख सीस की, ग ससिहर। १३ ख जे जग, ग जे गज। १४ ख देस देस तजि। १५ ग मंझस्थलु। १६ ख ते हरि गई कंदल नीकलउ, ग तौ हरि मेह कंद नीसर्‍यौ।

(चतुर्थ खण्ड)

(रामदेव द्वारा समरसिंह के पास छिताई-हरण का समाचार भेजना)

ऽX इतनी कथा साहिब न भई । वहुरि कथा दिवगिरि गढ़ गई । ५०८
ऽX चिंता करइ रामदिउ राई । गुन सिमरइ जीय महि पछिताई ॥७४१॥

ऽX ऊतर कहा सउंरसिंह करउं । मंत्री सुनहु यहइ जीय धरउं । ५१०
ऽX जब उह गई छितइहि सुनई । करइ दुख राजा यौं भनई ॥७४२॥

ऽX मंत्री कहइ सुनहि हो राई । अब तुम पतिहा देहु पठाई ।
ऽX धावी लीन्हों राइ बुलाइ । तासौं वाति वही समुझाई ॥७४३॥

ऽX वेगि सौंरसिह सार जनाऊ । बारबार यौं बोलइ राऊ ।
ऽX चल्यउ विदासिउं माथउ नाई । ढोरसमुद्र गढ पहुतौ जाई ॥७४४॥

ऽX सराजामु नगरी महि होई । करति साखती देखिउ सोई ।
ऽX सभा जोरि जब बइठिउ राई । पतिहा माथौ नायो जाई ॥७४५॥

ऽX तेखति कुंवर उठिउ अकुताई । पतिहा धाइ गहे ता पाई ।
ऽX जानौ दूत रामदिउ तनौ । भेटिउ कंठु नेहु करि घनौ ॥७४६॥

ऽX अरु कहि बात सुंदरी तनी । मेरी सुरति करतिहइ घनी । ५२०
ऽX इतने सुनि जे कुंवर के बयना । पतिहा के भरि आए नयना ॥७४७॥

ऽX नवहि सौंरसिह संसउ परिउ । तइं जे रुदन काहे तइं करीउ ।
ऽX तव पतिहा लागिउ ऊचरना । जइसइं साहि जूझ के करना ॥७४८॥

ऽX जिउं ढोवा कीनौ सुलितानां । जइसइं जूझ भए खरिहाना ।
ऽX जइसइं खांड कोट कौं परी । शिव पूजन आई सुन्दरी ॥७४९॥

ऽX जइसे अलावदीन वह गही । तइसी एकएक कइ कही ।
ऽX सुने वचन जब पतिहा तने । दुखकइ गुन सिमरइ आपुने ॥७५०॥

४६० SX देखति रीझि रहिउ सुलिताना । वरजी बीन भयो फुरमाना ।
SX गए भुजंगमु अपने थाना । रहत सवहु पंखीं भहराना ॥७३२॥
SX उडिकइ जीउ गए वनखंडा । रही कला रीझे वलवंडा ।
४६२ SX ताको गुन देखिउ सुलिताना । मांगि मांगि दीनी फुरमाना॥७३३॥

(छताई की अलाउद्दीन द्वारा व्यवस्था)

४६३ SX मागिउ वचन देहि निर्वाही । पाप दिष्ट जिन चितवइ साही ।
SX कहइ अलावदीन सुलिताना । राखउं तोहि पुत्री के वाना ॥७३४॥
SX वोलइ पातिसाहि सुनि नारी । धरि आपने आभरन उतारी ।
SX छूटी चूरि पहरु अरु नारी । पातिसाहि हंसि कहइ विचारी ॥७३५॥
SX भोजन करु ईछा आपुनी । पातिसाहि सुंदरिसिउं भनी ।
SX रहि मो पास हजूरी भई । यहु मई तो कहु वाचा दई ॥७३६॥
५०० SX चिन्ता वहुति वियापइ घनी । भई हजूरी रहइ पदुमिनी ।
पाप दिष्ट छोडी[1] नरनाथा । सउंपी राघौचेतन हाथा ॥७३७॥
वारह सहसु टका दिनमाना । आपुन ग्रंथ कीयो[2] सुलिताना ।
देखिनि दखिनु[3] गुन कइ आसा । अनु[4] सउंपी पातुर पंचासा ॥७३८॥
तिन संगीत सघावत[5] रहई । विधना कर्म दीयो दुख सहई ।
जे वयरागी पंथ[6] दरवेसा । जिन फिरि देखे[7] देस विदेसा ॥७३९॥
तिनहि देइ दिनमान प्रवाहा । जिउं सुधि लहइ सउंरसी नाहा ।
५०७ इह विधि रहइ छिताई वाला । लही[8] सुधि सौंरसी भुवाला ॥७४०॥

---

१ ख छंडो, ग छाडी । २ ख दीन्दु नोधन आप, ग आपु त्यौंघु बांध्यो । ३ क धिखिनु । ४ क अरु । ५ ख सिखावति । ६ ख जे पंखीआ भाट, ग जे पंखीया भाट । ७ ख ते फिर देखइ । ८ क लहइ ।

सिव होवउ जंपइ जोगेंदू । सफल वचन तो होहि नरिंदू[1] । ५५०
गुरु के वचन फुरहि जो मोही । मन इछा विधि पुरवौं तोही[3] ॥७६२॥
अइसौ वचन सिद्धि जब कहिउ[4] । राज छांडि जोगी पदु लहिउ[5] ।
निगमु[6] स्यामु सिंगी सुभ गरे । सुंदर सुघर बजावइ खरे ॥७६३॥
मुद्रा श्रवनन खरे सुढारा । चमकहि चंद्र नलिनि[7] अकारा[8] ।
जटा बांधि सिरि खप्परु धरिउ । मानहु गोपीचंद औतरिउ ॥७६४॥
पहिरे अंग वज्र कोपीना । सोहइ कांधे दखिनी वीना ।
कोमल उजल अंग विभूता । जटा जूट बांधे सिरि सूता[9] ॥७६५॥
सांवर सीप नखसिख[10] पोनागी[11] । अरुनी सम जौ मोजइ सारी[12] ।
× अंगु भसम कइ लीनउ दंडा । मन वयराग भयो बलवंडा ॥७६६॥
नारि वियोग न नगर सुहाई । वइठइ बाग बावरी[13] जाई । ५६
भूलिउ सोजु चितवइ अकाजू[14] । व्याकुल अंगु[15] गंवाएं लाजू ॥७६७॥
धोए वस्त्र न पहिरइ अंगू । वइठइ मलिन[16] मानसहु संगू ।
भोजन करत स्वाद नहि लहई । ऐसें परम वियोगी रहई ॥७६८॥
भावइ सुन्यउं न श्रवन सिंगारू । यहु विरहीजन को विउहारू[17] ।
लागहि अंग बिमारे वाना । चातिक वचन[18] सुहांहि न काना[19] ॥७६९॥५६१

---

१ ग सुफल वाच तो फुरे नायंद । २ ग तर पूरऊं । ३ ग मोहि । ४ ख माथइ सिध सिध कर दयो, ग असो बचन सिध जब दयो । ५ ख तथा ग तब जागी भयो । ६ ख स्निग्ध । ७ ख चन्द्रकांत, ग चन्द्रमाल । ८ ख प्रकार । ९ ख जूटि । १० ख सीस संवारे पगे, ग साइर सीप नवस । ११ ख तथा ग पावरी । १२ ख अरुण असित चोजै भरइ, ग अरुण असित सम मौजैं खरी । १३ ख बागरी । १४ ख बिन काज, ग बेकाज । १५ ख नइन । १६ क मिलन । १७ ख जोगी भयो सब वण्यो सरीर । ए सब बिरही वेष विचार । १८ ख चात्रिग सबद, ग चात्रिग वयन ।
§१९ ग में इस अर्धाली के चरण स्थानांतरित हैं ।

५२८ ऽX अइसे सुन सेवगु के पासा । मूरछि परिउ कछु फुरइ न सासा ।
ऽX गई घरी दुइ उठिउ वहोरा । कारन कै रोवइ सिरु टोरा ॥७५१॥
५३० ऽX जव जव सुरति पाछिली करई । तव तव मूरछ धरनी परई ।
ऽX खरौ संतापु चित्तमइं कीन्हा । जिउं तरफइ ओछे जल मीना ॥७५२॥
ऽX जव तइं संकर सेवा सकरी । तव तइं वहुति अवस्था परी ।
ऽX यह परचौ जीय लीनौ जानी । संकरु सेवा करी न मानी ॥७५३॥
ऽX काढि कटारौ लीयो रिसाई । लागिउ प्रान तजन अकुलाई ।
ऽX सोइ अवहि उपगरौं वोला । अवही हियो कै राखि अटोला॥७५४॥
ऽX छांडि दुख वावरे अयाना । सिधि सरापु भयो परवाना ।
ऽX यह जीय जानि वुधि ता हरी । वारिवारि सुमिरइ सुंदरी ॥७५५॥
ऽX वाहरि मंत्री विनती करई । मेरौ कहिउ कुंवरि चित धरई ।
ऽX यहु संसउ छांडउ मन माही । पूजत देव गरइ जो वांही ॥७५६॥
५४० ऽX राजपाट लछमी जे असेसू । होइ सकल जौ फुरइ महेसु ।
ऽX निहचइ जीउ लीजइ मानी । शंकर आहि परमपदु जानी ॥७५७॥
ऽX मंत्री कहइ न जानहि भेउ । यहु शंकर देवन्ह को देउ ।
ऽX यह निद्रा तूं छांडि वहोरी । दीजइ कर्म आपने खोरी ॥७५८॥
ऽX छांडि दुख जीय महि पछितानी । सिध्य सरापु भयो औसानी ।
५४५ ताकी वाति कुंवर मन धरई । तवहि कया विहलंवन करई ॥७५९॥

(समरसिंह का योगी होना)

५४६ ऽX राजपाट परिहरिउ असेसू । करिउ जटा लै जंगम भेसू ।
अलावदीन[1] जीवत लइ गयो । सुनति सउंरसी जोगी भयो[2] ॥७६०॥
चंद्रनाथ चंद्रागिरि वासू । तापहि लीयो जोग कउ भ्यासू ।
५४९ तिहिसउं दरसु सौंरसी लीयो[3] । तिहकै सीस[4] सिध कर दीयो ॥७६१॥

---

१ ख पातिसाहि, ग अलाउदीन । २ क प्रति में भयो शब्द नहीं है, ख तथा ग प्रतियों में है । ३ ख सिधि साधक को दरसण भयो, ग तासों दरस सौंरसी कयो । ४ ख मस्तक हाथ ।

जोगी एक[1] भेद सब कहियो। लइ सु भेदु[2] तंखिन सामुहियो। ५८४
बाट घाट सब पूछइ ताही। मन उडवे कहुं[4] पंखु न आही ॥७७६॥ ५८

(चंदवार में युवतियों का योगी पर अनुरक्त होना)

दीरघ मजल चलइ कइ पारा[5]। पहुतौ आइ नगर चंदवारा। ५८
कंठ[6] कलिन्द्री नदी बहाई। खिनुक बिलंमु रहिउ तिह जाई[7] ॥७८०॥
पनघट पास नगरु पइसारा। तिहठा आवागमन उतारा[8]।
चहुंघां चितइ चलिउ जोगेंदू। मानहु कामदेव कउ फंदू[9] ॥७८१॥ ५६
तिहठां जिते पुरुष औ नारी। जोगी चलिउ मदन सरि मारी।
अंगु कुसम सिर उपर[10] धरे। रूप रंग सब गुन बिस्तरे[11] ॥७८२॥
चलिउ से जाइ रसिक परवीना[12]। बिधीं तिया जनु बनसी मीना[13]।
एकते रहीं कलस सिर[14] लीएं। एक दुहूं कर राखे हीएं ॥७८३॥
एकते हात रही उरवाई[15]। बरबट मन जोगी लइ जाई[16]।
एक जंभाहि ते तोरहि अंगू। जे चित व्यापी अगमु अनंगू[17] ॥७८४॥
एकते कर फोरहि[18] कामिनी[19]। काम जे कोपि हीए महि हनी।
एक नारि नौतनु निकलंकू। महा मनोहर उयो मयंकू ॥७८५॥
राजरोत[20] राजन के अंगू। जान लीनु औतारु अनंगू।
कउंन भांति भउ याहि वियोगू[21]। भरि जोवन सहि साध्यो जोगू ॥७८६॥ ५६

---

१ ग सुंदरि तनौ। २ ख मिनी बुधि, ग सुनत बात। ३ ख तथा ग ततखिन। ४ ख कूं, ग कौं। ५ ख करतार, ग रितार। ६ ख कंठै, ग कांठै। ७ ख खिन इक बिरमि बिउगी रहै, खिन इक बिरमि सौंरसी रहै। ८ ख तिहां बिउगी कियो उतारा। ६ ग नर इंद। १० ग खप्पर। ११ ख भू कामनी बाण मन हणी। बिच बिच नाद वचन पिक बनी। १२ ख सलिल जात प्राभगी प्रवीन। १३ ख वेधी जाणि सु बनसी बीण, ग त्रिबिध फंद जनु बनसी मीन। १४ क कर, ख सीस धर। १५ ख एकते खाभ गहइ उर मांहि, ग एकति एक हाथ रही उर माइ। १६ ख तथा ग जोगी तन जाइ। १७ क अभंगू। १८ ग तोरहि। १६ ख एकति कुंभ कुंभ तिहां तणे। २० ख राजविंद। २१ ख कुण पाप थीइ आहि विउग।

(जोगी समरसिंह की तीर्थयात्रा)

५६६ व्यापहि कोकिल वचन[1] सरीर[2]। लागहि अंग विसारे तीरा[3]।

ऽX प्रथम देस दक्खिन कौं गयो। जांत्र य कारि जग जसु लयो ॥७७०॥

ऽX वीजानगरु और जे देसा। करइ कठिन तप जंगमु भेसा।

ऽX सिंघल दीप जहां पदमिनी। घर घर कइ देखी सब धनी ॥७७१॥

५७० ऽX रहिउ छिताई सिउं मनु लाई। पर हि नारि न चितइ सटाई।

ऽX पूरब दिसा गयो सौंरसी। पिरागु न्हान कइ बानारसी ॥७७२॥

ऽX फिरि कामताकावरू असेसा। औरउ जे पहिलीयां देसा।

ऽX ता आगें जे तीरथ घने। कीन्हे सकल हिदय आपने ॥७७३॥

ऽX न्हाइ कुंवरु सोरउं के घाटा। सकल कया कउ गयो उचाटा।

ऽX उत्तर दिसि गइयो बलवंडा। अति गिरवर ऊंचे जिहं खंडा ॥७७४॥

ऽX सवा लाख पर्वत की माला। पइंडउं खांडे के आकाला।

ऽX महा अगमु गमु जहां न आही। सुंदरि गयो नाथ कइ ताहीं ॥७७५॥

ऽX बदरीनारायन की पांती। निर्मल भयो परस तिहं गाती।

ऽX बाहुरि गयो कुंभ केदारा। धसि पर्वत आयो हरिद्वारा ॥७७६॥

५८० ऽX पाछिम दिसा जे तीरथ घने। कीन्हे सकल हीए आपने।

जोगी देस दिसंतर व्रहई[4]। जीय उचाट मनु कहूं न रहई[5] ॥७७७॥

[7]फिरि सब[8] धरणि दई दाहिनी। लहै न सुधि छिताई तनी।

५८३ गयौ जटासंकर की जात। तहां सुनी सुंदरि की[9] बात ॥७७८॥

---

१ ख सबद। २ ग सहारि। ३ ग विसाले। ४ ख लागी रहइ सबद सुनि तार। ५ ख भयो। ६ ख नवि रहै। ७ यह चौपाई ख से ली गई है, क प्रति में यह चौपाई नहीं है। ग प्रति में भी यह चौपाई है, और प्रसंग को पूरा करने के लिए आवश्यक है। इसके पूर्व ख तथा ग में एक अर्धाली और है: अति वियोग मन करौ उदास। विष समान चंदन कौ बास॥ ८ ग बन। ९ ग जोगी पै।

नारि सुमिर भौ खरौ उदासा। तिहं दिनि तिह पुरि कीयो वासा[1]। ६१४

१X काम वान व्यापहि सरवंगा। जिउं जिउं सुमिरइ त्रिय कौ अंगा॥७९४

१X अठसठि तीरथ कीए सिराई। ढीली निकट पहूंचउ आई। ६१६

(दिल्ली के निकट खांडव वन में पहुंचकर समरसिंह का वीणा बजाना)

ढीली निकट आहि खंडी वनु[2]। तिहठां कीयो सौंरसी गवनु[3]॥७९५॥ ६१७

बन बरनी तौ कथा बढ़ाई। सावज पंखी[4] गनइ न जाई।

सघन मृगवन ससे असेसा[5]। तहां वियोगी कीयो प्रवेसा॥७९६॥

बनि विश्रामु कीयो जोगेंन्द्र। कीन्हउं उदौ संपूरण चंद्र। ६२०

चंद्र किरण काया परजरी। लीन्ही बेनु सुमिरि सुंदरी॥७९७॥

तहं[6] विषई अरु[7] चतुर सुजाना। तासम पुहुमि न दोसर[8] आना।

तिहं परि[9] रागु करइ जोगेन्द्र। चित मोहिउ चलि सकइ न चंद्र[10]॥७९८॥

बंस नाद सुनि सुधा[11] समाना। मिरग सुनहि ठाढे दय[12] काना।

विषु तजि विषयी भए भुजंगा[13]। खेलत[14] फिरहि सउंरसी संगा॥७९९॥

विरही विरह बजावइ खरे[15]। तब भुजंग भेषु[16] परिहरे[17]।

मृग सुत पीवहिं सिघनि खीरा। नाद लुवध[18] भए विकल शरीरा॥८००॥ ६२७

---

१ ख निवास, ग उपास। ख में इसके आगे एक अर्धाली और है: अति वीउग अनु व्यापइ काम। सीता हरण राम श्रीराम॥ ग प्रति में यह अर्धाली निम्न रूप में है: अति वियोग व्यापे उर बान॥ अधिक सूर सौंरसी सुजान॥ २ ख दिल्ली नगर निकट को जोन, ग दिल्ली नगर निकट बीझोन। ३ ख तिहां बीउगी कीउ गुण। ४ ख सिंघ। ५ ख सघण ससोभित सफल असेस, ग सघन ससे म्रग सुवर असेस। ६ ख तथा ग इकु। ७ ग अन। ८ ख इसो, ग दूजौ। ९ ख तिहि विधि, ग इहि विधि। १० ख भ ौ उदो संपूरण चंद। ११ क पांच सबद करि सुधि। १२ ख मांगी बोन थाकीर कान, ग म्रिगनी किए सुनि ठाढे कान। १३ ख फुणिंद। १४ ख देखत। १५ ख विरहणि विरह व्यापइ खरौ। १६ क भाषा। १७ ख तिह संगति सर्प्प विष परहर्यौ, ग सुनत भुजंग भेषु परिहर्यौ। ख में इसके आगे एक अर्धाली और है: पसु जीव निर्भय भया चाके। नडरइ भी भोगणी निसक। १८ ख स्वाद।

६०० तेहि पुर पतिव्रता जे नारी । ते मन महि यों कहइ विचारी ।
जौ यहु क्रिपा[1] विधाता करई । अइसौ सुत हमरे[2] औतरई ॥७८७॥
चितवहि विभिचारिणि चितुलाई[3] । यहइ छइल विधि मिलवहु आई ।
ते सब चितवहि मनहि विचारी । इह न होइ नर की उनहारी ॥७८८॥
विधि संजोगहि भयो वियोगू[4] । तिह दुख[5] मदन धरिउ तनु[6] सोगू[7] ।
इइ अति गुनि चतुर मति प्रोढ़ा । औरु न भावहि हम तन मूढ़ा[8] ॥७८९॥
५ ऐसे सन जौ पाईय संगू । वहुति भांति कइ कीजइ रंगू ।
जिते[9] छयल तिन[10] हीनी[11] देही । करहि चतुर तिनहीं सिउ[12] नेही ७९०
कान खुजावहि नयन घुरावहि[13] । लइ उसास ते खरी जंभावहि[14] ।
नखहि निरख उर विउरहि वारा[15] । व्यापहि जवहि[16] काम की भारा ७९१
६१० देखहि छुद्रघंटिका छोरी । तनु अइठहि[17] करु अंगुरी फोरी[18] ।
घूंघट काढहि खरी लजाही । चलहि जे नेवरु सबदु सुनाही ॥७९२॥
मुरि[19] मुसकाहि चलत चित हरई । नयन फासि जनु विपया करई[20] ।
६१३ अधर सुधा[21] सुंदरि को[22] पीएं । वनिता और[23] सुहाइ न हीए ॥७९३॥

---

१ ख मया । २ ख म्हां घरै । ३ ख जे कामिनी कुटिल केराइ । ४ ख जोउ विरही तम्; कीउ विउग । ५ ग तिण धार । ६ ख तव । ७ ख जोग । ८ ख भावहि नहीं चिकनीआ मूढ़ । ९ ख तथा ग जे । १० ख अति, ग ते । ११ ख तथा ग छीनी । १२ ख करइ चतुर तिनही सूं, ग करै चतुर तिनहीं सौं । १३ कामलता काम खु जाइ, ग कान खजावहि नैन घुमाइ । १४ ख नयण घुलावहि खरी लजाइ । १५ ख नखन निरखी सिर व्यौरइ वार, ग निरखहि नखन निचोरहि वार । १६ ग जिनहि । १७ ग औटहि । १८ ख में इसके पश्चात एक अर्धाली और है : पर बालक कुच ऊपरि धरइ । गहि कपोल मुख चुंबन करइ ॥ १९ क फिरि, ख मुह । २० ग तरुण पसीजे विपया करै । इसके आगे ख प्रति में एक अर्धाली और है : इतनु करइ काम की पीर । एता लच्छण काम कइ सरीर ॥ २१ ग अधर सधर । २२ ख के । २३ ख उर ।

चमकि तांत सौं मारी सारी[1] । छोरि छिताई दई उतारी । ६४५
पचि हारौ सो बुधि कइ धनी । ठटइ न बीन छिताई तनी ॥८०९॥
फिरिति गयो जोगी सौंरसी । रूपवंत जनु पूनिउं ससी[2] ।
जोगी भेस[3] भाषा दखिनी । नाइक निपुन सो जानइ[4] गुनी ॥८१०॥
सब नायक[5] मिलि पूंछन लईयो। इहि दिसि कइसें आगमु भईयो ।
नाद स्वाद वाजिउ[6] विउहारा । जानहु[7] जोगी कछुक विचारा॥८११॥
तव जोगी[8] बोलइ[9] मुसकाई । हउं जानौं सब राग[10] बजाई । ६५०
वीन जो आहि छिताई तनी । लइ जो दिखाई जोगी[11] दछिनी॥८१२।
छुवति भयो संतोष सरीरा । ग्रीषम त्रिषा लहिउ जनु नीरा ।
तिउं सुख भयो सौंरसी हीए[12]। जनु भामिनी[13] अलिगन दिए।।८१३॥
मुंदरी लीएं सीय सुख जइसें । जीय सुख भयो सौंरसी तइसें ।
ठाटइ जोगी जानइ सुधी । वीन सवारि करइ तब सुधी[14] ॥८१४॥
जवहिं वीन कांध[15] पर धरी । मांनहु[16] मिली छिताई तिरी ।
८ तिहि विधि जोगी राख्यो ताना । महा सुघर संकरहि समाना ॥८१५॥
तिहं विधि नाद सरस सुद कीयो[17]। नायक मूरछि धरनि पर गईयो[18] । ६५५

---

१ ख चूमकी तांति तुंमरा तोरि, ग चमकितु चित्त महा सरसरी । २ ख तथा ग प्रतियों में चरणों का क्रम बदला हुआ है, परन्तु यहां ग्रहीत क प्रति का क्रम ही संगत है । ३ क जोग भ्यास । ४ ख सु जा यौ, ग सु जानै । ५ ख तथा ग नटवनि । ६ ग जानै । ७ ख जाणज । ८ ख आइसु । ९ ख जांपइ । १० ख तथा ग घाघरी । ११ क छोगी । १२ ख भयो संतोष हरष मनि हीइ । १३ ख जानि सुंदरी, ग जनिकु त्रिया । १४ ख थाट पाट करी सुनिध । बंधन बंधा तंति निबंध, ग ठाटी जोगी जान निबंध । सारि संवारि करी सुबंध ॥ १५ ख जबहि बाम कंध, ग जब तिहि बाम कंध । १६ ख जाने, ग जनु ता । १७ ख तिहि विधि नाद सुस्वर सुर लए, ग तिहि विधि सुधर सरसु सरु लयो । १८ ख नाइक सबै मूरछा गए ।

६२८ हरिसुन खीर[1]मृगीन की पीवही । वन त्रिपरीत चरित[2]देखीयही[3] ।
जननी न देखहि[4]सुत पहिचानी । बालक सकहि न जननी जानी ॥८०१॥
६३० पसु परिवरि[5]वंमु[6]वसि कीयो । इहि विधि चतुर नादु मन[7] हरीयो ।
बेधे नादुचार[8] सुख आसा । भरमनि भूलि जे आस पियासा[9] ॥८०२॥
जोगी एक अपूरब[10] कीयो । रीझे त्याग पसुन कहं दीयो ।
मृगन कंठ[11]निरमोलिक हारा । वकसे तंखिनउ[12]चित्त उदारा ॥८०३॥
हेम जरितु जे हीरा हारा[13] । रोझन गरे[14] पिन्हाए मारा[15] ।
कंठसिरी मानिक मनि जरी[16] । नौगिरही[17]निरमोलिक खरी[18] ॥८०४॥
कुंडल चौकी कटिमेखला । पहिराए पसु पूगो[19] कला ।
६३७ वकसि पसुन कहु त्याग असेसा । फुनि ढीली गढ कीयो प्रवेसा ॥८०५॥
(समरसिंह का दिल्ली में नायक गोपाल के यहां पहुँचकर छिताई की वीणा बजाना)
६३८ कर खपरु एकसवदी भयो । पूंछति नायक कइ घरु गयो ।
कछू चिन्ह तह जोगी लहिउ । तवहि विचार घरी दोइ रहिउ ॥८०६॥
६४० जवहि साहि सुंदरि पाकरी[20] । तवहीं पइज छिताई धरी[21] ।
जेतौ[22] वजावइ मेरी वीना । हौं तौ होउं[23] तासु की लीना ॥८०७॥
नायक निपुन नाम गोपाला । भुवन सोभ रस[24]भरथ भोवाला ।
६४३ जानि हकारे[25] भए उपाई । तव ही पठई बीन मंगाई ॥८०८॥

---

१ ख दूध । २ ख वेष । ३ ग महासिध्धु परतप देषियै । ४ ख सकइ, ग जानै । ५ ख सीरस । ६ ख सर्ब । ७ ख चित । ८ ख नाद साद, ग नाद लुब्ध । ९ ख भूमि भूमि भूलि भूष तिस पास, ग मृग भूले सो आस पियास । १० क अपूर्व । ११ ख मृग गल कंठ । १२ बगस्यो तिहठांउ । १३ ख हेम जडित हीरा लाल । १४ ख उर, ग उरि । १५ ख पहिराए प्याल, ग पहिराए-माल । १६ ख कंठ सकंट सरी सांकरी, ग कंठ सिरीऊ सर सरि करी । १७ ख नउ ग्रही, ग नवग्रिही । १८ ख अति जरी, ग जरी । १९ ख तथा ग पूजी । २० ग ही हरी । २१ ख तथा ग करी । २२ ख जो तु, ग जुतौ । २३ ख हु तो हूं । २४ ख सु सकल, ग सुकल । २५ ख जाण-हर, ग जानहार ।

तूं मानस दहुं केतक जोगा। देव देवतन भयो वियोगा ॥८२४॥ ६७५

ऽ अब तुम मन आपने विचारी। छांडहि सोग छिताई नारी।

कहइ छिताई लेइ उसासा। मोहि नांहि जीवन की आसा ॥८२५॥

तिहं लगि सखी रुदन मइ कीयो। नैननि सींच बुझावन हीयो[1]।

निहचइं यों मइं चितयो ध्याना[2]। विरहानल कंपइ असमाना[3] ॥८२६॥

लगी अंगु[4] अनंगु दवारी। हृदय सु बालमु लेउं उबारी[5]। ६८०

तिह लगि नयनहु ढारौं नीरा। जरइ न जिउं सउं रसी सरीरा[6] ॥८२७॥

मइन चोर तूं तब कति गयो[7]। जबहि संजोग नाहसिउं भयो।

तब तेरी जानति अधिकाई[8]। तब किन कामु न दई दिखाई[9] ॥८२८॥

निरमल होइ[10] मालिनि[11] भरतारा। त्यों जानइ अंबुधि निस्तारा[12]।

ऽ [13]तइं अति सुरति सीत कउं गन्यो। जिउं विषु रवि प्रगटहि आपुन्यो ॥८२९॥

होइ सोई दिन निपटु[14] अनाथा। ताकंह कोइ न उचावहि[15] हाथा। ६८६

---

१ क लीयो। २ ख निहचै चित चिंता पिय ध्यान, ग पिउ त्यौं च्यंत्यौं धन। ३ ख विरहानलु वाध्यौ असमान, ग विरहानलु व्यापै असमान। ४ ख लागी हीइ अंग। ५ ख हीइ सु बाल लली उवारि, ग हिदै सुबलमु लए उवारि। ६ ख तां लगि सखी रुदन मइ कीउ। नइन सींचि बुझाउं हीउ॥ ७ ख मो मन चोरि चित्त कत भयो। ८ ख तौ जाणूं तेरी अधिकाई। ९ ख तां कांइ काम दिषा दहई, ग तब तैं काम दिखाई दई। इसके आगे ग प्रति में दो चौपाइयां और हैं 'तब तौ तोहि जानती बात। जब तूं त्रास दिखातौ गात॥ तन मन बान लगाए मोहि॥ ऐसी यह न बूझियै तोहि॥ कहा करत हौ ए अपराध। ऐसे क्रम्म करैं क्यों साध॥ पाप पुन्य डरू नाही तोहिं। बरबट त्रास दिखावै मोहि॥ १० ख निवल होइ, ग निहचल होइ। ११ ख नलिनी, ग नलिनि। १२ ख तुं अबुजि न जानइ तुषार, ग तौ निश्र आपनु परै तुसारू। १३ ख प्रति में इस अर्धाली के स्थान पर केवल एक चरण है: ता दुख अधिक छिताई भयो। १४ ख होइ ज पुरुष त्रीआ अनाथ, ग होइ सुदिन जु निपट। १५ ख तिण कुं कुण उचावइ हाथ, ग ताकौ कौन उठावहि।

(छिताई को दासी द्वारा वीणा बजाने का समाचार मिलना)

६५६ दासी दिन कह[1] जाती जोई। तिन[2] पहि वीन न ठाटी होई ॥८१६॥
६६० और दिवस कइ धोखइ गई। सुनति नादु जानहु सर हई[3]।
देखिउ मूरति मनहि विचारी। पहुची जहां छिताई नारी ॥८१७॥
ऽ×जोगी एक कतहूं सईं आयो। वज्र वीण तेइं आनि चढायो।
ऽ×गुणी गुपाल रहिउ तिह हारी। ठटी वीन शंकर उनहारी ॥८१८॥
कही सवइ जोगी की वाता। भयो अनंदु छिताई गाता।
६६५ तव मन चित विचार विचारी। कही[4] सो मुख मुद्रा उनहारी ॥८१९॥

(छिताई का समरसिंह के लिए विकल होना तथा उसका समाचार
लेने के पुनः दासी को भेजना)

६६६ जिह विधि वीन वजावइ जाना। दासिन कहिउ सवइ सहिदाना[5]।
नयन सजल कइ[6] लेइ उसासा। चितहि आनंदु भई तनु[7] आसा ॥८२०॥
जिउं सावन भादउ जल झरई। अंसूपाति[8] तिउं वाला करई।
सेंदुर सम सुंदरि के नैना[9]। विदुरे हीए न वोलइ वइना ॥८२१॥
६७० अंचर लइ मुख पूंछइ सखी। रहहि न नैन बहुत कइ झखी[10]।
उठहि मुगधि मुख धोवहि नीरा[11]। कहा दुख तोहि भयो[12] सरीरा ॥८२२॥
सीता रामहि भयो वियोगू। तूं मानस दहुं केतक जोगू।
वहु दुख देखि भयो संजोगू। नल दयमयंतिह भयो वियोगू ॥८२३॥
६७४ कथा पाछिली जाहि न गनी। भयो सरापु जखि जखिनी।

---

१ ख नित की, ग दिन कौ। २ ख इण। ३ ख बीन तान गुण मन भांहि, ग बीन तान गुण जी माहि। ४ क कहु। ५ क सहिनाना, ख सहिनाण। ६ ख नइणे जल भरि। ७ ख मनि आनंद अपनी, ग चित आनंद अपनी। ८ ख अश्रुपात। ९ ग बैन। १० ख रहो हो सुन्दरि बहु क्या झकै, ग रहे नैन वो है है दुखी। ११ ग हियै निहारि। १२ ग कि तोकु भी तो दुख्ख।

चौपाई

[१]तखिरण आयसु दियौ नरेस । गयौ सौंरसी जोगी भेस । ७०४
जुरी हती सुलितानी सभा । मोहे सब जोगी की प्रभा ॥८३९॥ ७०५

(समरसिंह की अलाउद्दीन से भेंट और छद्म परिचय देकर संगीत प्रदर्शन)

चितमहि चितइ कहइ सुलिताना । नरु नरिंदू नहि याहि समाना । ७०६
बूझइ ढीली तनौ नरेसू । आइस कौण तुम्हारौ देसू ॥८४०॥

॥ दोहरा ॥

जले मोती[२] थले हीरा[३] रने वने ते[४] कुंजरा ।
घरे घरे[५] पदुमिनी नारी धन्य[६] देसु सो सिंघला ॥८४१॥

चौपाई

जोगी विनवहि[७] सुनहि नरेसू । जनमु भयो सिंघल के देसू । ७१०
मोहि भयो जब पेम वियोगू । कया कष्ट कइ साधिउ जोगू ॥८४२॥
सिरि ते खपरु लीयो उतारी । सो लइ[८] राखिउ सभा मंझारी ।
ततखिन जटाजूट गए छूटी । नगर निकट हौं लीनौ लूटी ॥८४३॥
इह पुर मेरौ सरबसु लईयो । सुनि सब सभा अचंभौ भईयो ।
ततखिन सो[९] बूझियो नरेसू । कहहि कौन तूं जोगी भेसू ॥८४४॥
कपट रूप तूं करहि फिरादा । कहहि न आइस अपनी आदा[१०] ।
[११]जौ आपुन हीं चलइ[१२] सुलिताना । तौ जे होइ चोरन कौ थाना ॥८४५॥ ७१७

---

१ यह चौपाई क प्रति में नहीं है, ख तथा ग प्रतियों में है । प्रसंग पूरा करने के लिए यह आवश्यक है । २ क तथा ग मानिकु । ३ क मोती, ख मानिक । ४ ख अनेति । ५ ग ग्रहे ग्रहे । ६ ग तात । ७ ख जंपै, ग बोलै । ८ ख गहि तिण, ग पुनि काया डार्यौ । ९ क तथा ख तब । १० ख सांची कहि अपनी बुन्याद । ११ ख में इसके पूर्व एक अर्धाली और है : जोगी कहै सुनौ नरनाह । जे लूटौ सु बसै वन मांह ॥ ग में इसके स्थान पर निम्न अर्धाली है: तब ता आपु न बूझै साहि । जिन लूटे ते केहा आहि । १२ ख जो आपण चालइ, ग जौ सैं आपु चलै ।

६८७ करि कलापु[1] कछु आसा भई। फुनि देखन दासी पाठई ॥८३०॥
आसा लगि हुउं भाखउं[2] दीना। जेइं जोगी इह ठाटी बीना।
६८९ सो दहु कौन कहां कौ आही। घर घर कइ इहि सोधिहु ताही[3] ॥८३१॥

(योगी समरसिंह का राघवचेतन के माध्यम से अलाउद्दीन से मिलना)

६९० ठटी बीन वहि कही सुनाई। तब जोगी चेतन के जाई।
चेतन तबहि रावरइ चलिउ। निकसति पौर सौंरसी मिलिउ ॥८३२॥
जोगी भेखु सो भिछकु[4] आही। चेतन चितइ रहिउ मुख चाही[5]।
जबहीं वचन जोगी विस्तरई। सुनति चित्त चेतन कउ हरई ॥८३३॥
मधुर वचन बोलइ जोगेन्दू। विप्र भिटावहु मोहि[6] नरिंदू।
तव चेतन लइ चलिउ संघाता। पूंछत प्रगटहि पिछली वाता ॥८३४॥
गयो राखि बाहरु दरुवारी। आपुनि साहि[7] जनाई सारी।
ऽ गुदरिउ तिसी साहि सिउं जाई। जइसइं कहति सुहानी राई ॥८३५॥
जोगी एक अपूरब आही ; आइस होइ बुलावउं ताही[8]।
ऽ×हाथु बीन हइ खरी निरासू। बोली बोलइ दछिनी भासू ॥८३६॥

॥ छंदु ॥

७०० कहइ राघउ[9] सुनहि सुलितान सिधु जोगी अति बहु गुनी[10]।
गले सुघर सुंदर सुजान साहि पविरि[11] दरबार मुनी[12] ॥८३७॥
[13]चितइ चित हरि लेइ सो, जौ आपइ फुरमाइए।
७०३ जो न साहि रिसाइ तौ, दरसन आनि दिखाइए ॥८३८॥

---

१ ख प्रलाप। २ ख आस लबध जो जयइ, ग आस लुब्ध हुँ भाख्यौ। ३ ख सोधु जाई जाई। ४ ख कुभक्तक, ग को भिख्खुक। ५ ख प्रति में इसके आगे एक फालतू चरण है : निकसति पवारे सुरसी मिल्यो। ६ ख म्लेच्छ, ग साहि। ७ ग सुलतानहि जाइ। ८ ग आइसु देहु बुलाउं साहि। ९ ख तथा ग चेतन। १० ख सुगति जुगति पूरयौ। ११ ख राज पवलि, राज पौंरि। १२ ख राजा बइठौ, ग रंग सौं बईठौ। १३ ख सरताण फुरमाइउ चेतन आणि मेलाव। जे गुण तुं आपण कहइ सोइ देषुं चाहि।, ग बोलतु वचन सु अमिय रस चितइ चित्तु हरि लेइ। जौ आपुन फुरमाइयै दरसन आनि करेइ॥

बचन दिढाउ करइ जौ साही[१]। तौ आपुन[२]ढीली महि जाही। ७३२
सब काहू कहुं बरजि रहावहु[३]। आहट कोइ करइ नहिं पावहु॥८५३॥

सुलितानौ वाच:—

जादौं जाति रामुदेव आही। मइ चढि तिह कह कीयो उपाही[४]।
छल कइं पकरी ताकी धीया। मांगिउ बचन ताहि मइं[५]दीया॥८५४॥

अवतौ हौं उहि वाचा छरीयो[६]। बनिता बधि के पापुहि डरीयो।
ए गुन वाहि दिखावहि बीरा। जिउं कइसइं दुख तजइ[७]शरीरा॥८५५॥

सुनति भेदु सुख[८]भयो सौंरसी। सुंदरी साधु सील जीय बसी।
बचन बोल करि दिढ बंधाना। नगरु निकटि घर[९]गयो सुलिताना॥८५६॥

जोगी कउ गुन कहिउ नरिंदू। सुनि सब सभा भयो आनंदू। ७४०
संध्या भई पहरु[१०]तव वाजिउ। विरमहि कागु कामु द्रिढ साजिउ[११]॥८५७॥

वाजन बजहि न ढामक ढोला[१२]। कोइ न बोलहि अधिके वोला[१३]।
नृपति नगर शंका असमाना। सबदु न करहि हस्ती किकाना॥८५८॥

बरनि कहिउ जोगी की ख्याती। बन बसु वंसु बजावइ राती।
पसु परिवार वंसु वसु करीयो। इह विधि चतुर सबन मन हरीयो॥८५९॥ ७४५

---

१ ख बचन विचारि करइ नरनाह। २ क तूं आपन। ३ ख घरि घरि जाइ बजावौ पढौ, ग सब काहू राखौ बरजाइ। ४ ख मइ ता कहि चढ कीउ विवाह (मूल ख प्रति में 'विवाह' शब्द कटा हुआ है), ग मैं ताकौ गढ फेर्यौ जाइ। ५ ग मागहि जोगी मैं तो। ६ ख अबतौं हौं उनि छल करि छर्यौ, ग अब तै हौं बांचा करि छर्यौ। ७ ख ताकौ दुख जाइ सरीर, ग ज्यौं क्यों हू दुख जाइ सरीर। ८ ग सुनत बात दुख। ९ ख गयौ नगरि पाढौ, ग नगर मांझ लियै। १० ख तथा ग गजरु। ११ ख वीरवनि बीरद कागदनि तज्यौ, ग रावण काम कागदिनि तज्यो। १२ ख बाजा बाजि न धरके ढोल। १३ ख बोल न सकइ अचल के तोल।

७१८ तंखिन[1] साहि भयो असवारा। देखन जोगी कउ विउहारा।
×जोजन पांच जहां उद्याना। जोगी साथि गयो सुलिताना ॥८४६॥

७२०ऽ×पातिसाहि बोलइ विहसाई। अब मो जोगी चोर दिखाई।
ऽ×संध्या समो आइ भो साही। आवन देखहु चोरन चाही ॥८४७॥

जोगी सरस नादु धुनि करी। सुधि वुधि गई तपसिन्हु[2] की हरी।
ऽ नादु रंगु रीझिए[3] कुरंगा। सब भय[4] तजिउ फिरहि ते संगा[5] ॥८४८॥

ऽ रोझ रीछ पसु सरप[6] अनूपा। देखति मोहे सव ते भूपा।
७२५ मोर चकोर ते कोकिल कीरा। नादु लुवुध[7] भए[8] विकल सरीरा[9] ॥८४९॥

(सुलतान द्वारा समरसिंह से रनवास में संगीत प्रदर्शन करने की याचना)

७२६ देखि जुगति जोगी की माही[10]। भिच्छक[11] रूप गुनी कोउ आही।
कहइ साहि जीय कीए हुलासा। एह चरित देखइ रनवासा ॥८५०॥

अधिक रंगु रस वाढइ रागू। जो मागइ सो दयहउं त्यागू।
वोले वचन साखि दयं धरमू। एइ गुन देखइ मेरी हरमू ॥८५१॥

सौंरसी उवाच

७३० तजिउ राजु सुख संपति गेहा[12]। कहा मोहि लखमी[13] सौं नेहा।
७३१ वाचा अविचल करहु नरेसा। तौ पसु नगर करौ परवेसा ॥८५२॥

---

१ ख तब सुणि। २ ख सुधि वुधि पसुअंन, ग सुधि अरु वुधि सबनि। ३ ख ग भी नहि। ४ ग भख। ५ ख प्रति में इस अर्धाली के स्थान पर निम्न अर्धाली हैः नाद रंग त्रिन अवर न रंग। मृग बालक मोहीउ भुअंग ॥ ६ ग सर्प। ७ ख सबद। ८ ख तन। ९ ख तथा ग प्रतियों में इसके आगे एक अर्धाली और हैः देखी कौतुग थाम्यौ भान। सुनत बंस बस भौ सुलितान ॥ १० ख देखी जोग जुगति की आहि। ११ ख भिख्यगु, ग भिख्खिक। १२ ख देस। १३ ख तथा ग त्याग।

(अलाउद्दीन के हरम में रमणियों की संगीतसभा)

बनिबनि वनिता सबइ बनाई। साहि सबइ हरमइ हकराई। ७६०
बइठिउ छत्र सीस परि ताना। ठाढी करी छिताई आना ॥८६७॥

$\times$लागी कामिनी करइ अनंदू। भवरु भवहि जनु मदन गयंदू।
निरतसील जौ ठयो अनूपा[1]। वढइ कथा जो वरनौं रूपा ॥८६८॥
[2]एकति कामिनि करैं कटाख। भंवर भवै जनु मदन गवाख।
एक पात्र[3]औ जोवन[4] भरी। सुघरु सुजान सुन्दरी खरी[5] ॥८६९॥
मधुर वचन पिंगल[6]विस्तरही। ते मन महा मुनिद्रिन हरही[7]।
एकन कर सोहहिं किंगुरी[8]। कामिनि रंगु रागु रसि भरी ॥८७०॥
एक रवाव दुतारा धरे[9]। सुंदर सुघरु ते गावहि गरे[10]।
ढेंका चंदु मंद रसु मारा[11]। अधिक हथौटी मिरवहि तारा[12] ॥८७१॥
विविध विचक्षरण बोलहि बयना। मानहु कुसम मस्त की सयना[13]। ७७०
एकन कामिनि कांधे यंत्रा। बरनौं[14]दसीकरण के मंत्रा[15] ॥८७२॥
जिती छिताई करी प्रवीना। ते सब गीत[16]नादु[17]रस लीना।
[18]सरमंडल सरवीरा संवारि। मुरज[19]म्रिदंग लए वर नारि ॥८७३॥ ७७३

---

१ ख तथा ग बरिणता चित्र विचित्र अनूप। २ क में यह अर्धाली नहीं है, ख तथा ग में है। ३ ख तथा ग कामिरिण। ४ ख नयणां। ५ ख में यह चरण नहीं है। ६ ग पंकज। ७ ग चाहत मनु देवरिण को हरै। ८ ग स्यंगरी। ख में यह चरण नहीं है। ९ ख एकति कांध उतारे करे। १० ग बजावै खरे। ११ ख चंद्र मंडली अघोटी जान, ग ढोलक चंद्र मंडलनि सार। १२ ख अधिक अघोटी मिलवहि तार, ग अधिक अपूरब मिलवहि तार। १३ ख मनइ मुस्तक केसरि की चेरा, ग जनु कसुंभ केसरि रंग नैन। १४ ख मानहु। १५ ख को यंत्र। १६ ख संगीत। १७ ग रंग। १८ क प्रति में पंक्ति संख्या १७७३, १७७४ तथा १७७५ नहीं हैं, उनका पाठ यहाँ ख तथा ग प्रतियों से लिया गया है। १९ ग मूज।

७४६ sX[1]तीजी राति सुन्यौ पसु नादा । चले संगु सब छाडेन्ह सादा ।

७४७ sXरीझ चले नगरी कह संगा । कीर कोकिला मोर भुजंगा ॥८६०॥

(समरसिंह का नगर प्रवेश और नरनारियों का एकत्रित होना)

७४८ जबहि आइ निकरे दरबारा[2]। नगर लोक सब कौतुक हारा ।

s सुनति नगर ताकौ बिउहारा। कौतुक कउं उमड़इ संसारा ॥८६१॥

७५० s उठी चली कामिनी अनूपा । तिनको कौन वखानइ रूपा ।

७५१ s जौ कवि रूप वरनि कइ कहई। कहति कथा कउ अंत न लहई॥८६२॥

(नारियों का विमोहित होकर आना और हरम में एकत्रित होना)

७५२ s एक ते एक बांह देइ चली[3]। नैन कुरंगिनि वनिता मिली[4] ।

s एकन आंजे एक ते नइना । एक ते सूघे बोलि न बयना ॥८६३॥

s चिकने केश हाथन कांगई[5] । कौतुक देखनि अइसे[6] गई ।

s एकन कर चंदन आरसी । देखइ चित्रसाल ते धसी ॥८६४॥

s एक ते अघ नहाति[7]उठि चली। अधिक उलइनी ऐसी मिली[8]।

s एकै तरिवनु[8] पहिरे कांना । कौतुक भूलि भई अग्याना[9] ॥८६५॥

ठां ठां होइ तमासा तूला[10]। तिउं तिउं होइ सौंरसी फूला ।

७५९ छाजिहु चढ़ि चढ़ि देखहि लोगा[11]। सुनति सयानिहु भयौ वियोगा॥८६६॥

---

१ ग प्रति में इसके पहले एक चौपाई और है: वर बिवान तिन चल्यौ लिवाइ । चल्यौ चतुर लैं बंसु बजाइ ॥ तजि आखरी तुरत भए संग । चलियौ साहि सौंरसी संग ॥ २ ग बाजार। ३ ग जकीं। ४ ग थन थूलते चलतै थकीं। ५ ग कांकही। ६ ग सो सब। ७ ग अन न्हाएं। ८ ग हाथ उतारि लई सांकली। ८ ग तरिका। ९ ख प्रति में पंक्ति १७५२ से १७५७ तक की छह पंक्तियों के स्थान पर केवल तीन पंक्तियाँ हैं जो इनके शब्दों को लेकर ही गढ़ी गई हैं, परन्तु अत्यन्त अव्यवस्थित हैं: एकत बाँह एक कांचली। देखिए चित्रसाली तइ छली॥ एकै लटका पहिरे कांन। कोतिक भूलि रहे अग्यान॥ एकति आंजे एकै नयन। एक न्हान उछी विण नयणाई॥ १० ख ठाढी तरुणि तमासै भूल। ११ ख छाजे छत्रणि देखे लोक, ग छाजे छत्रिणि देखै लोग।

मिले नैन नयनन महि जाई। फिरइ न दिष्ट जे रहे फिराई। ७८८
इति सुंदरि के आंसू ढरही। अलावदीन के कांधे परही ॥८८१॥
रोवइ छोह छिताई नारी। जनु बियोग सर छांडिय पारी। ७९०
परहि कंधु पर ताते बिंदा। तब फिरि चितयौ साहि नरिंदा॥८८२॥
तइसउ मुख देख्यो नरनाहा। उगत चांद जनु चांपिउ राहा।
वस्त्र मलीन परवसु पदमनी[1]। तउ वियोगिनी बरिणता बनी[2]॥८८३॥
चितवत[3] चित्त साहि कौ हरीयो। नीचउ बदन छिताई करीयो।
तब बूझी सुलितान हकारी। रोवहि कहा छिताई नारी॥८८४॥
सुंदरि देखि अनूपम बाता। नादु लुबधि पसु तपा[4] संघाता।
तोहि लगि आयो याहि लिवाई। केहूं दुख जौ तेरौ जाई॥८८५॥
जीय महि समुझि[5] छिताई कहई। पापी प्रान अजहूं घट रहई।
अब तनु हंसु उडहि नहीं पंखी[6]। देखिउ दुखी सौंरसी अंखी॥८८६॥
नर को जनमु कत बिधना दीया। जौं रे जनम तौ कत भई[7] तीया। ८००
जबहि त्रिया कत कीयो बियोगा। उडहि हंस अब भयो संजोगा[8]॥८८७॥
मोहि लगि कंत वियोगी भयो। मेरौ जीउ अजहुं नहिं गयो[9]। ८०२

(हैवत मलका द्वारा समरसिंह के संगीत की परीक्षा)

ऽ×हयवति हरम सराहइ घनौ। यहु गुन सही सौंरसी तनौ॥८८८॥ ८०३
ऽ×हैवति हरमु पहूंती आई। जंगमु गुन देखइ निकुताई।
ऽ×लीन्हौ कुंवरि गरे ते हारू। मेल्यो सींग न करिउ विचारू॥८८९॥
ऽ×जंगमु नादु राखि भी ध्याना। भाजे हरिन देखति असमाना।
ऽ×साठि हाथु परदा इकुसारा। फांदति तिनहिं न लागी वारा॥८९०॥ ८०७

---

१ क सुन्दरी। २ क सरबसु भरी। ३ क देखत। ४ ख नाद सबद भए आप। ५ ख तथा ग जानि। ६ ख बिउ उरि हंस उडित नहीं पंखि, ग अब उडि जाहि हंस ज्यौं पंखि। ७ क की। ८ ख कहइ छिताई कर्म्म को दोष, ग उडहि हंस ज्यौं देखै लोग। ९ ख इतनु दुख बिधाता दीउ।

७७४ पेमकपट[1] पखावज वीन[2] । वैठी तरुणि तमासै लीण ।
७७५ कबियनु कहै नराइनदास । इहि विधि वणि बैठो रणिवास ॥८७४॥

(हरम में समरसिंह का आगमन)

७७६ पुनि आयो सौंरसी सुजाना । हरमन सहित[3] जहां मुलिताना ।
रोझ ससे संभलि[4] मृग माला । चलहि कुरंगिनि मधुरी चाला ॥८७५॥
मीर चकोर ते कोकिल रंगा[5] । ए सब फिरहिं सौंरसी संगा[6] ।
जे मनु हरहिं मृग[7] लोचनी[8] । तीखिन तरुनी रूप तुरकिनी[9] ॥८७६॥
७८० हरमइं भूलि भरम तिहं देखा[10] । रूपवंत सो[11] मदन बिसेखा ।
मृगुनयननि देखे[12] मृग संगा । चूमत चाटत सूंघत अंगा[13] ॥८७७॥
अइसे देखि चित्त तब हुलसी[14] । हरमन[15] हीए वसइ सौंरसी[16] ।
ते कामिनि अति तनुमनु हई[17] । मुगधा प्रोढा देखन गई[18] ॥८७८॥
विरही[19] नादु[20] वजावइ वंसू । गजमोती जिउं टूटहि अंसू ।
७८५ रागु तागु जनु भयो[21] हुलासू[22] । नयन नीर तब ढारहि आंसू[23] ॥८७९॥

(समरसिंह और छिताई का एक दूसरे को देखना तथा छिताई की वेदना)

७८६ सुंदरि सही अमोलक[24] कहही । देखि सरूप नयन अति वही ।
७८७ जवहीं द्रिष्टि छिताई परी । रहि गयो वंसु नादु धुनि हरी ॥८८०॥

---

१ ग किपाट । २ ख पखावज प्रमांण । ३ ग मांझ । ४ ख सूवर । ५ ख कीर । ६ ख ए देखहि सुरंसी सरीर । ७ ग हरणि हरिण । ८ ख विरां रहइ वा मृगै लोचनी । ९ ख ततखिण तिहां तरुणी तुरकणी, ग ऐसे रूप वनी तरकिणी । १० ख हरम भरम भूली ता देखि । ११ ख ने, ग अति । १२ ग देखीं । १३ ख सोभित चतुर ने चलइ सुरंग, ग सूंघति चलहिं सौंरसी संग । १४ ख ते अति उकति देखइ उल्हसै, ग असा चरितु देखि उल्हसी । १५ क रहमन । १६ ख बहुत दुख बसै । १७ ख तासु पान मन सरती रही, ग ते कामिनि अति तानन आइ । १८ ग सत्र सुखदाइ । १९ ख विरहणि । २० ख तथा ग बिरह । २१ ख राग तरंग कियौ, ग रागाई तान भयौ । २२ ख तथा ग उछाह । २३ ख नइण भरे भूरि प्रवाह, ग नैणनि नीर भयौ परवाहु । २४ ख निर्मल रतन जे परइ, ग सुंदरि सबै अमोलक ।

SXहरमइ देखिउ महल मंझारी । जहां छिताइ करई वयारी । ८३२

SXतवहि छिताई लीनी जानी । प्रगट न सकइ साहि की कानी॥१०३॥

SXरही मष्टि कइ जुवाबु न दीयो । जंगमु भेदु जानि सो लीयो ।

SXजब दोऊ सनमुखे चितइयो । नयनहु नीर होए भरि लइयो ॥१०४॥

SXजनु ग्रीषम रितु दाढी दंगू । मइन लहर जनु डसी भुजंगू ।

SXकामु विथा तनु सही न जाई । चौकस नैन मिलइ तहं आई॥१०५॥ ८३७

(छिताई का रुदन और अलाउद्दीन द्वारा समरसिंह को छिताई दान में देना)

SXआंसू परहि साहि के सीसा । उंचइ चितइ साहि तब दीसा। ८३८

SXकरइ छिताई जीय दुख घनौ । जंगमु कहा होइ तो तनौ ॥१०६॥

देखि रागु रीझिउ[१]मुलिताना । जोगी मांगि देउं तोहि[२]दाना । ८४०

अरु[३] मइ बाचा दीनी तोही । जौ राखउं तउ पातिक मोही॥१०७॥

वाचा दे कइ करइ[४]अवाचा । तिनकौ मुख देखइ नहिं पांचा ।

यौं बोलइ ढीली की धनी । हउं कीरति राखउं आपुनी ॥१०८॥

Xमेरे जीय हइ हयवति[५]हरमू । ए सब जानहि याकउ[६]मरमू ।

Xउह जे वसइ तोहि जीय माही । जोगी मांगि कहइ यों साही[७]॥१०९॥

कहइ सौंरसी सुनही महीपा[८] । तोहि राज सब जंबू दीपा ।

जीते देस देस के राई । तुमहिं तेज किउं बरनिउं[९]जाई[१०]॥११०॥

सिंधु न भरिउ जाइ अंकवारी । तुम निरपति बाचा प्रतिपारी।

कहइ सौंरसी मनहि विचारी । बकसहि[११]साहि छिताई नारी॥१११॥ ८४६

---

१ ख देखि धुजाइचि कहि । २ ख मांगि बोल हुँ बोलूं । ३ ग कहै । ४ ख बाचा बोलु जु करै । ५ ख हहूबत । ६ ख जी कउ । ७ ख कहइ दीन मांगइ दुइ हाथ । मांगइ जोगी बोलै नरनाथ ॥ ८ ख कहइ जोगी सुणि महि भूप । ९ ख कहणो । १० ख तथा ग में एक अर्धाली और है: हस्ती जो न अंकुसहि सहै । ताकैं तेज साहि क्यों रहै ॥ ११ ख बकसइ ।

८०८ ऽ×हिरन भागि सब गए उद्यान्ना । देखि चरितु जंगम पछितान्ना ।
ऽ×हयवति हरमु रोस कइ भनिउ । तेरी गुन कौडो परि गनिउ ॥८९१॥
८१० ऽ×जा कुरंग गर थाती माला । सोई बेगि आनि दहराला ।
ऽ×अपुने हथु सींग थइ लेऊं । तब तुम मुख मांगहु सो देऊं ॥८९२॥
ऽ×यह सुनि कुंवर पहूतौ तहां । जमुना नदी अपर्बल जहां ।
ऽ×वन बेहड़ झिरना चहुंपासा । गही बीन जीय भयो उदासा ॥८९३॥
ऽ×करइ राग सारदा संभारी । कीनौ दीपगु रागु बिचारी ।
ऽ×उवहइ हिरन जा सिगन हारा । साथि लिए आपुन परवारा॥८९४॥
ऽ×और वहुत को जानइ सारा । चले भूलि कइ रागु विचारा ।
ऽ×लाग्यौ कुंवर बजावन बीना । मोहि कुरंग रहे मनु लीना ॥८९५॥
ऽ×आस पास मृग मांझु कुंवारा । जनु गाइंन मइ चलिउ गोवाला ।
ऽ×तिन महि कुंवर सोहियइ कइसौ । स्यामु घटा महि दिनीयर जइसौ॥८९६
८२० ऽ×देखि चरितु रीझिउ सुलिताना । कहि बे मोसउं नसुरतिखांना ।
ऽ×ढीली सहरु करइ जे नादू । लायो हरनु बेनु के सादू ॥८९७॥
ऽ×ढीली सहरु रीझ जौ रहियो । यहु जंगमु नसुरतिखां कहीयो ।
ऽ×धन्य जनम जंगम तो आही । जीमहि दहुति सराहइ साही ॥८९८॥
ऽ×अस्तु अस्तु बोलइं सब गुनी । धन्य कुंवर विद्या तो तनी ।
ऽ×कहइ छिताई परचौ घनौ । यह गुन सही सौंरसी तनौ ॥८९९॥
ऽ×यह विद्या याही तइ होई । यातइं गुनी न दूजौ कोई ।
ऽ×अरु मो नैन उमाहे माई । अध करकइ कुच रहे दिढाई ॥९००॥
ऽ×हयवति हरमु सराहइ घनौ । धंन्य जनमु जंगमु तो तनौ ।
ऽ×कुंवरि हार सींगन थइ लेई । तवही वकस सौंरसिह देई ॥९०१॥
८३० ऽ×मांगि मांगि जंगम सउं कहई । भली वस्तु जापरि जीउ रहई ।
८३१ ऽ×दूजे हरिन चरित जव सुनिउं । तव यह वचन साह निज सुनिउं ॥९०२॥

×अब मइं दई छिताई तोही । तो गुन सुनति भयो सुख मोही । ८६६
×बोल वोलि जौ झूठहु परउं । हरत परत दोऊ परिहरउं ॥६२०॥

×बाचा करि सतु छांडि निपाना । जीतवु निफलु कहइ सुलिताना ।
×दई छिताई तवही साही । घन धन साहि सराहइ जाही ॥६२१॥

तव सुंदरि मन महि विहसाई[1] । बकसी नटुवा तवहि[2] बुलाई । ८७०
×दई कुंवर जंगमु कइ साथा । दई बिदा लइ चालिउ साथा ॥६२२॥

कहइ अलावदीन सुलताना । मइ तौ देखिउ तेरी ग्याना ।
जोगी भेसु कवंन तू आही । कहइ भरमु इउं बोलइ साही ॥६२३॥

कहइ सौंरसी मनहि विचारी । एह सुंदरि मेरी बरनारी ।
राजा रामुदेव की धीया । जोग कष्ट इहं कारन कीया ॥६२४॥

सुंदरि साध्य सत्ति लगि रही । जौ तइं बाति खुदि आलमु कही[3] ।

सुलितानो वाचा[4]

भूलो नहीं तहां करतारा[5] । जइसी त्रिया तइसो भरतारा ॥६२५॥

जव तइं पहिले करी फिरादी । तब मइं जानी तेरी आदी ।
जव मोहि चोरन पहि लइ गइयो । तवही मइ तेरो मनु लईयो ॥६२६॥

वंसु साधि[6] जव कीनउं नादू । तव जानिउं मइं तेरो स्वादू । ८८०
जव देखी मुद्रा उनहारी । वकसी तवहि छिताई नारी ॥६२७॥

अव तूं खेम कुसल घरि जाही । दई विदा इउं बोलइ साही ।
×चलियो लइ जु छिताई साथा । दीनी बिदा जबहि नरनाथा ॥६२८॥ ८८३

(अलाउद्दीन द्वारा छिताई को उसके गहने लौटाने के लिए हेजम द्वारा बुलाना तथा भ्रमवश छिताई और समरसिंह का मरण)

×पौरि लंघि[7] सुंदरि संगु लाई । पौरि बाहरे पहुते जाई । ८८४
×सुंदरी चलति छवाउं धरिउ । तबहि अलावदीन दिठ परिउ ॥६२९॥

×जे आभरन धरे उतराई । सबइ बेगि लइ देहु बुलाई ।
×हेजमु जाइ पहुतौ तहां । लीने कुंवरि जाति हो जहां ॥६३०॥ ८८७

---

१ ग तातिखन सुन्दरि बांह गहाइ । २ ग ताहि । ३ ग प्रति में ये चरण स्थानातरगत हैं । ४ यह शीर्षक केवल क में है । ५ ग भला भलो कहियो करतार । ६ ग छाडि । ७ क छवी ।

८५० औ कहीए[१] नटुवा गोपाला । वचन खरूकइ हीए रिसाला[२] ।
पातिसाहि जीय रहिउ[३] विचारी । लीन्ही वोलि छिताई नारी ॥६१२॥
सुंदरि एक वचन दय मोही । यहु जोगी भी मागइ[४] तोहीं[५] ।
ऽमइ जोगी सिउं हरियो[६] बोला । सुंदरि राखहि मेरौ कउला[७] ॥६१३॥
ऽयह गुन अधिक जाइ किउ गुनीउ । तइं तौ अपुने श्रवनन सुनिउ ।
ऽगरे सुघर गावै सब कोई । पसु परवारि काहि वसु होई ॥६१४॥
ऽमइ दासी तोपहि भेजीए । तासिउं तैं उतर दीजीए ।
ऽजे तौ वजावइ मेरी वीना । हउं तौ होउं तासु की लीना । ६१५॥
कहइ छिताई सुनहि नरेसा । मोहि लागि भौ जोगी भेसा[८] ।
सेयौ वहुति उद्यान नरेसा । मोहि लागि हांढिउ परदेसा ॥६१६॥
८६० ऽ×यहु मो पुरुष छिताई कहीयो । मेरे काज जोगु तनु गहीयो ।
सुंदरि वात कही समुझाई । लीयो निकट सौंरसी वुलाई ॥६१७॥
×गुन देखी रीझिउ सुलिताना । मांगि मांगि दीनौ फुरमाना ।
×तवहि कुंवर यौं कहइ विचारी । वकसहि मोहि छिताई नारी॥६१८॥
×दूजौ और न मांगौ आना । यहु मो वकसि देहु सुलिताना ।
४८५×अइसउ वचन सौंरसी कहिउ । पातिसाहि विलखउ होइ रहिउ॥६१९॥

---

१ ख अनु कहइ, ग अरु कहिजै । २ ख वचन खरूकै हीयै रसाल, ग वचन बडै कहीइ संभालि । ३ ख जीउ कहइ, ग तब मनहिं । ४ ग मांगतु है । ५ ख तथा ग में एक चौपाई और है: सील बंतु जोगी सुजाण । सुन्दरि राखहि एकै मान ॥ एह बाच मो मागी देह । अब चाहौं फुरमाणइ लीउ ॥ ६ क बोलिउ । ७ ग तोल । ८ इसके आगे का ख प्रति का पाठ परिशिष्ट १ में अलग दिया गया है । क तथा ग प्रतियों में वह पाठ नितान्त भिन्न है । आगे के पाठ में ऽ चिह्न नहीं लगाया गया है, क्योंकि ये समस्त पंक्तियाँ क प्रति में नहीं हैं । ग प्रति में जो पंक्तियाँ नहीं हैं और केवल क प्रति में हैं उनके आगे × चिह्न लगाया गया है ।

दोहरा

×बहुति आस ही मिलन की, जब देखिउ मै दुख । ६१२
×आहि क्रूर करतार तूं. ना दुख भयो न सुख ॥६४३॥

चौपाई

×मेरो सुख तइं तबही हरीयो । माता गर्भ बिंदु जब परीयो ।
×अरु हौं दुख पहिले औतरी । जब विधि कर्म बिधाता परी ॥६४४॥
×ताकहु कहा करइ सुलिताना । मिटइ न कर्म रेख बंधाना ।
×कहइ छिताई मोहि अभागा । लागी कहन भई बयरागा ॥६४५॥
×एक सुख तइं मेरौ करियो । प्रिय के काजु प्रानु परिहरियो ।
×इतनो कहइ सुंदर खरहरी । मुरुछि कुंवर चरनन तब परी ॥६४६॥
×छांडी मया मोह की आसा । इउं मुरछी जिउं फुरइ न सांसा । ६२०
×हेजमु जाइ पहूतौ तहां । अंदरि पातिसाहि ही जहां ॥६४७॥
×विनती करइ कहइ सुलिताना । दोउ मुए हिए अकुलाना ।
×पातिसाहि तव उठिउ रिसाई । भूनि पिसाच कि लागी बाई ॥६४८॥
×अबही बिदा देइ मइं जानी । मूरिख तूं जु अबहि किउं आनी ।
×देखहु आइ चलहु मो साथा । करी सौंह माथे दय हाथा ॥६४९॥
×पातिसाहि लइ आयो तहां । सुंदरि पुरिख परे हइं जहां ।
×पातिसाहि चितवइ चहुंपासा । हीयो मूंदि भरि लीन उसांसा ॥६५०॥
×सोग भरिउ जी महि दुख करई । अति संतापु प्रान परिहरई ।
×राघौ चेतन लयो हकारी । यहु संशय तूं वेगि निवारी ॥६५१॥ ६२६

(राघव चेतन द्वारा समरसिंह और छिताई को जीवित करना)

×इनहि जिवाइ देइ जी मोही । करौं सर्व सोने कउ तोही । ६३०
×जे आभरन धरे हइ घने । और बहुत दयहौं आपुने ॥६५२॥
×या कारन मइ लीए वुलाई । सहमन प्राण तजे अकुलाई ।
×तोपहि मंत्र सजीवन आही । वेगि सुमिरं तौ ज्यावहि याही ॥६५३॥ ६३३

८८८ ×हेजमु वाति कहै परवाना । वेगि उलटि बोलइ सुलिताना ।
×कीनौ लोभु बोलि जौ लई । अब काहे कौं पऊं दई ॥६३१॥
८६० ×सुपने धन पावइ जौ कोई । जौ जागै तौ झूठौ होई ।
×सोई मोकहु विधना करी । अब न जनम पावौं सुन्दरी ॥६३२॥
×सो मइ यहु सपने सौं लहिउ । दुख कइ वचन सौंरसी कहिउ ।
×कत मइ जोग अकारथ करियो । छांडी लाजु भयो बावरियो ॥६३३॥
×तीरथ करति फिरिउ चहूंपासा । हूंती आसि भई मोहि निरासा ।
×बोलइ कुंवर क्रूर करतारा । जल मांगति बरसइ अंगारा ॥६३४॥
×जिसे रंकु धन पावइ कोरा । तिल तिल कइ राखइ ता जोरा ।
×वरु कइ कोई लेइ छंडाई । ऐसौ कइ रोवइ पछिताई ॥६३५॥
×नवहीं हेजमु पहुचौ जाई । गही बांहि लइ चलिउ रिसाई ।
×चिंता करइ कुंवर पछिताई । हा हा साथ निकरि जिय जाई ॥६३६॥
६०० ×फिरि पाछइ चाहइ सुन्दरी । प्रेम प्रीति संभरि थरहरी ।
×लट तोरै अरु करुना करई । सुमिरि सुमिरि गुन हीयरा जरई ॥६३७॥
×करइ दुख जिय भई उदासा । काहे बालमु करी निरासा ।
×मेरौ तइंजु आनि जीय हरीयो । कत मइं नयन उमाहौ करीयो ॥६३८॥
×प्रीति आपुनी छोडि जनि गए । मोहि कइ करी नकानिन भए ।
×मो ऊपरु हित करते घनउं । तातें अब दीनउं चउगुनउं ॥६३९॥
×सरवह ऊंन भई अव कंता । अधफर हीं छांडी विलखंता ।
×रही हुती हम तनु मनु मारी । नख सिख गए अगनि परिजारी ॥६४०॥
×मूल नक्षत्र जनम मो भयो । पिता बुलाइ ते प्रोहित लयो ।
×देखे ग्रह चउकस संजोगू । भरि जोवन महि भयो वियोगू ॥६४१॥
६१० ×ब्रह्म वचन किउं झूठउ परई । इतनौ कहि रोवइ दुख करई ।
६११ ×पहिलेहीं डहकी करतारा । दूजे आइ डही भरतारा ॥६४२॥

दीने ताजी तुरी तुखारा। पहिरायो बीमासौ बारा। ९५

दीए हकारी नेजा संगू। दीने डेरा लाल सुरंगू ॥९६५॥

दीयो दर्व ते साहि भराई[1]। तितनौ दर्व गन्यो कि‍उं जाई।

दीए निसान गुहर गाजने। दीए साहि हाथ ताजने[2] ॥९६६॥

दीनौं तोगु[3] सौंरसी हाथा। मारहु दुर्गम गढ नरनाथा[4]। ९६

जहां न बरु[5] जानहु आपुनौ। तहां मयनु[6] बोलहि हम तनौ ॥९६७॥

इतनी सउंज सौंरसिह दई। बोलि छिताई गुहिने[7] लई।

पिता सबदु तइं[8] बोलउं मोही। बेटी वरु जानौं हउं तोही ॥९६८॥

दीए साहि आभरन गढाई। हीरा रंगु सुरंग जराई।

ऊपर जरे पिरोजा लाला। दीनी गज मोतिन की माला[9] ॥९६९॥

दीए साहि निरमोलक चीरा। पाटंबर खीरोदक खीरा।

अइसे साहु करी बकसीसा। आगें ढीली तनौ नरेसा[10] ॥९७०॥

अधिक मो मया साह मन वसी। लीनौं बोलि तबहिं सौंरसी।

सउंपी साहि छिताई हाथा। आपुन बोलि लई नरनाथा[11] ॥९७१॥

अब घर कुशल आपने जाही। दई विदा यौं बोलइ साही। ९७

उहु नटूवा[12] मइं सौंपिउ तोहो। या सउं जीव वसति हउ मोही ॥९७२॥

कहइ सौंरसी सुनहु नरेसा। तोहि धाक[13] कंपहि अरि[14] देसा।

तोहि धका[15] पुहमि जीउ नाही[16]। अइसो भयो न कोई साही ॥९७३॥ ९७

---

१ ग दियौ मालु सौ गाडि भराइ। २ ग में एक अर्धाली और है : दिए वेसरा लाख सवाउ। जिन घर चलत न लागै पाउ ॥ ३ ग तेग। ४ ग मो बर दुर्ग लेहि नरणाथ। ५ ग बलु। ६ ग सैनु। ७ ग आगै। ८ ग बाप सबदु तै बोल्यौ। ९ ग में इसके आगे एक चौपाई और है : पेरोजा मणि माणिक चुणी। जे णिर्मोलिक जाणहि गुनी ॥ दीने रतन पदारथ घनै। जे मणि माणिक जांहि न गनै ॥ १० ग आफे सब दिल्ली के ईस। ११ ग आपु हजूर बोलि णरणाथ। १२ ग यह नरवै। १३ ग धाक। १४ क अरु। १५ ग धाक। १६ ग सब पहुमी आहि।

६३४ ×अरु तूं मेरउ मेट कलंका। करि हउं जानि तै ईश्वर रंका।
×लोग बाति क्यों मेटी जाई। देकइ सुंदरि लई छंडाई ॥६५४॥
×राघो चेतन विनती करई। मेरी कहिउ साहि जीय धरई।
×जौ तुम मोहि देहु फुरमाना। तौ लालच न करहु सुलिताना ॥६५५॥
×करि सउंगद मुसाफ उठाई। राघौ चेतन वचन दिढाई।
×वेद उकति कीने अहवाना। राघौ मंत्र जपिउ तिह थाना ॥६५६॥
६४० ×इसौ मंत्र जप ध्यान लगाई। छींटे नीरि चित्त धरि भाई।
×तीन बार पानी छिरकंता। चउथी वार उठे बिहसंता ॥६५७॥
×तब भयो बहुत सुख सुलताना। करी पइज अपनी परवाना।
×पहिराए आभरन सिंगारा। सउंपी हाथ सउंरसि नारा ॥६५८॥
×खुसी भयो बोलइ सुलिताना। रहि तूं मारहि पुत्र समाना।
×यहु मेरे बेटी के तोला। दोजक परउं टरौं जौ बोला ॥६५९॥
×बइठहि वगल दाहिनी बांहा। कछुव न चिंत करहि मन माहा।
×जउ हउं एह वचन थइं टरउं। भिस्तहि तजि दोजक महि परउं ॥६६०॥
×तबहि सौंरसी बिनवइ सेवा। तूं सब बात जोग हइ देवा।
६४६ ×मोहि विदा कर सुंदरि कहई। कीरति तउ जुग जुग विस्तरई ॥६६१॥

(समरसिह और छिताई की विदा और अलाउद्दीन द्वारा भेंट देना)

६५० ×थांभौं देस आपुनउं जाई। इसउ कुंवर कहीयो हरवाई।
×इतनौ सुनि हसीयो सुलिताना। खुलिउ भंडार दीयो फुरमाना ॥६६२॥
जामदारु कहं आयस भयो। अगिणत कोट माल[1] गणि दयो।
पहिराए सुपुरख औ नारी। आपे साहि करी मनुहारी[2] ॥६६३॥
दीनउं साहि पांडवौ[3] देसा। विजयागिरि देइ[4] दुर्ग असेसा।
६५५ सउ[5] सिंघली दीए मइमंता। अति उतंग ते दीरघ दंता ॥६६४॥

---

१ ग द्रब्यु। २ ग में इसके आगे एक अर्धाली और है: बोलि सौंरसी दई इनाम। ज्यौ तो जानै राजा राम॥ ३ ग खंड कौ। ४ ग गढ़। ५ ग मद।

इहि विधि पुरुष सेज मंभई। हो नहि भोर[1] नफीरी दई। ९९

चलिउ कूच करि तबहि नरेसा। पहुते जाइ चन्द्रगिरि देसा ॥९८३॥ ९९२

(चन्द्रगिरि में चन्द्रनाथ से भेट तथा उपदेश ग्रहण)

परसे चन्द्रनाथ के पाई। बचन सिद्ध तुम्ह भयो सहाई। ९९

कहई सउंरसो निपुनहु नाथा[2]। हउं अब रहउं गुसाईं साथा ॥९८४॥

चरन कमल नित बंदउं तोही। मनु द्रिढ रहिइ जोग सिउं मोहि।

लोक लाज परवसु सुन्दरी। सूकि रही[3] तुरकन बंदि परी ॥९८५॥

जा लगि गुन दिखरायो नाथा। सौंपो साहि सुन्दरी साथा।

जो नहि कहिउ साहि कउ करउं। रहइ नारि अधिके दुख परउ[4] ॥९८६॥

अब तजीयो संपति सुख राजा। मनु दिढ रहिउ जोग सिउं काजा। २०००

सुनति नाथ[5] जीउ कीयो अनंदा। जाहि पुत्र गढ ढोर संमुदा ॥९८७॥

एक वचन मेरौ प्रतिपारा। भुगवहु रज धरनि मंझारा[6]।

जिउं जोगहि साधहि मन धनी[7]। जीय सिउं सींच कया अपुनी[8] ॥९८८॥

तजिउ राज सुख सयल असेसा। गुरु के वचन भाउ परवेसा[9]।

गोपीचंद गोरेसुर[10] तने। उन्ह फुनि राज तजिउ अपुने ॥९८९॥

सिध्य वचन मुनि धरी सम धी। काया जोग जुगति लइ साधी।

जिन्ह अंतेउर[11] हुते अपारा। तिनहि तजित नहीं लगी बारा ॥९९०॥

मेरे ग्रेह एक वरनारी। गुरु के वचननन्ह घालउं हारी।

बोलहि सिध्य सुनहि रे बछ[12]। जोग जुगति भखा औ कछा ॥९९१॥

अविचल बोल धरम कौ मूला[13]। इन सम धर्म[14] आन नहिं तूला। १०

औरौ कहौं सिध्य तुम्ह जोगा[15]। राज नीति प्रतिपालहु लोगा ॥९९२॥ ११

---

१ ग दौन। २ ग सुणि गुरु णाथ। ३ ग अनिहि दुखन्न। ४ ग में एक चौपाई और है : एकौं विधि कीनौ जी दापु। म्रिग बधत मैं दियौ सरापु॥ बचन भरथरी कियो वियोगु। चन्द्रनाथ प्रसाद संजोगु॥ ५ ग चन्द्रनाथ ६ „ में चरण स्थानांतरित हैं। ७ ग भौ जगि अब अवती धनी। ८ ग जाणी मीचु काया आपनी। ९ ग भओ परदेस। १० ग धौरागिरि। ११ ग अंतवेर। १२ ग बच्छ। १३ ग अविचलु म्रिग बोल अरु मूलु। १४ ग म्रिग। १५ ग और कहा सिखउ तुम जोग।

९७४ तुम वाचा पाली[1] आपुनी । कीरनि राइ[2] चलइ तुम ननी ।
९७५ चलिउ सौंरसी कीयो जुहारू । डेरा[3] जाइ भयो असवारू ॥९७४॥

(समरसिंह और छिताई का दिल्ली से प्रस्थान तथा यमुना तट पर विश्राम)

९७६ चली गज घटा लाल सुरंगा[4] । सोहइ कटक सौंरसी संगा ।
चढी[5] कुंवरि चउडोल बनाई[6] ।सो चउडोल बरन किउं जाई ॥९७५॥
दिपहि होहि बरनी पंचरंगा । अधिक जोति ते सुहइ सुरंगा ।
मोती लरु सो हीए विगासा[7] । जनु तारे उइ रहे अकासा[8] ॥९७६॥
९८० बनी झालरी समी अनूपा[9] । सामुहि साहिब दीने भूपा[10] ।
आनि[11] सखी तब दीनी[12] संगू । ते पुनि दीसहि औरहि रंगू[13] ॥९७७॥
देखिउ[14] रतन भलौ मइदाना । तिहां सौंरसी कीयो मिलाना ।
कालिन्द्री तह नीर निधाना । कीनिउं नारि पुरिष अस्नाना[15] ॥९७८॥
सलिल तेज अति लहरि तरंगा । खेलइ नारि सउंरसी संगा ।
खेलइ सलिल जमुन के नीरा[16] । तजिउ दुख सुख भयो सरीरा ॥९७९॥
पनघट निकट नगर पइसारा । तिन देखिउ सौंरसी भुवारा[17] ।
देखति कुंवरहि मूरछा भई । जानहु कामबांन सर[18] हई ॥९८०॥
बदन देखि तिह लीयो उसासा । अइसो पुरुष होइ जौ पासा ।
जे घर गई तपी जोगिंदू । काम बांन जनु हनी नरिंदू ॥९८१॥
९९० ते सुंदरि चलि मंदिरि गई । भूली सेज पुरष सौंद्रई[19] ।
९९१ राचहिं कंतु ते करहि अनंदू । मनु राखहि सौरसी नरिंदू[20] ॥९८२॥

---

१ ग पारो । २ ग साहि । ३ क देरा ४ ग चली घटा गज ढोल तुरंग । ५ ग लई । ६ ग चढ़ाइ । ७ ग चौपास । ८ ग हेम डंड सोहि जैं तरास । ९ ग बने लछा रेसमी अनेक । १० ग समदी कुंवरि तबहिं महि भूप । ११ ग और । १२ ग सब समदी । १३ ग ते पुनि समदी तैही रंग । १४ ग में एक अर्धाली इसके पहले और है : तबहि सौंरसी चल्यो बनाइ । चंदागिरी पहूँच्यौ जाइ ॥ १५ ग मिलान । १६ ग खेलै संग सलिल तट नीर । १७ ग पणिघट नारि णगर पैसार । तिहि ठां आवागमनु बतार ॥ १८ ग ते । १९ ग संगई । २० ग इन्दू ।

किउं ढीली गढ कीओ प्रवेसा । किउं करि भेटिउ साहि नरेसा । ३०
किउं रीझौ ढीली कउ धनी । किसइ लही बाला कामिनी ॥१००२॥ ३१

(समरसिंह द्वारा रामदेव को छिताई प्राप्त का वृत्तान्त सुनाना)

कहइ सौंर-ी निसुनहि[1] राई । ए सब कर्म लिखत के भाई । ३२
जउ समरथ मेटइ सौ वारा । तउ नहि अंकु मिटहि करतारा[2]॥१००३॥
कहइ सउंरही सुनहु नरेसा । हम कीनउं जोगी कौ भेसा ।
चन्द्रनथ पहि दीक्षा[3] लई । मोहि अति सिद्धि जोग की भई ॥१००४॥
हौं जोगी इकसबदी भईयो । जंबूदीप सोधि सब लईयो ।
×देखे देस दिसंतर फिरी । कहूं न सुधि लही सुंदरी ॥१००५॥
×सुंदरि सुमिरि बावरो भयो । ढीली नगर त्रिसर मो गयो ।
गयो धउरागिरि शंकर जाना । तहां सुनी सुंदर की बाता ॥१००६॥
जोगी निर्मल सब किउं[4] कहिउ । मिली विदा दछिन[5] सामुहिउ । ४०
वाट घाट बूझे जोगिंदू । तव हउं हरिखिउ सुनिहि नरिंदू ॥१००७॥
तव मइ मनु चलवे कहु कीयो । ढीली नगर पयानौ दीयो ।
पंखु नहीं तनि जाउं उडाई । गढ चंदवार[6] पहूतौ जाई ॥१००८॥
[7]तिरी चरित अति खरौ सुजान । छांडि चल्यो सो नगर नि ा न ।
[7]पुर पट्टन नहि नगर सुहाई । वन उद्यान पहूंच्यो जाई ॥१००९॥
देख हरन रोझ मिरग माला । तब गुन प्रगटिउ सुनहु भुवाला[8]।
सो वन छांडि नगर महि गयो । हउं जोगी इकसबदी भयो ॥१०१०॥ ४७

---

१ ग सुनि हो । २ ग तउअ न अख्खर मिटै लिलार । ३ ग दख्या । ४ ग जोगी एकु भेदु सबु कह्यौ । ५ ग तख्खिन । ६ ग दिल्ली नगर । ७ ये दो चरण क प्रति में नहीं हैं । परन्तु चन्दवार के पश्चात दिल्ली पहुंचने के प्रसग को जोडने के लिये ये आवश्यक है । ८ ग प्रति में इसके आगे दो अर्धालियां और हैं : हिरण बराह रोझ मंझार । गांडे साबज ससे मराल ॥ सेहो ससे तुवर सिंगाल । मोहे वंस साद भोवाल ॥

०१२ सिध्य सवदु सति जानहु मोही । अविचल राज सोंरसी तोही[१] ।
१३ छांडेहु जुगति जोग कउ भेसू । करि प्रनामु घरु चलेउ नरेसू ॥६६३॥

(समरसिंह का देवगिरि पहुँचना तथा रामदेव द्वारा स्वागत-समारोह)

१४ दीरघ मजल चले करतारा । पहुते दिवगिरि दुग्र खंधारा[२] ।
सइं वरु कटकु रामु वरवीरा । भेटिउं आइ सउंरसी धीरा ॥६६४॥
×रामुदेउ आनंद वधाउ । भई वधाई चित्त सुभाउ ।
×देखति नयन छिताई तनौ । सुख भौ रामदेव मन घनो ॥६६५॥
×रामदेव कौ जीय सुख भयो । आइ कुंवर आंकउ भरि लयो ।
सुत वेटी ते कंठ लगाई । लइ गयो देवगिरि दुर्ग्ग चढ़ाई ॥६६६॥
२० गावहि मंगल नारि अनंतू । सवद अनंतु ते वरहि कंतू ।
वेद मंत्र धुनि वोलहिं व्यासू । जन सुरदेव विप्र[४]कविलासू ॥६६७॥
नाचहि तिरी मनोहर वारी । मयनरेख[५] रंभा उनहारी ।
तइसउ सुख[६]उपनउ तिहं काला । नाचहि तरुनि विरधि औ वाला॥६६८
रतनरंगु पहि[७]कहिउ न होई । मनही मन जानइ सव कोई[८]।
सोवन कलश सो ठए अंगना । समुदे विप्र भाट मंगना ॥६६९॥
कियो अनंदु महामुनि भूपा । रोपे[९] चंदन चौक अनूपा ।
अधिक अनंदु नगर महि होइ । हसत वदन दीसइ सबु कोइ ॥१०००
पकर राइ राने[९]की बांहा । वइठिउ अरधचंद्र[१०]की छांहा ।
०२९ राजा बूझै सुणि हो बच्छ । कैसे भेट्यो साहि मलिच्छ[११]॥१००१

---

१ ग में इसके आगे दो अर्धालियां और हैं : रावल नाउं धरहि तो तनौ । अरु जो पुत्र वंस आपनौ । आदि विरुदु जनि मेटहि मोहि । यहु निज साख सोंरसी तोहि ॥ २ ग मंझारि । ३ ग सव्द अतंतति वणित कहंत । ४ ग ब्रह्म । ५ ग चित्ररेख । ६ ग सादु । ७ ग रंगों कहि अंतु न जानै कोइ । ८ ग पूर्यो । ९ ग राणी । १० ग अर्धछत्र । ११ यह अर्धाली क प्रति में नहीं है केवल ग प्रति में है, परन्तु प्रसंग को पूरा करने के लिए यह आवश्यक है।

×धन्य नछत्रि मात पित आही । जी महि बहुति सराहइ ताही । ६६
×तब्बहि छिताई पहुनी तहां । रेवामती माइ थी जहां ॥१०२०॥
×भेटि कंठ लागी करि नेहा । नैन उमगि कइ भीजइ देहा ।
×रामदेव तब विनती करई । मेरौ कहिउ कुंवर चितु धरई ॥१०२१॥
×सगुन साधि अपुनें घर जाही । वार बार वोलइ नरनाही । ७०

(सनरसिंह और छिताई का द्वारसमुद्र पहुँचना और राज्य-भोग)

ढोरसमुद्र साजि दल गयो । वहुतहि दिवस समुद्रहि भयो[1] ॥१०२२॥
मातपिता कहुं मिलीयो जाई । नगर मांझ आनंदु बधांई ।
×घरघर होहि गीत पेखना । सब रानी आवइं देखना ॥१०२३॥
[3]राउत राणे बंदहि पाउ[4] । सबही कुटुम सहित भौदाउ[5] ।
दीनौ छत्र सौंरसी सीसा । अविचल राज करहु नर ईसा ॥१०२४॥
सइं दल राजे कीन्ह जुहारू । राजनीति जइसे[6] बिउहारू ।
इंद्र रूप भुगवइ भोवाला । आवइ देसु देसु[7] की माला ॥१०२५॥
रिपु दल गंजइ[8] दुर्ग असेसा । करइ राज सौंरसी नरेसा ।
अहि निसि बसइ छिताई हीए । जिसे भुजंगम रहइ मनि[9] लीए ॥१०२६॥७१

(उपसंहार)

जैसे जती जोग अभ्यास । त्यौं पतिब्रता कंत की दास[10] । ८०
पोथीं देखि नरायन बोला । कीयौ सम्रौं कंचन के मोला[11] ॥१०२७॥८१

---

१ ग देसु असेसु समुद ढिग लयो । २ ग मात पिता जिय अति सुख भयो । देवगिरि दुर्ग बहुरे सामह्यौ । ३ क प्रति में पंक्ति क्रमांक २०७१ से पंक्ति क्रमांक २०७८ तक पंक्ति क्रमांक २०६६ के पश्चात आई हैं और पंक्ति क्रमांक २०७७ तथा २०७८ के आगे पुनः दुहराई गई है । ४ ग भाइ । ५ ग भौ राइ । ६ ग तैसौ । ६ ग दसो देस । ८ ग भंजन । ९ ग हेम मनि । १० यह अर्धाली क में नहीं है, केवल ग में है । ११ ग कियौ समौ कंचन के तोल । ओछे देखि न राबर बोल ॥

४८ कीयो सबद नाइक के वारा । दीनी वीण आणि प्रतिहारा ।
[1]देखंत वीनु[2]अधिक सुख भयो । वेनु ठाटि राघौ के गयो ॥१०११॥
५० वइरागी हौं रूप जोगिंदू । राघो सों विनयो जे नरिंदू ।
वाजति वीन रीझीयो साही । फुनि लइ गयो पसुन[3]वन ताही ॥१०१२॥
मोहे पसुपति सयल असेसा । मोहिउ ढीली तनो नरेसा ।
जो मागहि सो दयहौं भाई । इह गुन मो हरननि[4]दिखराई ॥१०१३॥
मइ हरिआनी दिवगिरि नारी । रूप रेख रंभा उनहारी ।
सो मइं बकसी तोहि जोगिंदू । सोनौं साटि जराइ नरिंदू[5] ॥१०१४॥
निसि वासुर थी लीयो छंडाई[6] । महल मांझि लइ गयो लिवाई ।
वइठउ साहि छत्रु दय सीसा । वइठी सुंदरि तहां चालीसा[7]॥१०१५॥
अंमरु अंतु गनइ को पारा[8] । तांत नादु रीझी झुनकारा ।
रीझि साहि वाचा चित धरी । वकसी कवल नयन सुंदरी ॥१०१६॥
६० हउं तब प्रगटिउ सुनहु नरेसा । वकसे हय गय दर्व[9]असेसा ।
६१ अरु बकसीसा करुअति घनो । एहि विधि लही बाला कामिनी ॥१०१७॥

(रामदेव द्वारा समरसिंह की प्रशंसा)

६२ तवहि राउ उठि असतुति[10]करई । अइसौ पुत्र वंसु औतरई ।
धन्य सो जननी जिहं उरि धरिउ । धन्य सुवंसु जिहं तूं अवतरिउ ॥१०१८॥
धन्य सुदेस साइर कउ तीरा । जिहं ते उपनौ साहस धीरा ।
६५×धन्य कुंवर पौरिष तो तनो । राजा रामु सराहइ घनो ॥१०१९॥

---

१ ग प्रति में इसके पूर्व दो चौपाइयाँ और हैं : बरण कहा कहि आनी बच्छ । मा आगैं गुन कहि ते अच्छ ॥ कौन काज नाइक के गयौ । सिद्धि कामु क्यों तेरौ भयौ ॥ जबहि साहि लै गयौ भुवाल । वेटी करि थापी नरपाल । नाइक घर राखी मिल्लाइ । मो प्रभु बीन बजावै आइ ॥ २ ग मोहि । ३ ग म्रिगनि । ४ क आगे । ५ ग सा नग खंजरि दई नरिन्द । ६ ग निसि बसि पसु मन लए छिडाइ । ७ ग सुंदरि वैठी सहस पचीस । ८ ग हरन अंतेवर अगनित पार । ९ ग तुरी । १० ग बहु थुति ।

परिशिष्ट १

[पूर्व में दिये गये पाठ में पंक्ति संख्या ८५८ के पश्चात ख प्रति का पाठ नितान्त भिन्न है, उसका क तथा ग प्रतियों से कोई मेल नहीं है। ख प्रति के इस पाठ को यहाँ अलग दिया जा रहा है।]

ढोल संमुद नराईण भूपाल।
कहइ छिताई साहि भूवाल॥
ढोल संमुद नरायण भूपाल।
ताकूं सुत सुंरसी सुजांण॥
कहइ सुंरसी छिताई विचारि।
तबहि सुंरसी लउ हकारि॥
पातिसाहि पहिराव्यौ तोहि।
जोगी जुगति नाखो निज कोइ॥
जे बाचा द्रिढ कउ भूआल।
ते जोगी बोलाइ संभालि॥
कपरा पहिर जोग उतारि।
.... ।
जोग उतारि सुहातो कीउ।
नुतन महुल ततखिण दीउ॥
दई छिताई हाथि नरेस
परिमल बहुत सुगंध असेस॥
दीन्हे गज मोतिन के हार।
दीए जराउ बिबिध प्रकारि॥ ६

८२ रतनरंगु कवि कहइ[1] विचारा । करी कथा सो अमिय रिसारा[2]।
जिउं दीपगु मंदिर बिनु गेहा । सायर सीप स्वाति बिनु[3] मेहा ॥१०२८॥
त्यौं विनु कलस कथा आरंभ । लीनी वरण कथा कवि रंग[4] ॥१०२९॥

जो यहु कथा सुनइ दै काना ।
ता फलु गंगा होइ असनाना ।
चरितु छिताई आयो छेऊ ।
२०८६ सब कहं जयो नरायन देऊ[5] ॥१०३०॥

॥ समाप्त ॥

१ ग देखि । २ ग अम्रितसार । ३ क जिउं । ४ यह अर्धाली केवल ग प्रति में है, क में नहीं है । ५ ग जयो सकल में त्रिभुवन देउ ।

मनुहार क धनु पायां कोरि ।
जिउं बिबाह निसि गाढी गोरि ॥ २४

लंका तोर्यां रामहि जित्यौ ।
अरु सुरसी भयौ सुख तित्यौ ॥

जैसे सूरि ग्रहौ उग्रहइ ।
प्रान जीवन तबहि सुख भयौ ॥

ते ढीली माहि प्रगटी भई ।
जोगी नारि छिताई दई ॥

गइर महल दिन भये पंचास ।
मनुह सूर ऊग्यो आकास ॥

वाही को गुण प्रगटो लहइ ।
तैसो गुणी बर्ण कै कहइ ॥

अति मिलाप सुख हिं दुहुं भयो ।
सु तौ न जाइ मो पइ अति कह्यौ ॥

दुहूं मिलति निरपिउ सुख चैन ।
मो पइ कह्यौ न जाइ सुनइन ॥

रभा ओरि बइठौ सुलिताण ।
तब बोल्या सुंरसी सुजाण ॥

करि सलाम तिहां बइटो जाइ ।
एते दिवस कैसे बिरछे राइ ॥

कहइ अलावदीन इउं भूप ।
मेरु अवसर होई अनूप ॥

जबहि सुंरसी देखइ वइन ।
बोलइ साहि अमी रस बइण ॥

जो हुं गुणन दिखाऊं तोहि ।
तो सुख होइ हिआ माहिं मोहि ॥

तब उसर कुं आइस भयौ ।
परदा उठि चित्र खिनु दयौ ॥ ३०

साहि अलावदीन इउ भरी।
आ वेटी सम करि मइं गिनी ॥ १०

जब दई छिताई नारि।
दीन्हा हस्ती बहुत सिंगार ॥

उठि सुरसी गयो आवासि।
गइ छिताई पिउ कइ पासि ॥

जब गाढौ आलिंगन कीउ।
असुपात पीउ बाला कीउ ॥

तबहि सुरसी पूछइ नइन।
अति सुरति करि बोलइ वयण ॥

दे आलिंगन लागी पाई।
दई सुरसी कंठ लगाइ ॥

दाउ बैठे पलिकइ जाइ।
कहइं दुख विरह बिरहाई ॥

मिलनन को सुख केतक कहौ।
कबि कवि केतक बनाइ के कहै ॥

मुंदरी लइ सीया सुख भयौ।
.... ॥

जो सुख मिले अनु सीया।
तौ सुरसी भेंटी त्रीया ॥

जैसे कामदेव रति संग।
जैसे देव महेस अरधंग ॥

जैसे सुख आए बर पूत।
ति सुख भयौ सुरसी बहूत ॥

जइसे राइ जीतइ संग्राम।
जौ कमलनि युगै दि भांन ॥

जि रे कमोदनि चंद्र प्रकासि।
त्या सुरसी सुख आवास ॥ ११

आई तिहां छिताई बालु ।
जा गति मद गज मधुरी चाल ।। १२
कर कुअर अनु हम्ए बोल ।
प्रान प्रीतम सती सुखसील ।।
प तिसाहि उते हरमन मांझ ।
हैवति हरम रहे तिह थान ।।
सुंदरि तिहां रहे सुलितानी ।
देखि छिताई मन बिहसानी ।।
गुण सब हैवति सों साहि कहौ ।
हैवति गने धीया अधिकह्यौ ।।
कछू करइ हसइ सुलितान ।
जब आव्यौ सुरसी सुजान ।।
अइसि रहत मास दस गए ।।
राउ भगवान तबहि सुधि भए ।।
नफरनि कही सुरसी बात ।
फूलि राउ भयौ दौनइ गात ।।
अब हुं पठवुं सुत कुं लइन ।
मइं तस देखुं जीवत नइन ।।
उरगाने तरतरे लए ।
अंतरि बासइ डीली गए ।।
पूछत गए सुरसी पास ।
पाइ लागि पाती दे हाथ ।।
हम पठवे भगवान नरनाथ ।
पूछित राइ कही कुसलात ।।
पविहा कहइं कुंअर सुं बइन ।
राजा बहुत सुख चैइन ।।
छांडी सेज सुइ साथरइ ।
अइसी भांति राइ दुख सहइ ।। ६१

बने चंदुए अ। अनु भांति।
मोहइ जानुं तरिन की राति॥ ३८
तिनके बरण कइसै लहुं।
बढइ कथा जो अंत न लहुं॥
मिले अरगजा कीउ अनूप।
मिश्रत अगर कस्तूरी खूप॥
उर सुगधनि थै सुख भयौ।
बहुत कबित्त कबीसर कह्यौ॥

वइ सुरंग मंडप उछाह।
बरनी अली सखी सम आहि॥
राग गुनी गावइ गावही।
ऊसर अतिहि हो गुणगही॥

बोल्यो तबहि सुरखि राउ।
देखत तनहि होइ बहु भाउ॥
बोली तबहि छिताइ नारि।
आदर करि समीप बइसारि॥

देखी सबई सुधि दिखराई।
ऊसर देखि सुख अति भई॥
जो गुण इंद्र अखारइ आई।
तै सु ऊसर दिखारइ साहि॥
रीझ रह्यौ सुरसी सुजान।
धनि धनि अलावदीन सुलितान॥
जाकइ निति कौ उसर होइ।
बुरो नहीं गुणी जण कोइ॥
मोहै किंनर सुर गंधर्व।
नृपति सभा मोहीए सर्व॥
उसर डबादे बराए पान।
तबहि सुरसी गयो मिलान॥ ५१

जित्ते भुथार कावली आहि ।
साठि कोस थी आवइ जाइ ॥ ७६

पीले नील वांरु बहूत ।
चलत चाल ते भांभर भूत ॥

थोट बहुत पव्वत के आहि ।
ते पुर दीणी अर चौगुन थाई ॥

अगम अजीत सिंघले सइन ।
आलम आपन दीन्हे बइण ॥

मईमत दंती नइ सुलितानी ।
जे हथी अइराबति बानी ॥

मद प्रवाह हस्ती अति मोल ।
साहि हाथ छत्र दीन्हे तोल ॥

परस्थानु तिण दिन ही कीउ ।
सीख दोइ छिताई तिहां ॥

जे पातर रूंपी पंचास ।
सनदी चल्यौ आप नरनाथ ॥

मनो छिताई तनुं विबाह ।
समुदि साहि आपण घर नाह ॥

दुख छिताई विछरत भयो ।
जाई उतारी डेरइ गयो ॥

नाह छिताई उतरे तिहां ।
हिरण रोभ सब संगति लिआं ॥

पसु वणो मन चिन्यौ भयो ।
ते सब पसू सुरसी लीयो ॥

संग लगाइ चल्यौ करि कूच ।
राइ राणा हूआ साथि बहुत ॥

मेल्हो जाई नगर चंद्रवार ।
.... ॥ ६१

सुण्यो सुंरसी पतिहा कह्यौ ।
इस सुनि सजल नइन भरि रह्यौ ॥ ६६

पाती लए गए नरनाथ ।
साहि पासि बोलइ बर नाथ ॥

कहइ सुरंसी सुनि सुलितान ।
आए लिखे कहइ भगवान ॥

वस्तुबंध

सुणि रंभयौ साहि वलिवंड ।
सुंरसीह दल चंपि करि ॥

चउपई

.... ।
अरु संभारि गुजराति ति जानु ॥

साहि तबहि दीउ फुरिमान ।
अरु दीउ हय गय गुणान ॥

दीन्हे हस्ती सब केकान ।
दीउ साहि नवा फुरमान ॥

बरणु तेजी ऊच तिहां तणे ।
ऊचे आहि कंध तिह तणे ॥

एक तीरी ते हरीए बरनां ।
कंध आगरे छोटे करनां ॥

सेत तुरी चंचल गुण बने ।
चित्रति जानि चितौरा तने ॥

महुआ सबज सनेही घने ।
सीराजी मुगली हींसले ॥

उपजे सींह नदी पश्चम देस ।
बडी पुंछ बरणइ कवि लेस ॥

करतर काया तुरी तुखार ।
बरदे नीले बोरकयाह ॥ ७१

पढतां कहतां अंतन न लहू ।
तिनके अधि विचारित कहौ ॥ १३४
गावइ राग बजावइ सार ।
नइए फैर जे करइ कटाच्छ ॥
काम बान मागी कामनी ।
भरहि देव साखि भांमनी ॥
कामलता देखित चित हरै ।
इन्द्र गइ घर ते अवतरै ॥
दिवस सात लग अवसर भयौ ।
मोलइए हसि रामदेव सु कह्यौ ॥
बिदा करौ घरि समदइ राई ।
भयो सुवारौ देवगिर आई ॥
हसि हसि राउ रामदेव कहई ।
अब मइ जन्म सफल जन्म लहौं ॥
गया पाप तब फरसे पाई ।
अब मइ जीवण सब भाई ॥
हीरा चूनी बहुते लाल ।
आगई धरी राम भौवाल ॥
मणि माणिक मोती जे घणे ।
अंकमाल थाल भरि धरे ॥
जइसु अरजन कन्हर तनो ।
समर्यो रामदेव तिहां गयो ॥
राघव चेतन राम भूवाल ।
समदि जराउ पहिराए लाल ॥
राघव साहि सु गयौ नरेस ।
राम राइ जे दीध्रे असेस ॥
... ...
सुनत बात सुख मानइ राई ॥ १४०

चले कोस पंचास मेलान ।
उठे राखि रखत कोस एक परमान ॥ ६३

चलत पंथ माहि खेलै खेल ।
दौरि दौरि उर बगिनेल ॥

छि रानी निस खेत जांइ ।
कनीअण तुच्छ कहइ समझांइ ॥

कबहुं एक दिवस विच्यारि ।
करइ अहेरो सब मिलि नारि ॥

नारि करइ पुरषन के भेष ।
पाग बंधि ते खरी सु देखि ॥

वागा बने विविध परकारि ।
हाथन लीए फूल के हार ॥

ऊपरा ऊपरि खेलहिं खेल ।
राइ सुरसी क्रिताई गेलि ॥

खेलत बने दोइ नर नारी ।
दुए चतुर पुरष अनु नारी ॥

बहुतक करै अंग की धमारि ।
कुंअरा कुंअरी जारि सिंसार ॥

फोलि फूले सोहीइ अगासा ।
मनुं तीरी पुरुष अनुवासा ॥

मनुह रूप सुंदरी अगासा ।
.... ॥

तुटे गज मोती के हार ।
बाला गिरित न जानइ सार ॥

हसत खेलतां जु बोलइ बइन ।
लेहि उठाई जु देखई नइन ॥

दीखे तिहां राउ सुरसी ।
बादै जौ नितुं गगन शशी ॥ १०६

करहि कूच हस्ती चढि नारी।
सोर सिंगार कि नवल कुंआरी ॥ १०७
हस्तीन रंग लहरि सहिदान।
कछु एक अबला चढे केकान ॥
हस्ती धावहि पंथ मझारि।
भागइ बाला चमकइ नारि ॥
खेलइ राइ छिताई नारि।
.... ॥
कलप वृक्ष जानै चंद समान।
देखइ जहां पंथ मइदान ॥
तिहां रावत खेलइ चौगान।
गुंटनि नारि बधइ अधिकानि ॥
आगइ थकी गइल लगि जाई।
एकनि एक दोरिं लपटाई ॥
एक नारि आगलि सरी।
जबही सुंरसौ पासनि परी ॥
तबहि सुंरसी दुहाई करइ।
खेतज नारि अधिक सुख करइ ॥
तबहि कुह करि दौरइ बाल।
.... ॥
असी विधि खेलइ चौगान।
सर्व नृप खेलइ इद्र समान ॥
घर के चलवे कुं मन कीआ।
देवागर दुर्ग सुंरसी गया ॥
गए दौरवा राजा पासि।
सुनि सुख उपनौ बहुत उल्हास ॥
चल्यौ समुद्र आगइ होइ लइन।
हाथी तुरी पलान्यौ सइन ॥ १२०

निश्चै भयौ निसानइ घाउ।
राउ भेट राजा ते राउ ॥ १४८

अनंदो राजा पर लोक।
कौण बात सुबिचारइ भोग ॥

जिहि दिन मिली कुंआरि सुन्दरी।
ढोल समुद गढ पहुंती तीरी ॥

चढि चकडोल छिताई राइ।
धावनि खबरि करी तिहां आइ ॥

सासू ससुरां आग जाई।
जानु बसंत रित फूली झार ॥

छाजे छत्र नवतने कराई अनूप।
अतिहि आनंद भयौ सब भूप ॥

आगइ होइ राइ भगवांन।
आगइ सुरसी कुंअर सुजांन ॥

कौतिग लोग आए जहांन।
जो कछु देस विदेस सुजान ॥

टांई टांई मंगल गावइ नारी।
रहइ चतुर सुनि बात विचारी ॥

टोइ टांइ तरुणी नाचइ बाल।
टांइ टांइ निरत करइ भूआल ॥

देखत सुर नर मोहे हीइ।
अइसी भांति दान बहु दीइ ॥

घरि आव्यो सुरसी राइ।
नराइणदास कहं उछाहि ॥ १५१

— —

परिशिष्ट २

कथा छिताई की

— कवि जान कृत —

चौपाई

पर्थम सुमिरौं सिरजिनहार। अगम अरूप अखल करतार।
रचत जगत कछु भयौ न खेदु। पल मैं प्रगट कियौ यह भेदु॥
करता मति करता ही जानै। जगत हीनमति कहा बखानै।
लखै न कोई अलख की बात। जौ मन दौरावै दिन रात॥
कहा मनुष बुधि कौ बिस्तार। सु रंह वैठि रहै पविहार।
दुगम कथा यहु सुगम न जानि। कोऊ नां करि सकत बखानि॥
दुखिया कौ सुखिया कर मारै। सुखिया कौ दुखिया करि जारै।
आस मेटि कै करत निरास। पुनि निरास की पुरवै आस॥
दया सिंध कहै सिरजनहार। सभ काहू की लेहि सँभार।
दीनदयाल क्रिपालन रंजन। अभरे भरन सरन है असरन॥

दोहा

दीनदयाल क्रिपाल है प्रभु मया सिंध दुख नास।
देत हुलास उदास कौं पुजवन आस निरास॥

चौपाई

सुमिरौं दोय महंमद नाम। जाते सकल सुधिरिहैं काम।
भोर नाव हजरत कौ कहियौ। मनबंछित फलु निहचै लहियौ॥
आये नबी जबहिं सैंसार। तबहिं ग्यान उपज्यो नरनार।
निज मारग सौं दयौ बताई। अरुझे लोग लये सुरझाई॥
चार मिंत हजरत के प्यारे। लै लै नाउ गनाऊं न्यारे।
बड़ौ अबाबक्कर है मिंत। यार चार जित तित संग नित॥

छंद

घर घर जे बाजे बाजइ चले ति आगइ दंन ।
हस्ती पलाने कुण वखाणई मांगणि केरे बकूण ॥ १२१

चउपई

आगई हुण चल्यौ नरनाह ।
गज रथ तुरी थाट- अनिवार ॥
बांध्ये सीकर तोरण बारा ।
घाट पाट सिंगार संवारा ॥
कवीअण कहइ नराइणदास ।
मरइ फूल जीवइ दिन बास ॥
गई छिताई जननी पास ।
कंठ लगाई लेइ उसास ॥
होइ महिमानो नित नवरंग ।
राघव चेतन मोल्हन संग ॥
तिण कौ मिल्यौ रामदेव राई ।
अंकमाल भेंटइ निज ठाई ॥
गढ दे चल्यौ रामदेव राउ ।
भयौ आनंद देइ सुपसाउ ॥
बंभण वेद पढइ भणकार ।
गीत नाद नित मंगलचार ॥
उसरे गाज बाज नीसान ।
सिंगारे सब लोक सुजान ॥
राघव चेतन मोल्हण जहां ।
छिटक महल लै चंदन तिहां ॥
पातर नाचइ गावइ गीत ।
भए गगज अनु बहु प्रीत ॥
बहुत बास फुलनि फुलवाद ।
जैसी इंद्र राइ घरि बास ॥ १२२

निसि दिन नाव निरंजन ररिहैं। पुंन दान अनलेखै करिहैं।
रह्यौ पाटरानी आधान। उपज्यौ आनन्द राजा प्रान ॥
भये मास नौ तनया जाई। राजै कीनी बहुत बधाई।
अैसी तनया लहि उजियारी। मनहुं चंद ते चीर निकारी ॥

दोहा

अैसो उजियारो भयौ मनहुं प्रकास्यौ चंद।
चिंता कौ तम जान कहि गयौ होइ कै मंद ॥

चौपाई

राजै लीने विप्र बुलाई। देखन लगन जुरे सब आई।
रास लगन गन विप्रन कह्यौ। यामैं बहुत सील हम लह्यौ ॥
यह तनया सीता सम होई। छीता याहि कहै सब कोई।
सुनि छीता कौ सील बिचार। राजै कौ सुख भयौ अपार ॥
छीता ते छिन होत न हातौ। देख्यौ कर प्यार मदमातौ।
छिन छिन छवि छीता की बाढ़त। बाल द्वैज ससि नाईं बाढ़त ॥
देस देस छीता की बात। या बिधि लोग करैं दिनरात।
राजा कै घर तनिया जाई। मनुष रूप धरि कवला आई ॥
कोऊ अैसे करत बिचार। भयौ अफछरा कौ अवतार।
रंभ सुकेसी की उनहार। कै मन कौ घ्रिताचीवार ॥

दोहा

कै तिलोतमा आय है चाहत बाढ़ै चाहि।
किधौं निकाई रूप है किधौं मोहनी आहि ॥

चौपाई

राजा एक नाम तिह राम। पछिम दिसा ताहि विस्राम।
वह छीता की सुनि कै बात। मगन भयौ सुख द्यौस न रात ॥
नींद भूख दोऊ घटि गये। अंग अंग राजा लटि गये।
काहू बिधि छीता भिट परिहै। या चिंता चित मैं निस दिन जरि है ॥
कबहूं कहै कटक करि जाऊं। छीता कौं बर सौं लै आऊँ।
कबहुँ कहै विषम वह ठौर। नाहिन बनै किये कछु दौर ॥

दूजौ उनते जानह उमर। अदल करत बीती जिह उमर।
तीजौ ठौर जांनि उसमान। चौथे अलीसाहि मरदान॥
सेख महंमद पीर हमारौ। अलह पियारौ जग उजियारौ।
हांसी मैंह उनकौं बिश्राम। ज्यारत किये सरै मन काम॥

दोहा

व्याकु तब जिनकै भये, आजम बभोये माम।
तिनकी संतति जान कहि, क्यों न होई अभिराम॥

चौपाई

साहिजहां संतत सैसारं। अमर अजर रहियौ करतारं।
दुनिया दीन दिये बिधि दोऊ। यह कुल अैसो भयो न कोऊ॥
दै सुभाव मैं म्हछिनि ताव। झरपैं राजा राना राव।
जो करवार कादि परियार। सहज माहि देखै मुंछार॥
तौ कंपै आगे द्रिगपाल। झंझ सहित बैदहिं रिसाल।
कहि कवि जान कथा अभिराम। छीता कहियत ताकौ नाम॥
कीनी साहिजहां कैं राज। है मन मोहन कुसल समाज।
साहिजहां बलु कहा बखानौ। महाबली सम को की आनौ॥
पवन वेगि चढिहै करि खांति। कंपहिं दीप-दीप के भांति।
अपने दल बल कै परसाद। लीनौ बादि दौलताबाद॥

दौहा

लियौ देवगिर पुनि बिदर बीजापुर सब ठौर।
साहिजहां नित देस लै आज और कल्ह और॥

चौपाई

राजा देव देवगिर वास। अति ऊँचौ गढ़ लग्यौ अकास।
कहंत देवगिर द्वापुर आदि। कलजुग कहत दौलताबाद॥
कौट राइ जौ मिलि करि आवै। कोट देवगिर लैन न पावै।
अति ऊँचौ गढ़ कहा बखानौ। इंद्रपुरी सौं बादत मानौ॥
राजा कै लछिमी अपार। है अनगन ससि आनन नार।
हय गय अंन अमित रजपूत। पै यहु चिंता सुता न पूत॥

विप्र कह्यौ हौं सेवक आहि। करि हौ सो जु रावरी चाहि।
छीता केतक दिन कै पाछै। पूजा करन चली मन आछै॥
चेरी विप्र लेन को आई। कह्यौ बुलावत छीता बाई।
हरष्यौ विप्र सुनी यह बात। फूल्यौ बहुत न अंग समात॥

दोहा

विप्र राइ कौ संग लै गयो देहुरै धाइ।
पूजा कौं आई हुती, जित छीता करि चाइ॥

चौपाई

राजै हेरयौ अदभुत रूप। चेरौ होइ रह्यौ है भूप।
लघु ओंसनि में दीरघ नैन। बोलत भोरे भोरे बैन॥
काचो कंचन जैसो अंग। तगै न अजहूं अगिन अनंग।
नैन झरोखे मैन न आयौ। भोरी चितवन चित्त चुरायौ॥
अजहूँ मन ना जन्या मनोज। उरमैं जरमैं नाहिं उरोज।
बिन ही काम कामनी सोहै। आयौ काम कहा तब होहै॥
ललित लता लागे नहिं फूल। रहत तऊ मन मधुकर भूल।
दै रंग श्याम न खोले दंत। बिना घटा दामिनि दमकंत॥
आजहू कली फूल ना भई। रूप बास तौऊ जग छई।
सादे बसन सेत ही अंग। तामें बदन कवल मधि गंग॥

दोहा

सेत बसन उजल बदन, देखत बढ़त अनंद।
कहत जान सोहत सुभग मनहु चांदनी चंद॥

चौपाई

जोबन बिना सुबन अति लागै। तरुनी भये कहां को भागै।
बिन तरुनी हरनी सुत नैन। बरनी जात न आये मैन॥
हाव भाव नहिं जानत भोरी। कबभु न चितवै चितवनि चोरी।
जब कटाछ नैननि मैं बरिहैं। मानस कहा देव बस परिहैं॥
चंचल चरन फिरत है धावत। ज्यों बल मलयागिर है आवत।
पैठी जोय देहरै मांहि। सोधी रही देव कौ नाहिं॥

पै हूं ह्वैहौं होइ भिखारी। भीख दरस जिन दै मत प्यारी।
चल्यौ होइ के बामन राइ। धोती धागा तिलक बनाइ॥
मानस और लये द्वै संग। वैहू करे आपने रंग।
चलत चलत केतिक दिन भये। तबहिं देवगिरि में ये गये॥

दोहा

रहत राज प्रोहत जितहिं तित उतरे ये जाइ।
मिलै बहुत वै प्यार सौं सनमुख लीने आइ॥

चोपाई

फेरौ दीनौ सदन संवार। अति नीकी कीनी ज्योंनार।
ज्यौं ज्यौं राज क्रांति ये पावहिं। त्यौं त्यौं अति सेवा कौं धावहिं॥
राजै दरब बहुत इन दीनौ। दमकावर अपनै करि लीनौ।
बड़ौ विप्र इन मैं होइ येक। ताको दीनी मुहर अनेक॥
राजा विप्र एक संग रहैं। मीठी मीठी बातैं कहैं।
एक द्योस बांभन यौं कह्यौ। भेद तुम्हारौ मैं सब लह्यौ॥
विप्र नाहिं तुम राजा आहि। ना जानौ डोलत किहि चाहि।
जौ अब अपनी कहौ न जात। तुमहिं आन करता की सात॥
राजै कह्यौ देह तू बांहि। कहसु करहि नटहि तू नांहि।
तौं तौं अपनी जात बताऊँ। दुरी बात तोपै प्रगटाऊँ॥

दोहा

बिप्र कह्यौ तूं जात कहु जिन राखहि मन माहि।
जो तू कहै सु हौं करौं मैं तुहि दीनी बांहि॥

चौपाई

जब राजा चित बाल्यौ चाइ। बातैं सकल कहीं समुझाइ।
एक बार छीता दिखरावहु। तौ तुम मोकौं मरत जिवावहु॥
बिप्र कह्यौ मन कौ दै धीर। करता करै हरौं तुम पीर।
छीता जबहिं देहरै जाई। लैहै तब वह मोहि बुलाई॥
तौहि आपुनै संग लै जैहौं। छीता कहियत है सु दिखैहौं।
राजा परयो बिप्र के पाइं। वै हूं लीनो मरत जिवाइ॥

बिप्र कह्यौ मन कौं दे धीरज। दई करैं अलि मिलऊं नीरज।
बाभन आयौ राजा पास। कह्यौ राम करिहैं अरदास॥
दयावंत ह्वै तनया देहु। मों अपनों बेरो करि लेहु।
इती दूरि ते याही काज। हौं आयौं राखहु मो लाज॥

दोहा

सुता देइ सुत लीजिये यहु जग कौ व्यौहार।
सेवक ह्वैहौं रावरो, मेरैं यहै बिचार॥

चौपाई

राजा टेरे अग्याकारी। उनहूं सौं यह बात बिचारी।
तब परधानन अैसे कह्यौ। छीता की सम को बर लह्यो॥
राजा उठि कै घर मैं आयौ। रानी सौं यहु भेदु लखायौ।
रानी के चित उपज्यौ चाव। कह्यौ गहर जिन लावहु राव॥
राजै बिप्र बुलाये पास। इनकै मिलहिं बरग पुनि रास।
तब बाभन यौं कियौ बिचार। सिंघ बरग है छीता नारि॥
राजा राम बरग है हरन। सेवैगौ छीता के चरन।
छीता बली राम पर होई। बहुत प्यार निबहै ना दोई॥
छीता मिल राम तुलरास। हित सौं सदा रहै जुग पास।
बरग रास को यहै बिचार। दंपति में निबहै अति प्यार॥

दोहा

जुगल एक ह्वै जाबहैं, बढ़ै पीत अभिराम।
कहनावत कौ ह्वै रहै, बहु छीता बहु राम॥

चौपाई

रास बरग जुति सुनिकै राइ। अतिही फूल्यौ अंग न मांइ।
कह्यौ बिप्र बेगौ तू जाहि। राजा राम ठौर जिह आहि॥
कहौ तिहारी मानी बात। रीत भांति करियहु परभात।
भोर भये ते राजाराम। पठयो गहनो बसतर दाम॥
आनंद भयौ दौलताबाद। मंदिल बाजहिं गावहिं नाद।
राजै बसतर हाथी घोरे। बहुत पठाये राखे थोरे॥

छीता देखी भरि भरि नैन। थकित भयौ मुख सकत न बैन।
सब जानहिं मूरति निरजीत। बोल न सकै यहै उहि रीति॥
यह अचिरज मेरौं जिय माहि। जीव पाइ वहु बोल्यौ नाहि।
होत कभू मूरत कै जीय। तौ फिरि पूजत छीता तीय॥

दोहा

जो मूरत कै नैन मैं होती नैकहु जोत।
तौ छीता कौ देखि कै फिर पूजारौ होत॥

चौपाई

पूजा कर छीता घर गई। विषम राम राजा कौं भई।
बढ्यो बहुत छीता कौ नेहु। द्रिग बरसत ज्यों पावस मेह॥
रह्यो देहुरै ही मैं बैठ। छीता चैन हरयौ चित पैठ।
बिप्र कहै चलियै घर राई। इत बैठे कछु हाथ न आई॥
घर मिल कछू उपाइ उपाई। जाते छीता तुम्ह कर आई।
राजा उठिकै डेरे आयौ। मानस अपनै देस पठायौ॥
भाई बंधव सब रजपूत। पुनि हाथी घोरे अदभूत।
सब वेगे आवहु मो पास। ज्यौं हौं आयौं करौं परकास॥
पाती पहुंचत सब उठि धाये। केतक दिन बीते उत आये।
आइ गोबरै डेरे दिये। राजा हू मढि उनमैं भये॥

दोहा

सुन्यो देव राजा तबहिं आयौ राजाराम।
चढ़ि कै आयौ सामहै, जानत हौं उहि नाम॥

चौपाई

राजा देव मिल्यो करि प्यार। डेरे आनि करी ज्योनार।
रूपवंत हौ राजाराम। रानी चढ़ि चढ़ि देखहिं धाम॥
रानी रीझी मूरति मैन। छीता हूँ देख्यौ भरि नैन।
रीझि न जानै काम न आयौ। मूरति चित्र जानि मन लायौ॥
जीवन जेंव गयौ उठि मेरे। बिप्र वहै टेरयौ तब नेरै।
अबहिं विप्र कीजै उपगार। हौं बूडत तोते हौं पार॥

अबलौं ऐसो भाव न भयौ । या बिधि काकौ तन फटि गयौ ।
तक्यौ चितेरे नौतन भाव । चितर्यौ कागर पर करि चाव ॥
राजमहल सपूरण भये । तब ये सकल बिदा कौ गये ।
कीने बिदा चितेरे राज । सभ के पूजे मनसा काज ॥

दोहा

बिदा होइ आये दिली पूजी मन की चाहि ।
चित्रकार मूरत लये गये निकट पातिसाहि ॥

चौपाई

पातिसाहि कौ कियौ जुहार । उनकौ सगरौ दयौ विचार ।
पाछे छीता मूरत दीनी । देख छत्रपति हित सौं लीनी ॥
रूप देख रीझ्यौ पातिसाहि । पूज्यो रक्तभाव करि चाहि ।
रंगी जीवभाव यह कह्यौ । सुनि पातिसाहि अचंभौ रह्यौ ॥
ऐसी नारि भई संसार । कलजुग मांहिं बड़ौ अधिकार ।
चिंता भई छत्रपति जीय । केहूँ देखौं छीता तीय ॥
जो मांगू तौ हाथ न आवै । कौन आपुनो बचनु गवावै ।
तुरकिन सूं बहु साक न करिहै । किये बीनती ना बहु ढरिहै ॥
सब में बड्डौ यहै उपाइ । वाकौ गढ घेरौं हौं जाइ ।
घेरे मांहि बहुत दुख पैहैं । तब वहु तनया मोकूं देहैं ॥

दोहा

भै बिन पीति न होत, बिनती बनै न कोइ ।
तबहिं अंगजा देय है जब जीव कौ दुख होइ ॥

चौपाई

बड्डे बड्डे आने हसती । बारह मास न छाडै मसती ।
परबत सेनै भारे भारे । झरना ज्यौं झरिहैं मद नारे ॥
यहै अचरज वै कारे कारे । आपुन गिरि आपुन मतवारे ।
जब मदगंध पवन संग जाई । ऐरापति नभि मैं थहराई ॥
यौं जंजीर फेरत वहु मनके । ज्यौं मानस माला के मनके ।
कहा बखानों तेज तुरंग । दौरे जान न देत कुरंग ॥

राजानानि कै होत जो भांति। सौ सभ कीने उपजी सांति।
तीन ञरष कौ साहौ दयौ। रोवत राम विदा तब भयौ॥
बहुत दिनन पाछे घर आयौ। मनकूं अपने साथ न लायौ।
भोरी छीता दई न ब्याह। राम भरत देखन की चाह॥

दोहा

तीन बरस भये राम कौ भये मनो जुग लाख।
निसु बासुर जारत बिरह छीता की अभिलास॥

चौपाई

राजै देखि धरी मन मांहि। नीके महल हमारै नाहिं।
ढीली तेंह मैं राज बुलाऊं। आछे आछे धाम चिनाऊं॥
और चितेरे लेउं बुलाई। करौं विचित्र सदन चितराई।
ऐसो उनमैं ह्वै चितराम। देख जाहि रीझै चितराम॥
छीता राम जुगल उत रहैं। हमहुं सुख जौ वे सुख लहैं।
अलावदीन दिली सुलतान। राजा की तासौं पहिचान॥
लिखि पठयौ छत्रपति कौं राइ। राजा चितेरे देहु पठाइ।
सँवाराऊं हौं नीके धाम। चित्राऊं आछे चित्राम॥
पातसाह तब राज चितेरे। पठय दिये राजा कै नेरे।
लागे चिनन राज मिलि धाम। चित्रकार करिहैं चित्राम॥

दोहा

चित्रकार चित्रत हुते बैठे राजा धाम।
ताही में आई उतहिं खेलत छीता बाम॥

चौपाई

म्रिग छौना की पकरै डोर। दूब चरावत चित की चोर।
बजे कपाट म्रिग तब डर्‌यो। इत ते कूदि उतहिं वै पर्‌यौ॥
डोर सहित तिय हाथ उचायौ। कर दुति दामिनि भाव लखायौ।
उचवत हाथ भाव नब भयौ। चोली फटी अंग फटि गयौ॥
छीता अधिक सकोमल गात। तुचा तुछ बरते फटि जात।
आयौ स्त्रोन तुचा जित फटी। कुंदन मैं चूनी सी जटी॥

मैं करता की दोहाई खाई । बिन गढ़ देखे चल्यो न जाई ।
तब राघौ यौं बिनती करी । एक बात मैं जिय में धरी ॥
हौं बसीठ ह्वै कै उत जैहों । संग चलहु तुम कोट दिखैहौं ।
कोट देखि आवहु सुलितान । सांची होइ तिहारी आन ॥

दोहा

पातिसाहि मन मैं कह्यौ गढ़ नहीं आवे हाथ ।
सौंह उतारौं आपुनी जै राघौ कै साथ ॥

चौपाई

ह्वै बसीठ राघौ उत गयौ । चाकर छत्रपति संग लयौ
बैठ्यौ जाइ जहां है राइ । बातें करत बनाइ बनाइ ॥
पातिसाह उपवन मैं गयौ । छिन देखि बहुत सुख भयौ ।
पातिसाहि कै हाथ गलोल । फिरै बागु मैं करत कलोल ॥
पंछी तरुवर मैं डिठु आवै । तिनहि गलाले साहि चलावै ।
सुनि अब दई जोग की बात । छीता डिस्ट परी किहि घात ॥
उपवन मांहि देहुरा आहि । छीता आई पूजन चाहि ।
पातिसाहि वाकौ डिट आयौ । है अलवंदी छीता पायौ ॥
राजकांति आपुन प्रगटाई । पातिसाहि किह भांति दुराई ।
पातिसाहि हौ अपुनै ध्यान । बिन पंछी कछु तकत न आन ॥

दोहा

पोटग गोलनि सौ भरी चोट करै सुलितान ।
और ओर को जात कै है पंछिन कै ध्यान ॥

चौपाई

छीता बड़ मुकतनि की माल । चेरी कर दीनी ततकाल ।
पाछे खरी होइ वू जाहि । पै कछु नाहिं लखाई ताहि ॥
सकल गलोला जबहिं चलावै । फैट मांहि स.धे नहि पावै ।
जौ सेवक कोउ नाहीं साथ । तउ करिहैं पाछै कौ हाथ ॥
ये सुमात्र राजानि मांहि । किये दुराव दुरत हैं नांहि ।
हरै हरै छत्रपति कै नेरी । खरी भई पाछै जे चेरी ॥

अरबी औराकी बड जात। दौरे ना पहुंचत है वात।
अनगन बड़े बड़े उमराइ। गने न जैहैं राजा राइ॥
संग बहुत रावत रजपूत। ज्यौं उमडत पावस परहूत।
हैदल गैदल पैदल भारी। धूर कुतर दिन निस अंधियारी॥

दोहा

अलादीन अलावदी जोरे कटकु अपार।
घेरौ कीनौ देवगिरि जात न लाई वार॥

चौपाई

राजा देव सुनी यह वात। पातिसाहि आवै करि घात।
लीनी सबहीं पौर जराइ। सामौ कर्यौ लरन कौ राइ॥
गढ़ ऊपर राखी हयवान। तिनमैं बसत तिनकौ काल।
पातिसाहि सूं कहि जु पठायौ। कहु दिलेस तूं काहे आयौं॥
गढ़ गाढ़ौ तूं तोर सकत ना। साच कहत हौं अल्यो बकत ना।
कह्यौ छत्रपति सुनि हो राइ। छीता मोपै देहु पठाइ॥
ज्यौं हम तुम में अति सुख होई। अंत समुझ है गढ कौ खोई।
हौं गढ़ देखे बिना न जात। मोहिं आन करता की सात॥
जाइ बसीठ कही यहु बात। दयौ दमामों राइ रिसात।
चलै बंदूख नाल चहुं वोर। गिरवर गाजत ह्वै रह्यो सोर॥

दोहा

एक द्यौस कै माझही कई वार ह्वै झांझ।
लरत लरत हो भोरते परत जान कहि सांझ॥

चौपाई

गये लरत बहु द्यौस बिहाई। गढ़ अति गाढ़ौ हाथ न आई।
बहुत पर्यो दल छत्रपती कौ। काज न सुधर्यौ एक रती कौ॥
तब राघौ चेतन परधान। बिनती करी सुनहु सुलितान।
यह तौ गढ़ टूटन कौ नाहिं। बहुत उपाय करे मन मांहि॥
तुमहूं ज्यौं मैं करहु बिचार। हाथ न आवै कीये रार।
पातिसाहि बोल्यौ है येहू। मैं हूं छांडि न जैहौं केहू॥

जौ हौं ही तोकौ मरवाऊं । कहा जगत मैं दरस दिखाऊं ।
मैं तू छांडयौ जाहि पराई । भलौ नाहिं तौ सुनि है राई ॥
हो तुहि गढ़ देवन की आन । सो कीनौ करता परवांन ।
और इतै पर हौं पुनि हेरी । सबही इंछया पूजी तेरी ॥

दोहा

मैं तुहि दीनौ दान ज्यौं हौं यहु मांगत आहि ।
अब तू घेगै छांडि कै वेगौ ढीली जाहि ॥

चौपाई

पातिसाहि छूटत उठि धायौ । राघौ संग कटक मैं आयौ ।
सबै कही राघौ सौं बात । छीता पहिचान्यो जिह घात ॥
राघो कहे भली ही भई । जीव तिहारौ बांच्यौ दई ।
अब तुम दिली कौ पग धारहु । छीता जू कौ बोल न डारहु ॥
रैन गई जब भयौ बिहान । चल्यौ छत्रपति दै नीसान ।
पांच कोस पै उतरयौ जाई । पाछे डेरे लूटे राई ॥
पातिसाहि पै भई पुकार । रोस भयो सुनि के भूछार ।
दै निसान बहुरि उत आयौ । सोमास्यौं जो लूटत पायौ ॥
उतरे आइ आपुने डेरे । छुटि कै बहुरि परयौ गढ़ घेरै ।
पातिसाहि सुरंगिया बुलायौ । बाग माहिं कौ सूत बतायौ ॥

दोहा

सुरग चलाई सुरंगिया, जब बीते बहु द्यौंस ।
वै निकसी उहि बागु मैं, पूजी छत्रपति हौंस ॥

चौपाई

जबहि सुरंग सपूरन भई । एक सिला ताकैं मुख दई ।
जिनकौ बहुत किये पतिवार । सुरंग मांपि ते रखे विचार ॥
इक सेवक धरि रूप संन्यास । उहि उपवन मैं लयौ निवास ।
सन्यासी करि पूजै ताहि । जानहु जाहि कुहेरौ आहि ॥
बहुत द्यौंस अरु निसा बिहाई । तब छीता पूजा कौ आई ।
हेरै जाइ सुरंग मुख खोल्यौ । छीता आई है यौं बोल्यौ ॥

सकल गलोले जबहिं चलाये। फेंट मांहि ढूंढे नहिं पाये।
तब पाछे कौ कीनौ पानि। चेरी मुक्ता दीने आन।
दये चलाइ निबरि जब गये। फिरि मांगे तब चेरी दये।
निघट जाहिं तब पानि पसारै। चेरी कर मैं मुकता झारै॥

दोहा

अंतर कर्‌यौ न छत्रपति मुकता माटी मांहि।
सबही दयैं चलाइकैं नेकु निहारे नांहि॥

चौपाई

छीता भाव देखि कै पायौ। यह अलावदी आपुन आयौ।
चेरिन सौं यौं कर्‌यौ प्रकास। याहि पकरि लावहु मो पास॥
चेरिन पकर्‌यौ छत्रपति धाइ। लागि गई को कर को पाइ।
खरौ कियौ छीता पैं आनि। देखि रूप रीझ्यौ सुलितान॥
छीता कर्‌यौ सांचु कहि मोहिं। करता आन देतु हौं तोहिं।
तू अलावदी आपुन आहि। फिरत अकेले धौं किहि चाहि॥
साहि कह्यो हौं सेवक आहि। यह बिधि ना डोलैं पातिसाहि।
छीता कह्यौ नटैं का होत। पातिसाहि की दुरत न जोत॥
जो तुहि राजा पै लै जैहौं। जौहौं मुह मांगो सो पैहौं।
राजा तोकौं डारै मार। कह्यौ दयौ बैरी करतार॥

दोहा

जौ राजा तुहि मारिहै पाप चूकि सब जाइ।
बहुर देवगिर लैन कौ कोइ न लागै आइ॥

चौपई

कछु अपराध कियौ नहिं तेरौ। तैं कत गढ़ कैं कीनौं घेरौ।
जौ कोऊ अपुनी सुता न देत। ऐसो कौन जु बरु सौं लेत॥
अब जौ तोकौ राइ निहारै। तौ तेरे टुकरे करि डारै।
पै मैं सोच करयौ जिय मांहि। बिधुवा करौं दिली को नाहि॥
बहुत ठरहै तेरी परछांहि। ऐसो निप उखारो नाहिं।
और मोहि आवतु यहु लाज। इत आयौ तू मेरे काज॥

छीता बोली सुनि सुलतान। हौं अपनो दुख करौं बखान।
राजा एक कहैं तिह राम। पिता करी हौं ताकी नाम॥
जब तें पिता नाव उहि लयो। तब ते पुरुष हमारौ भयौ॥
निस दिन जपौं यहै हौ नाम। राम नाम बिन और न काम॥

दोहा

राम राम हौं जपत हौं जिन दीनौं घट जीव।
कै सुराम हौं सुमिरिहौं भई जाहि की तीय॥

चौपाई

पातिसाहि तब ऐसो कह्यौ। अब तौ यहु ब्याहन तै रह्यौ।
बिन ब्याही कत करत बियोग। तुम में नाहिन भयौ संजोगु॥
छीता कह्यौ सुनहु पातिसाहि। ऐसी बात कहत तुम काहि।
कहा भयौ जो भयौ न ब्याह। वाकी भई दई जब ताहि॥
राजा राम भांति जिह आयौ। मगनौ कर्यौ सु सब प्रगटायौ।
जौ वाकै घट मैं ज्यौं आहि। तौ इत आवैं मेरी चाहि॥
कटक लये ना आवन पावै। आवहिं भिछुक वेष बनावै।
इत आवैगो वीन बजावत। वाकौ बीन सुभग अति आवत॥
यह बिधि आवैगो तुम पास। कै हुँ नास कि पूजै आस।
पातिसाहि मन मांह दयायौ। पै उठि गयौ न कछू लखायौ॥

दोहा

दया न उपजै दुखित पर जानहु ताकी रीति।
देखत मोनस देखिये है पाहन निरजीत॥

चौपाई

मनुष देवगिरि तै इक धायौ। राम पास रोवत बहु आयौ।
महा दुखहिं संदेसौ दयौ। छीता को छत्रपति लै गयौ॥
राम पर्यौ धर खाइ पछार। रंचक तन की नाहिं संभार।
लोग कुटुंब सब आये पास। सौठि मिरच की दीनी नांस॥
सीतर जल छिरक्यौ बहुबार। तब कछु राजा भई संभार।
केहू केहू राजा जाग्यौ। बेग्रो ह्वै कै रोवन लाग्यौ॥

निक रजपूतनि स्यौं साथ । छीता आई इनकै हाथ ।
पैठे सुरंग लये संग छीता । जैसो रावन लै गयौ सीता ॥
लै आये दिल्लीपति पास । पूजी है सब मन की आस ।
कूंच कर्यौ उसते पातिसाहि । देत दमामे पूजी चाहि ॥

दोहा

बात सुनी जब राइ वहु काटि काटि करि खाइ ।
दिली है पातिसाहि सौं कछु बर नाहि बसाइ ॥

चौपाई

मग सुरंग सुंदरि यौं पाई । इंदुपुरी ते अछिरा आई ।
लै कै छीता कौ सुलितान । आया है दिली अस्थान ॥
छीता रूप बखान्यौ जाइ न । जो उपिमा कहिये बनि आइ न ।
जितौ करै छत्रपति मनोहार । छीता नैकु न करि हैं प्यार ॥
पातिसाहि बरु नाहिन करै । जीभ खांडि मरि है जिव डरै ।
नीके नीके बसन पिन्हावै । उत्तिम भोजन आनि जिवावै ॥
पै छीता रोयौ ही करत । चित अगिन में निसि दिन जरत ।
एक द्यौस पूछ्यौ सुलितान । छीता प्यारी कै दे आन ॥
मोसौं तू मन क्यों न मिलावहि । कत रोवत निस द्यौस गवावहिं ।
तोसी लता रहै मुरझानी । कौन बात में नाहिन जानी ॥

दोहा

कवल डहडहौ ही भलौं, करिहैं बास प्रकास ।
मुर्झानो किह काम कौ, मधुप न आवै पास ॥

चौपाई

मोसो कह तू जिय की बात । काहे ते या विधि कुमिलात ।
कत कवलनि ते काढ़त पानी । परि है मीन हीन जल रानी ॥
लहत नाहिं तिलचारो अंजन । त्यों त्यों ब्याकुल तलफत खंजन ।
कत बार तूं नां सुरझावत । उर्झत भिंग महादुख पावत ॥
येतौ रुदन न कीजै नारी । करि सिंगार अब हाहा प्यारी ।
जो मन चाहै सो सब आहि । तुम रोवत हो धौ किहिं चाहि ॥

राम करीही सदा बजावे । सीताराम अवसथा गावै ।
नगरी सगरी मैं दिन रात । है है जोगी ही की बात ॥
पुनि दिलीपति हूँ सुनि पायौ । जोगी एक बिवोगी आयौ ।
मन मैं यहै कह्यौ पातिसाहि । आयो राम बाम की चाहि ॥

दोहा

सेवक पठयौ छत्रपति जोगी कौ लै आइ ।
जिह मोही नगरी सकल बीन प्रबीन बजाइ ॥

चौपाई

सेवक निकस्यौ सोधन जोगी । गावतु रोवत लख्यौ बिवोगी ।
बीन मांहि ऐसी धुनि बाजै । जो सुनिहै सो घरि तजि भाजै ॥
मूरत राग अमूरत राग । मूरत दिखरावत रंग पाग ।
जो निस गावै राग बिभास । द्यौस होइ रवि करत प्रकाश ॥
जो गावै टोडी मन हरन । मगन होइ आवै बन हरन ।
असावरी कहत अनुराग । तबहिं रीझ आवत है नाग ॥
जबहिं रीझ कैं गावै दीप । तब बिन अगिन जरत हैं दीप ।
मेघ राग को करत उच्चार । बरसन लागे मेहु अपार ॥
सेवक देखि मगन ह्वै गयौ । जोगी चरन परयौ बस भयौ ।
कह्यौ छत्रपति तुमहि बुलावत । ह्वै समाध जो दरसन पावत ॥

दोहा

जोगी उतते उठि चल्यौ, फूल्यो अंग न माइ ।
मत करतार क्रिपाल ह्वै, छीता देइ दिखाइ ॥

चौपाई

सेवक जोगी कौ लै आयौ । पातिसाहि ऐसे सुनि पायौ ।
बैठे छत्रपति आइ झरोखे । जोगी देखि परियौ मन धोखे ॥
जोगी देख्यो मूरत मैन । कह्यो राम राजा यहु ऐन ।
जोगी बीन बजावै गावै । तान पैमुरस सुनी सुनावै ॥
महल झरोखनि देखति बाम । छीता तकत लख्यौ यहु राम ।
छीता द्रिगु ते आंसू ढरै । आइ जोगिया ऊपर परै ॥

बोल्यो यहै सभा कै मांहि । जीव गये कोउ जीवत नाहिं ।
छीता विना राम क्यों जीवै । दुख चिंता विधु कौ लौं पीवै ॥
सीता नाईं छीता हरी । रामहि राम अवसथा परी ।
हे लषमन हनवंत से यार । मरै कौन विना करतार ॥

दोहा

छीता सीता ज्यौं हरी, रावन है पातिसाहि ।
परी अवसथा राम की, राम कहै दुख काहि ॥

चौपाई

जो कोऊ है सम लषमन की । करै उपाव विपति लखि मन की ।
हनूमान सौ जो संग होइ । हनूमान रिप सब सुख होइ ॥
लै आवै बहु जीवन मूर । पुरि आवै दुख घाव संपूर ।
अैसौ बलु मो दलु मौं नाहिं । जौ चलि दिल्ली लैन कौ जांहि ॥
मन मैं आवत यहै उपाइ । जोगी है कै देखौं जाय ।
भोग काज वहो जोग वनाऊं । चत संजोग प्यारी कौ पाऊं ॥
वरजहिं रोवहिं सगरे लोग । राम चल्यौ गहि कै गति जोग ।
राजा तक्यो भिखारी भेस । स्वै स्वै पात उपारत केस ॥
भाई वधव सब विलपात । अैसी भांति कहां तुम जात ।
राम कहत मुंहि अैसे भाई । तुम काहे कौ रोवत भाई ॥

दौहा

जौ छीता मौ कर चढ़ै तौ आऊं तुम पास ।
नातर नैकु न राखियौ बहुर मिलन की आस ॥

चौपाई

भसमी अंग गरै जप माला । कांधे पर राखी म्रिग छाला ।
झोरी पत्र मेखली पहिरी । मुंद्रा सींगी बाजै गहरी ॥
बीन बजावत गावत डोलै । छीता छीता ही मुख बोलै ।
केतक दिन लौं जावत आवत । दिली पहुंच्यौ बीन बजावत ॥
ऐसी बीन बजावत राम । जो सुनिहै तिह भूलै धाम ।
नीकी बाजै तान बिवोग । रीझे फिरै संग बहु लोग ॥

छीता लगत जीवन ते प्यारी । डर ते नेकु न राखत न्यारी ।
करहि रैन दिन कोमल लोल । गहरी प्रीति भई रँग चोल ॥
यहु रँग कबहू दूर न होई । ये कै भये कहन कौ दोऊ ।
पातिसाहि करिहै बहु प्यार । अपने मग आने नर नार ॥

दोहा

पातिसाहि मन सम्रध्यौ पुनि कंचन के धाम ।
कीला केल अनंद सौं बीतत छीता राम ॥
सोरह सै जु तिरानु वे कथा कथी यहु जान ।
कातिग सुद छठ पूरनं छीता राम बखान ॥

इति श्री छीता की कथा संपूरन भई । संवत् सतरह सै चौरासी १७८४ मिती चैत सुदी ५ लिखतं फतेहचन्द ताराचन्द काडीमबानीया अगरवाला । श्री ॥

बैठी हुती झरोखे बाम । ताही तरै खरौं हौ राम ।
अंसुवन तन की भसम बहाई । पातिसाहि देखति ही पाई ॥
ये बूंदे अंसुवन की आंहि । देखौं कौऊ रोवत काहि ।
आयौ दौरि दील की नाहिं । छीता लही झरौखै मांहि ॥

दोहा

पानी मैं बूडत कवल मीन विरत जल अैन ।
कै म्रिग तरत तराव मैं यौं अंसुवा मैं नैन ॥

चौपाई

पातिसाहि पूछयौ सुनि प्यारी । तैं कत नैन भरै दुखियारी ।
तोकौ है करता की आन । करि क्यौ अंसुवा भेद बखान ॥
छीता कह्यौ सुनहु पातिसाहि । आयो राम हमारी चाहिं ।
अब तुम करहु जौ इच्छया होइ । कै मिलवहु कैं मारहु दोइ ॥
पातिसाहि सिर पर कर धरयो । यहै सब्द मुख तै उच्चरयौ ।
तू तौं मेरी बेटी आहि । राम जवाई दैहौं ताहि ॥
छीता लागी दैन असीस । जीवो छत्रपति कोर बरीस ।
राम न्हवायो जोग उतारयो । भोग काज बहु भांति सँवारयो ॥
रैन भये करि दीनौ ब्याहि । रीति भांति कीनी पातिसाहि ।
भली भांति सौं ब्याहे दोई । यहु अलाबदी ही ते होई ॥

दोहा

जो कोऊ न पीरिये पीर पराई मांहि ।
ताकौ तुम कबि जान कहि मानस जानहु नांहिं ॥

चौपाई

मन बांछित फलु पायौ राम । करता दीनी छीता बाम ।
मनु मैं आयौ नयौ मनोज । रंचक रंचक उठे उरोज ॥
नब जुबन दीनी दिखराई । भई निकाई माहिं निकाई ।
दिन दिन जोबन बाढ़त जात । छिन छिन होत और ही बात ॥
जोबन नौतन रूप बिकास्यौ । ज्यौं तिल तेल फूल कौ बास्यौ ।
अति अदभुत छबि छीता बाम । पूरे पुन नि पाई राम ॥

परिशिष्ट ३

टीका

छिताई चरित

गणेश वन्दना (पंक्ति १-६)

हे सुमति के स्वामी वीर गणेश, नाग का हार आपका आभूषण है और गीति, नाट्य तथा वाद्य के नवीन (अथवा नौ) रस आपके चरणों (की कृपा) से उत्पन्न होते हैं। लम्बोदर, आप मूषक-वाहन हैं। मुझे ऐसी सुमति दीजिए जिससे आख्यान की सृष्टि (मेरे द्वारा) हो सके।

(हे गणेश), आपके मस्तक पर सिन्दूर का टीका है, आपके दांत उज्वल हैं, पैरों के घुंघरू ऐसे मंजुल हैं कि देवता और मानव उनसे मोहित हो जाते हैं। नारायण नामक यह कवि सुमति प्राप्त करने के हेतु आपकी शरण में नमित होता है [१]।

(हे गणेश), आपके कानों में कुंडल ऐसे शोभित हैं मानो अभिरूप निहित हों, कण्ठ में आप हार पहने हुए हैं, आपके गुण गम्भीर और अथाह हैं, ऐसे एकदन्त, गुणों के अधिपति, आप मुझे बुद्धि का वरदान दीजिए कि मुझे (आख्यान कथन के हेतु वाणी-) सिद्धि प्राप्त हो।

(हे गणेश), आप गीति-नृत्य-वाद्य के साथ जब नाद ब्रह्म की नवरस युक्त (या नवीन) साधना करते हैं तब समस्त देवगण अपने-अपने आवासों में (या घड़ी-घड़ी ?) मोहित हो जाते हैं। हे लम्बोदर, आपकी ऐसी शोभा है कि उससे तीनों भुवन मोहित हो जाते हैं। आप अगम हैं, अथाह हैं और अत्रुट हैं [२]।

हे स्वामी, मुझे अत्रुट बुद्धि प्रदान करो, मैं आपको साष्टांग प्रणाम करता हूं।[१]

---

१. नारायणदास की इस गणेश वन्दना में और विष्णुदास की महाभारत कथा (रचनाकाल सन १४३५ ई०) में की गई गणेश वन्दना में अद्भुत साम्य है। नारायणदास की इन पंक्तियों का अर्थ समझने के लिए विष्णुदास की इस विषय की पंक्तियों को ध्यान में रखना आवश्यक है। गणेशवन्दना करते हुए विष्णुदास ने लिखा है:—

हूं। उसके स्मरणमात्र से त्रिविध (मानसिक, वाचिक तथा कर्म के) पाप नष्ट हो जाते हैं [३]। उस माता की मैं वन्दना करता हूं जिसका ज्ञान इतना भारी है कि यदि उसका वर्णन करने लगूं तो कथा बहुत अधिक बढ़ जाए।

कथा स्थापन (१२-१७)

(इस आख्यान में यह बतलाया गया है कि) राजा रामदेव की पुत्री का अलाउद्दीन ने कैसे हरण कर लिया [४], छिताई को पति वियोग कैसे हुआ, किस प्रकार समरसिंह ने योग धारण किया, किस कारण से यह युद्ध हुआ, रामदेव दिल्ली क्यों गया [५] और किस प्रकार (छिताई का) पति से मिलन हुआ तथा किस प्रकार संसार ने इस आख्यान को जाना। जो कोई गुणों से युक्त गुणवान व्यक्ति होगा वह अपनी प्रबल बुद्धि तथा संयम (एक-चित्तता) से इसे जान सकेगा [६]।

सारंगपुर नगर वर्णन (१८-२३)

(हे श्रोताओ,) मेरे दोषों पर हँसो मत, मैं जो चौपाई सुना रहा हूं उसे सुनो। (इसे सुनने से) सुबुद्धि का स्फुरण होगा और (अच्छे) कर्मों का फल (यह कथा) प्राप्त होगी। (मैं जहां यह कथा सुनाने आया हूं वह) मालवा देश सोने की खान है, यहां के लोग सुजान हैं और विवेक पूर्वक दान देना जानते हैं [७]। (इस मालवा देश में यह) सारंगपुर नामक विशाल नगर अच्छा है, यहाँ सलहदी जांगला[1] का राज्य है जो तलवार चलाने और दान देने में मानो दूसरा कर्ण ही है। वह विक्रमादित्य के समान (दूसरों के) दुख तथा दारिद्रय का हरण करने वाला है [८]। उसकी अर्धांगिनी दुर्गावती है। (इन दोनों का मिलन ऐसा है मानो) कामदेव और रति की जोड़ी हो। उस (सारंगपुर) नगर में (मैं) कवि(नारायणदास) देवालय (द्यो=देव, हरि=घर, ठां=स्थान) पहुंचा और मुझे कथा सुनाने की मन में स्फूर्ति हुई [९]।

कथा कथन की तिथि तथा रसों का वर्णन (२४-२९)

भगवान विष्णु का स्मरण करते हुए वीरसिंह (तोमर के) वंशज (ग्वालियर के तोमरों) के आश्रित नारायणदास[2] को उल्लास हुआ और उसने पूर्व में कहे हुए

---

१. सलहदी के परिचय के लिए परिशिष्ट ५ देखिए।

२. विरसिंह वंस नारायणदासू—नारायणदास तथा उसके पिता विष्णुदास

सरस्वती वन्दना (पंक्ति १०–११)

(गणेश की वन्दना के) पश्चात सरस्वती की वन्दना सिर झुका कर करना

प्रनवहुं गवरपूत गननाहू । सिद्धि बुद्धि वर देहू अथाहू ।
ऊंदर चढ्यौ भवै दिन राती । बिस्नुदास सुमिरै गनपाती ॥१॥
गजमुख एकदंत सुंदियानू । वीना सानु करै रस सानू ।
फरसा निर्मल सोहै पानी । प्रनवत होहि मधुर सुरवानी ॥२॥
सिरह सिन्दूर कानु मदु परियौ । ता रस लोभ भ्रमर गुंजरियौ ।
अहनिसि द्वै वासुकि मैमंतू । सुमिरत देही बुद्धि तुरंतू ॥३॥
ब्रह्मा सुमिरयौ सिद्धि करंता । नागराज धर सीस धरंता ।
हरि सुमिरयौ हिरनाकुस लागी । सुमिरत तासु गई भी भागी ॥४॥
सुमिरि देवि महिषासुर मारयौ । शंकर सुमिरयौ त्रिपुर संघारयौ ।
सुमिरि सु त्रिभुवन जितै अभंगा । सुमिरि सिद्धि मुनि लही असंगा ॥५॥
नारायन वलि छल्यौ पताला । सुमिरि देवगन वै सुंदियाला ।
नाटारंव रच्यौ जगदीसा । सुमिरै देव कोटि तेतीसा ॥६॥
हीरा मुकुट नाग उर हारी । घूंघर चलन करै झनकारी ।
खरौ मनोहर नाचत सोहै । सुर नर नाग भवन मनु मोहै ॥७॥
साइर सोखु कियो जिहि खेतू । वाहुरि उगलि भर्यौ सरै सेतू ।
विघ्न हरन जो करै पसाऊ । रोगु कलंकु न छीयै काऊ ॥८॥
सुमरहि पुत्र कला गुन हीना । मूरख होहि चतुर परवीना ।
जे नर सुमिरहि रन महँ जंता । ते वैरी दल जितहि अनन्ता ॥९॥
भारथ भाखौं ताहि पसाई । पुनि सारद कैं लागौं पाई ।
मोहहि सभा सुनत यह ख्याती । कौरव पांडव की उतपाती ॥१०॥

दोहरा

भक्ति विनायक की करौं पुनि सारद सिर नाइ ।
सुर रक्षक अक्षर निकर जिन्ह तैं कथा सिराइ ॥११॥

विष्णुदास ने गणेश को नाट्य (गीति, नृत्य और वाद्य) का देवता माना है। वे संगीत और काव्य के अधिष्ठाता हैं। नारायणदास ने भी इसी रूप में उनकी वन्दना की है।

(प्रथम खण्ड)

कथारंभ—राजा रामदेव का वर्णन (२०–३९)

दक्षिण दिशा में समुद्र के पास देवगिरि नामक दुर्ग था (जहाँ) राजा रामदेव (राज्य करता था)। उसके पास अटूट घोड़े-हाथी तथा धन था। उसने अपना राज्य समुद्र के किनारे बसा रखा था [१३]।

राजा सुख से दिन बिताते हुए राज्य कर रहा था। (उसके राज्य में) गौ और ब्राह्मण दुखी दिखाई नहीं देते थे, उसके गढ़ में करोड़पति श्रेष्ठि (साहूकार) रहते थे। वह लाखों लोगों का निर्वाह करता था [१४]। (उसके राज्य में) क्षत्रिय क्षात्र धर्म (तलवार के धर्म) में दृढ़ एवं शूर थे, श्रावक (जैन यति) दया धर्म के मूल थे, सब लोग अपनी-अपनी (आस्था के अनुसार) धर्म एवं पूजा का निर्वाह करते थे और (मानसिक, वाचिक या कर्म के) त्रिविध पाप कोई नहीं करता था [१५], सब अपने-अपने स्वार्जित धन से सुखी थे। उस नगर में कोई दुखी नहीं था। राजा के घर में सात सौ सुन्दरी स्त्रियां थीं जो गुणों से परिपूरित तथा सोने (के आभूषणों) से महिमान्वित थीं [१६]। (उन स्त्रियों में अनेक) मुग्धाएँ, बालाएँ एवं प्रौढ़ाएँ थीं जो अत्यन्त प्रवीण थीं और दिन प्रति दिन अपने मन को प्रिय में लीन किये रहती थीं (अथवा प्रिय के हृदय में लीन रहती थीं)। राजा की पटरानी रेखामती थी जो बहुत सुन्दरी एवं सीता के समान सती थी [१७]।

छिताई का जन्म एवं ग्रह योगों का वर्णन (४०–५५)

उस (पटरानी रेखामती) के गर्भ में छिताई[1] आई। जब गर्भ-मोचन

---

१. छिताई—सीता+आई। छिताई नाम का मूल सीता है। बुन्देलखण्ड में आज भी सीता को छीता तथा सीताफल को छीताफल कहा जाता है। आई आदरास्पद पद एवं माता के अर्थ में आज भी बहुप्रचलित है। बिनोवा की गीताई के समान यह छीताई—छिताई बना है। न छिताई 'क्षतिपाली' है और न फारसी इतिहास लेखकों की 'झतयापली';

आख्यान को कहना प्रारम्भ किया [१०]। जिस दिन छिताई की कथा (सारंग-पुर में) कहना प्रारम्भ किया उस दिन सम्वत् १५८३ ई० की आषाढ़ सुदी सप्तमी तिथि थी।[1] (इस कथा में) नीति, करुण और वीर रस का विस्तार किया गया है, और अद्भुत तथा भयानक रसों का स्वरूप भी है [११]। कुछ वीर एवं शृंगार भी मैंने इसमें कहा है तथा इस प्रकार इस कथा में नवरस का विस्तार हुआ है। विष्णु (दास) का पुत्र नारायणदास कहता है कि फूल सूख कर झड़ जाता है, परन्तु उसकी सुगन्धि कुछ दिनों तक बनी रहती है [१२]।

ग्वालियर के तोमरों के आश्रित कवि थे। ग्वालियर का तोमर राज्य वीरसिंह तोमर ने सन १३९८ ई० में स्थापित किया था। 'दास' पर श्लेष का आरोप करते हुए नारायणदास ने लिखा है कि नारायण (दास) कवि वीरसिंह के वंश का आश्रित (दास) है।

१. सं० १५८३ वि० आषाढ़ सुदि सप्तमी तिथि—यह तिथि रविवार १७ जून १५२६ ई० को पड़ती है। यह स्मरणीय है कि पानीपत का युद्ध २१ अप्रैल १५२६ ई० को हुआ था जिसमें इब्राहीम लोदी से लड़ते हुए ग्वालियर का अन्तिम स्वतंत्र तोमर राजा विक्रमादित्य रण-क्षेत्र में मारा गया था।

पास अपार धन था, (परन्तु ग्रहों के प्रभाव से) अन्तकाल में अन्न के अभाव में उसके प्राण गये।

(ज्योतिषी की यह वाणी सुन कर राजा ने ग्रह शांति के लिए) दान दिया तथा जप और हवन कराये। दिन प्रति दिन कन्या बढ़ने लगी [२५]।

छिताई की मुग्धा क्रीडा और सौन्दर्य वर्णन (५६–७५)

प्रत्येक घड़ी, मुहूर्त और दिन एक के पश्चात दूसरे आते और छिताई का सौन्दर्य बढ़ता ही जाता है। इस प्रकार वह सात वर्ष की हो गई। उसके साथ दस-बीस बालाएँ सखियों के रूप में रहती हैं। अपने हाथ पर बैठाकर वे मैना और तोता पढ़ाती हैं [२६]। उनमें से कुछ सारे-पांसे (चौसर) खेलती हैं। वह मुग्धा गोटियां फेक कर किलकारी भरती है। उनमें से कुछ हाथ में गेंद उछालती हैं। इस प्रकार कन्याएँ अनेक प्रकार से खेलती हैं [२७]।

एक दिन रात आई देखकर कुमारियां चोर मिहचनी[1] का खेल खेलने लगीं। छिताई जहां भी जाकर छिपती है वहां (उसके अंगों की द्युति के कारण) अंधकार मिट जाता है [२८]। उसकी सखियां तलघर (भौंहरे) में निःशंक होकर (कि तलघर के अंधेरे में उन्हें दूसरी पाली की कुमारियां पकड़ न सकेंगी) छिप जाती हैं, परन्तु छिताई के साथ रहने के कारण वहां ऐसा प्रकाश हो जाता है, मानो चन्द्रमा का उदय हो गया हो। उसकी साथिनें दुखी होकर रूठकर चली जाती हैं (और कहती हैं कि) हमारे छिप जाने पर छिताई हमें दिखा देती हैं [२९]।

दानी को अन्त समय में अन्न के अभाव के कारण, माँगने वाले को अन्न न दे सकने के दुःख के साथ, प्राण छोड़ना पडे थे। उसके अन्तिम शब्द थे 'हे प्राणो, जाओ, याचक के विमुख लौट जाने पर चले जाओ। बाद को भी जाना ही हैं, फिर ऐसा साथी कहां मिलेगा।' मेरुतुंगाचार्य ने लिखा है कि अन्तिम वाक्यांश के उच्चारण के साथ माघ पण्डित की मृत्यु हो गयी थी (प्रकरण ५६)।

१. आंख मिचौनी। 'चोर मिहचनी' शब्द वास्तु के प्रसंग में (पंक्ति संख्या २५३) भूल-भुलैयों के अर्थ में आया है। आँख मिचौनी भूल-भुलैयों में अधिक कौतूहल वर्धक रूप में खेली जा सकती है।

हुआ, राजा को समाचार भेजा गया। ज्योतिषी को बुलाकर राजा पूछता है कि (कन्या के) जन्म लग्न का स्वरूप-वर्णन करो [१८], ज्योतिष के ग्रन्थों के अनुसार मुहूर्त्त का शोधन कर (यह बतलाओ कि) इस कन्या का जन्म-फल कैसा है। ज्योतिष देखकर ज्योतिषी कहता है कि यह कन्या वियोग रूप में दमयन्ती के समान है [१९]। इसकी जन्म लग्न तथा उसका यह योग कहता है। ऐसी लग्न में यदि पुत्र होता तो, हे राजा, ग्रहों के गुण का प्रमाण यह है कि वह (पुत्र, नवजात कन्या का) भाई हरिश्चन्द्र के समान होता [२०]। फिर गुरुदेव (ज्योतिषी) ने (ज्योतिष ग्रन्थ) देखकर कहा कि इसका यश समस्त पृथिवी पर फैलेगा (परन्तु) इसकी लग्न में इतना कुयोग पड़ गया है कि पूर्ण यौवन में इसे वियोग होगा [२१]।

ग्रहों के प्रभाव के कारण ही शरीर को सुख, दुख तथा अशुभ फल भोगने पड़ते हैं। ग्रहों के बल से ही अपहरण करने वाले धन ले लेते हैं। (जब ग्रहों का फल विपरीत होता है तब) उद्यम करने पर परिणाम में शोक ही मिलता है। हे राजा, ग्रह ही कर्मों के स्वरूप का निर्माण करते हैं (मनुष्य ग्रहों से प्रेरित होकर सुख या दुख देने वाले कार्य करने की ओर प्रवृत्त होता है) [२२]। रावण के समान पृथिवी पर दूसरा कौन हुआ है, परन्तु उस पर भी ग्रहों ने प्रभाव दिखाया और वह नष्ट हो गया। ग्रहों के वशीभूत होकर देवता भी बहुत दुख उठाते हैं, ग्रहों द्वारा दिये गये दुखों की गिनती नहीं की जा सकती [२३]। जन्म लग्न (के प्रभाव को) कैसे भी मिटाया नहीं जा सकता, आज भी सूर्य तथा चन्द्रमा को वह पकड़ लेता है (ग्रह फल के कारण ग्रहण लगता है)। ग्रहों के फल के प्रभाव से ही विष्णु को पत्थर (शालग्राम) बनना पड़ा। तीनों लोकों में ग्रहों के समान (प्रबल) और कोई नहीं है [२४]। माघ[1] नामक विप्र (महाकवि माघ) के

वह सकता है। नारायणदास ने अलाउद्दीन में रावण की परिकल्पना की है, और छिताई में सीता की।

१. माघ—शिशुपाल वध महाकाव्य के रचयिता महाकवि माघ के सम्बन्ध में चौदहवी शती के प्रारम्भ में मेरुतुंगाचार्य ने प्रबन्ध चिन्तामणि में अनुश्रुति संग्रहीत की थी। इसके अनुसार माघ पण्डित को अपार पैतृक वैभव दाय में मिला था। किन्तु ग्रहगति के कारण इस महा-

जंगम रामदेव के पास आया । वह बहुत सुन्दर गाता था और (संसार से) पूर्ण उदासीन था [३७] । जब वह पानी में बैठकर वीणा बजाता था तब उसकी रसाल ध्वनि सुनकर मछलियाँ भी रीझ जाती थीं । (उसका गायन-वादन) सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ । वह उसे महल में लिवा ले गया [३८] ।

राजा ने जंगम से कहा कि तुम्हारे गुण (गीत और वाद्य) को सुनते ही उसने मेरे मन का हरण कर लिया है । यह सुनकर जंगम को प्रसन्नता हुई और उसने समझ लिया कि राजा कला-मर्मज्ञ है [३९] ।

यति ने उन समस्त सिद्ध पुरुषों का, जिनकी परम्परा से उसे संगीत का ज्ञान मिला था और जो गीत के अंगों में देवगायकों के समान कुशल थे, अवलम्बन के रूप में स्मरण किया (अथवा, उसने जान लिया कि राजा ने उन समस्त यति एवं सिद्ध पुरुषों का गीत के ज्ञान का अर्जन करने के लिए अवलम्बन किया था जो गीत के अंगों के देव-गंधर्वों के समान पारंगत थे) । तब उस योगी ने हाथ में वीणा उठाई, उसने उनके तारों पर आघात किया और नाद की ध्वनि निःसृत होने लगी [४०] ।

देवगिरि के गुणी नागरक बहुत सुजान थे । उनने ध्यान से वीणा वादन सुना और वे रीझ गये । उस सभा में जितने संगीतज्ञ थे वे (उस वीणा वादन को) सुनकर मृग के समान मोहित हो गये [४१] ।

वास्तविक गुण वह है जिसकी[१] गुणी लोग सराहना करें और वास्तविक चतुराई वह है जिस पर दुनिया रीझ जाय । नाद से उत्पन्न रस के अतिरिक्त कोई दूसरा रस नहीं है । नाद से मृग आदि वन के जीव और भुजंग भी मोहित हो जाते हैं [४२] ।

जो नाद रंग के मर्म को प्राप्त नहीं करता और फिर भी आत्म-दर्शन की चर्चा करता है, उसे मैं अपने विचार से पाखंडी मानता हूं और (यदि वह तीर्थों में भी फिरता है, तब) उसका तीर्थाटन भी पागलों के समान (व्यर्थ) घूमना है [४३] ।

---

१. पाठ में (पीछे पृष्ठ ७, पंक्ति ८८) 'जाहि' के स्थान पर भूल से 'साहि' छप गया है ।

(दूसरी पाली की कुमारियां सब रूठ कर यह कहतीं हैं कि (हम छिताई की आंखें हाथ से बन्द करती हैं तव भी उसे दिखाई देता है क्योंकि) हमारे हाथ छोटे हैं और इसकी आखें बड़ी-बड़ी हैं । सखियां छिताई से कहती हैं कि दोनों ही प्रका' से जिनसे मेल नहीं बैठता (साथ की पाली में खेलने से तुम्हारे चन्द्रमुख की ज्योति के कारण छिपना कठिन हो जाता है और विरोधी पाली में खेलने पर हाथ से अंखें नहीं ढकतीं, तुम देख लेती हो कि कौन कहां छिप रही है तथा खेल नहीं बनता), उन्हें छोड़कर तुम दूसरी सखियों के साथ खेलो [३०]। (छिताई से सखियाँ कहती हैं कि तू) इतनी बड़ी-बडी आंखों वाली क्यों हुई और क्यों तेरी रूप ज्वाला से अंधेरे में भी उजाला हो जाता है ? तेरी कमर इतनी क्षीण है कि (उसके लचक जाने पर) हमें अपराधी माना जाएगा, इसलिए हम तुझे अपने साथ नहीं खिलाएँगीं [३१]। (सखियां आपस में कहती हैं,) इसे तो चन्द्र-मुखी और कमल की पंखुड़ियों जैसे बड़े नेत्रों वाली कहना चाहिए ।

(सखियों की ऐसी बातें) सुनकर छिताई उदास हो गयी और स्वयं अपनी निन्दा करने लगी [३२] । (वह कहती है कि) हे विधाता, मैंने क्या पाप किया था जिससे कि खेल के समय मुझे अपनी सखियों का वियोग सहना पड़ा । हे ब्रह्मा, तुझे यह कैसी (कु)वुद्धि समाई, मुझे इतनी बड़ी-बडी आखें दे दीं [३३]। मैंने ऐसा कौनसा पाप किया है कि सखियां मुझे अपने साथ नहीं खिलातीं। (छिताई) अपने मन में अपनी निन्दा करती है कि मै दीर्घ-नयना क्यों हुई [३४], मेरा मुख शरद के चन्द्रमा के समान क्यों हुआ, इसके कारण तो सखियों के साथ मेरा रात का खेलना ही समाप्त हो गया ।

कविजन (अथवा कवियों से) नारायणदास कहता कि (यह कह कर) छिताई (खेल बन्द कर) अपने आवास में चली गयी [३५]।

रामदेव की सभा में जंगम का आगमन (७६–६१)

भूपति (रामदेव) बहुत वड़े राज्य का भोग कर रहे थे । अपने शत्रुओं को वे सदा यमराज को सौंप देते थे (उन्हें मार डालते थे) । वे चौदह विद्याओं से युक्त सुजान थे और छहों दर्शनों (सम्प्रदायों) को समादर देते थे [३६] ।

हाथ में वीणा लिये और सिर पर जटाओं का जूड़ा बांधे एक

है । (यह सुनते ही उसने) राघवचेतन को बुलाया [५२] । उसने मोल्हन[1] से क्रोध पूर्वक कहा कि छल से या बल से दक्षिणी स्त्रियाँ लाओ । मलिक नेव और देवशर्मा पाण्डे सदा अपने स्वामी की आज्ञा का निष्ठापूर्वक पालन करते थे [५३] । उनसे स्वयं राजा ने कहा कि तुम चारो (राघवचेतन, मोल्हन, मलिक नेव और पाण्डे देवशर्मा) दक्षिण दिशा को प्रयाण करो । मोल्हन से सुल्तान ने विशेष-रूप से कहा कि तुम देश के समस्त दक्षिणी भाग को तुर्कों के अधीन कर दो (अथवा उसे इस्लाम ग्रहण करादो) [५४] । इस सेना का सेनापति नुसरतखां हुआ । उसके साथ सुल्तान ने सेना भेजी । नगाड़ों पर चोट पड़ी । सेना सुसज्जित हुई और तुर्क लोग दक्षिण दिशा के अभियान पर चल पड़े [५५] ।

तुर्क सेना का दक्षिण अभियान (११६–१२१)

डंके पर चोट पड़ी, सेना सुसज्जित हो गयी और अगणित सैनिकों ने कूच कर दिया । हाथी बादलों की घटा से दिखाई देते थे, घोड़े हींस रहे थे मानों उनके पर लगे हों । इस दल के चलने से उठने वाली धूल से आकाश भर गया और उसके पीछे सूर्य छिप गया । कवि (नारायण)दास कहता है कि (सेना के अभियान से) पृथ्वी कांपने लगी । (सेना इतनी अधिक थी कि) उसकी गिनती कोई नहीं कर सकता था [५६] ।

चलती हुई सेना का वर्णन कैसे किया जा सकता है ? वह एक पड़ाव से दूसरे पड़ाव पर कूच करती जा रही थी । चतुरंगिणी सेना को सुदृढ़ (व्यूह के रूप

---

१. छिताई चरित में आए अलाउद्दीन के इस सामन्त मोल्हन का उल्लेख जायसी ने नहीं किया है । परन्तु मोल्हन नामक एक व्यक्ति का नाम नयचन्द्र सूरि के हम्मीर महाकाव्य के सर्ग ११ छंद २२ में आया है । अलाउद्दीन के सेनापति उलुगखां तथा नुसरतखा ने राणा हम्मीर देव के पास मोल्हन देव को दूत बना कर भेजा था, यह उल्लेख नयचन्द्र सूरि ने किया है । यह स्मरणीय है कि नयचन्द्र सूरि ने हम्मीर महाकाव्य वीरमदेव तोमर के आग्रह पर लिखा था । वीरमदेव अथवा विक्रमदेव तोमर सन १४०२ ई० में ग्वालियर की गद्दी पर बैठा था । (विशेष विवरण के लिए प्रस्तुत लेखक की पुस्तक मध्यदेशीय भाषा (ग्वालियरी), पृष्ठ १३४ देखिए) ।

छिताई की संगीत-शिक्षा (६२–१०१)

राजा ने जंगम से यह कहा कि मैं तुमसे एक वचन मांगता हूं, वह तुम मुझे दो। मेरी जो प्रवीण नर्तकियाँ हैं उन्हें तुम वीणा वजाना सिखा दो [४४]।

जंगम प्रतिदिन महल में जाने लगा। वहां स्त्रियों सहित राजा आकर बैठता। (समस्त रनवास) वीणा के तारों से निःसृत नाद के रस-रंग पर रीझ गया, (रानियो के) चित्त में पूर्ण तन्मयता उत्पन्न हो गयी [४५]।

जब जंगम वीणा के तारों पर नाद की ध्वनियाँ निकलता तब स्त्रियाँ उसमें इतनी मग्न हो जातीं थीं कि वे उसे सीख नहीं पाती थीं। उनके साथ छिताई भी रहती थी, वीणा के नाद की ध्वनि को वह मन में ग्रहण कर लेती थी [४६]। जिस प्रकार जंगम गीत के नाद की ध्वनि करता था, उसे छिताई विना सिखाए ही (यथावत्) प्राप्त कर लेती थी। वह नाद के गुण में (संगीत शास्त्र में) वहुत कुशल थी, मानों कलियुग में उसके रूप में रम्भा ने ही अवतार लिया हो [४७]। मृदग, किन्नरी और वीणा वाद्य यंत्रों के नाद रस में वह दिनरात मग्न रहती थी।

(कवि नारायणदास अपने श्रोताओं से कहता है कि) अब आगे की अन्तर्कथा सुनो जिसमें (आख्यान को आगे वढ़ाने वाली) घटनाएँ घटित होती हैं [४८]।

अलाउद्दीन द्वारा दक्षिण में सेना भेजना (१०२–११५)

दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी का प्रताप इतना प्रचंड था मानो दूसरा सूर्य तप रहा हो। विषयभोग के उसके सूक्ष्म संकेत की भी पूर्ति होती थी और उसका चित्त चौमद[1] से छका हुआ रहता था [४९]। धन, यौवन, प्रभुता और वुद्धि इन चारों में वह वेजोड़ पुरुष था। ग्रीष्म ऋतु में यदि अग्नि किसी उद्यान (वन) को जलाने लगे तव ऐसा कौन चतुर हो सकता है जो उस अग्नि को प्रज्वलित होने से रोक सके [५०]। मदोन्मत हाथी को कौन पकड़ सकता है, उसी प्रकार वह राजा मत्रियों की मंत्रणा पर ध्यान नहीं देता था। पूर्व, पश्चिम तथा उत्तर दिशाओं के देशों में जो प्रादेशिक राजा थे [५१], उनकी पुत्रियों को वह शाह छल और वल से मांगता था, और यदि वे मना करते थे तो उनका सिर काट डालता था। उस (अलाउद्दीन) ने सुना कि दक्षिण देश में वहुत चतुर स्त्रियाँ होती

---

१. चार मद—धन, यौवन, प्रभुता और वुद्धि।

नामक नीतियों में से जिससे उन (तुर्कों) से उद्धार हो, उसके विषय में राजा ने पारिषदों के कथन को समझा। मन्त्रियों ने मिलकर सलाह निश्चित की [६५]। उन सयाने लोगों ने मंत्रणा प्रकट की कि दोनों ही ओर से राज्य का नाश दिखाई देता है। सुल्तान द्वारा साथ भेजी गई सेना को लेकर यदि नुसरतखां बहुमुखी धावे करेगा [६६] तो उससे युद्ध करने में तुम्हारे पैर उखड़ जाएंगे और फिर उनके हाथ से कोई जीवित बचकर नहीं जा सकेगा। (ये तुर्क, सदा निःशंक रहते हैं तथा (युद्ध नीति) के बन्धन नहीं मानते। उनकी सब सेना अचानक (और अकारण) हमारे विरुद्ध आयी है [६७]। उन सयाने मन्त्रियों ने यह बात कही कि ये तुर्क लोग छिताई को लेने आए हैं, आपको (अब यही मार्ग) हृदयंगम करना चाहिए कि या तो बेटी इन्हें सौंपकर निश्चल राज्य करो या फिर स्वयं दिल्ली चले जाओ [६८]। जो राजा दुखों को अपने ऊपर ले लेता है उसकी प्रजा, उसका राज्य और धन स्थायी रहते हैं।

तुर्क सेना से संधि और रामदेव का दिल्ली प्रस्थान (१४५–१५४)

मन्त्रियों के ऐसे वचन सुनकर राजा रामदेव अपने मन में विचार करने लगा [६९]। उसने (तुर्क सेना के) खान, उमराव, राणा और राय को गढ़ के ऊपर बुला लिया। राघवचेतन और मोल्हन नामक सामंत को राजा ने देव-गिरि गढ़ दिखाया [७०]। (राजा ने उन्हें अनेक भेंटें दीं।) उसकी दासियों में जो दासियाँ सब से बुरी थीं, ऐसी दो छोकरियां दीं। राजा ने यह चतुराई की कि और सुन्दर स्त्रियाँ भेट में नहीं दीं [७१]। साठ वर्ष के (युवा) ऐसे हाथी दिये जिनके कपोलों पर मद बह रहा था तथा जिनके लंबे दांत गठीली लकड़ी (?) के समान मोटे-मोटे थे। राजा ने और धन इतना अधिक दिया कि उसकी गिनती नहीं हो सकती। इन भेंटों के साथ देवगिरि का राजा रामदेव उन तुर्क सेनापतियों से मिला [७२]।

नुसरतखां ने समुद्र के किनारे के बहुसंख्यक राजाओं को अपने वशवर्ती कर लिया। राजा रामदेव को साथ लेकर, मार्ग में कहीं रुके बिना वह दिल्ली पहुँचा [७३]। (नुसरतखां के साथ देवगिरि का राजा रामदेव भी आ रहा है) यह सुनकर सुल्तान अलाउद्दीन को बहुत प्रसन्नता हुई। उसने उलूगखां को अगवानी के लिए भेजा, जिसने आगे बढ़कर राजा रामदेव की अगवानी की।

में) सजा कर (तुर्क सेनापति ने) रामदेव के घर (राज्य सीमा) पर गर्जन करते हुए पड़ाव डाला [५७]।

मार्गवर्ती राजाओं को पराजय (१२२–१३१)

यदि मार्ग में पड़ने वाले पड़ावों की गिनती करने लगूंगा तो कथा अधिक लम्बी हो जाएगी। (इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि इस सेना ने) गोपाचलगढ़ अपने मार्ग के दाहिनी ओर छोड़ दिया। अटूट सेना इकट्ठी होकर मालवा प्रदेश की घाटी चढ़ने लगी [५८]। वह सेना भीमसेन नामक नगर के (अथवा भीमसेन नामक राजा की राजधानी के) बाहरी भाग में ठहरी और वहां इकट्ठे होकर उसने नर्मदा नदी पार की। तुर्क सेना दक्षिण में धावे मारने लगी। जिन राजाओं पर वह सेना आक्रमण करती थी वे अपना उद्धार सुन्दर नारी देकर ही कर पाते थे [५९] और अपना सब धन एवं हाथी-घोड़े देकर नुसरतखां के साथ लग जाते थे। मार्ग में जितने नगर, गढ़ अथवा राजधानियाँ इस सेना के निकट आ जाती थीं वे तुर्कों का विरोध करने पर सुरक्षित नहीं रह सकती थीं [६०]।

बात को अधिक बढ़ाकर कौन कहे, (सक्षेप में, तुर्क सेना) देवगिरि के बाहरी भाग में जाकर ठहर गयी। (वहां अपना डेरा डालकर) तुर्क सैनिक इधर उधर के प्रदेश पर हमले करने लगे और नगरों तथा राजधानियों को जलाने लगे [६१]। आस पास जो स्वाधीन छोटे बडे ग्राम बसे हुए थे, उनके नाम और चिह्न तक वे मिटा देते थे। देवगिरि राज्य की सीमा के जो राजा लोग भय-वश तुर्कों से आकर मिल जाते थे, उनके वे कन्धे (पीठ) ठोकते थे तथा उन्हें पोशाक भेंट करते थे [६२]।

देवगिरि में मंत्रणा (१३२–१४४)

(तुर्क सेना के अत्याचारों से पीड़ित होकर) प्रजा भागकर समुद्र के किनारे जा बसी। देवगिरि में राजा रामदेव को ये समाचार मिले, जिन्हें सुनकर राजा के मन में चिन्ता उत्पन्न हुई। उसने मंत्री और मुखियाओं को बुलाया [६३] तथा ऐसे सुजान ज्योतिषियों को बुलाया जो कोकशास्त्र तथा सामुद्रिक शास्त्र पढ़े हुए बुद्धिमान थे। जिसकी बुद्धि का (विषय में) जितना प्रवेश था उससे राजा ने वैसी ही मंत्रणा की [६४]। (राजनीति की) साम, दण्ड और भेद

कहा, हे मंत्री ! तुम बहुत दुर्बुद्ध हो, इतने दिन बीत गये तुम अब भी राजा की खबर नहीं ले रहे । राजा के बिना राज्य नहीं चल सकता, इसलिए तुम आज ही राजा के पास पत्र लिखकर भेजो [८१] ।

(रानी के आदेश के अनुसार मंत्रियों ने पत्र लिखा :) घर में कन्या (छिताई) विवाह योग्य हो गयी है और पड़ौसी राजा ऊधम कर रहे हैं । जिसके घर में अविवाहित कन्या हो उसे रात में नींद कैसे आ सकती है [८२] । घर में अविवाहित कन्या और ऋण होने की वेदना जिन्हें व्याप्त है, उनके समस्त शरीर को अत्यधिक चिन्ता व्यथित करती है । छिताई अब सयानी हो गयी है । उस बाला का सौंदर्य बढ़ गया है । उसकी गति में हंस की सी गम्भीरता आ गयी है तथा उसकी वाणी में भी सरसता आ गयी है [८३] । उसका शरीर निखर उठा है, उसका हृदय (वक्ष) ऊँचा हो उठा है, और शरीर में काम ने प्रवेश कर लिया है । वक्ष को फोड़कर क्रूर कुच इस प्रकार ऊपर उठ आये हैं मानो मदन देव के बैठने के आसन हों [८४] । उसके नेत्र धनुष के समान तन गये हैं, मानो कामदेव ने युद्ध के बाजे बजाए हों । यदि समय पर आकर सींची न जाए तो सुकुमार बेल कुम्हला जाती है [८५] । स्त्री रूपी बेल तभी पनपती है जब उसे पुरुष का सहारा मिले । बिना भोग किये यदि सुन्दरी की वय बढ़ती जाती है तो उसका (या उससे) मिलने वाला नित्य नवीन कामसुख व्यर्थ नष्ट होता है [८६] । जिस प्रकार कुए का जल नित्य निकालते रहने पर स्वच्छ बना रहता है और उभरता रहता है उसी प्रकार उपभोग से स्त्री के गुण वृद्धि प्राप्त करते हैं । स्त्री को तभी सुख मिलता है जब वह प्रियतम के साथ उसके घर रहे [८७] ।

इस प्रकार पत्र में घर के सब हालचाल लिखे । इस पत्र को लेकर घुड़सवार पत्र-वाहक सेवक (चर) मार्ग में पड़ाव करते थोड़े ही दिनों में दिल्ली नगर में पहुंच गये [८८] ।

पत्रवाहकों का दिल्ली पहुंचना और राजा की अपने मन्त्रियों से मंत्रणा (१८६–२०५)

राजा के ठहरने के स्थान का पता लगाकर पत्रवाहक राजा के पास पहुँचे और राजा के चरणों की वन्दना कर उनने वह पत्र उसे दे दिया । राजा उनसे

रामदेव और अलाउद्दीन की मैत्री (१५५-१६८)

(राजा रामदेव के दिल्ली पहुँचने पर) अलाउद्दीन ने न्यौछावरें कीं और दस करोड़ टके भेंट किये [७४]। सुल्तान ने बहुत ममता दिखाई और राजा को अपने समान ही रखने लगा। सुल्तान के पास ही गयर[1] महल रामदेव को निवास के लिए दिया गया और वह उसमें रहने लगा [७५]। उन दोनों में बहुत गहरा प्रेम बढ़ गया। वे एक दूसरे से अपने गुप्त रहस्यों की बातें कहने लगे। राजा रामदेव छन्द, गीति, वाद्य और अभिनय तथा विनोद में कुशल था, उनके रस से उसने सुल्तान को अपने वश में कर लिया [७६]।

इस प्रकार तीन वर्ष बीत गये। राजा को अपने घर की याद न आई। शाह से उसका प्रेम इतना बढ़ गया कि तीन वर्ष एक घड़ी के समान बीत गये [७७]। राजा अपनी राजधानी भूल गया और उसे सुल्तान से बहुत सुख मिल रहा था [७८]। इस प्रीति और अत्यन्त स्नेह के कारण राजा का मन रमा रहा। सुल्तान भी बहुत ममता दिखा रहा था, इस कारण राजा को कोई चिन्ता भी नहीं हुई। उसकी सेवा से रीझ कर सुल्तान ने सांभर के बराबर साठ हजार का प्रदेश राजा को दिया।

(जब) राजा (इस प्रकार) वहाँ बना रहा और सुल्तान ने उसे विदा नहीं किया, तब घर पर उसके विषय में बहुत चिन्ता व्याप्त हो गई [७९]। राजा के विषय में उसके घर के लोगों को यह गंभीर चिन्ता हुई कि अब कैसे भी जीते जी राजा घर नहीं आ सकेंगे।

रानी रेखामती द्वारा रामदेव को छिताई के विवाह की व्यवस्था के विषय में पत्र भेजना (१६९-१८५)

(इस प्रकार) राजा रामदेव जब बहुत समय तक नहीं लौटे, तब रानी रेखामती ने मंत्री को बुलाया और उसे समझा कर बात कही [८०]। उसने

---

१. गयर महल एकाधिक बार छिताई चरित में आया है। संभव है यह किसी महल विशेष का नाम हो अथवा 'गैर = अन्य' महल के अर्थ में प्रयुक्त हुआ हो।

राजा ने मंत्री की बात नहीं सुनी (मानी) और सवेरा होते ही पत्र लेकर सुल्तान के पास पहुंचा [९८]।

अलाउद्दीन से रामदेव का देवगिरि लौटने की अनुमति लेना और चित्रकार भेंट में मांगना (२०६–२१९)

राजा रामदेव ने (सुल्तान से) कहा, यहां मुझे बहुत दिन बीत गये, देवगिरि से पत्र आया है कि मेरी कन्या का विवाह होने वाला है [९९]।

सुल्तान अलाउद्दीन ने कहा कि राजा सवेरा होते ही तुम्हारी विदा कर दूंगा। तेरी सेवा से मुझे बहुत सुख हुआ है, मैं तुझ पर प्रसन्न हुआ हूं, तू (जो चाहे वरदान) मांग ले [१००]। सिर झुकाकर राजा ने इस प्रकार कहा कि स्वभाव से ही मुझे चित्रों से बहुत प्रेम है (अतः) मेरे हृदय में यह इच्छा है कि आप मेरे साथ गुणी चित्रकार भेज दें [१०१]। यह बात सुन कर बादशाह प्रसन्न होकर कहने लगा कि जो गुणी हैं वे गुण का संग्रह करते हैं, जो लोभी हैं वे अपने समस्त सुकृत खो देते हैं और भले अथवा बुरे कर्मों से धन का संग्रह करते हैं [१०२], कामीजन कामिनी की इच्छा रखते हैं परन्तु जो गुणी व्यक्ति हैं वे गुण का संग्रह उसी प्रकार करते हैं जिस प्रकार हंस अपनी बुद्धि से पानी छोड़ देता है और दूध ग्रहण कर लेता है [१०३]। जिस प्रकार चलनी दुर्गुण (कचरा) ग्रहण करती है, गुणहीन मूर्खों को भी उसी प्रकार समझना चाहिए (जिस प्रकार चलनी से अनाज बाहर निकल जाता है और कचरा उसमें रह जाता है उसी प्रकार गुणहीन मूर्ख अच्छी वस्तु छोड़ देता है और बुरी वस्तु ग्रहण कर लेता है)। बादशाह ने चित्रकार बुलाकर राजा के साथ विदा कर दिया। उसने हाथ से (राजा को) पोशाक पहनाई [१०४] तथा माथे पर छत्र बाँधा और हाथी-घोड़े देकर राजा को बार-बार आश्वस्त किया। चित्रकार को अपने साथ लेकर राजा इस प्रकार चला मानो पिटारी में सांप डालकर ले चला हो [१०५]।

चितेरे सहित रामदेव का देवगिरि आगमन (२२०–२३०)

मंत्रीं लोग रोकते ही रहे और कहते रहे कि (राजा चित्रकार को अपने साथ उसी प्रकार ले जा रहा है मानो) पोटली में अंगार बांधकर ले चला हो अथवा हाथ में बिच्छू लेकर चला हो। (परन्तु) राजा को मंत्रियों की बात

घर के समाचार पूछने लगा। उनने सब परिवार के कुशल समाचार सुनाए [८९]। फिर राजा ने कन्या की बात पूछी, "छिताई का शरीर स्वस्थ तो है?" पत्रवाहकों ने सिर झुकाकर कहा कि महारानी ने अन्न जल छोड़ दिया है [९०]। यह बात सुनकर राजा की आंखों से आँसू बहने लगे और उसके मन में घर जाने की इच्छा बलवती हुई। राजा ने अपनी बात कही कि यह पत्र मैं सुल्तान को दूंगा [९१]। राजा ने अपना यह मत प्रकट किया कि मैं सुल्तान से कहूंगा कि मेरे घर में कन्या का विवाह है।

मन्त्री ने राजा को समझाते हुए कहा कि जंगल में शिकार खेलने में भटके हुए राजा (?) का सा व्यवहार मत करो [९२]। तुमने बादशाह को दो अत्यन्त कुरूप दासियां भेंट की थीं, परन्तु उसे वे ही अत्यन्त सौंदर्यमयी ज्ञात हुईं और उसके मन में बस गयीं। उन दोनों से सुल्तान ने तुम्हारे घर का सब भेद जान लिया है (और उसे ज्ञात हो गया है कि छिताई कितनी सुन्दर है)। उसकी (विवाह की बात) सुनते ही वह तुम्हें घर नहीं जाने देगा [९३] और बेड़ियाँ डलवा कर तुम्हें रोक रखेगा। फिर तुम तभी छूट सकोगे जब तुम छिताई उसे दे दोगे।

यह बात सुनकर राजा ने दांतों तले जीभ दबा ली और कहा कि सुल्तान सज्जन है, वह ऐसा काम नहीं करेगा [९४]। जिस प्रकार सुल्तान नुसरतखां और उलूगखां को मानता है उसी प्रकार मुझे भी मानता है। राजा ने मंत्रियों से कहा कि ऐसी बात कह कर तुम मुझे पाप में क्यों डालते हो [९५]।

मन्त्री ने कहा, जो मदिरा के नशे में मतवाला होता है उसे किसी व्यंजन का स्वाद जानने की शक्ति नहीं रहती, जुआ खेलने वाला कभी सत्य नहीं बोलता और स्त्री कभी कामवासना से रहित नहीं होती। इनके विषय में इससे विपरीत बात कहना झूठी गवाही देने के समान है [९६]। जो अपने मंत्रियों की बात नहीं सुनते हैं उन राजाओं को परिणाम में बड़ा दुख उठाना पड़ता है। हे राजा! तुम सुल्तान से जाकर यह बात मत कहो, क्योंकि पहले भी इतिहास में स्त्री के कारण युद्ध हुए हैं [९७]। गढ़, घोड़ा, हाथी और स्त्री, इनके कारण झगड़ा बढ़ता है और युद्ध होते हैं।

गई तथा शुभ और अच्छे सगुन के साथ नींव की रचना की गई। श्रद्धा-पूर्वक क्षेत्रपाल की पूजा की गई जिससे राजा का भवन अविचल और दृढ़ बने [११५]। गहरी और चौड़ी नींव खोदकर उसे साफ कराया गया। सात सुपुरुषों ने मिलकर उसे भरवाना प्रारम्भ कराया।

चारों ओर चौकोर चौबारे बनवाये गये जिनमें कांच के टुकड़ों (किरच = किलच = किलचा = कलिचा) से मोरों की आकृतियाँ बनाई गईं [११६]। उन्हें काष्ठ और पत्थर से पाटा गया, और नवनिर्मित शालाओं में नूतन नाटकों का ठाठ रचाया गया। नये रंगों की दीवारें अत्यन्त रमणीक बनीं जिनमें स्थान स्थान पर सोने के टीके लगा दिये गये थे [११७]।

(महल ऊँचा उठता गया; वह आकाश छूने लगा (तथा ऐसा ज्ञात होने लगा मानो) मेघघटा छा गई हो। (उस ऊँचाई पर) अनेक अटा-अटारी बनाए गये, अनेक छज्जे और झरोखों की रचना की गई जिनमें बैठकर राजा बाहर झाँक सके [११८]।

सतखण्डे के प्रकोष्ठों को काष्ठ से छाया गया और उन पर सोने के कलश चढ़ाये गये। वे ऐसे दिखते थे मानो कैलाश हों।

पत्थर उत्कीर्ण (कडारी[१]) कर उनमें कांच जड़कर केलों के वृक्ष बनाए गये। (वह महल ऐसा बना कि) विचारवान चतुर भी भ्रमित होकर भूल जाते थे [११९]।

बावन वस्तुओं को उचित परिमाण में मिलाकर (बनाये गये लेप को घोंट-कर दीवारों को) दर्पण के समान ऐसा चमकीला बना दिया गया कि उसकी उपमा नहीं दी जा सकती।

मन लगाकर ऐसी चित्रशाला का निर्माण किया गया जिसे देखते ही हृदय लुभा जाता है [१२०]।

चौक में मन को मोहने वाले माणिक्य जड़ दिये गये। अद्भुत भूल भुलइयों का निर्माण किया गया। अनेक प्रकार के तलघर बनाये गये जिनमें सदा अंधेरी रात सी बनी रहती थी [१२१]।

सोने के खम्भों पर हिंडोले बने हुए थे। ये खम्भे स्वसंभवी वाणी के

१. तुलना कीजिए 'कंडरिया' महादेव मंदिर, खजुराहो।

अच्छी न लगी [१०६]। घर की ओर चलते हुए राजा ने वहुत जल्दी (?) की और राजा रामदेव देवगिरि दुर्ग पर पहुंच गये । सारे नगर में इस वात पर उत्सव मनाया गया कि उनका राजा सकुशल घर लौट आया [१०७] ।

जब राजा नगर में गया तब घर घर में आनन्द हुआ, वहुत मंगल गीत गाये गये, घर घर पर पताकाएँ फहराई गईं और गम्भीर नाद युक्त वाजे वजाये गये । हाथी, घोड़े, कपड़े, सोना, रत्न भंडार दान में दिये गये । राजा के सिर पर अभिषेक किया गया और समस्त परिवार आनन्दित हुआ [१०८] ।

समस्त परिवार राजा को देखकर प्रसन्न हुआ मानो राजा ने दूसरा जन्म ग्रहण किया हो । राजा ने याचकों को विनय करके विदा किया और चित्रकार को वुलाया गया [१०९] ।

चित्रकार द्वारा राजा को नवीन महल वनाने की सलाह देना (२३१–२३७)

राजा चित्रकार की वांह पकड़कर भीतर ले गया और महल के स्थान दिखाने लगा । (राजा ने कहा) चौमासे लगने वाले हैं और वर्षा प्रारम्भ हो जाएगी, इसलिए इन प्रकोष्ठों में तुम शीघ्र ही चित्र वना दो [११०] । चित्रकार ने कहा, सुनो राजा, इस प्रकार चित्र कैसे वन सकते हैं ? मैंने पुराणों में यह उपदेश सुना हैं कि पुराने शरीर, कपड़े और काठ [१११] पर रंग की रेखा नहीं पड़ती । सयाने चतुर लोग भी यही कहते हैं । पुराने स्थान पर चित्र नहीं वनाया जा सकता, यह मेरा निश्चित मत है [११२] ।

तव रामदेव हृदय में विचार करने लगा कि नवीन भवन निर्माण करने पर ही चित्र वन सकेंगे ।

महल निर्माण (२३८–२७४)

पत्थर के काम में प्रवीण सूत्रधारों को वुलाकर राजा ने उन्हें महल के निर्माण के लिए बीड़ा दिया [११३] । कमठान (इंजीनियर) को आदेश दिया गया और कार्य पूरा कराने के लिए अनगिनती द्रव्य दिया गया । गुणवान लंकु नामक अथवा गोदावरी तटवासी (अथवा लंका जैसे भवन निर्माण करने में कुशल) गीगा और गुणदास, जो शिल्पविद्या जानते थे तथा जिन्हें उसका वहुत अभ्यास था, वुलाए गये [११४] । ज्योतिषी को वुलाकर लग्न निकलवाई

राजा की ज्योनार (भोजन स्थल) जहां थी वहां कांच जैसी चिकनी ओप (हिलवी¹) की गई थी। ऐसा मालूम होता था मानो यमुना का नील जल भरा हो [१३०]।

अनेक प्रकार के भवन सीधी रेखा में बनाये गये थे और एक एक पंक्ति के भवन एकसे बने हुए थे।

इस प्रकार जब निवास गृहों का निर्माण समाप्त हुआ तब चित्रकार राजा के पास पहुंचा [१३१]।

चितेरे द्वारा महल में चित्ररचना (२७५–२६२)

राजा से अनुज्ञा लेकर पांच (मूल) रंगों से चित्रकार ने चित्र रचना प्रारम्भ की। गणेश का स्मरण कर उसने तलिका ग्रहण की और वह अपनी बुद्धि का कौशल दिखाने लगा [१३२]।

सर्व प्रथम (चित्रकार ने) सरस्वती के चित्र का आलेखन किया जिससे चित्रों की अभिव्यक्ति अनुपम हो। रेखाओं में उसने स्वर्ग (द्यु) और नरक (निरिति) के चित्र बनाए। उसने नल दमयन्ती के संयोग और वियोग के चित्र बनाए [१३३], महाभारत और रामायण की कथाओं का आलेखन किया, मृगया के सुन्दर चित्र बनाए तथा कोकशास्त्र के चौरासी आसनों को चित्रित किया। चारों प्रकार की स्त्रियों की जातियां [१३४] हस्तिनी, चित्रिणी, शंखनी तथा पद्मिनी का, जो मनोहर बन पड़ीं, चित्रण किया। चार प्रकार की शरीराकृति के शश मृग, वृष और अश्व चारों वर्ग के पुरुषों के सुन्दर चित्र बनाए [१३५]।

कविजन (अथवा 'कवियों से'–) नारायणदास कहता है कि जब वह भवन में चित्रकारी करने लगा तब नगर के लोग उसे देखने के लिए आने लगे और वे चित्रों को देख कर लुभा जाते थे [१३६]।

(नगर में) जितने पंडित और चतुर सुजान लोग थे वे प्रतिदिन भवनों को आकर देखते थे।

एक दिन विचित्र बात हुई कि उसका वर्णन करना कठिन है। (उस

---

१. सुनारों की 'हिल्ल' तथा चूड़ी बनाने वालों की 'हिलवी'।

समान सुन्दर ज्ञात होते थे। उनका बहुत विचारपूर्वक शृंगार किया गया था और ऐसा ज्ञात होता था मानो सुनार ने उन पर जड़ाव का काम किया हो [१२२]।

जहां राजा सभा जोड़कर बैठता था उस स्थान पर स्फटिक का सिंहासन बनाया गया।

उत्कीर्ण करके चकवा-चकई, जलकुक्कुट, मटामरियार (उल्लू की आकृति का निशिचारी पक्षी) [१२३] और अन्य जितने प्रकार के जलजीव वहां बने थे वे जड़ाव द्वारा बनाए गये थे। छोटे बड़े अनेक मत्स्य और कछुए ऐसे दृष्टिकोण से बनाये गये थे कि चलते हुए दिखाई देते थे [१२४]। इस प्रकार सभामंडप का जो सरोवर बनाया गया था वह वैसा ही था जैसा हस्तिनापुर में पांडवों ने बनवाया था। अन्य दूसरे राजा जो उसे देखने आते थे वे बैठ नहीं सकते थे, भ्रमित हुए फिरते रहते थे [१२५]।

चन्दन के काष्ठ से बनाये गये मंडप ग्रीष्म ऋतु में भी हेमन्त ऋतु के समान शीतल थे। चारो ओर के सुन्दर स्थलों पर ऐसे चौवारे बने हुए थे जिनमें वर्षा ऋतु में राजा विश्राम कर सकता था [१२६]।

सोने के पचास फव्वारे बनाए गये जिनके कारण बारहों महीने वर्षा सी होती रहती थी।

खरबूजे के आकार की गुमटियां बनायी गई और उनमें पंवारी शैली के किवाड़ जड़े गये [१२७]।

चारों ओर कांच की खूटियां लगी हुई थीं जिन पर जंगली पक्षी रहते थे (बनाये गये थे)। उन पर तोता-मैना निवास करते थे और कुमरी (पडकुलिया के आकार का श्वेत रंग का पक्षी। इसका स्वर मधुर होता है और सिर दर्द मिटाने वाला होता है) अनेक प्रकार की बोली बोलती थीं [१२८]।

एक ऐसा महल बनाया गया था जिसमें जलाशय छिपा हुआ था परन्तु मालूम यह होता था कि वह बैठने का स्थान था। इसे देखने पर शरीर में बुद्धि नहीं रह जाती थी, अर्थात, बुद्धि-भ्रम हो जाता था। उसे स्थल मानकर यदि उस पर कोई चलने लगता तो गहरे पानी में डूब जाता [१२९]।

की तरंगों में फँस गई। आसनों के चित्रों को देखकर वह बहुत लज्जित हुई और आंचल से मुँह ढँक कर मंद-मंद मुसकाने लगी [१४५]। वह बांह फैला कर सखियों को दिखा कर पूछने लगी 'यह क्या है, विचार कर बतलाओ'। (आगे) विपरीत रति के चित्र को देखकर वह भ्रमित और भयभीत होकर भाग गई [१४६]।

(आगे उसने) अभिनीत होते हुए नाटकों के दृश्य अंकित देखे। नाट्यशाला के चौरासी खम्भों पर कोकशास्त्र के अनुसार (रति भावों की अभिव्यक्ति करने वाली अंगभंगियों के) चित्र बने हुए थे।

(चित्रों को देखते हुए छिताई जिस प्रकार के हावभाव दिखा रही थी उन्हें देखकर) चतुर चित्रकार को जैसी-जैसी वह दिखाई दी वैसी ही उसने हाथ में कागद लेकर उस पर अंकित कर ली [१४७]। उसकी चितवन, उसका चलना, मुड़ना और मुस्कराना सब चित्रकार ने वान (पैंज) के साथ अनेक चित्रों में उतार लिया।

(छिताई) सुन्दर थी, सुघर थी और संगीत में प्रवीण थी। मानो स्वयं यौवन ही पैंज (वान) के साथ वीणा बजा रहा हो [१४८]। उसके स्वर-संधान करने पर स्वयं (कामारि) शंकर का मन भी अपहृत हो जाता, बेचारा नर (अपने आप को बचाने का उपाय) कहां तक कर सकता था? एक तो वह सुन्दरी, दूसरे स्वर्ण जैसा उसके शरीर का वर्ण, (वह ऐसा संयोग था मानो) पहले से ही मधुर मिश्री दूध में घुल गयी हो अथवा पहले से ही कमनीय सोने में सुगन्ध उत्पन्न हो गयी हो। मानो......[1]। वह गरवीली गज गामिनी चित्रणी[2]

---

१. 'लहइ प्रयाति पयोगहि कंध' अथवा दूसरे पाठ 'लहीइ परइ प्रियगहि कंध' का आशय लेखक को स्पष्ट नहीं हो सका।

२. दामो कवि ने लखनसेन पदमावती रास (रचना काल सं० १५१६ वि०, सन १४५९ ई०) में चित्रणी का लक्षण देते हुए लिखा हैः—

नयण चंचल नयण चंचल चपल चल चित्त ॥
बोलती मधुरे सबद जिमि वसत कोकिला वासइ।
जांणिक भमरा भमरी रुणझुणइ कमल फूल जिमि मुखहि विगसइ ॥
कुरल केस मोती हव्या निलवट घरइ सहकार।
एता लक्षण चित्रणी दामउ कहइ विचार ॥

दिन) छिताई ने छत पर से मुंडेल से ऊपर उठकर (चित्रों की ओर) झांका [१३७]।

वह सुन्दरी बिजली जैसी कौंधी और (चितेरे को) झुलसा गई, उसे देखते ही चित्रकार मूछित हो गया। चितेरा चित्त लगाकर उसी ओर देखता रहता, परन्तु छिताई ने फिर मुंडेल से ऊपर उठकर नहीं झांका [१३८]।

जब कभी भवन सूना होता तब-तब अन्तःपुर की स्त्रियां आवास (की चित्रकारी) को देख जातीं।

एक दिन फिर अवर्णनीय घटना हुई। छिताई के हृदय में कामव्यथा उत्पन्न हुई [१३९]। उसने घर में वीणावादन प्रारम्भ किया। जब काम व्यथा ने उसे बहुत उदास कर दिया तो वह भवन के चित्रों को देखने के लिए चली आई [१४०]।

छिताई द्वारा चितेरे के बनाए हुए चित्र देखना (२९३–३१३)

वह नारी (छिताई) वीणा के तारों पर आघात करते हुए चित्र देख रही थी। अपनी वीणा पर वह रच-रच कर राग बजाते हुए साड़ी को संभालती जाती थी। वह मुसकाती हुई गज जैसी गति से मन्द-मन्द चल रही थी और उसके साथ दस-पांच सखियां थीं [१४१]। इस प्रकार वह चित्रशाला देखने गई जहां अनेक प्रकार के चित्र आलेखित थे। चित्रकार उसकी ओर पीठ किये हुए चित्रालेखन कर रहा था। उसने झनकार सुन कर अपनी दृष्टि फेरी [१४२]।

चित्रकार छिताई का मुंह देखता ही रह गया (और सोचने लगा कि) यह मानवी है या अप्सरा? चित्रकार स्वयं चित्र जैसा (अचल) लगने लगा। वह ऐसा दिखाई देता था मानो किसी ठग ने ठगौरी से उसे मूढ़ बना दिया हो [१४३]।

(छिताई चित्र देखती हुई चारो ओर फिर रही थी और चित्रों के आकर्षण के कारण) वीणाध्वनि की माधुरी के प्रति उसके श्रवण उदासीन हो गये थे। उसने वे चित्र देखे जो कोकशास्त्र से सम्बन्धित थे और उनमें उसे काम कथाएं अंकित दिखाई पड़ीं [१४४]। उन चित्रों में (कोकशास्त्र के) अनेक प्रकार के आसन चित्रित थे जिन्हें देख कर वह सुन्दरी रसों के सार (कामरस)

उसके लिए वर की खोज करो [१५७]। देश-देशान्तरों में घूमो और योग्य वर का वरण कर मुझे समाचार दो। (वर ऐसा हो कि वह) क्रिया कर्म जानता हो तथा अधिक विद्वान हो एवं कन्या से (वय में) कुछ दिन बड़ा हो [१५८]। जहां ऐसा पुरुष और स्नेह दिखाई दे वहां कन्या का सम्बन्ध कर देना। विवाह, शत्रुता तथा मित्रता यह तीनों ही बराबर वालों के साथ करना चाहिए, ऐसा प्रमाण है [१५९]।

ब्राह्मण राजा को आशीर्वाद देकर चले और द्वारसमुद्र गढ़ में पहुंचे। पश्चिम दिशा में यह उत्तम स्थल है और वहाँ का राजा भगवान नारायण है [१६०]। उसका पुत्र समरसिंह सुजान और कामदेव के रूप का जैसा प्रमाण है वैसे लक्षणों वाला है। वह मुद्गर भांजता है और नाल[1] घुमाता है (और इस कारण उसका) शरीर सुदृढ़ और रसयुक्त बन गया है [१६१]। वह गुणवन्त मलखम्भ पर कसरत करता है। उसका सुयश संसार गाता है। उसे राजनीति के सब गुणों का व्यावहारिक ज्ञान है। वह पराई स्त्री की ओर आंख उठा कर भी नहीं देखता [१६२]।

(ब्राह्मणों ने) बसीठी (दूतत्व) करके (विवाह की) बात चलाई और समरसिंह से छिताई की सगाई कर दी। (ब्राह्मणों ने समरसिंह) का टीका किया और विवाह की लग्न लिखकर दे दी। (इतना करके) पुरोहित लोग देवगिरि लौट आए [१६३]। उनने राजा रामदेव से कहा कि हमने कन्या की सगाई कर दी।

(यह सुनकर राजा ने) विवाह की सामग्री एकत्रित की [१६४]। राजा ने मन्त्रियों को बुलाकर कहा कि विवाह कर देना चाहिए। विवाह के लिए जैसा किया जाता है उसी प्रकार सोने के आभूषण गढ़वाओ और उनमें रत्न जड़वाओ। पाट-पटांवर बनवाओ। हाथी घोड़े तयार करो और सब सामग्री सजाओ। पत्र-लेखक (?) और चित्रकारों (बेल बूटे बनाने वालों) से (विवाह निमन्त्रण लिखवाओ और उन्हें) भिजवाने में विलम्ब मत करो [१६५]।

---

१. ग्रामों की चौपालों पर आज भी पत्थर के 'नाल' पड़े रहते हैं जिन्हें पहलवान पकड़ कर घुमाते हैं।

(छिताई) चित्र देखकर अलस गति से लौटी [१५०]। कविजन नारायणदास कहता है कि (इस प्रकार) छिताई अपने भवन में लौट आई।

चित्रकार का छिताई का पीछा करना और उसके चित्र बनाना (३१४–३२३)

(भवन में लौट कर छिताई ने) अपने स्वर्ण जैसी कांति वाले गौर शरीर पर कुसुंभी रंग का चीर धारण किया [१५१]। कुचों पर उसने शोभा देने वाली श्याम रंग की कंचुकी पहनी, मानो कामदेव की पताका स्थापित कर दी हो। उसने अपने साथ मृग छौना लगा लिया और अपने हाथों में हरे जौ ले लिए [१५२]। (छिताई उन हरे जौ को मृग शावक को) हाथ ऊँचा करके चराने लगी। ऐसा करते समय कुचों से कंचुकी हट जाती थी और संधि पड़ जाती थी तथा कुचमूल दिखाई देने लगते थे। वे कुचमूल चित्रकार को इस प्रकार ज्ञात हुए मानो श्याम घटा के बीच चन्द्रमा की रेखा दिखती हो (श्याम कंचुकी, चन्द्रवर्ण कुच) [१५३]। चित्रकार अपने नेत्र और मन उसी ओर लगा कर रह गया, वह स्मृति कभी भी उसके हृदय से हटती नहीं थी।

छिताई महल में निर्भय फिर रही थी। (परन्तु) चित्रकार (उसके रूप से मुग्ध होकर) मूर्छित हो गया [१५४]। जब चित्रकार मूर्छा से जागा तब उसने छिताई का वह रूप स्मरण करके चित्रित कर लिया। जब जब चित्रकार की दृष्टि छिताई पर पड़ती थी तब-तब उसकी बुद्धि चकरा जाती थी [१५५] और तभी वह उसके वैसे स्वरूप का चित्र बना लेता था। (छिताई के) समान पृथ्वी पर और कोई दूसरी अनुपम सुन्दरी थी ही नहीं।

रामदेव द्वारा छिताई के लिए वर खोजने के लिए ब्राह्मण भेजना और उनके द्वारा द्वारसमुद्र के राजकुमार समरसिंह से सगाई करना (३२४–३४४)

(गृहनिर्माण और चित्र-रचना हो जाने के पश्चात राजा रामदेव ने) ब्रह्मा द्वारा वेदों में बतलाई गई रीति के अनुसार गृह प्रवेश किया [१५६]।

जब भवन का कार्य समाप्त हो गया तब राजा रामदेव ने ब्राह्मणों को बुलाया। (उसने ब्राह्मणों से कहा कि) बाला (छिताई) के हेतु नारियल लो और

रहा तथा अत्यधिक प्रेम बढ़ा [१७४]। एक हजार दासियाँ पूरे शृंगार सहित दीं। हस्तिनी के लक्षणों वाली वे दासियाँ सिंघल देश की रहने वाली थीं। भगवान नारायण ने भी (अपने राजकुमार के विवाह के उपलक्ष में) उस स्थान पर अपने हाथ से कर्ण के समान दान दिया [१७५]।

छिताई का बरात सहित द्वारसमुद्र लौटना [३६५-३६६]

राजा (भगवान नारायण) विवाह करके आनंदित होता हुआ चला और द्वारसमुद्र पहुँचा। जब पालकी महल में भीतर गई और छिताई उससे उतरी तो उसके उतरते ही छींक हुई [१७६]।

समरसिंह की माता, द्वारसमुद्र की रानी, अपनी नवागत वधू छिताई का मुंह देखती ही रह गई और सोचने लगी कि यह रम्भा है या कोई अन्य अप्सरा। स्त्रियों ने छिताई की आरती उतारी और वे भी उसका रूप देखकर विमोहित हो गईं [१७७]।

छिताई का रूप वर्णन

उस बाला के केश सुन्दर घुंघराले हैं। कुच कठोर हैं। उसकी चाल हंस के समान मधुर है। उसके माथे पर मांग मोतियों से भरी हुई है जो कामदेव के राजपथ जैसी है। उसके ललाट पर चन्द्रमा जैसी दीप्ति का तिलक लगा हुआ है [१७८]। वह शरद की रात्रि के समान है, जिसमें मदन की जुन्हाई छिटक रही है। उसकी भौंहें कामदेव के धनुष के समान हैं। उसके चंचल नेत्र मृग-शावक के नेत्रों के समान सुशोभित हैं [१७९]। उसके कपोलों पर सोने जैसी दमक है मानो उसकी रचना अमृत में सान कर की गयी हो तथा उस पर स्वर्ण का चूर्ण वुरक दिया गया हो। नाक तोते के सौन्दर्य से होड़ कर रही है। (कानों में) रत्नों से जड़े हुए कर्णफूल पहने है जो कामदेव के रथ के पहियों के समान प्रतीत होते हैं [१८०]। उसके बालों में पांच भौंरियां पड़ी हैं तथा बालों की खुटी इतनी सुन्दर है कि उसकी केशराशि राजा के छत्र के समान उसके सिर पर शोभित है। उसकी नाक में रत्नजटित नकफूली ऐसी ज्ञात होती है मानो वनसी में फंसी हुई मछली हो [१८१]। उसके मुख पर तिल जलहीन पुष्प के समान दिखाई देता है, जिसकी ओर देखते ही मन मछली के समान विद्ध हो जाता है। उसके कपोल पर विधाता ने जो यह तिल बनाया है वह ऐसा ज्ञात होता है मानो

समरसिंह की वरात का आगमन तथा विवाह (३४५–३६४)

(पूरी) शक्ति लगाकर (विवाह) सामग्री सँजोई गई। विवाह का समाचार (निमन्त्रण) पाकर सब लोग आए। सात सौ राजा और राव एकत्रित हुए। समरसिंह वरात सजाकर चला [१६६]। त्वरा पूर्वक (?) दिन-रात चल कर विवाह के लिए देवगिरि दुर्ग में पहुंचे। (वरात) की आगौनी (स्वागत) की गयी और उस समय वे सब आचार किये गये जैसी दोनों वंशों की परिपाटी थी [१६७]। मंडप में सब लोग सुशोभित हुए। वहाँ समस्त वराती बैठाए गये। प्रजा के द्विजजन भी (मंडप में बैठे)। (नगर की स्त्रियों ने) चातुर्यपूर्ण (विवाह की) गालियाँ गाना प्रारम्भ किया [१६८]। वे नारियाँ कोकिल कंठ से गा रही थीं और उनके वे विवाह-गीत सुधा के समान मीठे लगने लगे। उनके वचन मन हरने लगे और जीभ को भोजन का स्वाद भी विस्मरण हो गया [१६९]। छह रसों से युक्त भोजन इन गीतों को सुनते हुए किया गया। शुभ मांगल्य आचारों के साथ विवाह सम्पन्न हुआ।

विवाह की पूरी रात कामिनियाँ जागती रहीं। वे गज गामिनियाँ घूँघट की ओट किये घूमती रहीं हैं [१७०]। उनमें कुछ रमणियाँ नेत्र घुमा लेती हैं और (रात्रि जागरण के कारण) गले खखार कर बात करती हैं। (रात भर घूमते रहने से उनके केश ढीले पड़ गये हैं अतः वे) खुली लटों को लटकाए फिरती हैं, और वे ऐसी दिखती हैं मानो यौवन की मदिरा से मत्त होकर गिरी पड़ती हैं [१७१]। उनमें कुछेक (उनीदीं होने के कारण) खम्भा पकड़ कर अंगड़ाई ले रही हैं और रात भर जागी हुई होने के कारण जँभाई ले रही हैं।

विवाह में जो अनेक देशों के राजा आए उन्हें बुलाकर राजा ने महल के चित्र दिखाए [१७२]। चित्रों को देखकर राजाओं के मन रीझ गए।

सब राजा अपने-अपने देशों को विदा हुए।

राजा रामदेव ने दहेज दिया। दहेज में हीरा, फिरोजा तथा लाल [१७३], जड़ी हुई मगध देश की (?) चूनरी[1] जिनके मूल्य की गिनती नहीं की जा सकती, दीं। गजमुक्ता, हीरा और स्वर्ण दहेज में दिया। बहुत उत्साह

---

१. 'मगछई दुरजन चुनी' का आशय प्रस्तुत लेखक को स्पष्ट नहीं हो सका।

होती है, मानों चित्रगुप्त ने उसे बड़े ध्यान से बनाया हो [१६१]। उसने कुसुंभी रंग का चीर पहन रखा है। उसका गौर वर्ण सोने जैसी दीप्ति से युक्त है।

उसके रूप का वर्णन और अधिक नहीं कर सकता, यहाँ मैंने केवल उतना मात्र कह दिया जो पूर्वकाल में गुरु के मुख से मैंने सुना था [१६२]।

(छिताई के रूप पर रीझ कर) रानी ने अपना एक-एक आभूषण उतार कर उस पर न्यौछावर कर दिया।

सुहागरात (४००–४२६)

दिन वीत गया और चन्द्रमा का उदय हुआ। समरसिंह शयन के लिए शय्या पर गया [१६३]।

दस-वीस मन अबीर विछा कर उसके ऊपर पलंग रख कर सजाया गया है। वहाँ जो सुगन्धित द्रव्य एकत्रित किये गये उनका ज्ञान भी नहीं हो सकता। कस्तूरी, अरगजा (केसर, चन्दन, कपूर आदि से वना एक सुगन्धित द्रव्य) तथा रजिवाई (?) (वहाँ रखे गये)। मलयगिरि के चन्दन के साथ केशर घिस कर समरसिंह के उस महल में छिड़की गई। कस्तूरी मिला हुआ असली चोवा (विशेष प्रक्रिया से चुवाया गया सुगन्धित द्रव्यों का तेल) वहाँ रखा गया, उसके गन्ध-रस के मर्म को कहना कठिन है [१६५]। वहुत अधिक सुगन्धित तेल लेकर वहाँ झझरी का दिया[1] जलाया गया। (उसके सुगन्धित तेल में) अरगजा भी मिला दिया गया और उसकी सुगन्धि अनुपम हो गई। महल को दक्षिणी धूप जलाकर सुगन्धि से आपूरित किया गया [१६६]।

खवास पान के बीड़े रख गया।

छिताई अपने प्रिय के पास चली। उसके आगे पीछे दस सुन्दरियाँ चलीं और उसे पकड़ कर सेज की ओर ले गईं [१६७]। छिताई लज्जित होकर (शयन कक्ष के द्वार पर) उसी प्रकार ठिठकी खड़ी रह गई जिस भाव से प्रथम समागम की रात्रि को बालाएँ लज्जित होती हैं। (उधर) समरसिंह

---

१. मूल में छछारिउ है। डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने इसका अर्थ एक स्थल पर फव्वारा किया है (पृष्ठ २५०) और दूसरे स्थल पर 'शयन शाला' किया है। वास्तव में छंछारिउ झंझरी से ढके हुए दीपक के लिए प्रयुक्त हुआ है।

मदन अपना चिह्न (निशानी) बना गया है [१८२]। उसके अधर अमृत के समान मधुर हैं। ऐसा ज्ञात होता है मानो कुम्हार ने (पतली) रेखा खींच दी हो। उसके दांतों में हीरों की ज्योति दमकती है और कुछ-कुछ अनार के बीजों की सी छटा भी दिखाई देती है [१८३]। उस बाला की ठोढ़ी पर जो तिल है वह ऐसा प्रतीत होता है मानो केशर में तूतिया का दाग पड़ गया हो। गले में शंख की सी तीन रेखाएँ पड़ी हुई हैं। वे इतनी सुन्दर हैं मानो ब्रह्मा ने स्वयं अपने हाथ से संवार कर बनाई हों [१८४]।

उसके कंठ में सुन्दर कंठश्री शोभा दे रही है जिसमें मोतियों की लड़ों की छटा विकीर्ण हो रही है। उसके कठोर कुच यौवन की उत्तर उमंग में इस प्रकार तने हुए हैं मानो राजा जूझने के लिए धनुष तान कर युद्धक्षेत्र में चढ़ आए हों [१८५]। वे सुन्दर गढ़े हुए सोने के कलश के समान प्रतीत होते हैं और ऐसे ज्ञात होते हैं मानो रस से उमड़ते (हरे) श्रीफल उपज आए हों। वे कुच कंचुकी को ऊपर की ओर इस प्रकार तान रहे हैं मानो कामदेव की पताका फहरा रही हो [१८६]।

उसकी गम्भीर नाभि का वर्णन कौन कर सकता है। वह ऐसी ज्ञात होती है मानो कामदेव के भवन का क्रीड़ा-सरोवर हो। उसकी बांहें कमल-नाल के समान हैं और उसके हाथ मेंहदी से लाल हो रहे हैं [१८७]। बाईं अंगुली में उसने नख बढ़ा रखा है जो कुंद की कली जैसा सुन्दर दिखाई देता है। उसकी कटि का मध्य वर्र की कमर के समान पतला है और ऐसा ज्ञात होता है मानो कुचों के भार से वह किसी भी क्षण टूट जायगा [१८८]। त्रिवली की बारीक रोम-रेखा निसर्गतः ऐसी प्रतीत होती है मानो कुचों के भार को सहारा देने के लिए खम्भा खड़ा कर दिया हो। कमर के सुन्दर प्रदेश पर मेखला यथा स्थान पड़ी हुई है। इस मेखला से निकलने वाली ध्वनि कामिनी के रणवाद्य की ध्वनि के समान प्रतीत होती है [१८९]। दोनों जाँघें कदली के उलटे खम्भे के समान हैं, उसकी पिंडलियाँ कुंकुम के रंग सी पीली हैं। उसके नितम्ब भारी हैं इस कारण वह गज जैसी मन्द चाल से चलती है। उसके रूप को देख कर अन्य कामिनियों को मूर्छा आ जाती है [१९०]। उसके चरणों की अंगुलियों के नखों की ज्योति समुद्र की सीप के मोतियों के समान है। वह सुन्दरी सांचे में ढली सी ज्ञात

जिसके कारण छूने मात्र से छिताई के अंग द्रवित हो जाते। वे प्रेम से अंग से अंग लिपटा कर पड़े रहते और क्षण मात्र में रात्रि बीत जाती [२०७]। उन्हें पूर्ण रूप से शय्या सुख और विश्राम मिलता था।

(इस प्रकार आनन्द केलि में दिन बीत रहे थे कि एक दिन) देवगिरि से राजा रामदेव का उनके लिए बुलाना आ गया।

समरसिंह और छिताई का देवगिरि लौटना तथा समरसिंह का मृगया में अनुरक्त होना (४३०–४४३)

(देवगिरि से छिताई और समरसिंह का बुलाना आने पर) राजा भगवान नारायण ने समरसिंह को सेना के साथ (देवगिरि के लिए) विदा कर दिया। छिताई को पालकी में बैठाया। (इस प्रकार) वे देवगिरि दुर्ग में राजा रामदेव के पास पहुंचे। रामदेव ने नवीन महल खुलवा दिया और उसमें समरसिंह ठहर गया [२०९]।

कविजन (अथवा कवियों से) नारायणदास कवि कहता है कि दोनों उस आवास में सेज सुख लेने लगे।

उस महल की नाट्य शाला में नित्य नवीन रागरंग होगे लगे। नटों के नाटक होते थे जिन्हें देखने के लिए लोग आते थे [२१०]।

वहां अनेक सिंघली सुन्दरियां हैं जो शील युक्त वचन कहने में प्रवीण हैं, अनेक प्रकार के देशी राग शुद्ध एवं सांगोपांग रूप में गाती है और अनुपम नृत्य द्वारा भावाभिव्यक्ति करती हैं [२११]।

समरसिंह नित्य मृगया के लिए जाने लगा। लोग उसे रोकते हैं, परन्तु वह कहना नहीं मानता। वह जंगल में जाल (वागुर[1]) डलवाता है, (उनमें फँसाने के लिए) हरिणों का हांका करवाता है। कपड़ों की (कनात) के कोट बनवाता हैं [२१२]। सारे दिन निदारुण वराहों को मारता है और मृगों को मार-मार कर उनका संहार करता है। कभी उसके साथ छिताई भी (वन में

---

१. तुलना कीजिए चतुर्भुजदास निगम की मधुमालती की पंक्ति 'वागुर चूसे रस नहिं होई'। गन्ने को चूसने से रस मिलता है, परन्तु गन्ने के खेत के चारों ओर छेकों पर लगे हुए जाल की डोरियों को चूसने से रस नहीं मिलता।

भी मौन (?) पड़ा था । सखियाँ छिताई को शयन कक्ष में पहुँचा कर चली गईं [१९८] ।

जब मदन के बाणों को सहना कठिन हो गया तब समरसिंह ने हँस कर छिताई का अंचल पकड़ लिया । हाथ से कंचुकी खोलने पर वह लज्जित हो गई और दिखाई न दे इस हेतु फूंक मार कर उसने दीपक बुझा दिया [१९९] ।

दोनों के मुखों का मिलन हुआ और देह कांपने लगी । स्नेह जुड़ते ही प्रस्वेद प्रवाहित होने लगा । समरसिंह अधर रस का पान कर कुच पकड़ लेता है । छिताई अपने अंग नहीं छूने देती [२००] । उसने घूंघट को अपने मुख पर (अधिक) नीचा कर लिया और दोनों हाथ छाती पर चिपटा लिए । तब समरसिंह उसकी (नीवी की) गांठ खोलने लगा जो बड़े यत्न से कड़ी बांधी हुई थी [२०१] । वह बाला 'ना ना' कहती थी जिसे सुनकर समरसिंह की काम-पिपासा चौगुनी हो उठती थी । दोनों एक साथ लिपट गये ।

बाला शंका और संकोच में पड़ गई तथा पान का बीड़ा भी नहीं खाती [२०२] । चतुरों को प्रसन्न करने वाली दृष्टि से वह समरसिंह को देखती है और मधुर स्वर में धीरे-धीरे बोलती है । फिर वह दीपक की ज्योति ऊंची कर उससे हुए प्रकाश में (समरसिंह की रूपश्री पर) दृष्टि डालती है । जो सखियाँ चली गई थीं, उन सब को भी उसने बुला लिया [२०३] । छिताई ने इस प्रकार के वचन कहे जिनसे प्रकट हो कि उसे प्रेम-सुरति का रस प्राप्त हो गया ।

(छिताई) सुन्दर एवं मधुर गीत सुनाने लगी । उससे बहुत सुख मिला तथा मन में आह्लाद हुआ [२०४] । जिस प्रकार चकोर चन्द्र के प्रति रात भर मन लगाए रहती है उसी प्रकार सारी रात दोनों का प्रेम रंग रहा ।

(सुहागरात के पश्चात दोनों कामसुख में रत रहे । छिताई) कोकिल बयनी थी और कामशास्त्र में भी दक्ष थी । कामशास्त्र की कुछ विधियां उसने अपनी सखियों से भी सुनी थीं [२०५] । वे दोनों ही रति के रस रंग में चतुर थे और अंगों से (काम क्रीड़ा की) अनेक उक्तियों को उसी प्रकार क्रियान्वित करते थे, जिस प्रकार कोकशास्त्र में काम के गुण एवं रीति के निरूपण में बतलाई गयी हैं कि अनंग अमुक वार एवं तिथि को अमुक अंग पर अधिक तेजस्वी रहता है [२०६] । वह चतुर नायक कामिनी के साथ उसी प्रकार रमण करता

कर और वनखंड के जीवों की हत्या मत कर। चौरासी लाख योनियों में जो जीव हैं उनमें अपने ही समान आत्मा है। हे अज्ञान मूर्ख, मेरा यह उपदेश सुन [२२२]।

योगी ने कहा कि दूसरे के जीव को अपने जीव के समान मानना धर्म का मूल है। समरसिंह ने इस उपदेश को सुनकर भी योगी का वचन नहीं माना और घोडे से उतर कर हरिण को पकड लिया [२२३]। भरथरी ने हरिण को छीन लिया और क्रोधित होकर राजा को शाप दिया, तूने हठ करके मेरे वचन का उल्लंघन किया है, तेरी प्रियतमा दूसरे के वश में पडेगी [२२४]।

सिद्ध की वाणी निष्फल नहीं हो सकती यह समझकर इस शाप को सुनकर राजा समरसिंह संकोच एवं चिन्ता में पड़ गया। वह उजाड़ (जंगल) में भूला भटकता फिरता रहा।

(इधर महलों में) छिताई उसकी बाट देख रही थी [२२५]। शृंगार कर उसने सेज सजाली और (उसे चिन्ता हुई कि) आज नाथ बाहर कैसे रह गये। वह (बार-बार) झरोखे से (समरसिंह के आने के मार्ग की ओर) झांकती है (और जब वह दिखाई नहीं देता तो) निःश्वास छोड़ती है। उसे चन्दन और चन्द्रमा में विप का निवास ज्ञात होता है [२२६]। राजा समरसिंह वन में ही रह गया (इस कारण) चन्द्रमा की किरणों से छिताई का शरीर उत्तप्त हो जाता है। उसकी सखियां शीतल उपचार करती हैं, वे सब उसे अग्नि की लपट के समान ज्ञात होते हैं [२२७]।

दूसरे दिन जब सूर्य डूब गया, अस्थिर चित्त (दुचिता) दशा में ही समरसिंह घर पहुंचा। (पिछली) रात (के वियोग के कारण) छिताई कुम्हला गई थी, उसका उसने अघाकर (आतृप्ति) गाढ़ालिंगन किया [२२८]।

चित्रकार की देवगिरि से विदाई और उसका दिल्ली लौटना (४७३—४८६)

अधिक स्नेह का परिणाम वियोग होता है, अधिक भोग करने से रोग बढ़ता है, अधिक हँसी करने से झगड़ा हो जाता है, जैसे कि कौरव-पांडवों में हुआ था [२२९], अति रूपवती होने के कारण सीता का अपहरण हुआ,

मृगया के हेतु) जाती है और हाथ से घंटा बजा कर हरिण पकड़ लेती है [२१३]।

राजा रामदेव मना करता है कि कुंवर तुम मृगया के लिए मत जाया करो। मृगया के कारण बलवान दशरथ का विनाश हुआ और राजा पांडु भी मृगया के कारण ही मरे [२१४]। सयाने लोग सदा से यह कहते आए हैं कि मृगया के कारण अनेक राजा चक्कर में फँस गये (विगूचे)।

समरसिंह को योगी भरथरी द्वारा शाप (४४४–४७२)

एक दिन समरसिंह शिकार खेलता हुआ फिर रहा था। संध्या समय उसकी एक मृग से भेट हुई [२१५]। उसे देखकर उसने अपना घोड़ा उसके पीछे डाल दिया। हरिण चौंक कर भाग चला। उसके पीछे-पीछे समरसिंह भी साथ हो लिया। सारी रात वह उसका पीछा करते हुए फिरता रहा [२१६]। मृग भागता हुआ द्रुत गति से गहन जंगल में घुस गया। राजा भी पीछे लगा उसे खदेड़ता चला गया। (भागते-भागते) मृग वहां पहुंच गया जहां राजा भरथरी निवास करते थे। वहां पहुंच कर मृग थक कर हांफने लगा [२१७]।

सिद्ध (राजा भरथरी) समाधि में चित्त लगाए हुए थे, उसी समय समरसिंह ने वहां पहुंच कर मृग का पीछा किया। योगी ने समाधि से जाग कर यह वचन कहा, हरिण क्या अपराध (गुनाह) कर आया है जिससे कि तुम उसके पीछे पड़े हो [२१८]। सिद्ध ने कहा कि यदि कोई अपराधी (गुनहगार) भी मेरे आश्रम (की शरण) ग्रहण करता है तो सज्जन उसको बचा देते हैं। ये (मृग) तृण चरते हैं और जंगल (उद्यान) में रहते हैं। हे अज्ञान, इन निरपराधों का वध क्यों करता है [२१९] ?

योगी का वचन सुनकर समरसिंह कहता है, तूने मन में मरने का निश्चय कर लिया है (प्रतीत होता है, तेरी मौत आ गई है), हरिण को जीवित पकड़कर तू मुझे दे अन्यथा मृग के बदले तुझे मारकर चला जाऊँगा [२२०]। विचार करने के पश्चात राजा भरथरी कहता है कि अपने सिर (की रक्षा) के लिए (भी) मृग नहीं दूंगा [२२१]।

योगी ने कहा, हे मूढ़, सुन, विधि ने तेरी बुद्धि हरण कर ली है। वन के जीवों को मारकर तू पाप कर रहा है। हे मूर्ख, भूल मत, चित्त में चेत

सुल्तान की ओर देख कर हँस पड़ी । जब वह हँस रही थी तब सुल्तान की दृष्टि उस पर पड़ गई । दासी ने मन में सकुचा कर पीठ फेर ली [२३८] । तब सुल्तान ने उसे बुलाकर पूछा कि यह मुझे समझाकर कहो कि तुम क्यों हँसी । दासी ने कहा, हे सुल्तान, सुनो, इस भूमि के लोग मूर्ख और अज्ञानी हैं [२३९] । तुम इस कपूर को ही देखकर रीझ गये, यह तो रानियों के गहने में लगाये जाने वाले कपूर का चूर्ण है । जो कपूर राजा रामदेव खाता है उसके रस के भेद का वर्णन नहीं किया जा सकता [२४०] ।

सुल्तान ने चित्रकार की ओर देखा । चित्रकार ने दासी की बात का गम्भीरतापूर्वक समर्थन कि । बादशाह मन में विचार करने लगा । उसने सभा विसर्जित कर दी । सब सभासद प्रणाम करके चले गये [२४१] । बादशाह चित्रकार को अपने साथ लेकर गयर (अन्य ?) महल में उठकर चला गया । वहाँ दुष्ट चित्रकार सुल्तान से छिताई का जैसा-जैसा व्यवहार उसने देखा था वैसा विस्तार से वर्णन करने लगा [२४२] ।

नीच व्यक्ति का यह स्वभाव होता है कि वह बड़े चाव से बना बना कर बुराई करता है । बुरे व्यक्तियों का वैसा ही आचरण (चाल) होता है जैसे कुत्ते चालाक होते हैं [२४३] । बर्तनों को बहुत यत्नपूर्वक रखने पर भी वे उनकी सारी वस्तु खा जाते हैं । वे अपना काम बुद्धिमत्ता से कर लेते हैं और जिस बर्तन में वे खाते हैं उसे यथा स्थान रखने की चिन्ता नहीं करते [२४४] । (चित्रकार ने राजा रामदेव से बहुत स्वागत सत्कार पाया, फिर भी राजा की राजकुमारी का अपकार करने के लिए उसके रूप गुण का) उसने लाख नमक लगाकर बखान किया । उसके इस कार्य का वर्णन मैं एक जिह्वा से नहीं कर सकता । चित्रकार ने छिताई का वर्णन किया और कागद निकालकर उसके चित्र भी दिखाए [२४५] ।

छिताई का चित्र देखकर सुल्तान का कामासक्त होना (५०६–५१८)

चित्र देखते ही अलाउद्दीन के हृदय में मानो तीर चुभ गया । उसे देख कर उसके हृदय में अनुराग उत्पन्न हुआ । इस चित्र को देखकर सुल्तान को मूर्छा आ गई और ऐसा मालूम हुआ मानो छिताई सजीव रूप में सामने आ कर चली गयी हो [२४६] । सुल्तान ने चित्र की छाती के ऊपर रख लिया । उसने खाना पीना छोड़ दिया ।

अधिक विषय भोग के कारण रावण की मृत्यु हुई, अधिक दान देने के कारण बलि को पाताल जाना पड़ा, (अतएव) संसार में अति किसी भी बात की अच्छी नहीं होती [२३०]।

राजा समरसिंह को भी सुख की अति हो गई थी (अतएव उसे दुख में परिवर्तित करने के लिए) चित्रकार ने क्या उपाय किये, (उसकी कथा) सुनो, (किस प्रकार उसने) देवगिरि की सब बातें जान कर बादशाह अलाउद्दीन के पास जाकर उससे कह दीं [२३१]।

देवगिरि के स्वामी राजा रामदेव ने चित्रकार को पोशाक भेंट कर विदा किया। चित्रकार चार वर्ष (देवगिरि में) रह कर फिर दिल्ली की ओर लौट चला [२३२]।

राजा रामदेव द्वारा (अलाउद्दीन को देने के लिए चित्रकार के साथ भेजी गई) भेंट में सरस भीमसेनी कपूर, बहुत से अमूल्य रत्न, जरी के कपड़े तथा उत्तम घोड़े थे जो (चित्रकार ने सुल्तान के) आगे उपस्थित किये [२३३]।

(अलाउद्दीन ने चित्रकार से कहा) देवगिरि और राजा रामदेव का हाल सुना। दिल्ली के राजा ने पूछा कि विवाह कैसा हुआ [२३४]। (चित्रकार का) मुँह देखकर सुल्तान ने कहा कि ऐसा ज्ञात होता है कि तुझे (देवगिरि में) कुछ कष्ट हुआ है। तेरा मुख और आँखें कुम्हला गये हैं (जिससे जान पड़ता है कि) देवगिरि में जाकर तू दुखी रहा [२३५]।

चित्रकार द्वारा अलाउद्दीन को देवगिरि से भेजी गई भेंटें सौंपना (४८७–५०५)

चित्रकार ने (सुल्तान) को सिर झुकाकर सलाम किया और कहा कि इस समय उत्तर देने का अवसर नहीं है। अभी यह देवगिरि का सामान देख लीजिए। (सुल्तान ने वह सामान) कोठारी को सौंप दिया [२३६]। शाह अलाउद्दीन कहने लगा कि देवगिरि का यह कपूर अनुपम है, इसकी दस-दस अंगुल लम्बी शलाकाएँ हैं और इसे देख कर सब (दिल्ली की) प्रजा रीझ गई है [२३७]।

(यह सुनकर) देवगिरि की जो दासियां (पहले) आई थीं उनमें से एक

अत्यन्त क्रोध करके सुल्तान ने रणयात्रा प्रारम्भ की। उसने सब खान उमरावों को बुलाया और उन्हें हाथी तथा शस्त्रास्त्र बांटे। एक लाख मार्ग निर्माणक (लहवर = रहवर) बुलाकर उसनें आदेश दिया कि घाटियों को काट कर सेना के लिए मार्ग बना दो। विषम वन और बेहड़ों को खोदकर रस्ता बना दो। खुदा विजय देगा। इस प्रकार नगाड़ा बजाकर शाह अलाउद्दीन ने आक्रमण के हेतु प्रस्थान किया [२५५]।

तुर्क सेना का देवगिरि पहुंचना (५२६–५५८)

प्रयाण करते समय नगाड़े बज रहे हैं। उमराव एवं खान एकत्रित हो गये। वे घोड़ों पर जीन कस रहे हैं। उनका वर्णन कैसे किया जा सकता है। कोलाहल इतना हो रहा है कि कानों को (दूसरे के) शब्द सुनाई नहीं देते। (उस सेना में) राक्षस जैसे वेश वाले खिलजी, कुरेशी (खुरेसी), लोदी और लंगाह हैं। (उस दल में) तेज जुलवाती तथा ईसफखानी वीरों की अगणित सेना है। बलख, बलूची, बावर, गोरी तथा ऊंचे तरगंडी सैनिक हैं जो प्रख्यात योद्धा तथा स्वामित्व की इच्छा रखने वाले और मनोयोगपूर्वक जमकर लड़ने वाले हैं। नौहानी, सरवानी तथा छोटे हाथ वाले किररानी सज कर चले। बड़े डील-डौल के अंग वाले मोची तथा लाहौरी चले। बड़ी-बड़ी मूंछों वाले तथा वज्र जैसे वक्षस्थल वाले पठान तथा तिरानी और सुन्दर सैदानी, कम्बो और मसवानी जाति के सैनिक चले। उनमें खुरमली, प्याजी, न्याजी भी मिले तथा फौजें सजीं जो निर्दयी तथा पोच थीं [२५६]।

सेना में महाम्लेच्छ, निर्दयी, कायर तथा सिंह के समान बली बलोच चले।

उलूग खां दिल्ली (की रक्षा के लिए छोड़ी गई सेना के नेतृत्व के लिए) रह गया और स्वयं बादशाह ने आगे प्रस्थान किया [२५७]।

(बादशाह की सेना में) लाल रंग के, मोटी गर्दनों वाले, घुटे सिर के, छोटे (?) कानों वाले, दाढ़ी और मूछों के बालों को लाल रंगे हुए मुगल जाति के साठ हजार सैनिक थे। उनके हाथ में पाँच-पाँच मन की गुरजें थीं। वे (किलों के) बुर्जे गिराते हुए आक्रमण के लिए चले [२५८]। बादशाह की जितनी सवार सेना थी उसका वर्णन करूंगा तो कथा बहुत बढ़ जाएगी।

संगीत रस के प्रति श्रवणों की अनुरक्ति होने के कारण हरिण मारा जाता है। नेत्रों की अनुराग-दृष्टि के कारण पतंगा जल मरता है [२४७]। हाथी रति-रस के कारण क्षीण हो जाता है, जीभ के रस के कारण मछली कांटे में फँसती है, परिमल के प्रेम के कारण भ्रमर अपने प्राण गँवा देता है, उसी प्रकार स्त्री से स्नेह करने वाला अपने मन के कारण मरता है [२४८]।

एक इन्द्रिय की वासना के कारण जब ये (कुरंग, पतंगा, हस्ती, मीन तथा भ्रमर) वस्तुतः अपने प्राण गँवाते हैं, फिर मनुष्य बेचारा कैसे बच सकता है जो पांच इन्द्रियों की वासनाओं के अधीन है (अथवा जिसे कामदेव पाँच बाणों से अभिभूत करता है)।

सुल्तान अलाउद्दीन के अंतःपुर में हयवति नामक एक हिन्दू जाति की रमणी थी जिसमें बादशाह का दिनरात चित्त लगा रहता था [२४९]। बादशाह ने उसे छिताई के चित्र दिखाए। छिताई के चित्र देखकर वह उसासें लेने लगी। बड़े आग्रह के साथ हयवति बेगम ने कहा कि जीवित छिताई को लाकर मुझे दिखाओ (चित्र की छिताई को देखकर मेरा मन नहीं भरता) [२५०]। छल से, बल से, बुद्धि से अथवा कपट से जैसे भी हो, हे बादशाह, अब छिताई को ले आओ।

जब से चित्रकार ने अपने बनाये हुए चित्र (अलाउद्दीन को) दिखाए, तब से उसे शरीर में विरह की व्यथा व्याप्त हो गयी [२५१]।

अलाउद्दीन का देवगिरि पर आक्रमण (५१९–५२८)

सुल्तान ने उमरावों को बुलाकर उनसे यह कहा कि मैं देवगिरि से युद्ध करना चाहता हूं। आप लोग सेना सजाकर अचानक देवगिरि पर आक्रमण कर दो और छिताई नामक नारी को जीवित पकड़ लाओ [२५२]। बादशाह ने अपने सब प्रदेशों में फरमान भेज दिया। सब जगह के उमराव और खान सज-सज कर आ गये। सब सलाम कर अलाउद्दीन के सामने खड़े हो गये और कहने लगे कि हे बादशाह, हम तेरे लिए छिताई ला देंगे [२५३]।

जो सेना इकट्ठी हुई उसका परिमाण इतना अधिक था कि उसे देखकर सुल्तान अलाउद्दीन प्रसन्न हो गया [२५४]।

(द्वितीय खण्ड)

कवि देवचन्द्र की प्रस्तावना (५५९–५७६)

आधी कथा सुनकर बहुत सुख हुआ। (श्रोता दामोदर ने) प्रसन्न होकर कवि देवचन्द्र से पूछा [२६६], हे कविदास (देवचन्द्र), हृदय में भाव रख कर (सहृदयतापूर्वक) यह कथा सुनाओ कि छिताई ने (अपने सतीत्व की रक्षा के लिए) क्या उपाय किये। यह सरस कथा मेरे मन में बस गई है। दामोदर ने कहा कि (इसे आगे कहने से) कीर्ति चलेगी [२६७]।

(दामोदर का वर्णन करते हुए देवचन्द्र कहता है कि) वह कायस्थ वंश और तमोली जाति का था (तमोली का व्यवसाय करता था), उसकी उत्पत्ति गोवरगिरि (गोवल = ग्वालिया गिरि[1], अर्थात, ग्वालियर गढ़) की है (वंश परंपरा से वे ग्वालियर में रहते थे), उनका आश्रित (वंध्यो) देवचन्द्र है। उसे देवचन्द्र ने यह कथा सुनाई जिसे सुनकर उसे सुख हुआ [२६८]। वह (दामोदर) धर्म और नीति के मार्ग पर चलता है और ब्राह्मणों की बहुत भक्ति करता है।

देवी के पुत्र (मुझ) देवचन्द्र कवि[2] का जन्म ग्वालियर नगर में हुआ है [२६९]।

---

१. गोवरगिरि गोवाल 'कुंड' गोलकुंडा नहीं हो सकता। गिरि और कुंड में अन्तर अधिक है। आगे देवचन्द्र के जन्मस्थान के रूप में ग्वालियर का उल्लेख होने से भी कुछ कठिनाई उत्पन्न नहीं होती। वह उल्लेख यह स्पष्ट करता है कि देवचन्द्र ने ग्वालियर में जन्म लिया था तथा उसके पूर्वज बाहर से आए थे, जबकि दामोदर का वंश ग्वालियर का मूल निवासी था।

२. देवचन्द्र के परिचय के लिए प्रस्तावना देखें। वे सूरदास के भाई थे। साहित्य लहरी के अनुसार इनका वंशवृक्ष निम्न-लिखित है:—

दिन प्रतिदिन कूच करती हुई सेना छठे मास में देवगिरि के निकट पहुँच गयी [२५६]।

सुल्तान के सेवकों का सेना-समूह समस्त (दक्षिण) देश में फैल गया। नगरों और पुरों के जो उत्तम स्थान बसे हुए थे उन्हें खेत के समान खोद कर मैदान कर दिया [२६०]। तुर्क दीवार से दीवार टकरा कर ढाने लगे। मन्दिरों को गिरा कर वे मस्जिदें बनाने लगे। जब सेना देश में फैल गई तब राजा रामदेव को समाचार मिला [२६१]।

राजा रामदेव ने (अपने मन्त्री) पीथा परिगही को बुला कर उससे क्रोधपूर्वक कहा कि ऐसा कौनसा पड़ोसी (मेंढिया, मेंड़ = सीमा) राजा है जो हमारे देश को उजाड़ रहा है [२६२]। दक्षिण में कोई राजा मेरे समान नहीं है (अथवा मेरा सामना नहीं पकड़ता)। दिल्ली का बादशाह मुझ पर कृपा रखता है।

(मन्त्री ने) तब धावन (दौग्हा) यह देखने के लिए भेजे कि चारों ओर देश में अग्निकांड कैसा मचा हुआ है [२६३]। जासूस जब सब समाचार लेने गये, उनने तुर्कों की सेना को देखा। फौज में उनने घेरे का जो समाचार सुना वही लौटकर राजा को सुना दिया [२६४]। राजा से उनने सब हलचलें कहीं और बतलाया कि (आक्रामक) सेना का ओर-छोर नहीं है।

सुल्तान ने जब देवगिरि को देखा तो गहरे नगाडे बजवाए [२६५]। मंडल (चाक) बांधकर उत्साह के साथ उसने आक्रमण किया और रणवाद्यों पर चोटें पड़ने लगीं।

और बादशाह के वश में पड़ी हुई (सुन्दरी) को उसने कैसे प्राप्त किया, इस सब आख्यान का सांगोपांग निर्वाह करके कहो [२७५]।

देवचन्द्र कवि द्वारा सुल्तानी सेना का वर्णन (५७७–६०२)

बादशाह के घने कटक का वर्णन करता हूं। (भीड़ इतनी है कि) पराया अथवा अपना कौन है यह दिखाई नहीं देता।

(अश्वों का वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि) तेजी (ताजी—अरबी घोड़े), तुरकी (रूम देश के घोडे), गूंठ (पहाड़ी टट्टू), उलाकू (डाक के घोडे) आगे दो-दो पैर उछालते हुए (पोंईया) सरपट चलते हैं [२७६]।

एराकी (इराक देश के) घोडे बहुत सुन्दर सजे हुए हैं, बोल (लाल रंग के घोड़े), चाल (सुर्ख मामल रंग के घोड़े), हरिए (सब्जे घोडे) हींसते हुए चल रहे हैं (अथवा यहां सुलभ हैं)। ये घोडे अपनी पूंछें हिला रहे हैं और दौड़ते समय भूमि पर इनके खुर नहीं लगते [२७७]।

कुछ घोडे खुरासान की जाति के हैं जो दिन रात (बिना थके) चलते ही रहते हैं। यदि भूल से भी चाबुक (ताजन = तजियाना) छू जाता है तो घोड़े क्रोधवंत हो जाते हैं और दोनों (अगले) पैरों को पेट से लगा लेते हैं (तथा पिछले पैरों पर खडे हो जाते हैं) [२७८]। वे झुकना नहीं जानते और उन पर चढ़े सवार सीधी जांघें किये दृढ़ता से बाग पकडे रहते हैं।

हंस जैसे रंग वाले अनेक महिया घोडे हैं जिन पर सोने की कंठी कसी हैं और जिनके कंठ अनुपम हैं [२७९]। उनके अत्यन्त निर्मल शरीर अत्यधिक (असमाना[1]) चमकते हैं मानो सूर्य किरणों के तेज के साथ प्रकट हुआ हो।

उस सेना में अनेक हरिहा और कररीय (घोडे) हैं (जो इतने डीलडौल वाले हैं कि) उनकी ठेल से मदमाते हाथी भी गिर पड़ें। (घोड़ों पर) पाखर (लोहे की अंग-रक्षक घोडे की झूल) कस कर छत्तीस हजार घुड़सवार चल रहे थे। उनकी तलवारों की बिजली जैसी चमक थी, उनके भय से समस्त पृथ्वी

---

१. देखिए पक्तियां क्रमांक १६८,५८५,५९३,७५०,७६५ और ७८८।

इस कथा को मैंने जिस रूप में खेमचन्द्र[1] के पास सुनी थी उसे उस रूप में कविजन (विष्णुदास) ने लिखकर सुनाई थी। (अब मैं उसे बढ़ाकर कहता हूं)।

(अपने अंश जोड़ने के पूर्व) सर्वप्रथम गणेश की वन्दना करता हूं। इन चौपाइयों को सुनकर कोई इनकी हँसी न करे [२७०]। जहाँ कहीं पद में अक्षर की त्रुटि हो वहाँ चतुर गुणीजन उसे बना लें (ठीक कर लें)।

आधी कथा नारायणदास कवि ने कही थी (खेमचन्द्र के सामने सुनाई थी)। अब मैं देवचन्द्र उसे पूरी कर रहा हूं [२७१]। इस रूप में इसे (हमारी) कीर्ति के रूप में कागद पर लिख लो और इसे आगे भी (आप) गुणीजन पढ़ते रहा करो [२७२]।

(पूर्वार्ध सुनने के पश्चात) दामोदर ने प्रसन्न होकर पूछा, हे देवचन्द्र कवि, यह समझा कर कहो कि छिताई (अलाउद्दीन के) वश में कैसे पड़ गई और राजा (रामदेव) कैसे पराजित हुआ [२७३]। कैसे वह प्रतापी राजा (देवगिरि जैसा अजेय) दुर्ग हार गया और दोनों दलों में किस प्रकार युद्ध हुआ। फिर दूती ने क्या तरकीबें कीं यह मुझे समझा कर कहो [२७४]। पुनः देवगिरि पर आक्रमण कैसे हुआ ? समरसिंह ने वन के मृगों को (अपने संगीत द्वारा) कैसे पकड़ा[2]

वीरचन्द्र (रणथंभोर निवासी, हम्मीर का बालमित्र) (१३०१ ई० ?)
|
हरिश्चन्द्र
|
देवचन्द्र (देवी) (आगरा से ग्वालियर आया)
|
कृष्णचन्द्र | उदारचन्द्र | रूपचन्द्र | वृद्धिचन्द्र | प्रकाशचन्द्र | देवचन्द्र | सूरजचन्द्र

१. खेमचन्द्र = खेमल। खेमचन्द्र मानसिंह तोमर का सभासद एवं आख्यानों का प्रेमी था। सन १४८९ ई० में लिखी गई बेताल पच्चीसी में मानिक कवि ने लिखा है:—

सिंघई खेमल बीरा दीयो। मानिक कवि कर जोरे लीयो॥
मोहि सुनावहु कथा अनूप। ज्यों वेताल किये बहु भूप॥
(मध्यदेशीय भाषा, पृष्ठ १८१)।

२. डॉ० माताप्रसाद ने इस प्रसंग को भरथरी के आश्रम से सम्बन्धित माना है, जो ठीक नहीं है।

अब उन मुगल जातियों का वर्णन करता हूं जो उस दल में थीं [२८२]।

जे वालका देस निर्वाना। उडत पंख ते देहि न जाना।
परवत झाल वूठ वावना। तिनके चलत न पूजै आना॥
खुरासान ते भले ततारी। वड्डे मूंड पूंछ तिन भारी।
अवनि न जातै तिनके पाई। धावत भूमि न होइ अघाई॥
अंग प्रसेवन फुरई सांसा। तिनकी खेह उड़ै आकासा।
तिनकी गनती व्यास न जानी। वहुत तुरी ऐसे खुरसानी॥
साजे तुरियन तुरी तुखारा। गैंयर गुरे न जानहिं सारा।
राते सेत वहुत गज कारे। माते उमते वहुतक वारे॥

जायसी ने पदमावत में (रचना-काल १५४० ई०) दो स्थलों पर घोड़ों का वर्णन किया है। देवचन्द्र के अश्व वर्णन (रचना-काल १४६० ई०) से उनकी तुलना उपयोगी होगी। पदमावत के वे दोनो स्थल नीचे डॉ० वासुदेवशरण के पाठ से दिये जाते हैं:—

[४६]

पुनि बांधे रजवार तुरंगा। का वरनौं जस उनके रंगा।
लील समुंद चाल जग जानै। हाँसुल भँवर कि आह वखानै।
हरे कुरंग महुअ वहु भाँती। गई कोकाह वोलाह की पांती।
तीख तुखार चाँउ औ वांके। तरपहिं तवहिं तायन विनु हांके।
मनु ते अगुमन डोलहि वागा। देत उसास गगन सिर लागा।
पांवँहि साँस समुंद पर धावहिं। वूड न पांव पार होइ आवहिं।
थिर न रहहिं रिस लोह चवाहीं। भाँजहि पूँछ सीस उपराहीं।
अस तुखार सव देखे जनु मन के रथवाह।
नैंन पलक पहुंचावहीं जहाँ पहुंचा कोउ चाह॥

[४९६]

चली पंथ पैगह सुलतानी। तीख तुरंग वांक कैकानी।
पखरैं चलीं सो पातिन पांती। वरन वरन औ भांतिन भांती।
काले कुमइत लील सनेवी। खंग कुरंग वोर दुर केवी।

घवरा गई[1] [२८१], सुमेरु पर्वत भी भयभीत हो गया और आकाश कांप गया। घोड़ो के खुरों की धूल से सूर्य मंडल छिप गया[2]।

वादशाह का दल घोड़ों पर जीन कस कर (प्रयाण की तैयारी करके) चला।

---

१. करमरइ—देखिए पक्ति संख्या ५८८,५९२,५९६ तथा ७६६।

२. गोस्वासी विष्णुदास ने महाभारत कथा (रचना-काल सन १४३५ ई०) के उद्योग पर्व में भी घोड़ों का वर्णन किया है। तुलना के लिए वह बहुत उपयोगी है—

॥ दोहरा ॥

सैन चलौ दुहु राज को साहरु गन्यौ न जाइ।
चली अठारह छोहिनी धूरि गगन रही छाइ॥

॥ चौपही ॥

छूट्यो साहरु गन्यो न जाई। उडी खेह असमानन माई।
वहुत तुरी हींसुते किवयाना। वेगवंत ते गरूर समाना॥
चंचल श्रवन ति कारे कंधा। लोईन जनकु सुवांधे फंदा।
लहुरे केस गरुव खुरवारा। ऐडी मारत करहि अखारा॥
रिस मह रहे न साधहि वागा। द्रढ असवार चाहिजै रागा।
चरन आगिले छुवै न धरणी। मानहु घुवा नचावै तरुनी॥
जिनकी देहन देसहि छाई। ते अगवान परें फहराई।
उर चौरे थूथरी सुतारी। खुरऊदार माकरी अफारी॥
पीरे सवज लाल आसन्ना। अगिनित कोटि हाँसुले वरना।
महिया लीले करटक माहा। चलैं चारि ते भलै भलाहा॥
हरिये पीरे बहुत सिराही। वेगवंत सौ जोजन जाही।
जावत जरद त तीतुर वाना। दूधेरे ते खीर समाना॥
बहुत तुरी दीसैं कुन्जरिया। पवन वेग हाथी सम करिया।
तरवर टूटैं जिनिकै वाई। आपुनु महगे लीनै राई॥
जे उपजे सागर के तीरा। खुर छोटे चाकरे सरीरा।
ढोलसमुद मह जो नीकरिया। तिनकी धरति न लागहि खुरिया॥

बादशाह क्रोधित होकर कूंच करता गया और देवगिरि गढ़ के पास ही उसने डेरा डाला दिया। सेना के हाथी-घोड़े चारो ओर दौड़ने लगे और धूल उड़कर आकाश तक छा गई [२८८]।

अलाउद्दीन का देवगिरि पहुंचना तथा रामदेव को दूतों द्वारा सूचना (६०३–६१५)

जब सुल्तान ने देवगिरि को देखा तब वह व्याकुल हुआ और रण वाद्य बजवाए। उसने फिर देवगिरि गढ़ को देखा, उसे कहीं भी लगाव (आक्रमण योग्य निर्बल स्थल) दिखाई नहीं दिया [२८९]। मन्त्रियों ने यह मत स्थिर किया कि जब फौजें चढ़ा लाए हैं तब गढ़ को किसी प्रकार जीतना ही होगा। नहीं तो बहुत मानसिक चिन्ता (आधि:सबाधी) होगी और बुरी सलाह देने के लिए सब लोग हमारी हँसी करेंगे [२९०]। सुल्तान ने जब ये वचन सुने तब उत्तम गढ़ के पास (लीथां = लीह = लब्ध) घेरा डलवा दिया। काले, पीले, लाल और हरे रंग के तम्बू बीस कोस के मैदान में गाढ़ दिये गये [२९१]। गढ़ के स्वामी उनका तमाशा देख रहे थे।

कवि देवचन्द्र यह कथा वर्णन कर सुना रहा है।

बादशाह की फौज में निरन्तर (बिना रुके) ढोल बज रहे हैं। उन्हें सुनकर बादशाह को बहुत सुख हुआ [२९२]।

तब राजा रामदेव के पास उसका जासूस पहुंचा। (उसने कहा कि) मैंने घोड़े हाथियों के समूह देखे हैं और सुल्तान के छत्र-दण्डों का समूह भी देखा है [२९३]। उसकी सेना बहुत अधिक है, उसका अन्त कौन पा सकता है, ऐसा दूत ने सिर नवा कर कहा। पैरों में पड़कर उसने (राजा की) सेवा में विनय की कि हे देव, अब मन्त्रियों को बुलाकर मंत्रणा कीजिए [२९४]। हे स्वामी, अब गढ़ की सज्जा कीजिए तथा मंत्रणा कीजिए और आलस्य छोड़ दीजिए।

रामदेव द्वारा मन्त्रियों से मंत्रणा (६१६–६३६)

राजा ने मन्त्रियों को बुला लिया और कहा कि मन में भलीभांति सोच विचार कर मन्त्रणा दो [२९५]। सुल्तान किस उद्देश्य से आए हैं, उनने इतना बैर क्यों किया, मित्र कहकर फिर क्रोध क्यों किया, इसकी मन्त्रणा करो, ऐसा राजा ने कहा [२९६]।

धुएँ जैसे रंग वाले अगणित उजबक (उस सेना में थे)। वे विविध प्रकार के मुगल (उस सेना के साथ) चले। उनका तेज अगम हैं तथा बोली गंभीर है। उनको देखने मात्र से शरीर भयभीत हो जाता है [२८३]। उनके भुजदण्ड पुष्ट हैं, गरदनें मोटी हैं, आंखे छोटी-छोटी हैं तथा वे अत्यन्त क्रोधी हैं। वे गिजविज-गिजविज (उच्चारण वाली) फारसी भाषा बोलते हैं और उनके नेत्र दर्पण के समान चमकते हैं [२८४]। वे कमर में फरसा (तबल[1]) बांधे और हाथ में गदा (गुर्ज) लिये अत्यन्त प्रचण्ड और कर्कश हो गये। उनके लिए मनुष्य तिनके के समान (छोटा) था, उसे वे तृण के समान (अनायास) काट देते थे, देर नहीं लगती थी [२८५]।

उस सेना के साथ तीन हजार मदमत्त हाथीं थे। उनके स्वच्छ दांत ऐसे ज्ञात होते थे मानो चन्द्रमा की किरणें हों। (उनके गले में पड़े हुए) घंटों का नाद हो रहा हैं और इन पर अम्बारी पड़ी हुई हैं। उनके चलने से पृथ्वी हिलने लगती है और वासुकि नाग घबरा जाता है [२८६]।

सेना प्यास से घबरा उठती है क्योंकि सेना के अग्र भाग को जो जलाशय मिलते हैं वे (आगे के सैनिकों के पीने से उनका जल समाप्त हो जाने तथा भीड़ और धूल के कारण) पीछे के सैनिकों के पहुंचते-पहुंचते केवल कीचड़ रह जाते हैं। दो लाख ऊंटों पर पानी की मशकें चल रही हैं, परन्तु (सेना इतनी अधिक है कि) प्यासे लोगों के हिस्से में एक घूंट ही आता है [२८७]।

अबलक अबसर अलक सिरानी। चौधर चाल समुंद सब ताजी।
खुरमुज नोकिरा जरदा भले। औ अरगान बोलसिर चले।
पँचकल्यान संजाब बखाने। महि सायर सब चुन चुन आने।
मुसुकी औ हिरमिनी इराकी। तुरकी कहे भोथार बुलाकी।
सिर औ पोंछि उठाए चहुंदिस सांस ओनाहि।
रोस भरे जस बाउर पवन तरास उडाँहि॥

१. जायसी— सबै तुरुक सिरताज बखाने। तबलबाज औ बांधे बाँने। (४६६/·)।

वे सब सिर झुकाकर (प्रणाम कर) सभा के रूप में एकत्रित हो गये। कमन (कमान चलाने वाले, कमनैत) भवानीदास आए जो अपनी बुद्धि के प्रकाश से मूल मंत्रणा देते थे, सूरमाओं में गिना जाने वाला बलभद्र आया, जिसके मत की सत्यता की ख्याति थी, अशेष चतुरंगिनी सेना का प्रधान अधिकारी मदनसिंह आया, जिसने मालवा देश को जीत कर अपने वश में किया था [३०७]। कृष्णदास, जिसके गुणों का मैं पार नहीं पा सकता और जो राजाओं में सिंह के समान प्रसिद्ध है, पीथू परिग्रही (संग्रहाध्यक्ष), लक्ष्मीदास, आदि जो सब बुद्धिमान हैं, कुटवार (कोट्टपाल) योगिनीदास, जो सात पुश्तों से देवगिरि में ही रहते हैं तथा प्रधान भगवान भाऊ आए तथा सच्ची प्रमाणास्पद मंत्रणा करने लगे [३०६]।

वहां जितने सूरमा आकर बैठे उनका यदि वर्णन करूं तो कथा बहुत बढ़ जाएगी, यदि मैं सभा का (पूरा) वर्णन करूँ तो इतनी चौपाइयां लिखनी पड़ेंगी कि उनका अन्त ही नहीं आएगा [३१०]।

हाथ जोड़ कर सबने राजा की सेवा में यह विनय की कि हे देव, अब आप गढ़ को सुसज्जित करो। राजा ने कहा कि आक्रमण में गढ़ को जीता न जा सके ऐसा उपाय करो [३११]।

मंत्री मंत्रणा देने लगे। जिरह-बख्तर (सनाह) मँगवाए गये। चारो पौरों को चारो ओर से सुसज्जित किया गया और गम्भीर दमामे बजाए गये [३१२]। राजा ने कोट, कंगूरों और बुर्जों को समान शक्तिशाली किया (कहीं कमजोरी न रह जाय)। उन पर जंत्र (लोहे के बड़े धनुष जो हाथ के बजाय चर्ख से खींच कर चलाए जाते थे) तथा मगरबी (एक अस्त्र) को यथा-स्थान जमवाने के लिए राजा रामदेव स्वयं घूमने लगा [३१३]। बुर्जों के ऊपर भरपूर भारी-भारी पत्थर रखवाए और चारो ओर से गढ़ को सुसज्जित कराया।

सूरसेन अपार बलशाली था और अनेक शूरों से भी अधिक विख्यात था। वह राजा रामदेव को सिर नवा कर उत्तर दिशा के कोट (की रक्षा का भार ग्रहण कर उस) पर जा बैठा।

कलूसेन को आज्ञा हुई और वह सेना सजा कर पश्चिम दिशा (का रक्षक बनकर) गया [३१५]।

मंत्रीगण वारम्बार कहने लगे कि अब तुम्हीं मन में विचार कर (इन प्रश्नों के उत्तर) खोजो। जब हम आपके पास दिल्ली गये थे उस समय हम रोकते रहे, फिर भी आपने दुर्लक्ष्य (विलक्ष्य) किया [२९७]। (हमने कहा था कि) राजा, कन्या का नाम (सुल्तान के सामने) मत लो, परन्तु आपने उसे सब कुछ समझा कर कह दिया। आपने (इस प्रकार) सोते हुए यम को जगाया और चित्रकार को अपने साथ लगा लिया [२९८]। राजा, आपने प्रारम्भ में ही भूल कर दी और अब हमसे सलाह पूछते हैं। हे राजा, अब भी आप हृदय में यह समझो कि चित्रकार ही काल लेकर आया था [२९९]। हे राजा, सुनो, जिस प्रकार तूमरी ऊपर से अच्छी दिखाई देती है और हृदय में (भीतर से) बुरे भाव वाली (कड़वी) होती है और उसके फोड़ने पर उसकी कड़वाहट प्रकट हो जाती है, ऐसे ही नीच लोग होते हैं [३००]। हे राजा, सुनो, जिस प्रकार सर्प को समस्त रस और दूध पिला कर पोषण करने पर भी अन्त में काटने में उसे कभी देर नहीं लगती, ऐसा ही नीच व्यक्तियों का व्यवहार होता है [३०१]। उनके मुख में मीठी बोली परन्तु हृदय में क्रोध उसी प्रकार रहता है जिस प्रकार धूर्त (जेबकट) हाथ में कतरनी छिपाए रहता है। (नीच व्यक्तियों का स्वभाव) कुत्ते की पूँछ जैसा होता है, वह कभी सीधा नहीं हो सकता, यह बात सत्य भाव से सुनो [३०२]। इन लोगों के भरोसे पर रहने की जो भूल करते हैं, हे राजा, सुनो, उन्हें दुख उठाना पड़ता है। चित्रकार ने दुष्ट-बुद्धि बढ़ाने वाली बातें बना-बनाकर बादशाह से कहा और उसे सेना सजवा कर ले आया है [३०३]।

कर्म (फल) को दैव भी नहीं मिटा सकता, जो होनहार भविष्य था, वह होकर रहा। ब्रह्मा ने ललाट में जो सुख दुख-लिख दिया है, उसको मिटा सके ऐसा कौन है [३०४]? राजा को मन्त्रियों ने सलाह दी कि अब अपने पक्ष के (पिरायत=प्रीति रखने वाले=हितू अथवा परु=प्राचीन +आयत (आगत), अर्थात वंश परम्परा से चले आए पुराने सेवक या पदाधिकारी) लोगों को बुलाइए और उन्हें गढ़ का भार सौंप दीजिए। यह मंत्रियों का मत हुआ [३०५]।

गढ़ की सज्जा (६३७—६६२)

राजा ने अपने पक्ष वालों (या आनुवंशिक पदाधिकारियों) को बुलाया।

क्षेत्र में मार डालूंगा [३२३]। हे नुसरतखां, आज बुरा दिन था इसलिए मैंने डेरे डलवा दिये हैं, कल मेरा काम देखना मैं कैसा युद्ध करता हूं [३२४]। सब लोगों से इस मत की पुष्टि कराओ कि प्रातःकाल बडे सवेरे आक्रमण का आदेश दिया जाए [३२५]।

नुसरतखां ने कहा कि सुल्तान सुनिए, मन में विचार करके सब उमरावों को बुलाकर उनसे सलाह कीजिए। जो उपाय जिसको सूझेगा वह बतलाएगा। सेना में यह ढिंढोरा पिटवा दीजिए, तथा सब (उमरावों) को बुलाकर कह दीजिए कि प्रातःकाल तड़के ही गढ़ के कोट से जाकर जुट जाएं [३२६]।

उसने सब सेना को बुलाया और कहा कि प्रातःकाल गढ़ के परकोटे से भिड़ जाओ। नुसरतखां ने विस्तार से आक्रमण की व्यवस्था समझाई। (उसे सुनकर) बादशाह को बहुत सुख मिला [३२७]। उसने कहा कि तूने मुझे बहुत अच्छी सलाह दी। ऐसा समझ कर ही मैं तुझसे पूछा करता हूं। मन्त्री वह है जो संकोच नहीं करता और पूछने पर अपने हृदय में धर्म को धारण कर सच्ची सलाह देता है [३२८]।

बादशाह ने खान और उमरावों को सवेरे किस प्रकार आक्रमण किया जाएगा इसके आदेश दिए और सबको जानकारी दी (अथवा सब ने 'हां जनाब' कहकर स्वीकृति दी)।

पौ फटी और सवेरा हो गया [३२९]।

तुर्कों का आक्रमण और पहले दिन का युद्ध (६८७–७९५)

तुर्क सैनिक क्रोधित होकर युद्ध क्षेत्र में उतरे। सबसे पहले वे गढ़ के कोट से भिड़ गये। हिन्दू और तुर्क दोनों सामूहिक रूप से लड़ने लगे। (गढ़ के ऊपर से) पत्थरों की मार की जाने लगी [३३०]। (तुर्कों की ओर से युद्ध का नेतृत्व) दरियाखां कर रहा था। उसकी फौज हिन्दुओं से लड़ने लगी। दूसरी ओर का (दक्षिण दिशा के कोट का) सेनापति सुजान मानकचन्द था। दोनों दलों के योद्धा मरने लगे (रणक्षेत्र मरघट बन गया जहां गिद्ध लाशें खाने लगे) [३३१]।

गढ़ के ऊपर से बहुत अधिक पत्थर मारे जा रहे थे। उनसे बचने के लिए (तुर्की सेना के) अधिपति (मलिक) ओट में संभलकर खड़े हो गये। उनने

नाथादेव को फरमान मिला। वह बहुत शूरवीर तथा बुद्धिमान था। वह सेना सजा कर पूर्व के कोट की ओर चला और वहां (उसकी रक्षा के लिए) बैठ गया [३१६]।

मानिकचन्द को बीड़ा दिया गया। उसने प्रणाम कर प्रयाण किया और वह (सेना) सजाकर दक्षिण की ओर गया।

ये (चारो दिशाओं के कोटों के रक्षक) रण में लोहे के समान जम गये [३१७]। ये सब सात पुश्तों से देवगिरि में रह रहे थे। गढ़ के चारो ओर जो कंगूरे बने हुए थे उनमें से प्रत्येक कंगूरे पर अपने स्वामी के हित साधन के लिए दस-दस सूर सुभट (सुहड़) अड़ गये [३१८]।

अलाउद्दीन द्वारा अपने सेनापतियों से मंत्रणा तथा दूसरे दिन सवेरे ही आक्रमण करने की योजना बनाना (६६३-६८६)

चारो ओर इस प्रकार (गढ़ की) सज्जा होने लगी। (उसकी ध्वनियां) सुल्तान अलाउद्दीन ने सुनीं। शाह ने मन्त्रियों को बुलाया और पूछा कि देवगिरि में यह कैसा शोर मच रहा है [३१९]। नुसरतखां ने सिर झुकाकर कहा हे स्वामी, रामदेव बड़ा राजा है, गढ़ को सजाने के लिए वह चारो ओर फिर रहा है, तथा उसके मन में आपका कोई डर नहीं है [३२०]। यह सुनकर अलाउद्दीन को क्रोध आ गया। उसने कहा, कुत्ता जरख की बराबरी करना चाहता है, वेद पढ़ने वाला ब्राह्मण डाका डालने का (बाटि परइ मोरि नाव उड़ाई—तुलसी) काम करना चाहता है, हिन्दू तुर्क से होड़ करना चाहता है [३२१]। बादशाह को बहुत अधिक क्रोध हुआ (और उसने कहा) अब तो चूहों से बिल्लियां डरेंगी, मेढ़क सांपों की बराबरी करेंगे और सियार सिंह से लड़ेगा[1] [३२२]। यह सब जानते हैं कि जब चींटी के मरने का समय आता है तब उसके पंख उग आते हैं। मैं इसके गढ़ के कोट को गिरा दूंगा और यदि युद्ध में जमा रहेगा, भागेगा नहीं तो यह निश्चय है कि इसे युद्ध-

---

१. तुलना कीजिए विष्णुदास, महाभारत कथा, विराट पर्व—
दादुर बैठ्यो फनपति सीसा। करै स्यार सिंघ सों रीसा।
सस मार्यौ तो मैगल ठेलै। कूकर छूछू चरख सों खेलै॥२५६॥

और खलबली मच गयी तथा एक सीमित रणक्षेत्र में दोनों दल मिल गये [४४२]।

दोनों दल परस्पर मार करने लगे और अस्त्र-शस्त्र इस प्रकार गिरने लगे मानो भादों के बादल बरसने लगे हों। हिन्दू सैनिक शस्त्रों की भीषण मार होने पर भी टाले नहीं टल रहे थे। उनके पैदल सैनिक (तुर्क घुड़सवारों के) घोड़ों के पेटों को काट देते हैं [३४३]।

जैसे ही मीरों की सेना भिडती है उस पर लाखों लखौरी (लाख से बनाए गये, लाख+औरी अथवा लक्ष्य वेधी) तीर बरसाए जाते हैं। वे तीर घाव करके केवल अंग में ही नहीं रह जाते, वरन कवच (सनाह) को फोड़ कर निकल जाते हैं [३४४]। घुड़सवारों को साठ कदम पीछे छोड़कर उन वीरों ने (तुर्क) सेना को रोक दिया। सेना के भीतर प्रवेश कर वे घोड़ों को काटते हैं और वे वीर टालने पर भी पीछे नहीं हट रहे हैं [३४५]।

साथी (छिताई) और शृंगार को छोड़कर वह रण में प्रवृत्त हुआ था और खान उमरावों के लिए मृत्यु रूप हो गया था। वह वीर समरसिंह वहां तैयारी के साथ युद्ध के लिए उठा तथा वीरों को ललकार-ललकार कर मार रहा था [३४६]।

सिंह जैसा पराक्रमी घाघा रण में (शत्रु सेना का) अवरोध कर रहा था, पीपा शत्रु दल को क्षुब्ध कर उसमें घुस बैठा, खरथू और खरगू तलवारों से लड़ रहे थे तथा (उनकी मार से) तुर्क सैनिक युद्ध से भाग उठे और उनमें खलबली मच गई [३४७]।

बाघा के साथ युद्ध में योद्धाओं का बड़ी संख्या में संहार हुआ जिसमें मुहब्बतखाँ मारा गया। मस्त हाथियों को महावत (फीलबान) ठेल रहे हैं और स्थान-स्थान पर हाथियों का भिड कर घोर युद्ध हो रहा है (चौदंत=दो-दो हाथियों के दो-दो दाँत युद्ध में मिलने से चार दांत—चौदंत -हो—रहा है) [३४८]।

जब हिन्दू सैनिकों के समूह (के दबाव) को सह न सके तब मुंह मोड़ कर खलबली के साथ मीर लोग भागने लगे। उनके छत्र चलायमान हो गए और पालकियां (चौडोल—चंडोल—एक प्रकार की पालकी जो हाथी के हौदे के आकार

हाथों में तलवारें खींच लीं और सिर पर सैनिक टोपे संभालकर बांध लिये [३३२]। कुछ ने हाथ में बरछी (सैन्थी-शक्ति, बु० सैंती) ले ली और दस बीस के झुंड बनाकर शत्रु के दल में घुस गये [३३३]। चोट करने में कुशल चुटकल (एक अस्त्र)-धारी सैनिकों ने सिर पर संभालकर टोप पहन रखे थे।

हिन्दू घुड़सवार इस (तुर्क) सेना को देखकर दुर्ग की पौर के द्वार खोल कर तुर्क सेना पर पिल पड़े [३३४]। इस हिन्दू सेना के साथ तेजा, गांगा, गोगा, भिखारी (दास), रूपा, रैदर, रणमल, रैना आदि सामन्त थे, जो तुर्कों की सेना देखकर उसमें धंस पडे [३३५]। भोजा, भाना, वैरीसाल, हेमाल आदि सामंत टूट पडे। पलटी और झाऊ अहीर, गांगे घोत्रे, जो युद्ध में कुशल था, लड़ने लगे [३३६]। कोका, सोझाचा और हरिश्चन्द्र तुर्क दल को विचलित करने लगे और उनके शरीर से एक बूंद रक्त भी नहीं निकलता था (अर्थात्, उनके शरीर उनके रणलाघव एवं अभेद्य कवचों के परिणामस्वरूप सुरक्षित थे)। दक्षिण का वीर सारिंगदास, महारणधीर उद्धरणदास [३३७], खरयू, खरगू, धारम, धीधू, झाला, झगरु, डगरू, वीधू, युद्ध कुशल (जुझार) देवीराय तथा अपने पांच भाइयों सहित पामा परमार ने शत्रु को चपेट दिया [३३८]।

गौड (बंगाल) के योद्धा रण के साज सजाकर जिरह-बख्तर पहनकर, अच्छे घोड़े कसकर संग्राम में घुस पड़े। प्रेमराज चौहान, जो गढ़ के रावतों में अग्रणी था, युद्ध में अग्रसर हुआ [३३९]। जीवा, बावा, जीवाराम तलवार से भयंकर संग्राम करने लगे। युद्धकुशल माना, भाना, देवराय और धीरे (तुर्क) सेना का क्षय करने लगे [३४०]। अपनी स्वेच्छा से समरसिंह के नेतृत्व में एक होकर हिन्दुओं की यह फौज (तुर्कों की सेना में) घुस पड़ी। लोहे के तीर (नाराच) तथा ढाल (ओडन) हाथ में लिये हुए एक लाख सैनिक समरसिंह के साथ थे [३४१]।

जितने प्रकार के दक्षिणी रणवाद्य बज रहे थे उनकी जातियां कौन वर्णन कर सकता है।

हिन्दुओं की सेना के आक्रमण करने पर तुर्क सेना भी उन पर टूट पड़ी

भूचाल सा आ गया। सैनिक 'भागो-भागो' चिल्लाने लगे। परन्तु वे पुनः लज्जित हुए और लौट कर लड़ने लगे। ढाल, खांडे, गदाएँ एवं तलवारें लेकर शूर योद्धा अन्य योद्धाओं को मार कर मरने लगे [३५७]।

युवा अवस्था में (अल्प वय में) युद्ध क्षेत्र में मरने वाले श्रेष्ठ राव संसार में अपना नाम ऊँचा करते आये हैं (अथवा यशार्जन और शूरता वे करते आए हैं जो अपने जीवन (आउ=आयु) को अधिक महत्त्व नहीं देते)। बहुत तीखे (अने—अनी वाले) तुर्क खुदा का स्मरण कर और मरण-प्रण ठान कर बाने के साथ युद्ध में आ जुटे [३५८]। तुर्कों की सेना इस प्रकार लौट पड़ी जैसे कामिनी फूलों का शृंगार करके (मृत्यु से अभिसार के लिए) निकल पड़ी हो। घायल सवार लौटकर युद्ध करने लगे जो ऐसे दिखाई देते थे मानो होली खेलने वाले गेरू (लाल मिट्टी) से होली खेल रहे हों [३५९]।

(वापिस हुए तुर्क सैनिक आपस में कहने लगे कि) मीरों (सेनानायकों) के कारण न जाने किस-किस का अस्तित्व समाप्त हुआ है तथा कौन-कौन (दुनिया से) चला गया है। उनके कंठ से (आदेश के) शब्द निकलने पर जो अभी जीवित है उनके सिर भी कट जाएँगे [३६०]।

दरियाखां लड़ते हुए युद्ध में मारा गया। तब महमूद ने अपना विक्रान्त रूप प्रकट करते हुए लड़ना प्रारम्भ किया। क्रुद्ध होकर वह आगे बढ़ा और गढ़ के कोट से जा टकराया [३६१]। ऊपर से बहुत पत्थर बरसाये गये और वह रण में आहत हुआ तथा मर गया। उसके मरने पर बादशाह को बहुत क्रोध हुआ तथा उसने समस्त सेना आगे बढ़ा दी [३६२]। उसने गढ़ को चारो ओर से इस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र को आकाश (सब ओर से) स्पर्श किये है। (तुर्क योद्धा) चारो ओर मार-मार का शब्द कर रहे हैं, मन में किसी प्रकार का भय किये बिना निःशंक लड़ रहे हैं [३६३]। एक-एक मुट्ठी से करोड़ों तीर छूटने लगे। (कोट के भीतर) यदि कोई हाथ भी ऊपर उठाता था तो वे उसे बेध देते थे। तुर्क सेना द्वारा चारो ओर से घेरा हुआ गढ़ ऐसा ज्ञात होता था मानो उस पर मधुमक्खियों का वेष्टन लगा दिया गया हो [३६४]।

तुर्कों ने ठाठरी (वल्लियों से बनाई गई टटिया जिसे ऊपर उठा लेने से

की होती है और जिसे चार आदमी उठाते हैं) डगमगा उठीं । वे मुगल वायु की उड़ान की गति से लौटकर भागे [३४९]।

(जब वे संभले तो उनने) कमानें निकाल कर जमा लीं और अर्जुन के समान बाणों की घनघोर वर्षा करने लगे । एक-एक मुट्ठी से साठ-साठ अनी (भल) वाले तीर छूटते थे । (जब इस प्रकार के तीरों की वर्षा हुई तब रामदेव की सेना के) पैदल सैनिकों का व्यूह (रणगांठ) विद्ध हुआ [३५०] ।

शाह के वजीर ने (हिन्दू सेना के) दो सौ प्यादों के दल पर आक्रमण किया और पीछे धकेला ।

हिन्दू सेना को दबा हुआ देखकर दक्षिणी पैदल सेना (सहायता के लिए) टूट पड़ी [३५१] । उसने सेना को ललकार कर आगे बढ़ाया । उस युद्ध में चार पैदल सैनिक खेत रहे । यह देख कर हिन्दू घुड़सवार क्रोधवन्त होकर तलवार खींच कर शत्रुओं पर टूट पड़े [३५२] । तुर्कों की सेना में इस प्रकार खलबली मच गई मानो उनके गले में रस्सी (लेज) के फन्दे पड़ रहे हों । (वे ऐसे भागे कि) कोई भी पीछे फिर कर नहीं देखता । इस युद्ध में सलहदीन और जीना मारे गये [३५३] । वहां पेखा और तोग (?) भी खेत रहे । सुल्तान को इसका पुत्र मरण के समान शोक हुआ ।

वाहर वाजीद नाम के एक कन्नोजी पीर भी वहां शहीद हो गये [३५४] ।

(गोगू मोल्हन की सेना के साथ लड़ रहा था । मोल्हन का जो भी सैनिक) सीमा लांघने का प्रयत्न करता था उसे ही गोगू मार डालता था । वहां मोल्हन के अनेक सैनिक मारे गये । (मोल्हन के सैनिक इस प्रकार मारे जा रहे थे) मानो पवन पतझड़ के पत्ते झड़ा रही हो । (वे सैनिक गोगू की) तलवार की चोट खाकर लट्टू के समान घूम जाते थे [३५५] ।

राजा रामदेव का एक खवास था, जिसका नाम शिवदास उसके गुणों के अनुरूप ही था । वह कोट के ऊपर से झांकने लगा कि उसके हवाई (एक अस्त्र) लगी और वह मर गया । दृढ़ प्रहार से उसके प्राण पखेरू उड़ गये [३५६] ।

वह क्रोध करने लगा और मन में रिसाने लगा। (उसका यह रुख देखकर) सब तुर्क सैनिक गढ़ से भिड़ गये। कोट के नीचे भयानक युद्ध (गीध मसान – देखिए पंक्ति ६६० तथा ७२२) हुआ और वहां बहादुरखां मारा गया [३७५]।

(हिन्दुओं की मार) को देखकर वे भाग चले और कोई कोट के निकट जाने का साहस नहीं करता। उस युद्ध का तत्त्व और अधिक क्या कहा जाए, चारो ओर विकराल रुंड-मुंड दिखाई देने लगे [३७६]।

बादशाह स्वयं सज कर रणक्षेत्र में पहुंचा। फिर बहुत वेग से आक्रमण हुआ। कोट के नीचे बहुत युद्ध हुआ और परकोटा को खाई में गिरा दिया गया [३७७]।

कोट गिर पड़ा और गढ़ के रक्षार्थ बनी हुई चहारदीवारी (पगार) गिर पड़ी। उसके नीचे इतने अधिक लोग दब गये कि जिनका जानना कठिन है। हैवतखां क्रोध में भरकर आगे बढ़ा और बहुत लड़ने के पश्चात खांडे से मारा गया [३७८]। सेना में कटारों के धक्कों से गुत्थमगुत्था युद्ध होने लगा और युद्ध करते हुए अगणित लोथें गिर पड़ीं।

वीरशाह परिहार युद्ध के लिए आगे बढ़ा और उसने तुर्क सेना के अनेक योद्धा मार डाले [३७९]। उसने सात मलिकों को सामने युद्ध करते हुए मार डाला और स्वयं भी तलवार का घाव खाकर प्राण छोड़ दिये। उसके युद्ध में गिरते ही मलखान, जो राजा रामदेव को प्राणों के समान प्यारा था [३८०], तथा रावत उद्धरण चौहान आगे बढे और दोनों ने भीषण युद्ध किया। कोट के नीचे इस भयंकर (अपने विपरीत) मार को देखकर मलिक साहस छोड़कर भागे [३८१]।

बादशाह की सेना को घबराया हुआ देख क्रुद्ध होकर मुहब्बतखां आया। उसने हिन्दुओं से बहुत युद्ध किया और उसका सिर कटकर कोट के नीचे गिर पड़ा [३८२]।

युद्धक्षेत्र में (सिर विहीन) कबंध उठने लगे और चारो ओर विकराल रुंडमुंड दिखाई देने लगे। घोड़े-हाथी और मनुष्यों का मांस खुरों से कटकट कर बिखर गया [३८३]। युद्धक्षेत्र में जब गोले आकर गिरते थे तो वे निष्फल नहीं जाते थे और दस-बीस को मार डालते थे। चोट लगने पर सैनिक

पत्थरों की मार बच सके) की ओट खड़ी कर दी और गढ़ के कोट को गिराने के लिए हाथियों को उससे टकराने लगे। तुर्कों के दल गढ़ के नीचे पहुँच गये तब हिन्दुओं ने क्रोध कर भारी पत्थर उठा लिये [३६५]। पत्थरों की मार पड़ते ही मलिक लोगों ने सिर पर ठाठरी की छाया कर ली। गढ़ के ऊपर से जब भारी पत्थर लुढ़काये जाते थे तो ठाठरी टूट कर चूर्ण बन जाती थी [३६६]। पत्थरों की इस मार को देखकर तुर्क सेना घबरा कर भागने लगी और कोई कोट के निकट (जाने का) साहस नहीं करता। हिन्दू सैनिक क्रोधित होकर कुररी (क्रौंच) के समान रणनाद करते हैं और गढ़ पर से युद्ध करते हैं [३६७]।

क्रोधित होकर ईसफखां युद्ध में प्रवृत्त हुआ और वह हाथी पर चढ़ कर आगे बढ़ा। उसके साथ सौ मीर थे (जो इतने कुशल तीरन्दाज थे कि) यदि हाथ भी ऊपर उठे तो उसमें तीर मार देते थे [३६८]।

गढ़ के ऊपर से जितने भारी पत्थर (भर) गिर रहे थे उनकी गिनती नहीं हो सकती। (गढ़ की) बुर्जों से ईसफखां को लक्ष्य बनाकर भयानक जंत्र (देखिए पंक्ति ३५१) छोड़ा गया [३६९]। उसकी चोट लगते ही खान कुड़मुड़ा गया और हाथी सहित युद्धक्षेत्र में मारा गया।

जब ईसफखां रण में मारा गया तब यह समाचार अलाउद्दीन के पास पहुंचा और वह विलखने लगा [३७०]।

(वह कहने लगा) मैं सच बात कहता हूं कि ईसफखां के मरने से मुझे बहुत दुख हुआ है। जिस प्रकार बिना पंखों के पक्षी होता है, मैं ईसफखां के बिना वैसा ही हो गया हूं [३७१]। जिसके बल के भरोसे पर आक्रमण किया (पलाना—तुलना कीजिए मराठी 'स्वारी') और देवगिरि को घेर लिया, उसके समान दूसरा और कोई नहीं है। उसके बल पर ही मैंने चित्तौड़ जीती थी [३७२]। उसके बल पर ही मैंने बहुत से प्रदेश विजित किये थे। वह मुझे यथावसर उचित मार्गदर्शन करता था। उसके गुणों का बारम्बार क्या वर्णन करूँ। युद्ध में वह आगे बढ़ कर जम कर लड़ता था [३७३] और अब हमारे कार्य साधन में उसने अपना सिर भी दे दिया।

इस प्रकार बादशाह मन में बहुत दुखी हुआ।

बादशाह ने तब उसांस भरी और गढ़ को चारों ओर से देखा [३७४]।

इस समय गोधूलि वेला भी हो गई है और अपना-पराया पहचाना नहीं जाता [३६४]। ऐसा मत निश्चित कर आक्रमण छोड़कर सब (तुर्क) डेरों पर चले गये। संध्या के बीच में ही नौबत (युद्ध समाप्ति की) बजने लगी, उसका मर्म किसी की समझ में न आ सका [३६५]।

दूसरे दिन का युद्ध (८१८–८३६)

रात्रि बीत गई और सूर्योदय हुआ। गम्भीर घोष के साथ युद्धवाद्य बजने लगे। युद्ध में शूर (आहत होकर) विकराल (अथवा बेकरार ?) रूप में ऐसे पड़े हैं मानो गंवार लोग (मदिरा के नशे में) छके हुए पड़े हों [३६६]। स्थान-स्थान पर घायल सैनिक धैर्य छोड़ रहे हैं (और कह रहे हैं कि) खुदा ने आज यहाँ का ही कर दिया (यहीं मृत्यु होगी)। विधाता ने हमें सेवक क्यों बनाया, हम घर सँभालते हैं (बनाते हैं) और अपने हाथ से जलाकर राख कर डालते हैं [३६७]। वे काँपते हुए धरती पर लोट जाते हैं, कुछ घसिट कर वृक्षों की ओट में चले जाते हैं। जो कभी योद्धा थे वे अब अनाथ बने पडे हैं। उनमें कोई-कोई (प्राणरक्षा के लिए हा-हा खाते हुए) मुँह में हाथ डालते हैं [३६८]। जिनके शरीर पर कम गहरे (ओछे) घाव हुए हैं वे इशारे से पानी माँग रहे हैं। जिन्हें तलवार का तीव्र प्रहार लगा है वे कुम्हेंडे के समान (कट कर) टुकड़े हो गये हैं [३६६]। जिन मुगलों को गदाओं के घाव लगे उनके सिर फूट के समान खिल गये। एक के ऊपर एक शव पड़े हुए हैं मानो मल्ल लोग गुत्थमगुत्था कुश्ती लड़ रहे हों [४००]। जिन (घुड़सवारों) के सामने छाती पर बर्छी लगी, वे लगाम छोड़कर भूमि पर लोटने लगे। जो सवार लौटकर युद्ध करने लगे थे वे ऐसे दिखाई देते थे मानो होली खेलने वाले गेरू (लाल मिट्टी) से होली खेल रहे हों [४०१]।

चार सौ हाथी रणक्षेत्र में मरे पड़े हैं जो ऐसे दिखाई देते हैं मानो (रक्त की नदी अथवा युद्ध रूपी नदी) के कगारे हों। ढालें और नेजा रणभूमि में इस प्रकार ज्ञात होते हैं मानो रक्त की नदी में पेड़ बह रहे हों [४०२]। टोप ऐसे दिखाई देते थे मानो मछलियाँ हों। उस (युद्ध महानदी में) उमराव और खान डूब गये। सिर कटे हुए (हाथी से गिरे) मरे महावत ऐसे ज्ञात होते थे मानो पेड़ों पर से गिरने पर लहरें उत्पन्न कर रहे हों [४०३]। इस प्रकार युद्ध रूपी महानदी प्रवाहित हुई।

घबराकर भाग उठते हैं । हिन्दू सैनिक क्रोधित होकर रणनाद (कुररी, देखिए पंक्ति ७६१) करते हैं [३८४] ।

अलाउद्दीन का छत्रदण्ड भंग (७६६–८१७)

जन्त्रधार (जंत्र नामक अस्त्र चलाने वाला = जंत्र धानुक) ने क्रोध करके अपना बलिष्ठ चरण टेक कर माथा नवाकर विनय की कि यदि राजा रामदेव आज्ञा दें [३८५] तो जिसके ऊपर लाल झंडा दिखाई दे रहा है और जिसके सिर पर श्वेत छत्र शोभा दे रहा है तथा अगणित उमराव तथा खानों से घिरा हुआ बीच में जो सुल्तान अलाउद्दीन खड़ा है [३८६], और निश्चय ही वही अलाउद्दीन सुल्तान है, उसको मैं आज्ञा पाते ही निशाना बनाकर मार डालूँगा ।

राजा रामदेव ने उसे रोका और कहा कि भले लोग ऐसा काम नहीं करते [३८७] । जब मैं इसकी सेवा में दिल्ली गया था तब यह मेरे ऊपर सदा कृपा करता रहता था । अब दूसरों के कहने से इसने मुझसे युद्ध किया है । राजा ने कहा कि इसमें इसका दोष नहीं है [३८८] ।

गुणी (जंत्रधार) ने कहा कि जिसका आपका आदेश हो मैं उसी को लक्ष्य बनाकर मार डालूँ । राजा रामदेव ने कहा कि मनोयोग से (सुल्तान के) छत्रधार (छत्र धारण करने वाले खवास) को मार डालो [३८९] । तू मुझे आज अपना गुण दिखा, मैं (पुरस्कार स्वरूप) चूड़े तथा बर्तन दूँगा । (राजा का) यह वचन पाकर (जन्त्रधार ने) किलकारी मारी और (सुल्तान के) छत्रदण्ड को तोड़ दिया [३९०] । उसके पास जाकर ही जन्त्र का गोला फूट गया और उसके एक तीर ने (छत्रदण्ड धारी) खवास को मार डाला । तीर (मूठ) लगते ही उसके प्राण निकल गये । बादशाह को यह देखकर आश्चर्य हुआ [३९१] । तब रामदेव ने (जन्त्रधार की) बहुत सराहना की और कहा कि मैंने अब तेरा गुण जान लिया ।

(इस घटना से) समस्त (तुर्क) सेना में हाहाकार मच गया तथा सब मन्त्रियों ने मिलकर विचार किया [३९२] ।

उनने कहा, हे सुल्तान अलाउद्दीन, सुनो, इस समय यह वस्तुतः अपशकुन हुआ है । गोले के प्रहार से छत्रदण्ड टूट गया है, यह अशुभ हुआ है [३९३] । हे स्वामी, अब डेरे पर चलिए, विश्राम कीजिए, अब पुनः कल आक्रमण कीजिएगा ।

समरसिंह की छिताई से विदाई (८५३–८७१)

समरसिंह छिताई के पास घर गया जहाँ वह सतखंडे महल में थी [४१२]। छिताई से राजा (समरसिंह) ने कहा कि मैं सेना लेने के लिए द्वारसमुद्र जा रहा हूं। हे सुन्दर रमणी, तू (किसी प्रकार की) चिन्ता मत कर और अपने मन में (मेरे जाने की आवश्यकता) विचार कर देख [४१३]।

जब छिताई ने यह बात सुनी तो उसके नेत्रों में आँसू आ गए और वह माथा धुनने लगी। प्रियतम के वचन सुनकर उस नारी को ऐसा ज्ञात हुआ मानो कामदेव ने उसे वियोग का बाण मार दिया हो [४१४]। उसकी आँखों से आँसू लुढ़कने लगे जिन्हें समरसिंह अपनी पाग से पोंछने लगा।

(छिताई ने कहा) या तो मुझे अपने साथ ले चलो या फिर विष बाँटकर प्याले (कोरा-सकोरा-करवा) से पिला जाओ [४१५]। या तो तू मुझे साथ ले चल नहीं तो सब काम बिगड़ जाएँगे।

सुन्दरी (छिताई) परवश थी (वह अपनी बात न मनवा सकी)। वहाँ विधाता ने (समरसिंह की) बुद्धि का हरण कर लिया (वह यदि छिताई को साथ ले जाता तो उसका अपहरण न होता अथवा यदि समरसिंह रणक्षेत्र में मारा जाता तो वह सती हो जाती तथा सुल्तान के हाथ न पड़ती) [४१६]।

(समरसिंह छिताई की) बात नहीं मानता और न रोकने पर रुकता ही है। (हार कर) छिताई ने फिर कहा, हे नाथ, कुछ अपनी निशानी मुझे देते जाओ जिसे देखकर मैं शरीर में अपने प्राण रोके रहूं [४१७]।

(समरसिंह ने) अपने कंठ की सोने की माला उतार कर (छिताई के) गले में प्रेम की मूल के समान पहना दी। अपना बागा (अंगरखा) दक्षिणी कटार (जमधर) सहित उतार कर उसने (छिताई को) दे दिया। (समरसिंह ने) अपनी इतनी वस्तुएँ (छिताई को) दे दीं [४१८]।

(छिताई ने) जो कुछ गहने पहन रखे थे वे समरसिंह के जाते ही उतार कर रख दिए। (समरसिंह के चले जाने पर छिताई) अपने प्रियतम का बागा पहने रहती है और उसकी दी हुई कटार को साथ रखकर सोती है [४१९]। (प्रियतम की दी हुई) कंठमाला को उसने जप माला बना लिया और उसके मनकों के

तुर्कों की सेना विचलित हो गई। उसने कोट के नीचे ही तम्बू तान दिये और गढ़ के चारों ओर तुर्क बस गये [४०४]। जब तुर्क इतने पास ठहर गये तो (नगर के) लोग चिन्तित हो गये और अपने-अपने लिए भयभीत हो गये [४०५]।

रामदेव द्वारा समरसिंह को द्वारसमुद्र जाकर सेना लाने के लिए भेजना (८३७–८५२)

गढ़ को चारों ओर से घेर कर सेना ने डेरा डाल दिया, जिस प्रकार राहु चन्द्र को निगल लेता है। प्रतिदिन युद्ध होता है और मार काट होती है।

मन्त्रियों को लेकर राजा ने सलाह की। (तुर्क) दिन-रात आक्रमण कर रहे हैं और रक्त की नदियाँ सी बहती हैं। राजा से मिलकर सब वीरों ने मन्त्रणा की कि अब क्या करना चाहिए [४०६]।

घिरा हुआ गढ़ (शत्रु) ले न सके इस सम्बन्ध में राजा रामदेव ने मन्त्रणा की। उसने समरसिंह को बुलाकर उससे समझा कर बात कही [४०७]।

(राजा ने कहा), हे राजकुमार, मन में विचार कर देखो, (उचित यही है कि तुम) छिताई को लेकर निकल जाओ। यदि तुम सकुशल अपने घर पहुँच जाओगे, तब हम सब का बहुत बड़ा अपयश मिट जाएगा (यदि छिताई पकड़ी गई और तुम मारे गये तो हमें बहुत अपयश मिलेगा, जो तुम्हारे और छिताई के चले जाने से मिट जाएगा [४०८]।

तब समरसिंह ने सिर नवाकर कहा कि मैं तो इस अवसर पर (सहायता देने के हेतु) यहाँ रहा हूं। मैं राजपूत का बेटा हूं जो युद्धक्षेत्र में ही अपने प्राण देते हैं। यदि मैं ऐसे अवसर पर भाग जाऊं तो मेरे गोत्र और वंश को लज्जित होना पड़ेगा [४०९]। सामने (या स्वामी का) संकट देखकर छोड़ भागने वाला गवार घोर नरक में पड़ता है। जहाँ (जीवन)-मृत्यु का दाव लगा हो वहाँ मृत्यु से घबराने वाले से अधिक नीच दूसरा नहीं हो सकता [४१०]।

राजा रामदेव ने कहा कि इस गढ़ के लिए अब बहुत गम्भीर युद्ध हो रहा है, तुम हमारी आज्ञा का पालन शीघ्र करो। द्वारसमुद्र गढ़ की सेना सजाकर लाओ और देवगिरि गढ़ को घेरे से बचा लो [४११]।

(ऐसा कह कर) रामदेव ने समरसिंह को (बिदाई का अथवा सहायता लाने के गुरुतर कार्य के लिए) बीड़ा दिया। समरसिंह प्रणाम कर चला गया।

हे चेतन, तू बुद्धिमत्तापूर्ण उपाय सोच और गढ़ के ऊपर के समाचार ला कि छिताई गढ़ में ही है या उसे समरसिंह ले गया [४२८]। यदि वह द्वारसमुद्र चली गई हो तो सेना (ठकुरई) को कूच की तयारी कराओ। मैं समुद्र को बाँध कर पार उतर कर (द्वारसमुद्र) पहुंचूंगा, (तथा उसे पराजित करूँगा) जैसे राम ने रावण को (मृत्यु के) घाट उतार दिया था [४२९]। यदि छिताई (देवगिरि) गढ़ में ही है, तब आक्रमण कर उसे हस्तगत करूँगा। (राघवचेतन), तू शीघ्र तुरन्त उपाय बतला नहीं तो सवेरा होते ही तेरी खाल खिचवा लूंगा [४३०]। (यह बात सुनकर राघव) चेतन का मन खो गया (गुमाना = खो जाना, घबरा जाना)।

बादशाह ने क्रोध से भरकर (फिर) कहा, मैंने देवगिरि आकर क्या किया? मलिक और मीर युद्ध में मरवा डाले [४३१] तथा मुझे समस्त देश गाली देगा (मजाक उडाएगा) कि बहुत अच्छी दक्षिणी सुन्दरी ले आए। (बादशाह ने कहा) राघवचेतन, मोल्हन तथा देव शर्मा ये सब गढ़ का रहस्य जानते हैं [४३२] और राजा का सब भेद प्राप्त करते रहते हैं, परन्तु ये दुष्ट मुझसे कभी नहीं कहते। अब की बार यदि छिताई को नहीं ले सकूँगा तो अपना सिर देवगिरि (के युद्ध) में दे दूंगा [४३३]। अब तुम शीघ्र ही उपाय बतलाओ नहीं तो इसी स्थान पर सबको मरवा डालूंगा।

जब सुल्तान ने ऐसी बात कही तो वह राघवचेतन के मन में चुभ कर रह गई [४३४]।

राघवचेतन की चिन्ता तथा पद्मावती देवी द्वारा मार्ग-दर्शन (८९८–९२३)

(राघवचेतन मन में सोचने लगा कि) बड़ी महत्वाकांक्षा नहीं करना चाहिए (वह विपत्ति का कारण बनती हैं), राजा से मित्रता नहीं करना चाहिए, क्योंकि (अस्थिर स्वभाव के कारण) वे कभी गरम हो जाते हैं, कभी ठण्डे हो जाते हैं, कभी शत्रु का सा व्यवहार करने लगते हैं और कभी मित्र का सा [४३५]। एक क्षण में वैरी का और एक क्षण में मित्रता का व्यवहार करने वाले राजा का चित्त कभी स्थिर नहीं रहता। उसके मन को जो अच्छा लगता है वही करता है और दूसरे के दुख का हृदय में विचार नहीं करता [४३६]। ठग, ठाकुर

सहारे सदा 'पिउ-पिउ' मन्त्र जपती रहती है¹। उस बाला ने खाना-पीना छोड़ दिया और कुश की चटाई को बिछौना बनाया [४२०]। स्नान एवं प्रसाधन में चोवा, पुष्प और सुगन्धित द्रव्यों का उपयोग छोड़ दिया। प्रतिदिन शिव की पूजा के लिए जागे लगी। समरसिंह के निकल जाने पर, मन में विचार कर, छिताई नारी इस प्रकार रहने लगी [४२१]।

अलाउद्दीन को समरसिंह के चले जाने का समाचार मिलना तथा राघवचेतन से उसकी मन्त्रणा (८७२—८९७)

बादशाह के मन में यह सन्देह हो गया (उसे यह समाचार मिल गया) कि समरसिंह देवगिरि छोड़कर चला गया है। बादशाह को यह सन्देह भी हुआ कि उसके साथ छिताई भी चली गई है [४२२]।

आक्रमण करते हुए दिन नष्ट (हारी) हो रहे हैं (यह जानकर उसने) राघवचेतन को बुलाया। (बादशाह ने राघवचेतन से कहा कि) राजा रामदेव मेरा कहना नहीं मान रहा है, न बेटी देता है और न गढ़ छोड़ता है [४२३], न मेरी सेवा स्वीकार करता है न (मेरी अधीनता स्वीकार करने के आशय का) खुतबा पढ़ता है (अथवा, न कुरान शरीफ—कुतुब—का अनुयायी बनता है), दिन-रात बराबरी से युद्ध कर रहा है। समरसिंह निकल कर दूसरे देश में चला गया है। मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि मेरे साथ बहुत धोखा हुआ है [४२४]।

मैं देवल देवी को प्राप्त करने के लिए रणथंभोर गया, परन्तु मेरा एक भी काम पूरा न हुआ। दिल्लीपति ने कहा कि मैंने सुना कि चित्तौड़ में पद्मिनी स्त्रियां होती हैं [४२५]। अतएव वहां जाकर मैंने रत्नसेन को बन्दी बना लिया, परन्तु बादल उसे छुड़ा ले गया। यदि इस बार मुझे छिताई भी नहीं मिलेगी तो अपना सिर मैं देवगिरि में ही दे दूंगा [४२६]।

बादशाह ने कहा कि मैं बहुत उलझन में फंस गया हूं। यह मेरी समझ में नहीं आता कि क्या करूं और देवगिरि का पतन कैसे हो? मुझे देवगिरि से कुछ मतलब नहीं है। राजा रामदेव मुझे छिताई दे दे और अपना राज्य भोगता रहे [४२७]।

---

१. तुलना कीजिए मैनासत की पंक्ति—

लालन विरह तपै मोरी मांगा। सिमरौं नेह पहिरिवौं बागा॥ (३०३)

वह पद्मावती देवी के मंत्र का जाप करने लगा और अपने गुरु का स्मरण करने लगा। सारी रात वह झींकता हुआ जागता रहा। थोड़ी देर के लिए उसे नींद की झपकी आ गई [४४५]। (सोते में) हंस पर आरूढ़ पद्मावती देवी ने उसे दर्शन दिये और उसके समक्ष आकर राघवचेतन से कहा कि तूने मेरा चिन्तवन किया है अतएव मैं तझे सिद्धि का वरदान देती हूं [४४६]। तुम गढ़ में दूतियां भेजो। वे सब समाचार लाकर देंगी।

इस प्रकार सोचते हुए सवेरा हो गया और तब तक बादशाह के दूत (हरकारे) बुलाने आ गये [४४७]।

राघवचेतन द्वारा गढ़ पर दूतियां भेजने की अलाउद्दीन को सलाह देना (६२४–६३१)

दूत (हरकारे) राघवचेतन को ले गए और बादशाह के पास खड़े हो गए। बादशाह (राघवचेतन से) क्रोध पूर्वक पूछने लगा कि मुझे अभी उपाय बतलाओ [४४८]।

कवि नारायणदास कहता है : तब राघवचेतन बोला, मेरे मन में एक उपाय स्फुरित हुआ है। अच्छी (कुशल) दूती बुलाइए, वे सब बात विचार कर बताएंगी (तथा देवगिरि गढ़ के भीतर का समाचार लाकर देंगी) [४४९]।

पृथिवी के स्वामी (आखुंदे आलम=खुदिआलम) ने 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कहा (और कहा कि) तेरे मन में बहुत अच्छा उपाय उत्पन्न हुआ है।

जिनने मुनि और तपस्वियों को भी ठग लिया, ऐसी दो दूतियां राघवचेतन खोज लाया [४५०]। बादशाह की आज्ञा पाकर राघवचेतन उन दो दूतियों को उसके पास ले गया।

दूतियों का वर्णन तथा उनसे अलाउद्दीन की मंत्रणा (६३०–६५३)

विशेष रूप से अनुपम तथा विशेष प्रकार का वाणी वाली, मुनीश्वरों को भी मोहने वाली, जाति की तंबोलिन [४५१], बारी का काम करने वाली, धनश्री नामक तथा मन मोहने वाली मालिन मनश्री नामक (वे दूतियां थीं)। वे देश-देश की भाषाएं बोलना जानती थी तथा उनने लाखों, अनगिनती सती नारियों

और सुनार के साथ मैत्री करना खांडे की धार पर चलने के समान है । जिस प्रकार सिंह और सांप कभी अपने नहीं हो सकते (उनसे मित्रता नहीं करना चाहिए) उसी प्रकार राजा (ठाकुर) से किसी को भी मैत्री नहीं करना चाहिए (वह कभी अपना नहीं होता) [४३७]। जैसे औजार (पाना) से रत्न काटा जाता है वैसा ही अन्त में राजा भी व्यवहार करता है (गुणी मित्रों को मरवा डालता है) । राजा की मति कभी ऐसी उलटी चलती है कि वह पत्रों (मित्रों) को एक ओर हटाकर कांटों (शत्रुओं) को ग्रहण कर लेता है [४३८] । यदि राजा प्रसन्न हो जाए तो निर्धनता मिटा देता है और यदि रूठ जाए तो मरवा कर पानी में फिकवा देता है ।

इस प्रकार सोचता हुआ (राघवचेतन) डेरे में चला गया । वह दिन समाप्त हुआ और सूर्य अस्त हो गया [४३९] ।

राघवचेतन मन में चिन्ता करने लगा और हृदय में युक्तियां सोचने लगा कि सुल्तान की प्रशंसा और गढ़ के हाल कैसे प्राप्त करू [४४०], गढ़ के समाचार लाकर कौन सुल्तान को देगा और किस प्रकार मेरी बात का प्रमाण रहेगा, बादशाह अब किस प्रकार मेरा भरोसा करेगा और संसार में मेरा अपयश होने से कैसे बचेगा [४४१] ।

(राघवचेतन सोचने लगा कि) जब बादशाह प्रसन्न होकर कोई बात पूछता था तब (उसका प्रश्न सुन कर) उसके वे वचन हृदय को सांत्वना देते थे (और उपयुक्त उत्तर सूझ पड़ता था, परन्तु) अब जब बादशाह ने अकृपा धारण की है (क्रोध में प्रश्न पूछा है) तब विधाता ने वह (प्रत्युत्पन्न) मति हरण कर ली (और मार्ग नहीं सूझ रहा है) [४४२]। इस प्रकार झींखते हुए राघवचेतन उसांसें भरने लगा । वह सोचने लगा कि अब मुझे अपने कुटुम्ब से मिलने की आशा नहीं रही, अब मेरा समस्त देश में अपयश फैलेगा और बादशाह मुझे अकारण मार डालेगा [४४३] ।

(राघवचेतन पछतावा करने लगा कि) मुझे यह दुर्बुद्धि विधाता ने क्यों दी कि मैं (राजदरबार में आया और) क्यों मेरी बादशाह से जान पहचान हुई । (इससे अच्छा यह था कि) भिक्षा मांग-मांग कर मैं पेट भरता रहता, विधाता ने यह कुबुद्धि क्यों दी (कि बादशाह के मुंह लगा) [४४४]।

बादशाह ने दूतियों से कहा कि तुम आधीरात के समय गढ़ पर चढ़ जाओ। बहुत यत्न से इस प्रकार काम करना कि राजा रामदेव देख न पाए [४६१]।

कवि रतनरंग कहता है:—

दूतियों से बादशाह ने यह कहा कि यदि तुम्हारे कारण मेरी बात रह जायगी तो यह दिल्ली नरेश का वचन है कि मैं तुम्हें सांभर का प्रवेश दे दूंगा [४६२]।

दूतियों द्वारा गढ़ की अगमता और अभेद्यता का वर्णन (६५४–६६३)

दूतियों ने कहा, हे बादशाह हम गढ़ में कैसे जा सकती हैं। यदि हम इस वेश में गढ़ पर जा सकें तो, हे बादशाह, हमारा दाव ठीक लग जाएगा [४६३]। (परन्तु कठिनाई यह है कि वहां पहुँचना कठिन है क्योंकि) गढ़ का कोट विषम है और वह सर्वत्र अत्यधिक दुर्गम है। उसमें हम किस यत्न से प्रवेश करें। उसमें लोहे से जड़े हुए वज्र जैसे कठिन किवाड़ लगे हुए हैं। पहाड़ी विषम मार्गों की रक्षा के लिए भयंकर योद्धा बैठे हुए हैं [४६४]। उसके कोट और कंगूरे चूने आदि मसाले से पक्के ढाले गये हैं। ऐसा ज्ञात होता है, मानो स्वयं विधाता ने उन्हें यत्नपूर्वक बनाया हो। ढेंकुली यंत्र से तीर फेकने का ऐसा प्रबन्ध है कि गढ़ पर पक्षी भी नहीं जा सकता [४६५]। दूतियाँ कहने लगीं कि हे सुल्तान, सुनो, हम गढ़ के ऊपर कैसे जा सकती हैं। यदि हम गढ़ के ऊपर किसी प्रकार पहुंच जाएं तो हम अपने वचन प्रमाणित करके दिखा दें [४६६]। (यदि हम गढ़ के ऊपर पहुंच सकें तो) छिताई की तो कितनी सी बात है हम यक्षकन्या और नागकन्याओं को भी फुसला लावें। मृत्युलोक की (छिताई) की बात ही क्या है, हम (स्वर्ग की) रंभा को भी साथ लगा लावें [४६७]।

गढ़ में दूतियों के प्रवेश कराने की युक्ति (६६४–६६६)

बादशाह ने दूतियों की बात सुनकर मन में अमर्ष के साथ क्रोध किया। उसने मन में विस्मय सहित सोचा कि राघवचेतन ने मुझे बुरा उपाय बतलाया है [४६८]। जिस गढ़ को घिरे सात मास बीत गये और एक-एक दिन एक-एक वर्ष के बराबर बीता है, उस गढ़ पर दूतियां अब कैसे जा सकती है। बादशाह ने राघवचेतन से पूछा कि तेरी बुद्धि कैसी है [४६९]।

को पथभ्रष्ट किया था [४५२]। वे स्त्रीचरित्र की कुशल जानकार थीं। सुल्तान ने स्वयं बुलाकर उनसे बात की।

अलाउद्दीन उन्हें समझाकर कहने लगा कि छल के बल से छिताई को छलो [४५३]। मैं तुम्हें कपड़े और सोना भेंट में दूंगा और तुम पर कृपा करके तुम्हें उमराव बना दूंगा, पश्चिमी देशों के एक लाख घोड़े दूंगा और जो कहोगी उसका पालन करूंगा [४५४]। मेरे हृदय में (छिताई के) चित्र का रूप बस गया है और उस पर ही बहुत मोहित हो गया हूं। (उसको प्राप्त करने के) हठ के कारण ही मैं इतनी दूर आया हूं और दूसरे की स्त्री पाने के लिए रोता फिरता हूं [४५५]। मेरी राजा रामदेव से मैत्री टूट गई जिसका मुझे बहुत खेद (संदेह) हो रहा है। मुझे दोनों में एक भी नहीं मिला (न छिताई मिली, न राजा की मैत्री रही) इस कारण मैं तुमसे विनय कर रहा हूं [४५६]।

(यह सुन कर वनश्री) वारिन ने अपनी नाक पर अंगुली रख कर कहा कि मुझसे सती का सत नहीं बच सकता। यदि वे मेरी बात एक क्षण भी सुन लें तो मैं यक्षिणी और किन्नरियों को भी मोहित कर सकती हूं [४५७]।

मस्त हाथी को वश में करने के लिए मस्त हाथी का प्रयोग किया जाता है, मृग के द्वारा ही सब लोग मृग को फँसाते हैं। इसी प्रकार स्त्री का भेद स्त्री द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है, ऐसे वचन सयाने लोग कहते हैं [४५८]।

मालिन (मनश्री) प्रतिज्ञा पूर्वक समझाती है कि मानवी को (फुसलाने के लिए) मुझे क्या ललकारते हो, यदि मन्दिर में पत्थर की बनी हुई पुतली भी हो तो मैं उसे भी अपनी बातों से अनुरक्त (पलुहाई—पल्लवित—हरी-भरी) कर सकती हूं [४५९]।

वारिन ने भगवे कपड़े पहन लिये और (मालिन ने) मसवासी (एक मास से अधिक कहीं न रुकने वाले साधु) का रूप बनाया। इस प्रकार तपस्वियों का सा वेश बनाकर वे स्त्रियां चलीं। राघवचेतन उन्हें बादशाह के आवास के द्वार पर ले गया [४६०]।

राघवचेतन से बादशाह ने यह कहा, जो मेरे मन में है वह तू शीघ्र कर। मैं बारम्बार तुझसे यह विनय करता हूं कि तू मुझे देवगिरि दुर्ग दिखा दे [४७९]। तू यह विचार कर देख कि मैं नरेशों में गौरवशाली हूं और तू मेरी विनय को टालता है। यदि और कोई होता तो मैं उसके प्राण ले लेता। (फिर भी) तू मेरी आज्ञा टालता है [४८०]।

तब राघवचेतन ने मन में समझ लिया कि मुझसे बादशाह क्रुद्ध हो गया है। (उसने कहा) तुम्हारे आदेश को कौन टाल सकता है। अब शीघ्र गढ़ पर चढ़ने का प्रबन्ध करो क्योंकि दोपहरी चढ़ती आ रही है [४८१]।

(बादशाह ने) उठकर नीचे (खलाइ, बुन्देली 'नाय आओ खालैं' = यहाँ आओ, नीचे) उतरकर जूते पहने। अन्य कोई रहस्य न जान सके इस हेतु शरीर पर काला बागा पहन लिया। बादशाह का रूप-रंग कुछ और ही हो गया [४८२]। सिर पर काली खोल शोभा देने लगी और हाथ में लाल गुलेल शोभित हुई। कमर की फेंट में अनेक (गुलेल के) गोले रख लिये। बादशाह ऐसा दिखने लगा मानो तरैया (पालकी या डोली के साथ चलने वाला अनुचर) हो [४८३]।

राघवचेतन पालकी सजवाकर उसमें चलने लगा और बादशाह आगे-आगे पैदल (अथवा पियादे के समान) चलने लगा। दूतियां साथ में हो लीं और इस प्रकार वे देवगिरि दुर्ग के पास पहुंच गए [४८४]।

जब बादशाह देवगिरि दुर्ग पर चढ़ गया तब चतुर राघवचेतन ने उपाय निकाला। दूतियों को महल में भेज दिया (और उन्हें आदेश दिया) कि जाकर छिताई की खोज करो [४८५]।

(कवि कहता है) राघवचेतन, तेरा वंश धन्य है, वह रात्रि धन्य है जिसमें तेरी माता ने तुझे जन्म दिया और पूर्वजन्म में दिया तेरा दान धन्य है (जिसके फलस्वरूप) तेरी पालकी के आगे बादशाह पियादे के समान (अथवा पैदल) चला [४८६]।

राघवचेतन खड़ा हुआ और राजा को आशीर्वाद देता हुआ बोला, हे दिल्ली-पति बादशाह, सुनो, नगर में (संधि के हेतु) राजदूत भेजिए। उनके साथ हो ये नारियाँ गढ़ पर चढ़ जाएँगी [४७०]।

अलाउद्दीन द्वारा स्वयं देवगिरि गढ़ में जाने का विचार करना (६७०–१००१)

बादशाह राघवचेतन का हाथ पकड़कर उसे भीतर के महल में ले गया (और कहने लगा कि) जो तेरे चित्त में मेरे प्रति अच्छा भाव है तो तू देवगिरि दुर्ग मुझे भी दिखला दे [४७१]।

राघवचेतन ने कहा, हे बादशाह सुन, तू दिल्लीपति और स्वामी है। यदि तू (मारा) गया तो सारा राज्य डूब जाएगा, तेरे चले जाने पर सब काम पूर्णतः बिगड़ जाएगा [४७२]। तेरे जाने पर समस्त सेना में शोर मच जायगा और यदि तू चला गया तो हमें कोई स्थान शेष नहीं रह जाएगा। तुझे राजा रामदेव पहचानता है, यदि उसने तुझे पकड़ लिया तब सब कार्य नष्ट हो जाएंगे [४७३]। (तेरी यह हठ करना अनर्थकारी है) हठ करके सिंह नहीं पकड़ा जा सकता तथा हठ करके मत्त हाथी को भी नहीं पकड़ा जा सकता। विप्र (राघव-चेतन) ने कहा हे बादशाह, हठ छोड़ दो क्योंकि यदि तुम पकड़े गये तो, हे बन्धु, कुछ भी बच न सकेगा [४७४]।

(बादशाह ने कहा) मैंने तुझसे अपने पेट की बात कह दी। हे विप्र, मेरे कहे को मत टाल। अपना मित्र जानकर तुझसे यह विनय करता हूं कि मुझे देवगिरि दुर्ग दिखा दे [४७५]। मेरे मन में यह बात आ गई है कि देव-गिरि दुर्ग में पूरी तरह (नि+कूत=निकुताई) देखूँ। (मैं तीन बार यह बात कह चुका हूं।) हे राघवचेतन, तीसरी बार मेरी दी हुई आज्ञा का उल्लंघन तुझे नहीं करना चाहिए [४७६]।

राघवचेतन ने कहा —

तूने यह दुर्बुद्धि पूर्ण बात सोची है। हे बादशाह, मुझे अपयश न लगवा। यदि तू मारा गया तो मुझे बहुत गालियाँ सुननी पड़ेगी। हे बादशाह मन में फिर विचार करके देख [४७७]। बादशाह, तूने बहुत बुरा निश्चय किया है, मैं अब तुझे क्या सलाह दे सकता हूं। यदि मैं रोकूंगा तो तू मुझे मार डालेगा। इसलिए हे बादशाह, तुझे जैसा अच्छा लगे वैसा कर [४७८]।

बहुत पक्षी कलरव कर रहे हैं। ऐसे सरोवर का कूल बादशाह ने देखा [४६४]। इस सरोवर पर कमल-पत्र (पुरइन) छाए हुए हैं। अनेक प्रकार की फुलवारी महक रही है। वहां सोने के कलश लगे हुए तोरण सुन्दर लग रहे हैं, उन्हें शाह ने देखा [४६५]। लता मण्डपों (साख अवासा) में सोने के फव्वारे हैं जिनमें बारहों मास वर्षा सी रहती हैं। स्फटिक शिला की अत्यन्त सुन्दर रचना (बनाउ) की गयी है, जहां राजा सभा इकट्ठी कर बैठता है [४६६]। वहां चित्र कारों द्वारा चित्र बनाए गए हैं। (वह स्थल) ऐसा ज्ञात होता है जैसे स्वर्ग में इन्द्र भवन शोभा देता हैं, (अथवा) जैसा ब्रह्मलोक है जहाँ ब्रह्मा का निवास है, (अथवा) जैसा विष्णु का लोक (हरि = घर) है, (अथवा जैसा शिव का लोक) कैलाश है [४६७]।

बादशाह ने अनुपम मानिक चौक देखा। उसे देखकर शाह (के नेत्रों) की भूख मिट गई। उसने मतवाले हाथी देखे, वे सिंघली हैं और उनके दांत बहुत सुहावने हैं [४६८]। (शाह ने) अरब देश के घोड़े (ताजी) तथा मध्येशिया के तुषार देशके घोड़े (तुख़ार) देखे, जिन्हें समस्त पृथिवी की परिक्रमा करने में भी देर नहीं लगती।

शाह ने वे योद्धा देखे जो अद्वितीय बलशाली (अपरबल) वीर हैं और जो रणक्षेत्र में साहस तथा धैर्य के साथ गरजते हैं [४६६]। शाह ने बड़े-बड़े पत्थर (भर) तथा तीर कमान देखे जिनकी मार से पक्षी भी बच कर नहीं जा सकता।

शाह ने ताल तथा सरोवर का स्थान देखा जहां उत्तम व्यक्ति स्नान कर रहे हैं [५००]। उसने कभी शेष न होने वाले हाट-बाजार देखे।

बादशाह यह सब गरीबी वेश बनाकर देख रहा था।

घूमते-घूमते बादशाह उस स्थल पर गया जहां गहरा राम सरोवर[1]

---

१. इस काल की रचनाओं में नगर का 'रामसरोवर' एक विशेष कथा-रूढ़ि है। नायक-नायिका के प्रेमकलाप तथा कथा को आगे बढ़ाने वाली विशेष घटनाएँ रामसरोवर के तीर पर ही घटित होती हैं। दामो के लखनसेन पदमावती रास तथा चतुर्भुजदास निगम

(तृतीय खण्ड)

अलाउद्दीन का बाग और सरोवर देखना (१००२–१०४१)

(कवि कहता है) समस्त सभासदगण (श्रोता), हृदय में भाव धारण कर (सहृदयता पूर्वक) जिस प्रकार आगे उपक्रम होने लगा वह (कथा) सुनिए।

तब राघवचेतन राउर (राज+पुर=पौर, राजभवन) में गया और शाह स्वयं नगर में गया [४८७]। (बादशाह ने नगर देखना प्रारम्भ किया जहां) उसने राजा के निवास भवन देखे। उनके पार्श्वों (पासा ?) पर सफेदे का रंग किया हुआ देखा। भवनों में विविध प्रकार के (अनवन=अन्नबन्न—बुन्देली) खंभे देखे जहाँ रंगशाला में नाटक हो रहे हैं [४८८]।

(बादशाह ने सरोवर देखा। उसका फर्श) राजावर्त (रावट) का है जिस पर ओप (भामनी) किया हुआ है और बीच-बीच में श्वेत स्फटिक लगा हुआ है। (स्थान-स्थान पर) स्फटिक शिला की सुन्दर बैठकें (सुरई) बनी हुई हैं जिनके चंदोवे महल जैसे शोभित हैं [४८९]। उसके घाट पत्थरों से पटे हुए हैं। (उन घाटों पर) सुन्दर पनिहारियों के झुंड पानी भर रहे हैं [४९०]। यदि इन (सुन्दर पनिहारिनों) का रूप वर्णन करने लगूं तो कथा इतनी देर तक कहना पड़ेगा कि उसका अन्त नहीं हो सकेगा।

वह सरोवर इतना गहरा है कि कहा नहीं जा सकता, आंखों से (उसकी गहराई) देखने पर चक्कर आने लगते हैं [४९१]।

उसमें कमल और कुमदिनी के पुष्प शोभा दे रहे हैं। उन्हें देखते ही भ्रमरों की रस की भूख की पूर्ति हो जाती है। हंस और हंसिनी के जोड़े उस सरोवर में रहते हैं और आनन्दित होकर अनेक प्रकार के मधुर शब्द करते हैं [४९२]। उसमें चकवा-चकई एवं चकोर मधुर शब्द करते हैं और सजे हुए से बैठे मोर कूक रहे हैं। उसमें ढेक (एक प्रकार का बगुला) पक्षी, अनेक मटामरियारी (पीछे पंक्ति २५८ देखिए), और जलकुक्कुट आदि शोभा दे रहें हैं। (वने) [४९३]। हंस जैसे रूप वाले बगले और सारस सरोवर के कूल (पार) पर घूमते हैं। वहां

रामसरोवर के तीर पर छिताई (१०४२–१०६९)

बादशाह ने देखा कि राम सरोवर वैसा ही (सुन्दर) है जैसा कि पृथिवी पर मान सरोवर है।

बहुत सदाफर कंद बिजौरे। दार्यौ दाख बिलेछह जौरे।
खिरी छुहारी पिंडखजूरी। वन आवरी रही भरपूरी ॥
सेतौ करहु बहुत गुरदैनी। वांस भिरै बहु लागै गैंनी।
साल्है सैमरि बहुतक न्यारी। बीजौ सीसौ सिरसी कारी ॥
चिरहुल मोखौ अरु पापरिया। वेल बंबूर और छेंकुरिया।
मैठि कसौंध कटाई जामू। सघन बकाईन लगै न घामू ॥
फरियो वेल मैनहर तैंदू। बहुग अकाउच खैंदू सैंदू।
बहु अखरोट और घूंसररा। ताल तमाल वहेरे हररा ॥
बहु करील ज पिलुवा रोरी। धौ धामन अधनीव मकोरी।
खैरु हिंगोटु सिहारी दीसै। ता बनखंड हरारु सरीसै ॥
चपल चखी लाचे [......]। तिहि बन देसै सावज पंखी।
कौंहा ऊमरि कोकै सोरी। हरे नारियर घनी मकोरी ॥
हरराचार लोध वन दीसै। आलि रसैनी लोद मजीठै।
असिया वेलु सु चिरहुल सौनौ। रूप कुमाई न दीसै कौनौं ॥
महुवा सैमरु सैहुड भिंडू। वर नल सूरौ असिया अंडू।
तहां अकोल सुहिजनौ दीठा। सैहुड जामुन अरु बरहीठा ॥
अगरु सिरीखंडु बुपरठ रूखा। देखि जम्हीरिनि भागै भूखा।
सोखौ पिलुवा पार सुरारू। फिरतिन गिनीयत रजुगारू ॥
कनयरि नेगडि और वसैंदू। रैंवजु गूगरु सैगरु तेंदू।
सह सोनौ जाईरी बहूता। और लीलि जिहि राचहि सूता ॥
आधाझारौ औ नकसौधी। सांट पमार धतूरौ महदीं।
जाख दूधगै और लभेगै। अतिघन किरौ करौंधा केरौ ॥
सबल बनै नारंगी मिलाऐ। पीठोनौ सागौन सुहाऐ।
दुर्धा पूरना अरु गोखुरुवा। नाहि नीव तरु सेतौ मरुवा ॥
बहुत चिहुरनी कौचामारी। दूजी और चिहुरनी कारी।
मिलै गिलोई औ घोदारा। ताके गुनई लहै को सारा ॥

बना हुआ था [५०१]। उसने उस सागर जैसे गम्भीर गहरे सरोवर को देखा जिसके जल में पवन के झकोरों से लहरें तरंगित हो रहीं थीं। उसके चारों ओर मलयगिरि के चंदन के वृक्ष लगे हुए थे, उनकी सुगन्ध में बादशाह खो सा गया [५०२]।

(सरोवर के किनारे के उपवन में) कुंद, मुचकुंद, मरुआ (दोना मरुआ), केवड़ा, केतकी, कल्हार (श्वेत कमल), गुल्लाला, माल सेवती (सफेद गुलाब), जंभीरी (एक प्रकार का नीबू), कदम, छुहारे [५०३], अत्यन्त पवित्र चम्पक तथा परिजात (हर शृंगार), कूजा (कुब्जक=मोतिया=वेला), जाही (चमेली की जाति का एक पुष्प=जाहि), जूही (यूथिका), कुंद, नेवारी, (आदि) पुष्पों की जातियां थीं। (नारायणदास) कवि कहता कि फूलों की इन जातियों की गणना कौन कर सकता है [५०४]।

(उस उपवन में) नीबू, जामुन, कैथ, कनेर, बेल, असल पाटल, स्वर्णपक्षी, दाख के वृक्षों के बीच वैविध्ययुक्त फुलवारी अत्यन्त शोभाशील थी [५०५]। सरोवर के किनारे अत्यन्त सघन सुन्दरता छाई हुई थी। वहां वृक्ष बहुत अधिक थे, उनकी गणना करना सम्भव नहीं है। लौंग, इलाइची (के पौदे) भी वहां थे। बादशाह ने सौरभयुक्त चन्दन वन को देखा [५०६][1]।

की मधमालती दोनों में ही रामसरोवर का विशद वर्णन है एवं उसके तीर पर उनकी कथाओं को प्रस्फुटित करने वाली घटनाएँ हुई हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने काम कथाओं के राम (रम् कर्तरि घञ् ण वा) सरोवर के तीर से 'काम' को हटाकर 'राम' की प्रस्थापना राम चरित मानस में की है।

१. नामगणना और वस्तुगणना की परम्परा के दर्शन सर्वप्रथम विष्णुदास में होते है। विष्णुदास ने महाभारत कथा (सन १६३५ ई०) के वनपर्व में पुष्पों और वृक्षों की भी लम्बी तालिका दी है:—

तब पांडव वैठे वन मांहा। ठां ठाँ तरवर गूडर छांहा।
कुसुमभार वहु परिमलु होई। तिहि बनु नगरु न सुमरै कोई॥
दीसहि वर पीपर ति पलासा। नीव कैमला गेता पासा।
महुवा आम सघन आमलियां। सरर खजूर फरै ते भलियां॥

की मछली मारने की बनसी की) कमची सोने की है और उसमें रेशम की डोरी लगी हुई है। प्रिय (वियोग) की बेचैनी दूर करने के लिए उसने बनसी हाथ में ली है [५०८]। उसने अपने शरीर के ऊपर अपने प्रियतम का वागा पहन रखा है और उसके साथ दस-बीस सखियाँ हैं। उसकी चाल मन्द (मध्यम) है तथा कमर (लंक) वरं के समान (पतली) है। उसका मुख ऐसा दीप्तिमान है मानो पूर्णचन्द्र का उदय हुआ हो [५०९]।

वाला (छिताई) के मुख रूपी चन्द्र के उदय के कारण (रात्रि आगमन समझ कर) चकवा का चकवी से विछोह हो गया। उस वाला के मुख से निर्मित चन्द्रमा के कारण अरुण कमलों की पँखुड़ियाँ बन्द हो गईं और भौंरे (कमलों को छोड़कर) सरोवर से चले गये[1] [५१०]।

वियोग के बीच (फंसी हुई उस वाला को) काम-दुख व्याप रहा है। (वास्तविक) दुख या तो विरहिणी को होता है या बैरागी को। प्रेमी से बिछुड़ी हुई चकवी के हृदय (अंतरि) में काला (करिल[2]) जल (सरिल=सलिल) (विष या अन्धकार) संचार कर गया [५११]। प्रेम के योग से मदन (की दावाग्नि) प्रज्वलित हुई जिससे काम रूपी पक्षी को शोक (कष्ट) हुआ। (इस अग्नि को प्रज्वलित करने में सहायक) कोकिल, चकई और मोर के समान ही वसन्त ऋतु तथा (सरोवर के) जल के झकोरे हुए [५१२]।

---

१. इस प्रसंग के समान ही चतुर्भुजदास निगम की मधुमालती में प्रसंग है:—

मालति आय सरोवर झंखी। चितवत विपति परे सब पंखी।
सखी सकल कै वदन विलोकै। मानहु चन्द चहूंदिसि धोखै॥

सोरठा

चकई भयौ विछोह अरुन कमल संपुट दियौ।
धरै चकोर सनेह देखि बदन छवि मालती॥
ससि देख्यौ कै वार रवि के ढिग फीकौ सदा;
मालति बदन निहार तेजहीन दिनकर भयौ॥
फूले कुमुद विसाल पंछी आश्रम कूं चले।
डरपन लागीं वान सखी सकल ढिग मालती॥

२. करिल केस विसहर विस भरे— जायसी ६२/४

इस सरोवर के किनारे छिताई भी पहुंची और वनसी (डालकर मछलियों का शिकार) खेलने लगी [५०७]। वह सरोवर महल के निकट ही है। वहाँ कपट रूप (वनावटी वेश) वनाए हुए बादशाह (छिताई को) देखने लगा। (छिताई

जिया और भाला वुक करियाँ। बेरि वना गुनि ह्वै चामिलियां।
तरवर फूट मरेखू होई। काटै व्याधि देई गुरु सोई॥
पीपर लौंग मिरच सपतिजियां। खुम्हो चिरहुल मलसिल असियां।
सैम करेछु कंधु कंदूरी। सैंमा सेंमि और बनचूरी॥
मैठी दुधी छिरहठा जानौ। करिहारी वरु नीम वखानौ।
चिन्तावर आथीवन पोई। ठेही सिरकद फूलै सोई॥
केऊ कंद ककोरनि वेली। सघन रूख ते चढ़ी करेली।
पथरसगा गठही के फन्दा। मौलसिरी रु सराहि नरिंदा॥
जाई जुही रु चम्पी खूमी। बहु कचनार सारसो बीजो।
नाईन पाडर सुरंग रिंदूरी। कैवै वेसरि कैमुक सूरी॥
वौरसिरी देखो धौरवना। वेलु निवारी वासी करना।
किदा त्योरिया माली मलिया। सरकुंड कनपरु अरु पापरिया॥
और कुसुम दीसहिं चहुपासा। थाकहि भमर मालती वासा।
और मूल कंद वन दीसा। सबै लोग ता वनइ सरीरा॥
कुरी चिलमिली [ ]। वन कुकरा सरखंडु सखचूरी।
तरवर मूल कंद हे जेते। वढ़इ कथा जो वरनौ जेतै॥
जितनौ वन सहदेव वखानौ। तितनो विस्नदास कवि जानौ।
गिर पाग जो ऊपर चाहै। सो पुनि आपुनि राउ सराहै॥

दोहरा

राई तिसीपर देखियो नन्दन वन कौ तूल।
कौरव सुखु तिहि वन भयौ देखे देवल मूल॥

विष्णुदास की वस्तुगणना की शैली को आगे जायसी ने पदमावत (सन १५४० ई०) में भी श्रद्धापूवक अपनाया है। वृक्ष तथा पुष्पों के वर्णन के लिए पदमावत ३४, ३५, ५६; १८७, १८८, ३७७, ४३२, तथा ४३४ (डॉ० वासुदेवशरण के पाठ के क्रमांक) दृष्टव्य है।

समीप मनोहर स्त्रियाँ दिखाई देती हैं। चारो ओर घनी फुलवारी है और सिर पर घड़े रखे स्त्रियां पानी भर रहीं हैं [५२०]।

अलाउद्दीन का मदनरेखा द्वारा पहिचाना जाना (१०७०-१०८६)

बादशाह यह सब चरित्र देखता रहा और मन में उस पर विचार करता रहा। उसे देखकर बादशाह को बहुत सुख हुआ। उसने गुलेल पकड़कर गोले निकाले [५२१]। बादशाह साध कर गोले छोड़ने लगा जिससे पक्षी उड़कर सरोवर के तीर पर आकर बैठने लगे। (बादशाह सदा सेवक द्वारा गोले लेने के अभ्यास के कारण गोला लेने के लिए) हाथ पीछे की ओर लौटा कर गोला मांगता है, परन्तु स्मरण आने पर (कि वह अकेला है और साथ में सेवक नहीं है) अपने कमर की फेंट से गोला निकालता है [५२२]। (इस प्रकार) जब दो चार गोले फेंके तब छिताई सोचने लगी कि कपट रूप धारण किये हुए यह कोई राजा (साहिब) है[1] [५२३]। उसने मदनरेखा को समझाकर (बादशाद को पहि-चानने के लिए) भेज दिया और स्वयं महल में चली गई।

मदनरेखा आँख बचाकर बादशाह के पास गई और जाकर पीछे खड़ी हो गई [५२४]। सरोवर में गोला मार कर वह पीछे की ओर हाथ कर गोला मांगने लगा, मानो उसको उसका खवास गोला देगा। (यह देखकर मदनरेखा को) विश्वास हो गया कि वह बादशाह ही है [५२५]। जब-जब बादशाह कंधे की ओर हाथ ले जाता, दासी मदनरेखा उसे गोला दे देती। गोले सरोवर में गिरते और जल-पक्षी अपने पंख संभाल कर उड़ने लगे [५२६]।

(इस प्रकार) सब पक्षी उड़ गये और शिकार समाप्त हो गई तब सुन्दरी मदनरेखा ने बादशाह की फेंट पकड़ ली। जब वह अन्तिम गोला फेंक रहा था तब दासी ने कहा [५२७]—

---

१. पीछे हाथ घुमाकर सेवक से गोला या तीर माँगने की आदत से राजा की पहिचान कराना इस युग के आख्यानों की एक कथायुक्ति है। पृथ्वीराज द्वारा छद्मवेश बनाकर संयोगिता के पास कन्नौज में जाने पर भी वह इसी प्रकार पहिचाना गया, ऐसा इस युग के कुछ आख्यानकाव्यों में उल्लेख है।

शिशिर ऋतु में सरोवर के किनारे चकोर और हंस मधुर स्वर करते हैं। (उससे छिताई को शीतलता नहीं मिलती, वरन्) उस विरहिणी का शरीर विरह (ताप) से और अधिक तपता है। कोयल (जब) मधुर स्वर में बोलती है (तब उसकी स्वरधारा ऐसी ज्ञात होती है) मानो सुन्दरी छिताई के नयनों से (अश्रुधारा) विगलित हो रही हो [५१३]। जब मस्त परेवा गम्भीर गुटर-गुटर ध्वनि करता है तब (छिताई को) काम की पीड़ा और अधिक व्याप्त हो जाती है। वह (अपनी विरह ज्वाला शांत करने के लिए) सरोवर के तीर पर भ्रमती फिरती है, परन्तु उसके शरीर में काम-व्यथा की लहरें बढ़ती ही जाती हैं [५१४]। सरोवर को देखकर उसका दुख अधिक हो गया क्योंकि (उसके मुखचन्द्र के कारण) चकवी को चकवा छोड़ गया (और चकवी भी वियोगिनी हो गई)। (वह अपने आप को कोसने लगी), मुझ पापिनी का जन्म ही क्यों हुआ, मुझे छोड़कर मेरा पति तो विदेश चला ही गया [५१५], मेरा मुँह देखते ही चकवी को भी वियोग हो गया। मेरे मुख को देखकर पक्षियों को भी क्रोध हो आता है। हे सखी मदनरेखा, सुन, मेरे ऊपर तो कामदेव की सेना ने आक्रमण कर दिया है [५१६]।

मुझे मदन के अस्त्रों की करारी चोट लगी है (और मैं उसी प्रकार मुरझा गई हूं जिस प्रकार) शीतकाल के जल में कमल की पंखुड़ियाँ (कुम्हला जाती हैं)। मेरा कन्त सूर्य के समान है (वह जब मेरे पास होता है तब उसके ताप से वियोग के शीत का प्रभाव नष्ट हो जाता है और मैं प्रफुल्लित रहती हूं। परन्तु जब वह मुझ से दूर है तब वियोग व्यथा के) शीत को अब कौन मिटाएगा [५१७]। हे मदन, जब प्रियतम रूपी वसन्त (फाग = फलगु = वसन्त) आएगा तब मैं तेरी (वियोग में आक्रमण करने वाली) सेना को देख लूंगी।

वह सुन्दरी अपने शरीर की तपन भुलाने के लिए पुनः सरोवर के तीर पर (मछली का शिकार) खेलने लगती है [५१८] परन्तु (उसे पुनः) मदन का ज्वर (ताप) व्याप्त हो गया। पक्षियों की काकली सुनकर उसका अंतरग (हृदय) भी कांप उठा (जिस प्रकार शीतज्वर में कांपता है)।

सरोवर में पक्षी जोड़ियाँ बनाकर निवास करते हैं और अनेक प्रकार से आनन्द करते हैं [५१९]। सरोवर के बीच हंस शब्द करते हैं और किनारे के

था (जिसके कारण) राजा नुसरतखां से जाकर मिला था। दासी ने कहा, राजा तीन वर्ष तक तुम्हारी सेवा करता रहा [५३७]। उस प्रीति को भी तुमने चित्त में (स्मरण) न रखा। (यह ठीक ही है कि) अन्त में राजा कभी मित्र नहीं होता और जब भी अपकार (बुरी) करने की दृष्टि करता है, न वह सेवा स्मरण रखता है न प्रीति [५३८]।

सुल्तान ने कहा—

हे वेखवर (अबोध) सुन्दरी, मैं बादशाह नहीं हूं। तू मन में विचार कर देख। मैं तो राघवचेतन का, जो राजा के पास राजमहल में गया है, सेवक हूं [५३९]। ऐसे रूप में बादशाह, जिसे सब संसार का स्वामी कहते हैं, क्यों होगा।

तब दासी ने हँसकर बादशाह से कहा, अब हमारे राजा से ही यह झगड़ा कर लेना [५४०]।

अलाउद्दीन का अनुताप (१११०-११२३)

(दासी के ये) वचन सुनते ही (बादशाह का) मुँह नीचा हो गया, अंगों में पसीना आ गया और उसे बहुत दुख हुआ। बादशाह मन में बहुत पछताने लगा। वह नीचा सिर किये सशंकित होकर रह गया [५४१]। उसका मलिन मुख ऐसा दिखता था मानो ग्रहण के समय राहु ने चन्द्रमा को दबा लिया हो।

(वह मन में कहने लगा) मैंने राघवचेतन का कहना न माना और (छिताई के) रूप रूपी दीपक पर पतंगा बन कर जल मरा [५४२]। और मुझे संसार में यह गाली मिलेगी कि (मैं) पराई स्त्री के पीछे पड़ा रहा। अब दिल्ली का राज्य डूब जाएगा और इस (देवगिरि) दुर्ग में मेरी अकारण मृत्यु होगी [५४३]।

बादशाह का मुँह नीचे की ओर झुका रह गया (और वह सोचने लगा कि) इस दासी ने बहुत कष्ट दायक बात कही है।

उसी समय बादशाह यह विचार करने लगा कि इस दासी से मेरा उद्धार कैसे हो [५४४]। इस समय मेरा हाथ (पत्थर की) शिला के नीचे दब गया है, इसे किस युक्ति से निकालूं। आज सिंह सियार के पंजे में फँस गया है। आज मस्त हाथी की मस्ती उतर गई है [५४५]।

यहां तुम्हारा खवास कहाँ है ? गोले किससे माँगते हो ?

(यह सुनकर) बादशाह घबरा (चकरा) गया और कहने लगा, हे खुदा, तूने मेरी बुद्धि यहां कहां हरण करली [५२८]।

मदनरेखा द्वारा अलाउद्दीन की भर्त्सना (१९८६–११०९)

इस भूल के कारण बादशाह मन में दुखी हो गया और उसके मुख पर धूल सी छा गई। (मदनरेखा सोचने लगी कि) जिसके डर से समस्त संसार डरता है, जिसके डर से समस्त राजा-राव डरते हैं [५२९], जिसने सब भूमिपतियों और रावों को जीत लिया, जिसने कठिन दुर्गों को विजित कर लिया और जिसके पीछे नौ लाख घोड़ों (किकान=केकान देश के घोड़े) की सेना चलती है उसे मैंने आज अच्छी तरह (दृढ़ता से) पकड़ लिया है [५३०]। इसने अपने प्रताप से समस्त जगत जीत लिया है और सब राजाओं को यह तिनके के समान गिनता है। अब राजा (रामदेव) का सब काम बन गया। इसके पकड़ लेने से सब संकट (व्यामोह) भाग जाएँगे [५३१]।

(मदनरेखा ने कहा) तू दिल्लीपति जगत का स्वामी है। (अब छिपाए मत और) अपना नाम शीघ्र बतला। तूने हमारे गढ़ को (नष्ट करने का) उपाय किया है (अतएव) तुझे पकड़ कर राजा के पास ले जाऊँगी [५३२]। तेरे भय से राजकुमारी भयभीत हुई और तुमने अयोग्य रीति से हमारी अंतःभूमि में प्रवेश किया। (तुम्हारे कारण ही) समरसिंह को द्वारसमुद्र की अथाह सेना की सहायता लेने के लिए जाना पड़ा [५३३]। तुम्हारे आने से हमें इतने दुख उठाने पड़े हैं। जो दैव सहन कराता है वह सहना ही पड़ता है। अब सबका काम सरल (सुखपूर्ण) हो गया और अब राजा रामदेव सुख की नीद सो सकेगा [५३४]।

युवती (मदनरेखा) ने कहा कि हमें तुम्हारे (देवगिरि) आने से इतने कष्ट सहने पड़े। हे बादशाह, सुनो, तुमने जो काम किया है वह गढ़ों को जीतने वाले पुरुषों के उपयुक्त (जोर=जोड=समान) नहीं है [५३५]। राजा रामदेव सदा तुम्हारी चित्त लगाकर सेवा करता रहा है और मन में तुम्हारा नाम स्मरण करता है, (यद्यपि) जिस राजा के पास देवगिरि जैसा (सुदृढ़) दुर्ग हो, उसे किसी की सेवा करना आवश्यक न था [५३६]। (वह तो) मंत्रियों ने परामर्श दिया

(बादशाह ने अपने इन अपकारों की क्षतिपूर्ति के स्वरूप) खुदा की साक्षी देकर लिखतम लिखी और वचन दिया (कि क्षतिपूर्ति का) धन सवेरे (होते) ही (गढ़ के ऊपर) पहुंचा दूंगा [५५४]। (बादशाह ने लिखतम के) ऊपर दासी का नाम लिखा और वह उसके हाथ में सौंप दी। मदनरेखा के हाथ में कागद देकर बादशाह ने अपने सिर का (प्राणों का) उद्धार किया [५५५]।

मदनरेखा बोली, हे बादशाह सुनो, मुझे यह वचन दृढ़ता पूर्वक दे जाओ कि तुम देवगिरि के देश को छोड़ कर चले जाओगे जिससे राजा रामदेव की जय-जयकार हो [५५६]। यदि तू धर्म (दीन) के साथ तथा धर्मग्रन्थ (मुसाफ) को छूकर वचन दे तो मैं तुझे छोड़ दूं।

सुल्तान ने कहा—

यदि मेरा कहना झूठ सिद्ध हो तो पीछे तू जो तेरी इच्छा हो सो कर लेना [५५७]। मुझे (देवगिरि) देश की कोई आवश्यकता नहीं थी और मुझे राजा रामदेव भी अच्छा लगता है। मेरे हृदय में तो छिताई बहुत अधिक बस गई है जिसका चित्र चित्रकार ने बना कर मुझे दिखाया था [५५८]। मदनरेखा, मैं तुझसे विनय करता हूं, तू जो भी कहेगी मैं वही करूंगा, सवेरा होते ही मैं कूच कर दूंगा। (सवेरे रुक कर यदि) पान भी खाऊँ तो वह भी मुझे सूअर खाने के समान हराम हो [५५९]।

(यह सुन कर) मदनरेखा ने बादशाह की फेंट छोड़दी और राजमहल में चली गई।

बादशाह वहाँ से चलकर कलारी की दूकान में बैठ गया और यहाँ राघव चेतन की बाट देखने लगा [५६०]।

राघवचेतन का संधि प्रस्ताव (११५०-११६९)

(उधर) राघवचेतन राजमहल पहुंचा। राजा (रामदेव) ने उठकर उसे बाँहों में भर लिया [५६१]।

स्वयं आधे भाग में हट कर उसे आधे सिंहासन पर बैठाया और बहुत विनय की। बादशाह ने जो भेंटें (रसाल = इरसाल = कर) भेजी थीं वे (राघव-चेतन ने) राजा के सामने रखदीं [५६२]।

(राजा ने पूछा) हे राघव, सेना के समाचार सुनाओ। राजा ने बादशाह

पराई स्त्री के लिए पराए घर में जो लोग झगड़ा करते हैं वे अपने जन्म, प्राण और गौरव को गँवाते हैं और उन्हें दासी की गालियाँ सुनना पड़ती हैं [५४६]।

जो अवसर के अनुसार आचरण एवं अपनी बुद्धि का प्रयोग करते हैं उनके कार्य सिद्ध होते हैं, जिस प्रकार हनुमान ने (सीता का) समाचार प्राप्त किया था [५४७]।

अलाउद्दीन द्वारा अनुनय विनय करने तथा घेरा उठाने और धन देकर चले जाने का वचन देकर दासी से छुटकारा पाना (११२४–११४६)

बादशाह ने कहा—

मैं संसार का गौरव (सिरि=श्री=गौरव) बादशाह नरपति हूं। मैंने दुर्ग देखने के हेतु (यहां) प्रवेश किया है। मदनरेखा, मैं तुझसे विनय करता हूं, हे सुन्दरी, तू मुझे अपनी शरण में ले [५४८]। मैं ऐसा नरपति बादशाह हूं कि मैंने अनेक गढ़ ध्वस्त किये हैं, अनेक दुर्ग और अच्छे प्रदेश जीते हैं, मैं अब तेरे वश में पड़ गया हूं, जैसा तेरे मन में आए मेरे साथ व्यवहार कर [५४९]।

(बादशाह ने दासी से कहा) अपने-अपने देश में सभी लड़ाई करते हैं, परन्तु यदि पैज बाँध-कर (संभारि) कोई अगम और दुर्लभ पर्वत चढ़ने लगे तब वह क्षीण (खखरि=खंखड़) हो जाता है [५५०]।

मैं अब दूसरे की दाब (पिरहि=पेरने में) में पड़ गया हूं, (अपनी दशा का) मुझसे वर्णन नहीं किया जाता। हे मदनरेखा, यदि तू मुझे छोड़ दे (मेलहि) तो मैं वचन देता हूं कि तेरा यह गढ़ मैं छोड़ दूंगा [५५१]।

तब सुन्दरी (मदनरेखा) यह विचार करने लगी कि अब मैं संसार में अपना नाम कर लूंगी, मैं दिल्ली नरेश को मुक्त कर दूंगी और मेरे इस कार्य से (मेरे) सब देश (देवगिरि) का उद्धार हो जाएगा [५५२]। (परन्तु) यदि मैं इसे पकड़ कर राजा के पास ले जाऊंगी तो मेरा इस युग (कलि) में नाम नहीं चलेगा (मेरे हाथ से श्रेय चला जाएगा, वह राजा को मिलेगा)। (मदनरेखा ने बादशाह से कहा) मैं दासी हूं, तू नरपति बादशाह है, तू (यह देश छोड़कर) चला जा और अपना मुँह काला कर [५५३]। मदनरेखा ने बादशाह के दोषों (कोर) की गणना की और वे उसे अनेक (बहत्तर) ज्ञात हुए।

दिया गया हो, मानो भीम आवरी (?) खेल रहा हो। राजा ने जब राघव चेतन की बात सुनी, उसे अत्यन्त क्रोध के कारण पसीना आगया [५७२]। मानो कौरव-पांडव के युद्ध में गर्जन करता हुआ कर्ण आगया, (अथवा) मानो जरासिन्धु क्रोधित होकर मथुरा नगरी को उजाड़ने के लिये तत्पर हुआ [५७३], अथवा ऐसा ज्ञात हुआ, मानो आकाश में बादल गरज उठे हों। (इस प्रकार राजा ने) क्रुद्ध होकर कमान तान ली। कमान हाथ में लेकर राजा ने कहा कि (मैंने कुछ नहीं किया यदि) तेरे हृदय में घाव नहीं किया [५७४]। दुष्ट तूने ऐसे वचन कहे। (यह कहकर राजा ने) तीर का निशाना साध कर हाथ से कमान खींची और कहा, हे ढीठ, मैं तुझे मारे डालता हूं, तु मुझ से ऐसे वचन कैसे कहता है [५७५]। मैं यदि अब पकड़ कर तेरे कान कटवा डालूं तो तेरा सुल्तान मेरा क्या कर लेगा ? राजा ने कहा कि यदि वह सात वर्ष भी गढ़ को घेरे रहे तो भी मेरा कुछ नहीं हो सकता [५७६]।

राघवचेतन बोला, उधर मुझे बादशाह मार डालने पर तुला है और, हे राजा, इधर तू मार रहा है।

राघवचेतन मन में सोचने लगा कि न मैं (हिन्दुओं का) योगी ही रह सका और न (तुर्कों का) दरवेश ही रह सका (अर्थात् न इधर का रहा न उधर का रहा) [५७७]।

जैता और जाजे ने बीच बचाव किया (और कहा), राजा, ध्यान से सुनिए, दूत को (बीच में चपेट कर) नहीं मारा जाता। वैरीसाल ने उठकर राजा का हाथ पकड़ लिया और कहा, हे राजा, दूत को मारा नहीं जाता [५७८]। मैंने यह सुना है तथा पुराणों में भी देखा है कि दूत (कड़वे) वचन (बोल) बोलते रहे हैं। हे राजा, दूत को शीघ्र लौटा दो, बादशाह का दूत अवध्य है [५७९]।

राजा क्रोधवन्त हुआ और कहा (इसे) शीघ्र (गढ़ से) उतार दो, देर मत करो।

राघवचेतन बादशाह सहित (गढ़ से नीचे) उतर आया और गढ़ के ऊपर राहु और केतु (दोनों दूतियां) रह गईं [५८०]।

के कुशल-वृत्त पूछे । यह भी पूछा (पहिलइ) कि युद्ध में कौन कौन मारे गये और तुम्हारा आना किस काम से हुआ [५६३] । तुम ये भेंटें क्यों लाए हो और महीपति बादशाह ने तुम्हें किस हेतु भेजा है ।

राघव ने बादशाह के (बादशाह की ओर से) शब्द कहे और समस्त सभा ने बहुत (अमोल ?) गंभीरता पूर्वक सुना [५६४] । (राघवचेतन ने बादशाह की ओर से कहा) जो भी उमराव गढ़ तोड़ने के लिए आगे आए वे वे सेना समेत मारे गये । मेरी और तेरी (बादशाह और राजा रामदेव की) बहुत प्रीति बढ़ी थी; परन्तु तूने मुझे (केवल) दो दासियाँ (ही) भेंट में दीं [५६५] । इस क्रोध के कारण मैंने तेरा गढ़ घेर लिया । (बादशाह ने कहा है कि) इसका दोष मुझे नहीं है । (राघवचेतन ने कहा कि बादशाह) तुम्हारा सब द्रव्य माँग रहा है और (युद्ध के) गहरे नगाड़े बजा रहा है [५६६] । हे राजा, यदि तुम मुझ से पूछते हो तो मैं तुम्हें बादशाह (साहिब) का संदेश समझाता हूं । राजदूत यदि सत्य न बोले तो वह कुम्भीपाक नरक में गिरता है [५६७] । मैं ब्राह्मण हूं और तू (ब्राह्मणों को आश्रय देने वाला) राजा है । (यह संयोग है कि तेरे साथ रहने के स्थान पर) वचनबद्ध हो जाने के कारण मैं बादशाह की सेवा कर रहा हूं । हे राजा, यहाँ (देवगिरि) में तुर्कों को क्यों प्रवेश करने देते हो । गाढे (कठिन) समय में ब्राह्मण ही काम साधते हैं [५६८], (अतः मैं तुम्हें सलाह देता हूं) । मैंने बादशाह के वचन, जैसे मेरी स्मृति (सिर) में थे कह दिये । (राजदूत को) यदि मारो तो उसे बचाने के लिए कोई (उसके साथ) नहीं होता । (फिर भी, प्राण-भय होते हुए भी) राजदूत सदा सत्य ही कहता है [५६९] । बादशाह तुम्हारा दक्षिण देश का राज्य माँगता है, सजे हुए सिंघली हाथी माँगता है, तू (बादशाह को) मणि, सोना, घोड़े, मदमाते हाथी दे ताकि तेरा रंग (सुखमय अस्तित्व) बना रहे [५७०] । अपना गढ़ छोड़ जा और मुझे यह वचन दे कि अपनी कन्या भी (बादशाह को) दे देगा । तेरी लज्जा (पत) अब इसी प्रकार बच सकती है ।

रामदेव का क्रोधित होना तथा सभासदों द्वारा राघवचेतन की प्राण रक्षा (११७०—११८८)

यह बात सुनते ही राजा (रामदेव) क्रोधित हुआ, मानो वासुकि (कालिय) नाग के गर्व को देखकर कृष्ण कुपित हुए हों [५७१], मानो सिंघ के ढेला मार

अपनी बात कहने लगी [५८९]। (उसने कहा) आज बादशाह गढ़ पर चढ़ कर आया था। दासी ने कहा कि हुआ यह कि वह गरीबों के से वस्त्र पहने मलिन वेश में था [५९०]। वह हाथ में गिलोल और गोले लेकर सरोवर के बहुत से पक्षियों को मार रहा था, पीछे की ओर हाथकर वह गोले माँगता था, इससे मैंने मन में विचार कर (पहचान लिया कि वह बादशाह था) [५९१]। मैंने अपने हाथ से उसकी पहुंची (कलाई) मरोड़ दी और उस पर बहत्तर करोड़ दंड कर दिया। उसने खुदा की साक्षी देकर मुझे पत्र लिखकर दिया कि सवेरे होते ही (दंड का) धन मेरे (गढ़ पर) चढ़ा देगा [५९२]। मैंने उसे वचनबद्ध कर लिया और बादशाह ने पत्र लिख कर मुझे दे दिया। (उसने) राजा के हाथ में पत्र दे दिया (और कहा), हे नरनाथ, आप स्वयं इसे पढ़ कर देखलें [५९३]। मैंने उसका बहुत अपमान किया, मैं झूठ नहीं कह रही, मैं राजा की आन पर कहती हूं।

(दासी की यह बात सुनकर सभा के) सब लोगों ने कहा, इसे मारो, इसे मारो! इस सुन्दरी को किसी छैला ने छल लिया है [५९४]। वह पृथ्वी का गौरव बादशाह नरेश है, वह गरीब का वेश क्यों बनाएगा?

(सभासदों में से) कुछ सयाने लोग राजा से कहने लगे कि दासी सच्ची बात कह रही है [५९५]।

मदनरेखा की सत्यता की परीक्षा (१२१९-१२३८)

(राजा ने दासी से कहा) यदि तूने बादशाह पकड़ लिया था, तब वह तेरी बात पर विचार करेगा। सोचकर दासी ने राजा से कहा कि (मेरी बात पर विचार करके ही) बादशाह सेना और सामान (सभारा-समुहाउ) लेकर चल दिया है [५९६]। तब राजा बोला, तू शीघ्र ही सेना को कूच करवा दे जिससे गढ़ को लगा हुआ ग्रहण विमोचित हो। यदि आज तू शीघ्र ही सेना हटवा देगी तो मैं तुझे गढ़ का आधा राज्य दे दूंगा [५९७]।

कोट पर ऊँचे पर एक बैठक बनी हुई थी, उस आवास के ऊपर (मदनरेखा) चढ़ गई। मदनरेखा नारी छज्जे पर चढ़ गई और पुकार कर बादशाह से कहने लगी [५९८], हे बादशाह, मैं दासी बोल रही हूं, तुम देश छोड़ जाओ और मुँह काला करो, देश को छोड़ कर लोगों को छुटकारा दो। हे बादशाह, अपने वचन का पालन करो [५९९], अपने शरीर पर काला बाना पहन लो,

अलाउद्दीन और राघवचेतन का लौटना और गढ़ की बातें करना (११८६–११९६)

राघवचेतन और बादशाह इकट्ठे हुए और गढ़ के दुर्ग से उतर कर डेरे पर पहुंचे। बादशाह राघवचेतन से छिताई का हाल पूछने लगा। राघव ने सब व्यवहार (आपबीती) सुनाया [५८१]।

बादशाह ने दासी की बात सुनाई। राघवचेतन दांतों तले जीभ दबाकर रह गया। (उसने कहा) तुम मेरी बात मन में नहीं रखते और (दीप-शिखा पर) पतंगे बने फिरते हो, किसी दिन मरोगे [५८२]। यदि रोकता हूं तो तुम मुझे ही मारने को उद्यत होते हो, इसलिये तुम्हारे कहने को नहीं टालता। (यदि तुम पकड़े जाते तो) तुम्हे कोई बुरा न कहता, मुझे अपयश पक्का मिलता [५८३]। सब कोई यही बात कहते कि राघवचेतन (बादशाह को) अपने साथ (गढ़ पर) चढ़ा ले गया और वहाँ चुगली करके बादशाह को पकड़वा दिया, सभी ऐसा मन में सोचते [५८४]। राघव ने कहा, बहुत बुरी घटना हुई थी, इस प्रकार और कोई बच कर नहीं आ सकता था। (यदि तुम पकड़े जाते तो) मुझे बहुत अपयश मिलता और तुम्हारा राज्य डूब जाता [५८५], अब दानपुन्य करो, तुम्हारा नया जन्म हुआ है।

(यह सुन कर) बादशाह ने आनन्द बधाए करवाए।

मदनरेखा द्वारा अलाउद्दीन के आने का समाचार कहना (१२००–१२१८)

(गढ़ के ऊपर) गंभीर रणवाद्य घुमड़ने लगे, बहुत बाजे के साथ पंचवाद्यों (का) शब्द होने लगा [५८६]। जब दूत (राघवचेतन) गढ़ के ऊपर से नीचे उतर गया तब राजा रामदेव के मन को सुख मिल सका। राजा छत्र धारण कर सुशोभित होकर बैठा। (बादशाह की सेना की ओर देखकर राजा ने कहा) (आज तुर्क सेना) बहुत विचलित (कहराउ=कहलाउ=कहलाना=अकुलाना, घबराना, विचलित) दिखाई दे रही है [५८७]।

पीपा प्रधान ने कहा कि मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि (सेना) कूच करेगी। लोग अपना सामान (समुहाउ) बाँध रहे हैं, इस कारण सेना विचलित हो रही है [५८८]।

इसी बीच (वहाँ) दासी (मदनरेखा) ने प्रवेश किया और (वह) जाकर राजा के पास खड़ी हो गई। उसने हाथ जोड़कर प्रणाम (जुहार) किया और

बादशाह ने आज्ञा देकर (बेले) सब सेना को लौटाया और उसे गढ़ को चारों ओर से घेर कर ठहरा दिया [६०८]। तमक कर उसने गढ़ को घिरवा दिया और व्यग्र होकर वह तलहटी में घूमने लगा। बादशाह की सब प्रवृत्तियों से क्रोध झलकने लगा। चारों ओर से चारों दिशाओं में सुरंगें चलने लगीं [६०९]। स्थान (गढ़) निःशेष रूप से (निर्गन्ध) टूटने लगा (धरती में समाने लगा)। कमानों की नालें ऊपर की ओर करदी गईं। उनसे मीर लोग गुर्जों में गोले मारने लगे मानो आकाश में गम्भीर घन गर्जना कर रहे हों [६१०]। (गढ़ का) कोट खरहरा कर भूमि पर गिरने लगा। उसके (मलवे) को पठान (सैनिक) थोड़ी देर में ही हटाकर साफ करने लगे। इधर-उधर दोनों ओर से चारों ओर मार होने लगी। दोनों नरेश (साहिव) क्रुद्ध हुए (लड़ रहे हैं) [६११]।

मुगल (सैनिक) गढ़ पर उसी प्रकार चढ़ने लगे जिस प्रकार वानर सेना लंका पर चढ़ी थी। वे मन में मरने का डर नहीं लाते। गढ़ के नीचे पत्थरों (दंतु=दांत=पत्थर) की दुर्गम ओट बनी है। जब कोट खरहरा कर गिरता है तब (उसके मलवे की चोट) बहुतों को मार डालती है [६१२]। (ऊपर से) असह्य तीर चलाए जा रहे हैं, जिनकी (मार के सामने) बादशाह के सवार टिक नहीं पाते। (ऊपर से) गरम तेल छिड़का जा रहा है। (यह देख देख कर) बादशाह और अधिक क्रोधित होता है [६१३]। नीचे से और अधिक (तीरों की मार होती है जिसके कारण) गढ़ के ऊपर कोई हाथ भी ऊंचा नहीं कर सकता, (हाथ ऊपर उठते ही) उसे तीरों से वेध कर नष्ट (अकाथा=कथा हीन) कर दिया जाता है।

(इस प्रकार का भीषण) आक्रमण देखकर पीपा परगट्टी को मनमें बहुत लज्जा उत्पन्न हुई [६१४]। वह सामने बढ़कर बादशाह से लड़ने लगा और अनेकों को मार कर युद्ध करता हुआ उसका सिर रहित शरीर (धड़) गिर पड़ा।

उसकी मृत्यु पर राजा ने बहुत दुख किया; मैंने स्वयं मृत्यु बुलाई है [६१५], स्वयं मैंने अपने हाथ में अंगार रखा है, (उसके कुफल को) संसार में कौन मिटा सकता है।

रत्नरंग कवि की प्रस्तावना (१२६०–१२६२)

रत्नरंग कहता है—

रत्नरंग ने कविजन (नारायणदास) से ज्ञान प्राप्त किया है। मेरे उन स्वामी

काले घोड़े पर सवार हो जाओ और सिर पर काला छत्र धारण करो। तुमने गढ़ में मुझे जो वचन दिया था उसे हृदय में धारण करो [६००]।

तब (अपने वचन का) मन में स्मरण कर सुल्तान कहने लगा, अब में अपना वचन पालन (प्रमाणित) करूँगा। राजा हरिश्चन्द्र ने वचन दिया था, उसके पालन करने के लिए उसने नीच के घर रह कर उसका पानी भरा था [६०१] और वचन पालन के हेतु बलि पाताल गया था, तथा शाह कहता है कि इसी प्रकार मैं (वचन पालन में) कूच करूँगा। (वचन पालन में) कर्ण ने अपना कवच इन्द्र को दे दिया था और वचन के शब्दों के कारण ही शेषनाग पृथिवी धारण किये हुए हैं [६०२]।

सवेरा होने पर बादशाह ने रणवाद्य नहीं बजवाए और अपना वचन प्रमाणित किया। उसने अपने (हरावल के) सैनिक तथा सेवकों को विदा किया और बहुसंख्यक ऊँट तथा खच्चरों (पर सामान) लदवाया [६०३]। (हाथियों पर) अम्वारियाँ डालकर हौदे कसे गये और इस प्रकार सेना का अग्रभाग चलने लगा। (बादशाह ने) (दण्ड के धन के साथ) कोषाध्यक्ष (बदरा; बदर = हिसाब-किताब, बदरा = हिसाब किताब रखने वाला) दुर्ग के ऊपर चढ़ा दिया और (धन देने के वचन का) अपना पत्र मँगा लिया [६०४]।

(यह देख कर) गढ़ पर दासी को सब भला कहने लगे। बादशाह पूंजी खोए हुए व्यापारी के समान चलने लगा।

दुर्भाग्य ने पीपा (प्रधान) की बुद्धि भ्रष्ट करदी और उसने कहा कि दासी ने अपनी बुद्धि की बात झूठी फैला दी है [६०५]।

मदनरेखा के कहने पर अलाउद्दीन का पुनः आक्रमण (१२३९-१२५९)

पीपा परिग्रही ने कहा कि मैं तो राजा आपसे प्रारम्भ से ही कह रहा हूं। दासी के कहने से बादशाह घर लौट जाएगा ऐसी बात पर, हे राजा, आप विश्वास कर सकते हैं? [६०६] (पीपा ने दासी से कहा), हे दासी, यदि तू वास्तव में चतुरसुजान है तब सुल्तान को पुनः वापिस लौटा कर पड़ाव डलवा दे।

छज्जे पर बैठकर मदनरेखा बोलने लगी और बादशाह ने लगाम थाम कर उसकी बात सुनी [६०७]। (मदनरेखा ने कहा) यदि मेरे और तेरे बीच के वचन प्रामाणिक हैं तो हे सुल्तान, तू गढ़ को चारों ओर से घेरले।

हम भांवर पड़ते ही विधवा हो गई थीं। हमने सद्गुरु से दीक्षा ग्रहण की है, जगन्नाथपुरी (के समुद्र में) और गोदावरी में स्नान किया है, और अधिक बढ़ा कर क्या कहें [६२४], हम पवित्र होकर परमानन्द हो गई हैं (और अब) सेतुबन्ध रामेश्वर जा रही हैं। हमने तेरा (भक्ति)भाव सुना इस कारण तेरे स्थान पर आई हैं [६२५]।

यह सुनकर छिताई ने कहा, आज आपने मेरे स्थान (ठौर=घर) को पवित्र किया है।

दूती ने कहा—

अब तू मुझसे अपना समाचार कह। तुझ जैसी स्त्री संसार में दूसरी नहीं देखी [६२६]। तू बहुत दुबली तथा चिन्तित दिखाई दे रही है, तुझे किस बात की पीड़ा व्याप्त हुई है। तू न पान खाती है न सिर धोती है, तेरे हृदय में क्या दुख है [६२७]।

छिताई ने कहा—

मुझे अपने पति के वियोग का दुख है और मुझ पर) पिता की मर्यादा का भार है। यह गढ़ मेरे कारण ही घिरा हुआ है। मेरा पति मुझे छोड़ कर विदेश चला गया है, अतएव मुझे बहुत व्याकुलता है [६२८]।

(दूती ने कहा) हे मृगनयनी, तू विचार करके देख। यौवन के फल को जुए (के दाव) में हारना ठीक नहीं। यौवन एक रात के पाहुने के समान है (रात बीतते ही चला जाएगा और) उसके चले जाने पर मूढ़ व्यक्ति (जो उसका उपभोग नहीं करते) पीछे पछताते रह जाते हैं[1] [६२९]। पेड़ काटने पर पुनः पल्लवित हो जाता है, सरोवर सूख जाने पर पुनः जल पूरित हो जाता है, परन्तु, सयाने लोग ऐसा कहते हैं कि यौवन यदि चला गया तो वह लौटकर नहीं आता [६३०]। सम्पत्ति और विपत्ति तो आती-जाती रहती है, ये सब कर्म फलों के अनुसार मिलते हैं, परन्तु, यौवन रूपी धन को पाकर जो उसका सुख नहीं लेते वे मूर्ख और गँवार हैं [६३१]।

---

१. तुलना कीजिए मैनासत की पंक्तियां—

ए बोलीजै धाय, साधन जोबन पाहुनो।
मान बिहूनो जाय, पछतावो पाछें रहै॥ (३७४-३७५)

(नाथ=गुरु=नारायणदास) ने बहुत विचार पूर्वक कथा (समौ=समय=कथा[१]) का निर्माण किया है [६१६]। (मेरे वे गुरु) नारायणदास गुणियों में (श्रेष्ठ) गुणी हैं। (उनकी कृति में) रत्न का प्रकाश है। (उस आख्यान में मुझ) रत्नरंग ने (जहाँ कथा क्रमबद्ध नहीं थी उन) त्रुटित (स्थानों) को मिला दिया है। इस कथा को जिसने भी सुना उसे यह बहुत रुचिकर ज्ञात हुई [६१७]।

दूतियों का छिताई से मिलना (१२६३–१२६४)

कवि नारायणदास कहता है—

(उधर) दोनों दूतियां राजमहल गईं और द्वार पर जाकर खड़ी हो गईं। उनने छिताई की कुशल पूछी। प्रतिहार ने कहा कि उसने रास (नृत्य) का समारोह किया है [६१८]। दूतियां महल के भीतर गईं। राजकुमारी ने उन्हें अपने पास बुला लिया। वे कलाई में पहुँची पहनी हुई थीं और उनके हाथ में कमण्डल था। दोनों दूतियां साथ-साथ चलीं [६१९]। आगे मसवासी का रूप धारण करने वाली दूती हो गई और भीतर जाकर उसने छिताई के कुशल-वृत्त पूछे। वे मसवासी हैं यह जानकर उसने (छिताई ने) उन्हें बुला लिया और आसन देकर पास बैठा लिया [६२०]। उनके ललाट पर वैष्णवी (भगौती=भगवती=भागवत) टीका लगा हुआ है, हाथ में सुमिरनी है और गले में जपमाला है। राम नाम लिखी हुई टोपी सिर पर है। इस वेश में (दूतियों ने) हाथ में तुलसी दल लेकर (छिताई को) आशीर्वाद दिया [६२१]।

छिताई ने कहा—

हे तपोवन, अपने समाचार सुनाओ। तुमने कौन-कौन से तीर्थों की यात्रा की है।

दूती ने कहा—

मकर के समय हमने प्रयाग में व्रत किया, गया जाकर अपने पुरखों को पिण्ड दान किया [६२२], बदरीनारायण, वाराणसी और नैमिषारण्य की यात्रा की है। काशीवास कर हमने केदारनाथ की यात्रा की। छह मास हम द्वारकापुरी रह आई हैं, और (इस प्रकार) हमने राम की दृढ़ भक्ति प्राप्त की है [६२३]।

---

१. आगे को समयो है नीको—चतुर्भुजदास निगम, मधुमालती।

पर वन में शिव का मेला होता है। वहाँ छिताई नारी भी जाती हैं। वहाँ वह तुम्हें मिल जाएगी [६४०]।

रामदेव के बारी का विश्वासघात और अलाउद्दीन को छिताई का पता बतलाना (१३०६—१३१८)

राजा रामदेव का एक बारी था। उसने बड़ी नीचता का काम किया। वह वहाँ आकर पहुँचा जहाँ अलाउद्दीन सभा में बैठा था [६४१]। उसने माथा झुकाकर प्रणाम किया और कहा, मैं आपसे ऐसी बात कहूंगा जो आपके हृदय में घर कर जाएगी। वह चुगली खाने लगा और कहने लगा कि मेरी बात सुनो, यदि आपको छिताई प्राप्त करने की इच्छा हैं [६४२] तो दक्षिण दिशा के परकोटे के द्वार पर जाओ। उस दुष्ट ने विनय कर के कहा कि वहां शंकर की मूर्ति है और उसकी पूजा करने के लिए छिताई आती है [६४३]। वहां एक प्रहर तक दृढ़ एकचित्त होकर अच्छे मन से वह शिव-पूजा करती है। सबेरा होते ही उस परकोटे से अड़ जाओ। मेरी बात सद्भावना पूर्वक सुनो, तुम्हें छिताई प्राप्त हो जाएगी [६४४]।

बादशाह ने उसे पोशाक भेट की। बारी यह बात समझा कर चला गया।

पौ फटी और सवेरा हो गया।

बादशाह ने क्रोध पूर्वक नगाडे बजवाए [६४५]।

छिताई का शिव-पूजन को जाना (१३१९–१३३४)

(उधर) उसी समय छिताई ने सखियों को बुलाया और उन नारियों सहित शिव की पूजा के लिए चली। (छिताई) सखियों के बीच ऐसे प्रमाण (पुमान) दिखने लगी जैसे तारों के बीच चन्द्रमा दिखाई देता है [६४६]। उसने चम्पक पुष्प के रंग का चीर पहना और उसकी माँग मोतियों की पंक्ति जैसी चमकने लगी, उसके चंचल नेत्र बड़े-बड़े हैं और गले में मोतियों की माला पड़ी हुई है [६४७]। उसके अपार रूप का वर्णन कौन कर सकता है। यदि उसका वर्णन करूंगा तो कथा बढ़ जाएगी।

छिताई सखियों को साथ लिये हुए तथा सोलहो शृंगार किये हुए [६४८] गज की गति से वहां पहुंची जहां शिवशंकर की पूजा करने जाती थी। उसी समय

(यह सुन कर) छिताई ने दाँतों तले जीभ दबाली (और कहा) तुझे धिक्कार है, तू दूती है दुष्ट है और असंत है। समरसिंह के अतिरिक्त जो भी अन्य पुरुष हैं वे मुझे पिता, पुत्र और भाई के समान हैं [६३२]।

(छिताई का यह उत्तर) सुनकर दूती व्याकुल चित्त हो गई (और सोचने लगी कि) अब मेरी यह प्रतिज्ञा (पैज) व्यर्थ हो गई। अब सेना में मैं नहीं लौट सकूँगी, सुलतान मेरे नाक कान काट डालेगा [६३३]।

छिताई का रत्नेश्वर महादेव के मन्दिर में जाना (१२९५—१३०८)

दूती इस प्रकार दुखी हो रही थी (कि इसी बीच छिताई ने शिवमन्दिर की यात्रा पर जाने का विचार किया। दूतियों ने सोचा कि) कुछ दूर छिताई के साथ जाएँ।

चन्द्रमा अस्त हो गया और सूर्योदय हुआ [६३४]।

छिताई अपने साथ पचास सखियों को लेकर रत्नलिंग (रत्नेश्वर) महादेव की यात्रा को चलीं। साथ में दूतियाँ भी थीं। उनने बनाकर बहुत सी बातें कहीं जिससे छिताई उन पर फिर प्रसन्न हो जाय [६३५]। (उनने कहा), हम तो तेरी गहराई देखना चाहती थीं, (अब हम समझ गईं कि) तूने तो ज्ञान का तत्त्व प्राप्त कर लिया है। तेरे समान एकचित (एक ही पुरुष के प्रति प्रेम करने वाली) दूसरी स्त्री हमने नहीं देखी। हम यह बात बहुत विचार कर कह रही है [६३६]।

(रत्नेश्वर महादेव के लिए महल से) सुरंग का मार्ग सूत्रधार ने अनुपम बनाया था। (इस सुरंग के मार्ग से शिवमन्दिर तक) जाने आने में देर नहीं लगती थी। दूतियों ने (यह मार्ग और) शिव का मन्दिर देखा। उनके मन में बहुत सुख हुआ कि अब उनका दाव लग जाएगा [६३७]।

सब भेद लेकर ये दोनों नारियाँ (सुलतान की) सेना में लौट गईं। वे अत्यन्त निश्चिन्त और बहुत प्रसन्न थीं। वे बादशाह के पास पहुँचीं [६३८]। दूतियों ने बादशाह से कहा कि तुम्हें वचन देकर हम संकट में फँस गईं। अब हम तुमको बुद्धि (तरकीब) बतलाती हैं और तुम अपना कार्य सिद्ध करो। तुम सेना सजा कर चलो [६३९]। गढ़ से दक्षिण दिशा की ओर सात कोस की दूरी

मिट्टी खोदने वाले परकोटे को खोदते हैं और किलकारी मारते हैं। कोट को गिरने में देर नहीं लगी। जब परकोटे में दरार (खांड = खांद या खांग = छिद्र, गड्ढा) पड़ गई तब मलिक, सूर और बाबरी (जातियों के तुर्क सैनिक) उसमें कूद पड़े [६५८]। चारों ओर से तुर्क क्रोधित होकर हाथ में कमान लेकर झपट कर (गढ़ पर) चढ़ने लगे।

गढ़ के कोट की दरार पर युद्ध (१३४५–१३६६)

इस आक्रमण को देख कर सारू वेगपूर्वक तत्काल आगे बढ़ा। उसने तुर्क सेना में मारकाट की [६५६]। उसने इतने खान मारे की उनकी संख्या ज्ञात न हो सकी। (वे सब परकोटा की) दरार के मुख (प्रदेश) पर (मारे जाकर) गिर पड़े और उनके प्राण निकल गये [६६०]। फिर धनुर्धारी (अथवा आनवान वाला) भला (?) कमनू और शूर जैतू चौहान, राजकुमार रूपी माला का रत्न (काकिल) पल्ह जांगलौ और भला शूर जोगाजीत, ये सब लोग चारों ओर से (चौहाना) ललकारने लगे। उनने बहुत से (शत्रु सैनिक) मार गिराए जिनकी संख्या कौन जान सकता है [६६१]।

फिर मदनसिंह परिहार, खड्गसिंह, योगिनी (दास) परमार युद्ध में मारे गये। दोनों दलों ने बहुत उत्साहपूर्वक मारामार (आकूनू=आकुट्ठ हिंसा= उत्साह पूर्वक दुख पहुँचाना ?) की [६६२]। बालक (छोकर ?) लक्ष्मीदास युद्ध में इस प्रकार लड़ता हुआ मारा गया मानो नट-विद्या का अभ्यास कर रहा हो। बलभद्र ने रणभूमि को सुशोभित करते हुए युद्ध ठाना और लड़ते हुए गिर पड़ा, परन्तु वह (अन्तिम समय तक परकोटे की) दरार से हटा नहीं [६६३]। फिर प्रहलाद पवेइया लड़ा, उसका अन्तिम समय आ गया और उसने प्राण त्याग दिए। नाथादेव, जिसने दक्षिण दिशा में विजय कर (राजाओं से) दण्ड वसूल किया था, युद्ध में मारा गया [६६४]। भीमसेन ने दल में बहुत मारकाट की। जहां वह युद्ध कर रहा वहां लोहा (सार) खनखना कर बजने लगा। उसके युद्ध का वर्णन नहीं किया जा सकता। वह जब युद्ध करते हुए मारा गया तब राजा ने बहुत सराहना की [६६५]।

क्रोधित होकर भरत सामने आकर युद्ध करने लगा। उसका काल आ गया और उसने प्राण त्याग किये। अपने भाई को गिरता हुआ देख

अलाउद्दीन को (उसके मन्दिर में पहुंचने का) समाचार मिला [६४६]। वह अगणित सेना सजाकर चला और उसने चारो ओर से देवगिरि को घेर लिया। (स्वयं) अलाउद्दीन सजकर वहां गया जहां वारी ने (छिताई) मिलने का स्थल (समांसा = समासंग) बतलाया था [६५०]।

सुहावने रणवाद्य रस युक्त बजने लगे। गढ़ के ऊपर तथा (तुर्क) सेना में बहुत शोर होने लगा।

राजा रामदेव स्वयं बुर्ज पर जाकर बैठ गया। (राज के) योद्धा लोग (उसे) सिर नवाकर नमस्कार करके युद्ध में प्रविष्ट होने लगे [६५१]। इस प्रकार (राजा ने) सत्रह हजार सैनिक युद्ध में प्रवृत्त किये और सब परकोटे को वान के साथ सुसज्जित कर लिया। काले, पीले, लाल और श्वेत वस्त्रों को पहने हुए धनुर्धारी वहां दिखाई दे रहे थे [६५२]। योद्धागण अपने स्वामी का हित जान कर युद्ध रत हुए और वान (पैंज, संकल्प) के साथ परकोटा से (रक्षा के लिए) अड़ गये। वे अत्यन्त निर्भय हैं और अपने स्वामी के हित के लिए मन में शूरोचित सत्य रखते हैं [६५३]।

रामदेव और अलाउद्दीन का युद्ध (१३३५–१३४४)

राजा रामदेव ने आज्ञा दी और सब सैनिक परकोटा से (रक्षा के लिए) अड़ गये। (यह देख) अलाउद्दीन प्रज्वलित हुआ और स्वयं परकोटे के पास आ अड़ा [६५४]। तुर्कों ने ठाठरी (पीछे पंक्ति ७५८ देखें) की ओट कर ली और परकोटा से हाथियों को भिड़ा दिया। (गढ़ के ऊपर से) मगरवी (एक अस्त्र) द्वारा बहुत से भारी पत्थर डाले जाने लगे, परन्तु फिर भी वे अडे रहे, भागे नहीं [६५५]। जब भारी पत्थर गिराए जाते हैं तो ठाठरी टूट कर चूर्ण बन जाती है[1]। भादों की घटा के जल (सर्वंग = जल) के समान चतुरंगिणी सेना (उमड़ती) दिखाई देने लगी [६५६]। गढ़ के नीचे दृष्टि फैलाकर देखने से ऐसा ज्ञात होता है मानो सेतुबन्ध का (वानर सेना से घिरा हुआ) किनारा है।

(तुर्क सेना के) मिट्टी खोदने वालों (ओडनि = ओंड = ओंडन) ने क्रुद्ध होकर कुदालियाँ उठालीं और सब परकोटा (खोदने पर) अड़ गये [६५७]।

---

१. पंक्ति ७५९ देखिए।

गढ़ से जितने वीर (युद्ध के लिए) उतरे थे वे सब (परकोटा) की दरार के मुख के पास लड़ते हुए मारे गये [६७५]। हाथी, घोड़े और सामन्तों (रावत) का मास खुरों से कट-कट कर बिखर गया[1]। जिस प्रकार पूर्वी वायु से प्रेरित बादल छा जाते हैं (उसी प्रकार तुर्क सैनिक) गढ़ के ऊपर छा गए [६७६]।

अलाउद्दीन का शिव मंदिर में जाकर छिताई को पकड़ना (१३८१-१३९५)

दोनों दूतियाँ आगे चलीं और सुल्तान को उस स्थान पर ले गईं जहाँ शिवशंकर का मंदिर था। अलाउद्दीन उस स्थल पर पहुँचा [३७७]।

छिताई को जब यह ज्ञात हुआ कि सवेरा हो गया तब वह शिव (मंदिर के) कुंड में स्नान करने आई। जब वह शिव मंदिर में पहुंची उस समय तुर्कों ने उसे चारो ओर से घेर लिया [६७८]।

(छिताई की सखियों ने) जब तुर्कों को आते हुए देखा तब उन्हें देख कर वे बहुत दुखी हुईं। वे 'शिव-शिव' मंत्र जपने लगीं। उनमें से कुछ सिर के बल भूमि पर गिर पड़ीं [६७९]। कुछ ने कटारों से गले काट लिए और कुछ के डर से ही प्राण पखेरू उड़ गये। कुछ ने तलवार से अपनी जीभ काटली और कुछ ने गले से छुरियाँ अडालीं [६८०]। (विधाता ने) भाग्य में जो अक्षर लिख दिये हैं वे मिट नहीं सकते। वहाँ चालीस स्त्रियाँ मरीं।

राजकुमारी (छिताई) को तुर्कों के आने का बोध नहीं हुआ, वह निश्चिन्त होकर शंकर का ध्यान कर रही थी [६८१]। बादशाह के मन में यह बात आई कि कहीं छिताई आत्महत्या न करले। (बादशाह ने देखा) पति के वियोग में पुरुष वेष बनाए हुए भी उसके केश सुन्दर दिखाई दे रहे थे (बादशाह छिताई को पूजा करते हुए पीछे से देख रहा था अतएव उसे उसका पुरुष वेश तथा सुन्दर केश दिखाई दिये) [६८२]। (यदि अवसर मिलेगा तो यह आत्म-हत्या कर लेगी यह) विचार कर बादशाह सामने पहुँचा और उस नारी को पूजा करते हुए ही पकड़ लिया। दूती के कहने पर वह पहचान सका (कि यही छिताई है)। उसने उसे जीवित बची हुई दस सुन्दरियों (सखियों) सहित पकड़ लिया [६८३]।

1. पंक्ति ७९४ देखिए।

कर चतुर्भुज को बहुत क्रोध (अहंकार-दर्प) तथा क्षोभ हुआ और उसने रोष-पूर्वक तलवार (लोहा) खींच ली (अथवा संघर्ष किया) [६६६] और जगमाल भी ललकारता हुआ उठा। उसने इतने मलिक मारे कि कोई गिनती नहीं है। वह भी लड़ता हुआ कोट के नीचे गिरा। (तब) चण्डीदास पवेइया ने युद्ध किया [६६७]। महा बलशाली भरत युद्ध करता रहा। वह (हाथियों की) सूंडें काट कर दो टुकड़े करने लगा। जब वह क्रोधित होकर हाथ में तलवार लेकर झपटता तब तुर्क सेना घबरा उठती [६६८]।

(यह युद्ध देख कर) बादशाह को आश्चर्य हुआ। उसने नुसरतखां को बुलाकर कहा, देखो हिन्दू किस प्रकार युद्ध करते हैं। बादशाह उनकी बारम्बार सराहना करने लगा [६६९]। (बादशाह ने कहा कि भरत के समान यदि) सेना में दस और योद्धा होते तब (कोट में) दरार पड़ने पर भी ये (गढ़) छोड़ नहीं सकते थे।

(इसी बीच) भरत लड़ता हुआ कोट के नीचे गिर गया। यह देखकर राजा रामदेव को बहुत दाह हुआ [६७०]। (वह कहने लगा) इसके समान अब दूसरा ऐसा कोई रणसिद्ध क्षत्रिय नही है जिसे (दरार की रक्षा के लिए लड़ने का) आदेश दूं।

हम्मीर के कबन्ध का युद्ध (१३७०—१३८०)

(इधर) अलाउद्दीन ने देखा कि श्रेष्ठ वीर, कलियुग में यम के समान कुंवर हम्मीर युद्ध में मारा गया [६७१] और सुल्तान ने देखा कि उसका कबन्ध उठा और बिना सिर के ही वह वेग पूर्वक (असमाना) बढ़ने लगा। (बादशाह ने नुसरतखां से कहा,) अवे, (देख,) मुझे बहुत आश्चर्य है कि इसका सिर धरती पर गिर गया [६७२] परन्तु यह फिर भी मेरे सामने दौड़ा चला आ रहा है। इसका मुझे शीघ्र कारण बता (उत्तर दे)। नुसरतखां ने प्रणाम कर कहा, (बादशाह,) कबन्ध का प्रभाव सुनो [६७३]। जब तीस हजार योद्धा रण में एक साथ (तुरन्त) मारे जाते हैं तब कबन्ध (युद्ध के लिए) उठता देखा गया है। बादशाह, यदि तुम अपने हथियार धरती पर डाल दो तो यह अविलम्ब भूमि पर गिर पड़ेगा [६७४]।

सुल्तान ने (यह सुनकर) अपने हथियार डाल दिये। तब वह रुंड (वेकि ?) भूमि पर गिर पड़ा और उसमें से प्राण उड़ गये।

उसमें मगरों के समान (तिररहे) हैं तथा हथियार पानी की घास (खले=खर, बुन्देली खड़ी) के समान हैं। युद्ध में लड़कर जो मलिक उमराव और खान मारे गये, वे मच्छ के समान हैं [६९३]। छिताई उस रण सरोवर में कमल के पुष्प के समान ज्ञात हुई। बादशाह की सेना नौका के समान हुई जिसका कर्णधार (कड्हरु[1]) बनकर बादशाह अपने बाहुबल से उसे (छिताई रूपी कमल को) तोड़ कर बाहर निकाल कर ले गया [६९४]।

राजा रामदेव से संधि (१४१७-१४२५)

राजा रामदेव मन में पछता रहा है। तुर्क सेना एक बार फिर लौटी। नुसतरखां ने यह सलाह दी कि हे सुल्तान अलाउद्दीन, सुनो [६९५], रामदेव बहुत बड़ा राजा है। उसका पतन हुआ है, उसे यथावत सीधा खड़ा करके उसकी पुनर्स्थापना करो। उसके हृदय की ग्लानि मिट जाए, इस हेतु उसे हाथी घोड़ा और पोशाक प्रदान करो [६९६]।

यह सुन कर (सुल्तान के) मन में बहुत सुख हुआ और उसने कहा कि नुसरतखाँ ने बहुत अच्छी सलाह दी है। (उसने नुसरतखां से कहा) तुम शीघ्र जाओ, देर मत करो। सोने का चँवर और एक हजार घोड़े [६९७] तथा श्वेत छत्र फहराता हुआ बड़ा मस्त हाथी लेकर जाओ।

नुसरतखां सिर नवाकर चला और रामदेव को पोशाक पहनाई [६९८]। उसने राजा की बहुत मर्यादा रखी तथा उसे अपना बनाने में हित समझकर उसकी पुनर्स्थापना कर वह लौट आया।

अलाउद्दीन के हरम में छिताई का प्रवेश (१४२६-१४३१)

बादशाह छिताई को (शिविर के) अन्तःपुर में ले गया। उसे देखने के लिए अनेक सुन्दरियां आईं [६९९]। छिताई यद्यपि वियोगिनी थी फिर भी बहुत सुन्दर लग रही थी। तुर्क स्त्रियाँ उसका रूप देखने लगीं। उस पतिवियोगिनी और अत्यन्त दुख से भरी हुई (छिताई) को देखकर उन्हें कामदेव के बाणों की पीड़ा हुई [७००]। उन सभी के मन में यह आकांक्षा हुई कि विधाता ने हमें पुरुष क्यों न बनाया।

---

१. जा कहँ अइस तोहि कंडहारा। तुरित बेगि सो पावइ पारा॥ जायसी,

जब बादशाह ने बाला छिताई को देखा तब वह मन में बहुत प्रसन्न हुआ।

अलाउद्दीन द्वारा छिताई को बेटी के रूप में स्वीकार करना (१३९६–१४०८)

जब छिताई को यह ज्ञात हुआ कि यह बादशाह है (तब उसने उससे कहा) बादशाह, आप मेरे एक वचन का निर्वाह करो [६८४], आप मुझे पाप दृष्टि से मत देखो। मैं आपको पिता के बराबर मानती हूं। जिस प्रकार मैं राजा रामदेव को मानती हूं उसी दृष्टि से मैं आपको देखती हूं [६८५]। जब राजा रामदेव ने आपकी सेवा की थी तब आपने उनके प्रति बहुत कृपाभाव रखा था और प्रमाण के साथ उन्हें भाई के बराबर कहा था तथा अब आपको मुझे भी (अपनी) कन्या के समान मानना चाहिए [६८६]।

(बादशाह ने छिताई को घोड़े पर) अपने पीछे चढ़ा लिया जिससे उसके शरीर को बहुत आनन्द मिला। जब (छिताई की) छाती (सुल्तान की) पीठ से लगी तब (उसे रोमांच हो गया और) हाथ से चाबुक छूट गया तथा लगाम गिर गई [६८७]। छिताई ने भी इस बात को जान लिया (और कहा) अलाउद्दीन, मेरी बात सुनो, तुम मेरे पिता के समान हो। बादशाह हृदय में पाप भावना मत रखो। मैं आपकी बेटी के समान हूं [६८८]।

सुल्तान ने जब यह बात सुनी, उसने अपना सिर हिलाकर कान बन्द कर लिये। (वह कहने लगा) जिसके हेतु मैंने युद्ध किया वह कार्य भी सिद्ध न हुआ [६८९]। मेरी दशा छछूंदर को निगलने वाले सांप के आख्यान जैसी हो गई है। (छिताई की बात सुनकर) सुल्तान को बहुत दुख हुआ मानो पाया हुआ रत्न उसके हाथ से निकल गया [६९०]।

छिताई हरण [१४०९–१४१३]

बादशाह मन में बहुत दुखी हुआ। उसकी आशा पूरी नहीं हुई। वह निराश हो गया। (वह कहने लगा) यदि छिताई नारी को यहां छोड़ जाऊँगा तो अपयश होगा और सारी दुनिया बुरा कहेगी [६९१]। उसने छिताई को (दूसरे) घोड़े पर चढ़ा लिया और अपने शिविर में जाकर रुका।

(युद्ध रूपी सरोवर का वर्णन करते हुए कवि लिखता है) परकोटा उसके कूल के समान है, उसके जल के समान रक्त (पूरित) है [६९२]। (मरे हुए) सामंत

उसके रुकने के स्थानों का यदि वर्णन करूँ तो कथा वहुत बढ़ जाएगी। सुल्तान अनचले (विसधी ?) मार्ग पर चलता था और चार कोस पर डेरा डलवा देता था [७०६]। सब मालवा (मारओ, देखिए पंक्ति १८) पार कर सुल्तान ने चन्देरी में आकर डेरा डाला। गोपाचल गढ़ को बाँईं ओर छोड़ दिया और सेना कुन्तलपुर[1] पर आकर रुक गई [७१०]। आगरा भी बाँईं ओर छोड़ दिया और अनवार के

१. कुन्तलपुर वर्तमान मध्यप्रदेश के मुरैना जिले में स्थित कुतवार और सुहानिया ग्रामों के स्थान पर वसा हुआ था। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में उसे कान्तिपुरी कहा जाता था और नाग राजाओं की एक राजधानी यह भी थी। आगे चल कर इसका नाम ही कुतवाल पड़ा। विष्णुदास ने महाभारत कथा (सन १४३५) के आदि पर्व में इसे कुन्ती से सम्बद्ध करते हुए लिखा है:—

राजा सूरसेन की धिया। अति सरूप सो उत्तम त्रिया।
कुंतल राउ नगर कुतवाल। तिहि तप कियो अधिक अतियाल॥
ता कैं पुत्र न एकौ आहि। बहुत भाउ तीरथ कौ ताहि॥
सूरसेन की कुवरि जु वारी। कुंतल राउ घरह प्रतिपाली॥
उत्तम लछिन खरी सु तूला। सोहै चलत हँस की सूला।
संजम सत्तु हिये मह बसई। बहुत भक्ति रिषिन की लसई॥
दुर्वासा रिपि कह्यौ हकारी। हौं तूठो वर मांगि कुमारी।
इतनौं सुनि तब कौंति लजानी। बोली नहीं रिषिन की कानी॥
... ...
देखति कौंति अधिक दुख भयौ। डरपी बाल उछंगह लयौ।
पहुंची आस नदी के तीरा। घालि मजूस वहायौ नीरा॥

आस नदी तथा कुतवाल नाम असंदिग्ध रूप से विष्णुदास का आशय स्पष्ट कर देते हैं।

सन १७६६ ई० में शाहजहां के समय में विरचित गोपाचल आख्यान में खड्गराय ने इस कुंतलपुरी का परिचय दिया है:—

बरनौ सोनपाल को बंस। सूरज वंस बड़ौ अवतंस।
बसै जु कुंतलपुरी अपार। सोरह कोस तनौ विस्तार॥

इधर छिताई भ्रमित हुई भूमि पर नखों से रेखाएँ बनाने लगी[1]। उसके नयनों से अश्रु धार प्रवाहित होकर पैरों पर गिरने लगी [७०१]। अतिशय वियोग में दूसरे के वस में पड़ी हुई वह मन में पछताने लगी। उसने भोजन छोड़ दिया और उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता है।

देवगिरि-विजय का समाचार दिल्ली पहुँचना (१४३२—१४४२)

बादशाह ने मन में विचार किया और नुसरतखां को बुलाया [७०२] तथा कहा, दिल्ली में जो आदेश दिया था (संकल्प करके आए थे) अब उसको प्रमाणित करना चाहिए (वह पूरा हो गया यह समाचार दिल्ली भेजना चाहिए)।

सिर नवाकर नुसरतखां ने कहा कि मैंने यह आज्ञा दे दी है [७०३]। (दिल्ली से देवगिरि तक) प्रत्येक चौथाई-चौथाई (पाई=पाद=चतुर्थांश) कोस पर, हे सुल्तान, सुनो, मैंने ढोल रखवा दिये हैं।

(यह सुन कर) बादशाह ने आदेश दिया और सेना में दुंदुभियां बज उठीं [७०४]। तब सबको आदेश हुआ और (एक चौकी से दूसरी चौकी तक) ढोल बजने लगे और (यह देवगिरि-विजय का संकेत होने के कारण) सबको आनन्द हुआ। इस प्रकार तीन हजार दो सौ (प्रत्येक कोस में चार चौकियों के हिसाब से) ढोल बजे जिनका अपार शब्द हुआ [७०५]। देवगिरि दिल्ली से आठ सौ कोस कहा जाता है, फिर भी (इस रीति से) उसी दिन दिल्ली में (विजय) समाचार पहुँच गये। (उस विजय-संकेत को सुनकर) उलुगखां को बहुत आनन्द हुआ और उसने तुरन्त दुंदुभियां बजवाईं [७०६]। दिल्ली में दुंदुभियां बजने लगीं और (यह घोषणा हो गई कि) सुल्तान ने देवगिरि गढ़ जीत लिया।

हयवति मलिका ने (सुल्तान की) बहुत सराहना की (और कहा कि सुल्तान ने) अपना वचन पूरा किया [७०७]।

कवि देवचन्द्र कहता है कि जीवन उनका ही सार्थक है जिनकी कीर्ति संसार में अवशिष्ट रहती है।

अलाउद्दीन की सेना ने एक दिन विश्राम किया और फिर बादशाह ने आगे कूच कर दिया [७०८]। दुर्निवार बादशाह विश्राम लेता लेता चला।

---

१. चारु चरन नख लेखति धरनी। रामचरितमानस, अयोध्या कांड ५८/५

जन्म लिया [७१३]। उन सब के बीच में इसका मुख ऐसा दिखाई देता था मानो तारागण के बीच चन्द्रमा हो। जब वह भौंह उठाकर दृष्टि डालती थी तब पुरुष तो क्या स्त्रियों का मन भी चुरा लेती थी [७१४]।

देवगिरि की दासियों की छिताई की देखभाल के लिए नियुक्ति [१४५७—१४६५]

जिनके कारण यह उत्पात हुआ था उन दो दासियों को लेकर नुसरतखां आया। कविजन नारायणदास कहता है कि बादशाह ने उन्हें छिताई के पास भेज दिया [७१५]। बादशाह ने उन दासियों को यह समझा कर भेजा कि छिताई बहुत दुखी है, तुम उसे समझाओ।

वे नारियां छिताई के पास गईं और दक्षिणी भाषा में बातें करने लगीं [७१६]।

(उनने कहा) आप तो हमारी स्वामिनी हैं, क्योंकि हम राजा रामदेव की दासियां हैं। ये जो घटनाएं हुई हैं वे कर्मगति के कारण हुई हैं। अब आप दुख छोड़ दीजिए [७१७]।

दासियों द्वारा छिताई का रूप वर्णन [१४६६—१४७७]

(दासियों ने कहा) हे छिताई तूने संतों का भी गुण अपहृत कर लिया (उन्हें भी अपने रूप से विचलित कर दिया है)। इस अपराध का न्याय करके विधाता ने (दण्ड स्वरूप) तुझे वियोग दिया।

दुख छोड़कर छिताई को क्रोध आ गया। उसने कहा, हे सखी, यह दोष तुम मुझे ही लगाने लगीं [७१८]। यह उत्पात तुम्हारा ही कराया हुआ है और उसे अब हलके (हरयो) से दूसरे के ऊपर डालना चाहती हो [७१९]।

दासी (दूती[1])बोली, हे छिताई बाला, तुमने अपने बालों की वेणी बनाई, उसके सामने लज्जित होकर भुजंग पाताल में छिप गये। हे सुन्दरी, तूने चन्द्रमा की ज्योति को चुरा लिया, फिर तुझे क्योंकर सुख मिल सकता है [७२०]।

---

१. पाठ में 'दूती' है। दासियों को अलाउद्दीन ने छिताई को फुसलाने के लिए भेजा था, इसी कारण उन्हें दूती कहा गया ज्ञात होता है।

घाट पर (यमुना को) पार किया। वहाँ से अधिक पड़ाव न करते हुए बादशाह दिल्ली पहुंच गया [७११]।

दक्षिण में अपनी आन फेर कर दिल्लीपति बादशाह दिल्ली पहुँचा।

अलाउद्दीन का दिल्ली पहुंचना और शाही हरम में छिताई की प्रशंसा (१४५२—१४५६)

(छिताई के शाही हरम में पहुँचने पर) हरम में जितनी रानियां थीं वे छिताई का मुँह देखने के लिए उसके चारो ओर इकट्ठी हुईं [७२१]। वे छिताई का मुँह देखने लगीं और उन्हें भी उतना ही सुख मिला जितना बादशाह को मिला था। वे सब सुन्दरियाँ कहने लगीं कि वह कूख धन्य है जिससे इसने

जो बरनो तो बिस्तर होई। सुनीयै कथा पुरानै लोई।
भुव मण्डल जे राजा भये। बहुते राज तहां करि गये॥
तिह पुर निस दिन बसै अनूप। राजा सोहन पाल तह भूप।
देखि सरोवर मोहे भूप। दुगद्री बाग बावरी कूप॥
सात सात से भए निवान। मठ देवन को नहीं प्रवान।
सब कोई चले वेद की रीति। चारों बरन धर्म सों प्रीति॥
र पुर नगर चौहटै भीर। सींचत मारग चन्दन नीर।
बड़ौ भूप कछवाही सूर। दान खर्ग मुख बरसै नूर॥
सत्तरि रानी परम सरूप। तिनकै सम नहिं और अनूप।
रति रम्भा नहीं पूजैं तिन्हें। छोडै रूप गर्भ हो जिन्हें॥
पट्ट परधना जै जै करी। नाउ ककलदे रानी रही।
सो सिव व्रत जु महामन करै। सो शिव पूजा विधि सों करै॥
सिव मण्डल तहँ मंडप कीयो। ता समान नहीं दूजो बीयो।
अति ऊंच्यौ सिव मंडप कर्‌यो। नाउ ककलदे को मठ धर्‌यो॥

ककलदे के इस विशाल मंदिर के अवशेष आज भी कुतवार-सुहानियाँ में है। महीपाल कछवाहे के ग्वालियर गढ़ पर पद्मनाभ विष्णु के मंदिर के संवत् ११५० के शिलालेख में ककनदे रानी और उसके सुहानियां के शिव मंदिर का उल्लेख है।

जंगम से (छिताई ने) जो गुण सीखा था, उसी नाद विन्यास का निष्पादन राजकुमारी ने प्रारम्भ किया [७२९]। जैसे जैसे राजकुमारी राग बजाती थी, भूमि से नाग निकल कर खेलने लगते थे। यह देखकर बादशाह को आश्चर्य हुआ। वह ध्यान पूर्वक राग सुनने लगा। उसका चित्त इधर उधर कहीं चलित नहीं होता था [७३०]। महल के जितने सतखण्डे आवास थे उन्हें चारो ओर से घेर कर पक्षी (राग सुनने के लिए) आ बैठे। वे एकत्रित होकर ऊपर (छतों पर) ठहर गये। उन्हें राग ने रोक रखा, वे जंगल को नहीं जाते [७३१]।

यह देख कर सुल्तान रीझ कर रह गया। उसने वीणा वादन बन्द करने का आदेश दिया। नाद बन्द होते ही नाग अपने स्थानों को लौट गए और पक्षी (समाधि भंग होने पर उड़ने के लिए) भहरा उठे [७३२]।

वन के सब जीव उड़कर वन में चले गए। कला का मान रह गया और सब वीर रीझ गए। उसका गुण देख कर सुल्तान ने वरदान माँगने का आदेश दिया [७३३]।

छिताई की अलाउद्दीन द्वारा व्यवस्था (१४९३–१५०७)

(छिताई ने कहा) मैं यह वचन माँगती हूं कि बादशाह आप मुझे पाप दृष्टि से न देखें। आप मेरे इसी वचन का निर्वाह करें। सुल्तान अलाउद्दीन कहता है कि मैं तुझे पुत्री के तुल्य रखूंगा। बादशाह ने कहा, हे नारी (छिताई), सुन, तू अपनी (पुरुष) वेश-भूषा उतार कर रखदे। छटा-चूडियां पहनकर नारी वेश बनाले, ऐसा बादशाह ने हँस कर विचारपूर्वक कहा [७३५]। अपनी इच्छानुसार भोजन कर, ऐसा बादशाह ने सुन्दरी से कहा। मेरे पास सेविका बनकर रह, मैं तुझे (तेरा माँगा हुआ) वचन देता हूं [७३६]।

(छिताई) बहुत चिन्तित रहने लगी। वह पद्मिनी नारी सेविका बन कर रहने लगी। बादशाह ने पाप-दृष्टि छोड़ दी और उसे राघवचेतन को सौंप दिया [७३७]। उसने प्रतिदिन बारह हजार टके का बंधान उसके लिए बाँध दिया। इस आशा से कि दक्षिण का (संगीत) गुण उन्हें प्राप्त हो जाए उसके अधीन पचास नर्तकियाँ भी करदीं [७३८]। छिताई उन्हें संगीत की साधना कराने लगी और विधाता ने उसके भाग्य में जो दुख लिख दिया था, उसे वह सहने लगी।

हे वाला, तूने मृगों के नेत्र चुरा लिए, इस कारण आज तक मृग जंगल (उजाड़) में रहते हैं। हाथियों के कुंभ तेरे कुच बन गए, इसलिए हाथी देश देशान्तर में भटकते रहते हैं [७२१]। तूने सिंहों की कटि चुराली, इस कारण वे गुफाओं की ओर निकल गये। तेरे दांतों की पंक्ति अनार (के बीजों) से अधिक सुन्दर बन गई, इस कारण अनार का उदर फट गया [७२२]। तूने कमल की सुगन्धि अपने अंगों में छीन ली, इस कारण वे सब पानी में छिप गये। क्योंकि तूने हंसों की चाल चुराली, इस कारण वे उदास होकर मानसरोवर चले गये [७२३]। जो कैवल्य पद में लीन थे वे (तेरे रूप के आकर्षण से डरकर) बुद्धिमानी इसी में समझते हैं कि देश छोड़कर चले जाएं। इन सबके गुणों का तूने अपहरण किया है। इस (अपराध) का न्याय कर विधाता ने तुझे वियोग (का दण्ड) दिया है [७२४]।

(कवि कहता है) बात को अधिक बढ़ा कर क्या कहूं, इस प्रकार (बादशाह ने) दासियों से उसे समझवा कर रखा।

(कवि कहता है) इस प्रकार बादशाह ने छिताई को प्राप्त किया। यह कथा देशदेशान्तर में प्रकट हुई [७२५]।

अलाउद्दीन द्वारा संगीत का आयोजन (१४७८–१४८३)

बादशाह ने पातुरों (नर्तकियों) को बुलाया और संगीत सभा (अखारे) के आयोजन का आदेश दिया।

मृदंग के नाद (पर नृत्य) की कला में प्रवीण वे चतुर (नर्तकियां) प्रेमरस में लीन होकर नृत्य करने लगीं [७२६]। बादशाह ने वहाँ छिताई को बुला लिया और उससे हँसकर कहा, छिताई, मैं तुझ से यह पूछता हूं कि क्या तू मुझे कुछ अपना गुण नहीं दिखाएगी [७२७] ? तूने जंगम से जो गुण सीखा है, हे सुन्दरी, उस गुण का प्रदर्शन कर। मुझे तेरे इस (गुण प्राप्त करने के) भेद का आज ही पता चला है। बादशाह ने कहा कि तू वीणा बजा [७२८]।

छिताई द्वारा वीणावादन (१४८४–१४९२)

बादशाह के आदेश देने पर उसने वीणा हाथ में ली। (उसके वीणा ग्रहण करने पर) आकाश (जो शब्द गुण का आधार है,) अत्यन्त भयभीत हो गया।

(चतुर्थ खण्ड)

राजा रामदेव द्वारा समरसिंह के पास छिताई-हरण का समाचार भेजना (१५०८—१५५५)

(कवि श्रोताओं से कहता है कि) यहाँ तक कथा बादशाह के साथ चली है। अब कथा का सूत्र फिर देवगिरि गढ़ की ओर मुड़ता है।

राजा रामदेव बहुत चिन्ता करने लगा। वह (छिताई के) गुणों का स्मरण करके मन में पछताता है [७४१]। (वह सोचता है कि अब) समरसिंह से क्या कहूंगा। राजा ने मन्त्री से कहा कि मेरा यह विश्वास है कि जब वह छिताई के अपहरण का समाचार सुनेगा तब उसे बहुत दुख होगा [७४२]।

मन्त्री ने कहा हे राजा, सुनो, अब आप (समरसिंह के पास) पत्रवाहक (पतिहा) भेज दो। राजा ने धावन को बुलाया और उसे समझा कर बात कही [७४३]। राजा ने वार वार कहा कि शीघ्र ही समरसिंह को (घटनाओं के) सारांश से अवगत कराओ।

(धावन) माथा नवा कर (प्रणाम कर), विदा लेकर चला और द्वारसमुद्र गढ़ पहुंच गया [७४४]।

नगर में (देवगिरि की सहायता के लिए) सामग्री एकत्रित की जा रही थी और सभी को शक्ति पूर्वक (देखिए पंक्ति ३४५ तथा ६५१) तयारी करते हुए उसने देखा। राजा जब सभा एकत्रित कर बैठा तब पत्रवाहक (धावन) ने जाकर मस्तक झुका कर (प्रणाम किया) [७४५]।

उसे देख कर कुंअर (समरसिंह) व्याकुल होकर उठा। पत्रवाहक ने दौड़ कर उसके चरण पकड़ लिए। जब (समरसिंह को) ज्ञात हुआ कि वह राज रामदेव का दूत है तब उसने बहुत स्नेह करके उसे गले लगाया [७४६] औ पूछा कि सुन्दरी (छिताई) के समाचार सुनाओ, वह मेरा बहुत स्मरा करती होगी।

नाना देश-विदेशों से घूमकर आने वाले जो वैरागी, पथिक या दरवेश आते थे [७३९] उनके लिए वह भोजन आदि का प्रबन्ध इस आशा से करती थी कि कदाचित उनसे उसके पति समरसिंह का समाचार प्राप्त हो जाए।

बाला छिताई इस प्रकार राजकुमार समरसिंह का स्मरण करती हुई रहने लगी [७४०]।

प्रसन्न हो जाए तो राजपाट और अशेष लक्ष्मी प्राप्त होती है । यह निश्चय पूर्वक मन में जान लो कि शंकर ही (सर्वोच्च प्राप्य) परम पद हैं [७५७]। मन्त्री ने कहा कि आप यह भेद भी नहीं जानते हैं कि शंकर देवाधिदेव हैं ! उनकी निन्दा करना तुम छोड़ दो और (उसके वदले) अपने कर्मों को (ही) दोष दो [७५८] । अब दुख करना और मन में पछताना छोड़ दो, (और यह समझ लो कि) सिद्ध का शाप फलीभूत हुआ है ।

उसकी वात को हृदयंगम कर कुंअर ने शरीर को (जीवित) रखा [७५९] ।

समरसिंह का योगी होना (१५४६–१५६५)

समरसिंह ने अपना सब राजपाट छोड़ दिया और जटा वाँध कर जंगम वेश वना लिया । अलाउद्दीन (छिताई को) जीवित पकड़ ले गया यह सुनकर समरसिंह योगी हो गया [७६०] ।

चन्द्रनाथ चन्द्रगिरि पर निवास करते थे । उनको (गुरु वनाकर) वह योगाभ्यास करने लगा । उनसे (समरसिंह) ने दीक्षा (दरस=दर्शन=मार्ग दर्शन) ली । सिद्ध (चन्द्रनाथ) ने उसके सिर पर हाथ रखा [७६१] । योगीन्द्र ने कहा, तुम सिद्ध होओ; हे राजा, तुम्हारी मनोकामना पूरी हो, यदि मेरे गुरु की वाणी सत्य है तो विधाता तेरे मन की इच्छा पूरी करेंगे [७६२] ।

जब योगी ने ऐसी वात कही तब (समरसिंह ने) राज्य छोड़कर योगी का पद ले लिया । अपने पंथ (निगम) की सूचक श्याम सिंगी को वह अपने शुभ गले में धारण करता था तथा उसे सुघरता से वजाता था [७६३] । उसके कानों में सुन्दर वनी हुई मुद्रा थी जो चन्द्रमा और कुमुद पुष्प के समान (शुभ्र) चमकती थी । सिर पर जटा वांध कर उसने खप्पर ले लिया । वह ऐसा दिखाई देता था मानो गोपीचन्द ने अवतार लिया हो [७६४] । उसने शरीर पर वज्र-कोपीन पहन ली और कन्धे पर दक्षिणी वीणा शोभित हुई । उसने अपने कोमल और उज्जवल अंग पर भभूत रमा ली और सिर पर सुन्दर जटा वाँध ली [७६५] । उसका नखशिख रूप समुद्र की सीप तथा कमलनाल (पौनार) के समान सचिक्कण तथा कोमल था और उस पर वालसूर्य (अरुण) की सी

कुंअर की इतनी बात सुनकर पत्रवाहक के नेत्र (अश्रुओं से) भर आए [७४७]।

यह देख कर समरसिंह सन्देह में पड़ गया और उसने पूछा कि तूने रुदन क्यों किया ?

तब पत्रवाहक बतलाने लगा कि किस प्रकार बादशाह ने युद्ध किया [७४८], किस प्रकार सुल्तान ने आक्रमण किया, किस प्रकार सेना का खलिहान (खेत को काटकर कुचल कर दाने निकालने के समान देवगिरि की सेना का मर्दन) हुआ, किस प्रकार परकोटे में दरार पड़ी, किस प्रकार सुन्दरी (छिताई) शिव पूजन को आई [७४९] और उस समय वैसे वह अलाउद्दीन द्वारा पकड़ी गई। (पत्रवाहक ने) ये घटनाएं एक एक कर सुनाईं।

पत्रवाहक के वचन सुनकर (समरसिंह) दुखी होते हुए अपने कार्यों का स्मरण करने लगा [७५०]। सेवक (पत्रवाहक) की बातें सुनकर (समरसिंह) मूर्छित हो गया और उसके मुंह से श्वास निकलना बन्द हो गया। दो घड़ी बीतने पर वह फिर उठा और (उस) कारण के हेतु सिर पीट कर रोने लगा [७५१]। जब जब उसे पिछली स्मृति होती तब तब वह मूर्छित होकर भूमि पर गिर जाता। उसने अपने चित्त में बहुत सन्ताप किया, जैसे थोड़े पानी में मछली तड़प रही हो [७५२]। (वह कहने लगा जब तू (छिताई) ने शंकर की सेवा करना स्वीकार किया तभी से बड़ी विपत्ति पड़ी है। (तेरी शिव-उपासना का) यह परिचय मैंने मनमें जान लिया था। किन्तु तू मानी नहीं और तूने (रोकते हुए) शंकर की सेवा की [७५३]। (यह कह कर) उसने क्रोधित हो कटार निकाल ली और व्याकुल होकर प्राण छोड़ने लगा।

तभी (शंकर ने) उसके (समरसिंह के) हृदय में यह बात कही कि अपने हृदय को स्थिर रख [७५४]। हे मूर्ख बावरे, दुख छोड़ दे, (यह मेरी भक्ति का परिणाम नहीं है वरन् इसके द्वारा) सिद्ध का शाप प्रमाणित हुआ है।

(इस बात को) तब मन में समझकर उसने (आत्मघात) का विचार छोड़ दिया और वह बारम्बार सुन्दरी (छिताई) का स्मरण करने लगा [७५५]।

(यह द्वन्द्व हृदय के भीतर चल रहा था और) बाहर मंत्री ने (भी) विनय पूर्वक कहा, हे कुंअर, मेरा कहना मन में रखो, यह संदेह मन में से निकाल दो कि देव (शंकर) की पूजा करने से हाथ गल सकता है [७५६]। यदि महेश

मार्ग तलवार की धार के समान हैं । वे बहुत अगम हैं, उन पर पहुंचना संभव नहीं है । वहां वह योगी किनारे-किनारे (कैंता) चलकर सम्हलता हुआ पहुंचा [७७५]। बदरीनारायण पहुंचकर स्नान कर उसने अपने गात्र निर्मल किये। फिर लौट कर वह कुम्भ केदार गया और पर्वत से उतर कर हरिद्वार आया [७७६]।

पश्चिम दिशा में जितने बहुसंख्यक तीर्थ थे वे सब उसने श्रद्धापूर्वक किये ।

योगी देशदेशान्तरों में घूमता रहा, परन्तु उसका मन उचाट बना रहा, कहीं पर भी न लगता था [७७७]। सब तीर्थों को दाहिनी ओर रखकर उसने पृथ्वी की परिक्रमा की परन्तु कहीं भी उसे छिताई का समाचार न मिला। वह (घूमते घूमते) जटाशंकर के मेले (जात = यात्रा) में पहुंचा, वहाँ उसने छिताई की चर्चा सुनी [७७८]। एक योगी ने उसे सब भेद बतलाया। वह भेद (समाचार) पाकर उसी क्षण वह आगे बढ़ा। मार्ग में तथा नदी के घाटों पर वह उसके (छिताई के) विषय में पूछता जाता था। उसका मन उड़कर (छिताई के पास) पहुंचना चाहता था परन्तु उसके पंख नहीं थे [७७९]।

चंदवार में युवतियों का योगी पर अनुरक्त होना [१५८६–१६१६]

लम्बी लम्बी मंजिले पार करता हुआ वह चंदवार नामक नगर में पहुंचा। उस नगर के समीप यमुना नदी बह रही है। वहाँ वह थोड़ी देर के लिए विश्राम करने के लिए रुका [७८०]। नगर के द्वार के पास ही पनघट था। वहां लोगों का बहुत आना जाना रहता था तथा यात्री भी ठहरते थे। चारो ओर देखकर योगीन्द्र समरसिंह चलने लगा। ऐसा ज्ञात होता था मानो वह कामदेव का फंदा फेंक रहा हो [७८१]। वहाँ जितने स्त्री और पुरुष थे उन सब को योगी कामबाण से पीड़ित कर चला। अपने कुसुम जैसे शरीर पर वह खप्पर धारण किये था। उसके रूप तथा रंग के गुण अधिक थे [७८२]।

वह प्रवीण रसिक जब वहाँ से चलने लगा तो स्त्रियों के हृदय बनसी में फंसी मछली के समान तड़पने लगे। उनमें से कुछ सिर पर घड़ा रखे, कुछ अपने दोनों हाथ छाती से लगाए अचल खड़ी रह गयीं [७८३]। कुछ स्त्रियाँ हाथ नीचे (उरवाई) डालकर रह गईं और कहने लगीं कि योगी जबरदस्ती (बरबट)

आशा थी[1]। (ऐसे) अंग में भस्म लगाकर उसने दण्ड ग्रहण कर लिया और उसके मन में प्रबल वैराग्य उत्पन्न हुआ [७६६]। नारि के वियोग के कारण उसे नगर में अच्छा नहीं लगता और वह (नगर के बाहर) बाग और बावड़ियों के किनारे बैठने लगा। वह भूला-भूला सा व्यर्थ सोचता रहता और लज्जा (मर्यादा) खोकर उसके अंग-अंग व्याकुल रहते। वह शरीर पर धुले हुए वस्त्र नहीं पहनता था और सदा मलिन (उदास) हृदय लिए बैठा रहता। इस प्रकार वह परम वियोगी दिन बिताने लगा [७६८]।

शृंगार (रस) की बात उसे कानों से सुनने में अच्छी नहीं लगती थी, जैसा विरही जनों का स्वभाव होता है। यदि कभी चातक की बोली सुनता तो वह उसके कानों को अच्छी नहीं लगती थी और विष भरे बाणों के समान उसे सहन नहीं होती थी [७६९]। कोकिल के वचन भी विष भरे तीरों के समान चुभ कर उसके शरीर में (आकुलता) भर देते थे।

योगी समरसिंह की तीर्थ यात्रा (१५६६–१५८५)

(योगी समरसिंह ने) पहले दक्षिण के देश (स्थल) देखे। जगन्नाथ की यात्रा कर उसने जगत में यश प्राप्त किया [७७०]। विजयनगर तथा अन्य प्रदेशों में उसने रमते योगी के वेश में कठोर तपस्या की।

वह सिंघल द्वीप गया जहाँ पद्मिनी स्त्रियाँ हैं और प्रत्येक घर में अनेक दिखाई दे जाती हैं [७७१]। परन्तु वह छिताई से मन लगाए रहा और उनमें से एक भी स्त्री उसके मन में नहीं टिकती।

फिर समरसिंह पूर्व दिशा में गया। उसने प्रयाग में स्नान किया तथा वाराणसी की यात्रा की [७७२]। फिर कामता-कावरू (कामरूप) तथा और भी उससे परे के देश में जो अनेक तीर्थ थे उन सब की उसने भाव के साथ यात्रा की [७७३]।

फिर कुंअर ने सोरों तीर्थ में स्नान किया जिससे उसके शरीर की समस्त व्यथा (उच्चाट) मिट गई।

फिर वह बली उत्तर दिशा की ओर गया जिस क्षेत्र में बहुत ऊँची ऊँची पर्वत मालाएँ हैं [७७४]। ये पर्वत मालाएँ सवा लाख हैं और उनके

---

१. पंक्ति १९५४ का आशय स्पष्ट नहीं है।

सक्त रमणियाँ मानो नयनों की फाँस में फंसाकर उसे वश में करना चाहती हैं।

परन्तु (समरसिंह) सुन्दरी (छिताई) का अधररस पान किये हुए था, अतएव उसे अन्य कोई भी सुन्दरी अच्छी नहीं लगती [७६३]। उसे छिताई का स्मरण हो आया और वह अत्यधिक उदास हो गया। उसने उस दिन उस नगर में विश्राम किया। जैसे-जैसे वह सुन्दरी छिताई के रूप का स्मरण करता था, उसके सम्पूर्ण शरीर में काम के बाणों की पीड़ा व्याप्त हो जाती थी।

अरसठ तीर्थों की यात्रा समाप्त कर समरसिंह दिल्ली के निकट पहुंचा [७६४]।

दिल्ली के निकट खांडव वन में पहुंचकर समरसिंह का वीणा वादन (१६१७–१६३५)

दिल्ली के निकट खांडव वन है, वहाँ समरसिंह पहुंचा [७६५]।

(कवि कहता है कि) उस वन का यदि वर्णन करने लगूं तो कथा बहुत बढ़ जाएगी, उसके वृक्ष और पक्षियों की गिनती नहीं हो सकती। उस सघन वन में अगणित मृग और खरहे थे। वहाँ वियोगी (समरसिंह) ने प्रवेश किया [७६६]। उस वन में योगेन्द्र (समरसिंह) ने विश्राम किया।

(उसी समय) पूर्णचन्द्र का उदय हुआ। चन्द्र किरण के स्पर्श से योगी समरसिंह की काया जल उठी, उसे सुन्दरी छिताई का स्मरण हो आया। उसने वीणा उठा ली [७६७]। वह ऐसा रसिक और चतुर सुजान था कि उसके समान संसार में कोई अन्य दूसरा नहीं था। उसने वहाँ वीणा से राग बजाना प्रारम्भ किया। उसके वीणा-नाद को सुनकर चन्द्रमा का चित्त भी मोहित हो गया और उसकी गति रुक गई[1] [७६८]।

उसकी वीणा का अमृत के समान मीठा नाद सुनकर मृग खड़े रह जाते हैं और कान लगाकर सुनते हैं। सर्प विष छोड़कर (राग के) रसिक बन जाते हैं और समरसिंह के साथ खेलते हुए फिरते हैं [७६९]। विरही समरसिंह

१. गहै बीन मकु रैनि बिहाई। ससि बाहन तब रहै ओनाई॥ जायसी, पदमावत १६८/५.

मन लिये जा रहा है। कुछ जंभाई लेती हुई अंगड़ाई लेने लगी क्योंकि उनके चित्त में अगम्य अनंग प्रवेश कर गया था [७८४]। कुछ कामिनियाँ हाथ मरोड़ रहीं थीं, कारण कि कामदेव ने रोष पूर्वक उनके हृदय पर चोट कर दी थी।

(वे स्त्रियाँ कहने लगी कि) एकनारी व्रती, नववयस्क और निष्कलंक (यह योगी ऐसा दिखता है मानो) अत्यन्त मनोहर चन्द्रमा उदित हुआ हो [६८५]; इसका व्यवहार और शरीर राजाओं के समान है और यह ऐसा दिखता है मानो स्वयं कामदेव ने अवतार लिया हो। इसे किस प्रकार वियोग दुख सहना पड़ा और क्यों इसने भरे यौवन के समय योग साधन किया है [७८६] ?

उस नगर में जो पतिव्रता स्त्रियाँ थीं वे मन में इस प्रकार सोचने लगीं कि यदि विधाता हमारे ऊपर कृपा करे तो हमारे भी ऐसा ही पुत्र उत्पन्न हो [७८७]। व्यभिचारिणी स्त्रियाँ हृदय से यह चिंतन करने लगीं कि विधाता किसी प्रकार इस छैला से हमारा संभोग करा दे।

सभी स्त्रियाँ मन में विचारकर सोचने लगीं कि इसका रूप मानव के समान नहीं हो सकता [७८८]। ज्ञात होता है कि दैवयोग से वियोग हो जाने पर दुखी होकर स्वयं कामदेव ने यह शोकपूर्ण शरीर धारण किया है। यह बहुत गुणी, चतुर और परिपक्व बुद्धि का ज्ञात होता है, परन्तु यह मूढ़ हमारी ओर भावपूर्वक आँख उठाकर भी नहीं देखता है [७८९]।

वे सोचने लगीं, यदि ऐसे पुरुष का साथ प्राप्त हो तो उसके साथ अनेक प्रकार से सुख-भोग किया जा सकता है।

जितने (स्त्रियों को आकर्षित कर सकने वाले) सुन्दर पुरुष होते हैं वे दुबले शरीर के होते हैं, चतुर स्त्रियाँ उनसे ही स्नेह करती हैं [७९०]।

(वे कामासक्त स्त्रियाँ) कभी कान खुजाती हैं, कभी आँखें घुमाती हैं, और कभी उसांस लेकर जंभाई लेती हैं। कभी वे नखों की ओर देखती हैं और कभी बाल संभालने लगती हैं। जब काम की ज्वाला उन्हें दग्ध करती है तो वे [७९१] करधनी खोलकर उसे देखने लगती हैं, शरीर ऐंठती हैं और उंगलियाँ चटकाती हैं। कभी वे घूंघट निकाल कर शरमाने लगती हैं और कभी घुंघरुओं का शब्द सुनाते हुए चलने लगती हैं [७९२]। वे कभी मुड़कर मुसकाती हुई उसका चित्त आकर्षित करने के लिए (लीलापूर्वक) चलती हैं और वे कामा-

कथाएँ हैं जो गिनी नहीं जा सकतीं। यक्ष और यक्षिणी को भी शाप के कारण[1] (वियोग) हुआ था। तू तो मानव है, तेरी कितनी सी बात है, देवताओं को भी वियोग दुख सहना पड़ा है [८२४]। अपने मन में ऐसा विचार कर, हे छिताई, अब शोक करना छोड़ दो।

छिताई उसांस लेकर कहने लगी कि मुझे अब अपने जीवन की आशा नहीं रही [८२५], मैं यह रुदन तो उस (अपने प्रियतम की रक्षा) के लिए कर रही हूँ, ताकि नयनों के नीर से हृदय के उत्ताप को शीतल कर सकूं। मैं अपने मन में यह निश्चय रूप से सोच रही हूँ कि (मेरे हृदय में) विरहाग्नि अत्यधिक (असमाना) प्रज्वलित हो रही है [८२६] और अंग-प्रत्यंग में अनंग की दावाग्नि लगी हुई है, मेरे हृदय में मेरे बालम का निवास है, (इस अग्निकांड में वह झुलस न जाए,) इसी कारण उसे बचाने के लिए नेत्रों से (अश्रु) जल ढालती हूं कि (हृदयस्थ) समरसिंह का शरीर दग्ध न हो [८२७]।

(छिताई कामदेव को प्रताड़ित करती हुई कहती है) हे चोर मदन, तू उस समय कहाँ चला गया था जब मेरा मेरे नाथ से संयोग था, तब मैं देखती कि तुझमें कितना बल (आधिक्य) है। हे काम, उस समय तू ने यह (अधिक बल) क्यों नहीं दिखाया [८२८]।

जब कमलिनी का पति सूर्य निर्मल होकर (आकाश में उदित रहता है) तब वह समुद्र के विस्तार को भी (सुखपूर्वक) भोगती है। (जब कमलिनी का नाथ नहीं है तब हे मदन,) तूने शीत का, जैसा वह सूर्य के विषुव[2] पर चले जाने के समय अपना (प्रभाव) प्रकट करता है, बल पाकर काम का अतिरेक कर दिया [८२९]। वह (ऐसे दिनों में कमलिनी) नितान्त अनाथ हो जाती है और कोई भी (उसकी सहायता के लिए) हाथ नहीं उठाता।

---

१. कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः
शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येनभर्तुः ।।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छाया तरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ।।मेघदूत १।१।।

२. कन्या राशि के पश्चात सूर्य तुलाराशि पर विषुव-पर होकर जाता है।

छिताई को दासी द्वारा योगी समरसिंह का समाचार मिलना (१६५९-१६८९)

(छिताई की) दासी प्रतिदिन (नायक गोपाल के यहाँ) देख जाती थी कि उनसे छिताई की वीणा के तारों की स्वरों में सज्जा नहीं हुई [८१६]। अन्य दिनों के समान (धोखे में) वह (आज भी नायक गोपाल के घर) गई और (वहाँ योगी समरसिंह को वीणा वजाते हुए देखा। (उसका) नाद सुनकर उसे तीर सा लगा। उसने वहुत विचार पूर्वक (वादक की) मूर्ति (उनहार) को देखा (ताकि उसका स्वरूप छिताई को वता सके तथा) वह जहाँ छिताई नारी थी वहाँ लौट आई [८१७]। (उसने कहा) कहीं से एक योगी आया है और उसने (तुम्हारी) वज्र वीणा को चढ़ा दिया है (तार मिला दिये हैं), जिसके तार मिलाने में गुणी गोपाल (नायक) भी हार कर रह गया, उसे उसने (नाद के अधिष्ठाता) शंकर के समान ठाट दिया (स्वर मिला दिये) [८१८]। (दासी ने) योगी की सब वातें (रूप उनहार) कहीं। (उन्हें सुनकर) छिताई के अंगों को वहुत सुख हुआ। दासी ने मन में सोच विचार कर (योगी की) मुखमुद्रा और उनहार वतलाई [८१९] तथा जिस प्रकार वह वीणा वजा रहा था वतलाया। इस प्रकार उसने योगी की सभी पहिचान (सहिदान) वर्णन की।

(पहिचान सुनकर छिताई के) नयन अश्रुपूर्ण हो गए और वह उसांसें भरने लगी, उसके मन में आनन्द हुआ और शरीर में (प्रिय मिलन की) आशा का संचार हुआ [८२०]। जिस प्रकार सावन-भादों में पानी वरसता है उसी प्रकार वह वाला अश्रुपात करने लगी। (रोते रोते) उस सुंदरी के नेत्र सिन्दूर जैसे रंग के हो गये, उसका हृदय विदीर्ण होने लगा और मुख से वचन निकलना वन्द हो गये [८२१]। सखी अपने आँचल से उसका मुख पोंछती है, परन्तु वहुत उपाय कर हार गई, (छिताई के) नेत्रों का (अश्रुपात) नहीं रुकता।

(सखी ने कहा) हे मुग्धा, उठो, जल से अपना मुख धोलो। तुम्हारे शरीर को क्या दुख व्याप्त हुआ है (यह वतलाओ) [८२२]। वियोग तो सीता-राम को भी हुआ था, तू तो मानव है, तेरी कितनी सी वात है। वहुत दुख उठाने के पश्चात उनका मिलन भी हुआ था (यह विश्वास मन में रखो)। (इसी प्रकार) नल और दमयंती को भी वियोग हुआ था [८२३]। पिछली (वियोग की इतनी)

निपुण नायक का नाम गोपाल था। समस्त संसार में वह (संगीत) रस-सिद्धि में भूपाल भरत के समान था। दूतों से (छिताई की प्रतिज्ञा को) जानकर उसने भी प्रयास किया था और छिताई की वीणा को अपने पास मंगवा लिया था [८०८]। उस वीणा के तारों को द्रुतगति से बजाकर छिताई ने उन्हें खोलकर उतार दिया था। वह बुद्धि का धनी (गोपाल नायक) उपाय कर कर के हार गया परन्तु उससे छिताई की वीणा के तार स्वर में सजाए (ठाटे) न जा सके [८०६]।

योगी समरसिंह पूनों के चन्द्रमा के समान सुन्दर था, वह योगी के वेश में था तथा दक्षिणी भाषा बोलता था। वह फिरते हुए नायक गोपाल के यहाँ पहुंचा। निपुण नायक ने उसके वेश को देखकर यह समझ लिया कि वह कोई गुणी व्यक्ति है [८१०]। सब नायकों (गोपाल नायक तथा उसके शिष्य नायकों) ने उससे पूछा कि इस दिशा में आपका कैसे आगमन हुआ? हे योगी! आपको नाद के स्वर तथा वाद्य-वादन का कोई अभ्यास है? [८११]

योगी ने मुस्कराते हुए कहा, में सब राग बजाना जानता हूँ।

छिताई की जो दक्षिणी वीणा गोपाल नायक के पास थी उसे लाकर उसने योगी को दिखाया [८१२]।

उस वीणा को छूते ही समरसिंह के शरीर को परितोष हुआ, उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो ग्रीष्म ऋतु के प्यासे व्यक्ति को जल प्राप्त हो गया हो। समरसिंह के हृदय में उस वीणा के स्पर्श से ऐसा सुख हुआ मानों स्वयं छिताई ने उसका आलिंगन किया हो [८१३]। समरसिंह के हृदय को उस वीणा के स्पर्श से ऐसा सुख हुआ जैसा सीता को (अशोक वन में रामचन्द्र की) मुद्रिका पाकर हुआ था।

वह बुद्धिमान योगी उस वीणा के तारों को स्वर में सजाना (ठाटना) जानता था। उसने वीणा को ठीक कर स्वर में कर दिया [८१४]।

जब उसने बजाने के लिए वीणा अपने कंधे पर रखी तब उसे ऐसा ज्ञात हुआ मानो उसे स्वयं छिताई मिल गई हो। योगी ने वीणा से इस प्रकार राग बजाना प्रारम्भ किया मानो वह शंकर के समान महान कलाविद हो [८१५]। उसने राग के स्वर इतने सरस प्रवाहित किये कि उन्हें सुनकर नायक गोपाल मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

जब विरह का राग बजाता है तो वे नाग अपना (दुष्ट) वेश (स्वभाव) छोड़ देते हैं, (सिहनीं भी ऐसी बेसुध हो जाती हैं कि) मृगों के शावक उनका दूध पीने लगते हैं। राग से लुभाए हुए उनके शरीर व्याकुल हैं (अतएव उन्हें यह ज्ञान नहीं रहता कि उनका दूध कौन पी रहा है) [८००]। सिहनियों के शावक मृगियों का दूध पीने लगते हैं। (समरसिंह के वीणा-नाद के कारण) वन में ऐसे विपरीत चरित्र दिखाई देते हैं। माता को बच्चों की पहचान नहीं रही और बच्चों को अपनी माताओं की पहचान नहीं रही [८०१]। इस प्रकार उस चतुर ने अपनी वीणा के नाद से पशु परिवार का मन हरण कर उन्हें अपने वश में कर लिया। नाद के सुख की आशा में वे बँध गये और उससे भ्रमित होकर वे समस्त आशा-पिपासा भूल गये [८०२]।

योगी समरसिंह ने एक अपूर्व कार्य किया। उसने प्रसन्न होकर पशुओं को दान दिया। उन उदार चित्त ने उसी क्षण अपने अनमोल हार मृगों के कंठों में डालकर उन्हें उपहार में दे दिये [८०३]। हीरों से जड़े हुए सोने के हार उसने रोझों के गले में पहना दिये। माणिक्य और मणियों से जड़ी हुई कंठश्री, अमूल्य सुन्दर नवग्रही (पहुंची) [८०४], कुंडल, चौकी और कटि की मेखला को उसने पशुओं को पहना दिया जिससे उनकी कला (रूप) निखर उठी।

इस प्रकार पशुओं को अपना अशेष दान प्रदान कर समरसिंह ने दिल्ली गढ़ में प्रवेश किया [८०५]।

समरसिंह का दिल्ली में नायक गोपाल के यहां पहुंचकर छिताई की वीणा बजाना (१६३८–१६५८)

समरसिंह ने हाथ में (योगी का) खप्पर लिया और एक शब्द (अलख) का उच्चारण करने लगा। (इस वेश में दिल्ली में प्रवेश कर) पूछते पूछते वह नायक (गोपाल) के घर पहुंचा। वहां उसे (छिताई का) कुछ चिह्न प्राप्त हुआ अतः वह विचार कर दो घड़ी वहां रुका [८०६]।

जब बादशाह ने सुन्दरी (छिताई) को पकड़ा था तभी छिताई ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो भी मेरी वीणा को बजा सकेगा मैं उसी की हो जाऊँ [८०७]।

समरसिंह की अलाउद्दीन से भेंट और छद्म परिचय देकर संगीत प्रदर्शन (१७०६–१७२५)

उसे देखकर सुल्तान मन में कहने लगा कि इसके समान कोई मानव या राजा नहीं है। दिल्ली के नरेश ने पूछा, तुम्हारा देश कौन सा है [८४०] ?

(समरसिंह ने कहा) जहां जल में मोती प्राप्त होते हैं, स्थल पर हीरा मिलते हैं; रण में और वन में हाथी मिलते हैं और घर-घर में पद्मिनी नारियाँ मिलती हैं, वह सिंहल देश धन्य है [८४१]। योगी ने विनय पूर्वक कहा, हे नरेश, सुनो, उसी सिंहल देश में मेरा जन्म हुआ है। जब मुझे प्रेम-वियोग हुआ तब मैंने अपनी काया को कष्ट में डालकर योग साधन किया [८४२]।

(योगी ने अपने) सिर से खप्पर उतार लिया और उसे सभा के बीच में रख दिया, (जिससे) उसके जटा जूट तत्काल बिखर गये। (ऐसे वेश में उसने कहा) मुझे नगर के निकट ही लूट लिया गया [८४३], इस नगर ने मेरा सर्वस्व अपहरण कर लिया। यह सुनकर समस्त सभा को आश्चर्य हुआ।

उसी क्षण बादशाह ने उससे पूछा, ठीक बतला, योगी वेश में तू कौन है [८४४], तू कपट रूप बनाकर फरियाद कर रहा है, तू अपनी मूल वास्तविकता कह !

(योगी ने कहा) हे सुल्तान, यदि आप स्वयं चलें तब आपको चोरों का ज्ञान हो सकेगा [८४५]।

उसी समय बादशाह घोड़े पर सवार हुआ और योगी का व्यवहार देखने के लिए चला। पांच योजन दूर जहाँ जंगल था वहाँ योगी के साथ सुल्तान पहुंचा [८४६]।

बादशाह हँस कर कहने लगा कि हे योगी, अब मुझे चोर दिखलाओ।

(योगी ने कहा) अब संध्या समय हो गया है, अब आप अपनी आँखों से चोरों को आता हुआ देख लेंगे [८४७]।

योगी ने नाद की ऐसी सरस ध्वनि की जिसे सुन कर तपस्वियों की भी सुधि-बुधि हरण हो जाए। उस नाद के रस से मृग रीझ गए और भय छोड़कर उसके साथ घूमने लगे [८४८]। बादशाह यह देखकर मोहित हो गया कि रोझ, रीछ, पशु, सर्प, मोर, चकोर, कोकिल तथा शुक नाद से लुभाकर व्याकुल शरीर हो गए [८४९]।

(इस प्रकार विरह) प्रलाप करने के पश्चात (छिताई के हृदय में) आशा वँधी और उसने फिर दासी को (योगी समरसिंह को देखने के लिए) भेजा [८३०]। (उसने दासी से कहा) आशा के कारण मैं तुझ से यह दीन वचन कहती हूं कि जिस योगी ने यह वीणा ठाट दी, वह कौन है, कहाँ का है, इसका पता उसे घर-घर में खोज कर लगा ला [८३१]।

योगी समरसिंह का राघवचेतन के माध्यम से अलाउद्दीन से मिलना (१६९०–१७०५)

वीणा ठाट कर और उसे (नायक गोपाल को) सुनाकर योगी राघवचेतन के घर चला। राघवचेतन राजमहल जाने के लिए अपनी पौर से निकला ही था कि उसे समरसिंह मिल गया [८३२]। वह योगी के वेश में भिक्षुक के रूप में था। राघवचेतन ने उसे देखा और वह उसका मुख देखता ही रह गया। जब योगी ने बातचीत प्रारम्भ की तो राघवचेतन का मन मुग्ध हो गया [८३३]। मीठी वाणी में योगेन्द्र ने कहा, हे विप्र, मुझे बादशाह से मिला दो। तब राघव-चेतन उसे साथ लेकर चला और (मार्ग में योगी के) पिछले जीवन के विषय में पूछता गया [८३४]।

(राघवचेतन) उसे दरबार के बाहर छोड गया और स्वयं जाकर राजा से सार बात कही। उसने जाकर बादशाह से इस प्रकार बात कही जिस प्रकार उसे सुनने में अच्छी लगे [८३५]। उसने कहा, एक अपूर्व योगी आया है, यदि आज्ञा हो तो उसे बुला लूं। उसके हाथ में वीणा है और (मुख पर) वैराग्य भाव है तथा वह दक्षिणी भाषा बोलता है [८३६]। राघवचेतन ने कहा, हे सुल्तान, सुनो, सिद्ध योगी बहुत गुणी है। उसका कण्ठ मधुर है, वह सुन्दर और सुजान है। वह बादशाह के द्वार पर दरबार का (आयोजन) सुनकर खड़ा है [८३७]। वह (इतना सुन्दर है कि) देखने मात्र से मन हर लेता है। यदि बाद-शाह आदेश दें और क्रुद्ध न हों तो मैं उसके आपको दर्शन करा दूं [८३८]।

बादशाह ने उसी क्षण आदेश दिया और समरसिंह वहाँ योगी के वेश में पहुंचा। वहाँ सुल्तानी सभा जुड़ी हुई थी। सब सभासद योगी की प्रभा देखकर मोहित हो गए [८३९]।

सन्ध्या हो गई और गजर बनने लगा। कौओं ने रैन बसेरा ग्रहण किया और कामदेव ने अपना साज सजाया [८५७]। (परन्तु बादशाह के नीरवता रखने के आदेश के कारण) कहीं वाद्ययंत्र एवं ढोल नहीं बज रहे हैं, कोई ऊँचे स्वर में बात नहीं करता है, बादशाह (के आदेश के कारण) नगर में अत्यधिक आतंक फैला हुआ है, हाथी और घोड़े भी शब्द नहीं कर रहे [८५८]। सब योगी की ख्याति का वर्णन कर रहे हैं कि वह वन में बैठकर रात में वीणा बजा रहा है। उसने समस्त पशु परिवार वशीभूत कर लिया है और इस प्रकार उस चतुर ने सबका मन हरण कर लिया है [८५६]।

रात्रि के तीसरे पहर में पशुओं ने (समरसिंह की वीणा का) नाद सुना। वे उसके साथ हो लिए (क्योंकि वे स्वर के) माधुर्य को (सुनना) छोड़ नहीं सकते थे। कीर, कोकिल, मोर और सर्प उस (स्वर पर) रीझ कर उसके साथ नगर में चले [८६०]।

समरसिंह का नगर-प्रवेश और नरनारियों का एकत्रित होना (१७४८–१७५१)

(इस प्रकार समरसिंह और उसके वनचर साथी) जब दरबार की ओर चले तब नगर के लोग उस कौतुक को देखकर हार गये। नगर में उसके कौतुक का समाचार सुनकर सारी दुनियाँ उसे देखने के लिए उमड़ पड़ी [८६१]। उसे देखने के लिए अनुपम कामिनियाँ भी उठ चलीं। उनके रूप का वर्णन कौन कर सकता है। यदि मैं (कवि) उनके रूप का यहाँ वर्णन करने लगूं तो कथा कहते-कहते उसका अन्त प्राप्त न कर सकूंगा [८६२]।

नारियों का विमोहित होकर आना और हरम में एकत्रित होना (१७५२–१७५६)

(नगर की वे नारियाँ एक दूसरे के हाथ में हाथ डाल कर चलीं। उन साथ साथ चलने वाली नारियों के नेत्र मृग जैसे थे। उनमें से कुछ ने (उतावली के कारण) एक ही नेत्र में अंजन लगा पाया था, कुछ सीधी तरह बात भी नहीं कर पा रहीं थीं [८६३], कुछ ने अपने केशों में तेल डालकर उन्हें चिकना कर लिया था परन्तु कंघी हाथ में ही थी (बाल संवारे नहीं थे) और इसी रूप में वे कौतुक देखने निकल पड़ीं। कुछ के हाथ में चन्दन और दर्पण था

सुल्तान द्वारा समरसिंह से रनवास में संगीत-प्रदर्शन करने की याचना (१७२६–१७४७)

योगी की यह युक्ति (कुशलता) देखकर बादशाह ने सोचा कि भिक्षुक के वेश में यह कोई गुणी व्यक्ति है। बादशाह ने प्रसन्नचित होकर (योगी से) कहा, यह चरित्र (प्रदर्शन) मेरे रनवास में दिखाओ [८५०], उससे राग के रस का रंग अधिक बढ़ेगा। तू जो मांगेगा वह दान मैं तुझे दूंगा। बादशाह ने धर्म को साक्षी देकर यह वचन दिया और याचना की कि तेरे इस गुण को मैं अपने हरम को दिखाना चाहता हूं [८५१]।

समरसिंह ने कहा —

मैं राज्य-सुख, सम्पत्ति और घर छोड़कर आया हूं, मुझे लक्ष्मी से क्या स्नेह है ? परन्तु यदि आप अविचल वचन दो तो मैं आपके नगर में पशुओं का प्रवेश करा दूं [८५२]। यदि अपने वचन पर दृढ़ रह सको तो आप दिल्ली गढ़ में जाओ और सबको रोक दो कि कोई आहट न करे [८५३]।

सुल्तान ने कहा—

यादव कुल का राजा रामदेव है, मैंने उस पर आक्रमण कर उसे पराजित किया। छल कर मैंने उसकी पुत्री पकड़ली। उसने जो वचन मुझ से मांगा वह मैंने उसे दिया [८५४]। उसने वह वचन माँग कर मुझे ही छल लिया। और अब तो मैं (विरह वेदना में अनुदिन क्षीण हुई छिताई की कभी भी मृत्यु हो जाने की आशंका में) स्त्री हत्या के पाप से डर रहा हूं। हे भाई, अपना यह गुण उसे दिखाओ, जिससे वह किसी प्रकार तो अपने शरीर से दुख निकाल दे (अन्यथा वह इस दुख में अपघात कर लेगी और मुझे स्त्रीवध का पाप लगेगा) [८५५]।

यह भेद जानकर समरसिंह को सुख हुआ। वह मन में जान गया कि सुन्दरी सच्चरित्र और शीलवान है। उसने बादशाह को (इच्छा-वर देने के) वचन में दृढ़ता से बाँध लिया और उसके साथ नगर के निकट, जहाँ बादशाह का महल (घर) था, गया [८५६]।

बादशाह ने सबसे योगी के गुण का बखान किया जिसे सुनकर सब सभा को आनन्द हुआ।

जिन नारियों को छिताई ने (गीत, नृत्य, वाद्य में) प्रवीण किया था वे सब गीत और नाद के रस में लीन हैं। वे सरमण्डल, सरवीणा संभाल कर (ठाट कर) लिए हुए हैं और वे श्रेष्ठ स्त्रियां मुरज और मृदंग लिए हैं [८७३]। वे प्रेमकपाट, पखावज और वीणा धारण कर संगीत (तमाशे) में लवलीन हो गईं।

कविजन नारायणदास कहता है कि इस प्रकार बादशाह का रनवास सज कर बैठा [८७४]।

हरम में समरसिंह का आगमन (१७७६–१७८५)

उसी समय वहां सुजान समरसिंह आ गया जहां अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ सुल्तान बैठा हुआ था। (समरसिंह के साथ) रोझों, खरहों, सांभर मृगों का समूह (माला) था, हरिणियां मधुर चाल से चलती आ रही थीं [८७५]; विविध रंग के मोर, चकोर, कोकिल समरसिंह के साथ फिर रहे थे।

(हरम में) मन को हरने वाली, मृगलोचनी, तीक्ष्ण सौन्दर्यमयी युवा तुर्किनियां थीं [८७६]। (बादशाह का ऐसा) हरम (समरसिंह को देखकर अपने आपको) भूल सा गया और उसे देखकर भ्रमित हो गया। वह मदन से भी अधिक रूपवान था। उन मृग नयनियों ने उसके साथ मृगों को देखा जो उसके अंगों को चाट और सूंघ रहे थे [८७७]। इस प्रकार (की लीला) देखकर उनके चित्त प्रफुल्लित हुए। हरम की उन स्त्रियों के हृदय में समरसिंह बस गया। उन कामिनियों के शरीर और मन व्याकुल (हनन) हो गए। मुग्धा और प्रौढ़ा सभी उसे देखने लगीं [८८८]।

वह विरही (समरसिंह) वीणा से राग बजा रहा था। (उसे सुनकर) उनकी आखों से गजमुक्ताओं के समान आंसू टपकने लगे। राग की डोर से उन्हें आनन्द हुआ (जिसके अतिरेक के कारण वे) नयनों से अश्रु बहाने लगीं [८७९]।

समरसिंह और छिताई का एक-दूसरे को देखना तथा छिताई की वेदना (१७८६–१८०२)

वे सुन्दरियाँ पूर्ण और अमूल्य थीं और उनके रूप को देखकर आं गिरा रही थीं (फिर भी अब तक योगी विचलित नहीं हुआ था, परन्तु) जैसे

(उसे लगाया नहीं था) और इसी प्रकार वे (महल की) चित्रशाला में कौतुक देखने के लिए घुम गईं [८६४]। कुछ आधी ही नहा पाईं थीं। उन्हें इतनी अधिक उतावली हुई कि वे वैसी ही उठकर चलदीं। कुछ केवल एक ही कान में तरका (ताटंक) पहन कर चलदीं, कौतुक के देखने की उतावली ने उन्हें अज्ञान बना दिया [८६]। स्थान स्थान पर इस प्रकार के तमाशे दिखाई देने लगे। जैसे जैसे समरसिंह प्रसन्न होकर (वीणा वादन करता था) लोग छज्जों पर चढ़कर देखते थे और (उसके स्वर को सुनकर) सयाने लोगों को भी वियोग सताने लगता था [८६६]।

अलाउद्दीन के हरम में रमणियों की संगीत–सभा (१७६०–१७७५)

(वादशाह ने) हरम की सब स्त्रियों को वुलाकर भांति भांति के शृंगार से सुसज्जित कराया और स्वयं सिर पर छत्र लगवा कर वैठ गया। वहाँ उसने छिताई को वुलाकर खड़ा कर लिया [८६७]।

कामिनियाँ आनंद प्रकट करने लगीं। मानो कामदेव का गजराज चारो ओर घूम रहा हो इस प्रकार वे नृत्यशील हुईं। उनका रूप वर्णन करने लगूं तो कथा वहुत वढ़ जाएगी [८६८]।

(उनमें से) कुछ कामिनियाँ कटाक्ष कर रही हैं, (उनके घूमते हुए नेत्र ऐसे ज्ञात होते हैं) मानो मदन के झरोखे (गोलक) में भ्रमर (पुतली) चक्कर खा रहा हो। कुछ कामिनियाँ (रूपक के लिए) वेश वनाए हुए (पात्र) और यौवन से पूर्ण, सुवर, सुजान एवं अत्यन्त सुन्दर हैं [८६९]। वे मधुर कण्ठ से छन्द (पिंगल) सुना रही हैं। वे महामुनियों के मन को भी हरण कर लेती हैं।

कुछ के हाथ में किंगिरी (एक तंतु वाद्य) शोभा दे रही है। वे राग के रस रंग से भरी हुई हैं [८७०]। कुछ दुतारा रवाव वजा रही हैं और सुन्दर सुघर गले से गा रही हैं। कुछ के हाथ में मंद स्वर के रससार ढेंका तथा चन्द्र (तंतु वाद्य) हैं जिनके तार वे अपने हस्तकौशल (हथौटी) से मिला रही हैं [८७१]। वे नारियां अनेक प्रकार की विचक्षण वाणी वोलती हैं, मानो वसंत (मस्त कुसुम) की सेना हो। कुछ कामिनियों के कंधों पर (वाद्य) यंत्र रखे हुए हैं, उनका वर्णन मैं इस प्रकार करता हूं कि मानो वे वशीकरण के मंत्र हैं [८७२]।

राजरानी (कुंवरि) ने अपने गले से हार उतारा और विना सोचे समझे (हरिण के) सींगों में पहना दिया [८८९]। (इधर) योगी नाद बन्द कर ध्यानस्थ हो गया था। यह देख कर हरिण शीघ्रता से भागे। एक पंक्ति में (सीधा) साठ हाथ का (हरम का) परदा लगा हुआ था उसे फांदने में उन्हें कुछ देर न लगी [८९०]।

सब हरिण भाग कर जंगल में चले गये, यह देख कर योगी को वहुत पछतावा हुआ। हयवति मलिका ने क्रोध पूर्वक कहा कि तेरा गुण मैं कौड़ी के मोल का मानती हूँ [८९१]। मैंने जिस हरिण के गले में अपना हार डाला है उसे तू शीघ्र लौटा ला। मैं अपने हाथों से उसके सींगों से यदि अपना हार उतार सकूंगी तो तू जो मांगेगा वह तुझे दूंगी [८९२]।

यह सुनकर राजकुमार वहां पहुँचा जहाँ अगाध यमुना नदी वह रही थी। चारो ओर वन, वेहड़ और झरने थे। वहां उसने वीणा उठाई और वह वहुत उदास हो गया [८९३]। वह शारदा का स्मरण कर राग वजाने लगा और उसने दीपक राग का स्मरण किया (वजाया)। (राग को सुनकर) वह हरिण जिसके सींगों पर हार पड़ा हुआ था अपने परिवार सहित आ गया [८९४]। और भी वहुत पशु आ गये जिनका (गणना का) मर्म समझना कठिन है। वे सब राग के विचार में भूल कर (समरसिंह) के साथ हो लिए। राजकुमार वीणा वजाता रहा और कुरंगों का मन मोहित होकर उसमें लवलीन रहा [८९५] आसपास मृग थे और बीच में राजकुमार, मानो गायों के वीच में गोपाल जा रहा हो। उनके बीच कुँअर ऐसा शोभा देता था मानो श्याम घटाओं के वीच सूर्य चमक रहा हो [८९६]।

उसका यह चरित्र देखकर सुल्तान रीझ गया (और बोला,) अवे नुसरतखां, मुझे यह वतला कि दिल्ली शहर में यह नाद करने वाला वीणा के स्वरमाधुर्य से (बांधकर) हरिण लाया है [८९७], और जिस पर समस्त दिल्ली शहर रीझ गया है, वह कौन है। नुसरतखां ने कहा, वह योगी है। वादशाह ने मन में उसकी वहुत सराहना करते हुए कहा, इस योगी का जीवन धन्य है [८९८]। (नगर के) समस्त गुणी 'अस्तु, अस्तु' कहने लगे, (और कहने लगे) हे कुंअर, तेरी विद्या धन्य है। छिताई को भी पूर्ण परिचय हो गया कि यह समरसिंह की ही कला हो

छिताई पर (समरसिंह की) दृष्टि पड़ी, वीणा का नाद थम गया और ध्वनि विशृंखल हो गई [८८०]। आंखों से आँखें मिल गईं। वे बहुत प्रयत्न करते हैं परन्तु दृष्टि हटती नहीं है। इधर सुन्दरी (छिताई) के आंसू ढलने लगे और वे अलाउद्दीन के कन्धे पर गिरने लगे [८८१]। स्नेह विभोर होकर छिताई नारी रोने लगी, मानो वियोग रूपी सरोवर ने (उमड़ कर) किनारा तोड़ दिया हो।

जब कन्धे पर उष्ण (अश्रु) पड़े तब बादशाह ने फिर कर देखा [८८२]। उसने छिताई के मुख को देखा तो उसे ऐसा ज्ञात हुआ मानो उगते हुए (पूर्ण) चन्द्र को राहु ने ग्रस लिया हो। उसके वस्त्र मलिन थे, वह पद्मिनी परवश थी, फिर भी उस वियोगिनी की रूपछटा बनी हुई थी [८८३]। बादशाह ने जैसे ही उसे देखा (उसके रूप ने) उसका मन चुरा लिया। (बादशाह को अपनी ओर देखते हुए देख) छिताई ने मुख नीचा कर लिया। तब सुल्तान ने उसे सम्बोधित कर (हकारी=बुलाकर) कहा, छिताई नारी, तू क्यों रो रही है [८८४]। हे सुन्दरी, यह अद्वितीय घटना (बात) देख, नाद से लुभा कर पशु योगी के साथ हो लिये हैं। मैं तेरे (मनोरंजन के) लिए ही इसे यहां लिवा लाया हूं, किसी प्रकार भी तो तेरा दुख मिट सके [८८५]।

(यह सुनकर और समरसिंह का योगी सम्बोधन सुन) समझ कर छिताई मन में कहने लगी, मेरे पापी प्राण (यह देख-सुन कर भी) अब भी शरीर में टिके हुए हैं, वे हंस पक्षी के समान उड़ क्यों नहीं जाते। (उनके शरीर न छोड़ने के कारण मुझे) समरसिंह का दुख (योगी वेश) अपनी आखों से देखना पड़ रहा है [८८६]। विधाता ने मुझे मानव का जन्म क्यों दिया और यदि मानव का जन्म ही देना था तो फिर स्त्री क्यों बनाया, यदि स्त्री ही बनाना था तो फिर वियोग क्यों दिया। हे प्राण, अब संयोग हो गया है, अब तुम यह शरीर छोड़ जाओ [८८७]। मेरे कारण मेरा पति वियोगी (वैरागी) हो गया और मेरे प्राण (इतने कठोर हैं कि वे) अब तक नहीं निकले।

हयवति मलिका द्वारा समरसिंह के संगीत की परीक्षा (१८०३–१८३७)

हयवति मलिका का समस्त हरम बहुत सराहना कर समरसिंह की कला के प्रति कहने लगा कि यह सच्चा गुण है [८८८]। (यह सुनकर) हयवति मलिका भी योगी के गुण को पूर्णतः देखने के लिए (जहां योगी था वहां) पहुँची। उस

करूंगा [६०८]। हयवति मलिका मेरे हृदय में बसती है और वह मेरे हृदय का सब मर्म जानती है (वह कह सकती है कि मैं बात का पक्का हूं)। तेरे मन में जो कुछ बसा हो वह तू मांग ले, ऐसा बादशाह ने योगी से कहा [६०६]।

समरसिंह ने कहा, हे बादशाह, सुनो. तुम्हारा राज्य समस्त जम्बूद्वीप (एशिया) में फैला हुआ है, तुमने अनेक देशों के राजाओं को जीता है, तुम्हारे तेज का वर्णन कैसे किया जा सकता है [६१०], समुद्र को कोई बांहों में नहीं बांध सकता। तुम अवश्य अपने वचन का प्रतिपालन करोगे। समरसिंह ने मन में विचार करते हुए कहा, बादशाह, मुझे छिताई नारी दान में दे दो [६११]।

वहां नटुवा (नटराज=संगीताचार्य, नायक, नट्टवन) गोपाल भी खड़ा हुआ था, (जो छिताई की प्रतिज्ञा को जानता था)। उसके वचन बड़े खरे थे और उनसे हृदय की रसालता प्रकट हो रही थी। बादशाह ने (योगी के वरदान मांगने पर) मन में विचार किया और छिताई नारी को बुलाया [६१२]।

(जब छिताई आई तो बादशाह ने कहा), हे सुन्दरी मुझे एक वचन दे। यह योगी भी तुझे मांग रहा है। मैंने इस योगी को (इच्छा वर देने का) वचन दिया है, तू मेरे वचन (कौल) की रक्षा कर [६१३]। इसका गुण बहुत अधिक है, उसकी गणना नहीं हो सकती, तू ने तो स्वयं अपने कानों से उसे सुना है। सुन्दर कंठ से तो सभी गाते हैं परन्तु पशु-परिवार को विमोहित करके कौन वशीभूत कर सकता है [६१४]। मैंने तेरे पास दासी भेजी थी। उससे तूने कहा था कि जो भी मेरी वीणा बजा देगा मैं उसे अंगीकार कर लूंगी [६१५]।

छिताई ने कहा, हे बादशाह, सुनो, इसने मेरे कारण ही योगी का वेश बनाया है और अनेक वनों में निवास किया है। मेरे कारण ही यह परदेशों में भटकता (हांडता) फिरा है [६१६]। छिताई ने कहा, यह मेरा पति है, इसने मेरे कारण ही योग धारण किया है।

जब सुन्दरी ने (इस प्रकार) समझा कर बात कही तब (सुल्तान ने) समरसिंह को अपने पास बुलाया [६१७]।

गुण देख कर (समरसिंह पर) सुल्तान प्रसन्न हो गया था, अतः उसने (फिर) आदेश दिया, मांग, जो मांगना है, मांग।

सकती है [८६६], यह विद्या उसी के द्वारा प्रयुक्त हो सकती है, उससे अधिक गुणी दूसरा कोई नहीं है। (छिताई ने सोचा कि इसे देखकर ही) मेरे नेत्र भर आए तथा जो कुच मैंने दृढ़ता से बाँध लिए थे वे (कंचुकी को) तोड़ रहे हैं (यह सहज स्नेह के उद्रेक के कारण हुआ है, अतएव निश्चय यह समरसिंह है) [६००]।

हयवति मलिका भी बहुत सराहना करने लगी (और कहने लगी), हे योगी, तेरा जन्म धन्य है। उसने (हरिण के) सींगों से अपना हार उतार लिया और उसे समरसिंह को उपहार में दे दिया [६०१]। उसने जंगम से 'मांग, मांग' कहा, (और कहा कि) जिस अच्छी वस्तु पर भी तेरा मन हो माँग ले।

हरिणों के इस दूसरे चरित्र (प्रदर्शन) के विषय में सुनकर बादशाह को अपने दिये हुए वचन का स्मरण हो आया [६०२]। योगी ने महल के अन्तःपुर में छिताई को देखा कि वह (बादशाह की) हवा कर रही है। छिताई ने भी उसे पहिचान लिया परन्तु बादशाह की मर्यादा के कारण वह कुछ बोल न सकी [६०३]। वह चुप होकर रह गई और उसने कोई उत्तर नहीं दिया। योगी यह सब भेद जान गया। जब दोनों ने एक दूसरे को देखा, उसके नयनों में अश्रु आगए और हृदय भर आया [६०४], मानो ग्रीष्म ऋतु में दावाग्नि ने झुलसा दी हो, अथवा कामदेव रूपी भुजंग ने उसे डस लिया हो और विष की लहरें आने लगी हों। उसे काम की व्यथा असह्य होने लगी और नयनों से नयन मिलकर रह गये [६०५]।

छिताई का रुदन और अलाउद्दीन द्वारा समरसिंह को छिताई दान में देना (१८३८-१८८३)

बादशाह के सिर पर (छिताई के) अश्रु गिरने लगे तब उसने ऊँचा सिर कर के देखा। छिताई मन में बहुत दुखी हो रही थी (अतएव बादशाह ने उससे पूछा,) यह योगी तेरा कौन है [६०६]।

योगी के राग से सुल्तान रीझ गया था (अतः) उसने (योगी से) कहा, हे योगी, तू मांग, मैं तुझे दान दूंगा। मैंने तुझे वचन दिया था, यदि उसे पूरा न करूँ तो मुझे पाप लगेगा [६०७]। जो वचन देकर मुकर जाते हैं उनका पंच लोग मुंह भी नहीं देखते। दिल्लीपति ने यह कहा कि मैं अपनी कीर्ति की रक्षा

ने कहा। जब बादशाह ने विदा कर दी, तब वह छिताई को साथ लेकर चला [९२८]।

अलाउद्दीन द्वारा छिताई को उसके गहने लौटाने के लिए हेजम द्वारा बुलाना तथा भ्रमवश छिताई और समरसिंह का मरण (१८८४–१९२९)

सुन्दरी (छिताई) को साथ लेकर राजमहल की पौर लांघकर समरसिंह राजद्वार के बाहर पहुँचा। जब सुन्दरी (छिताई) ने महल के बाहर चलना प्रारम्भ करने के लिए एडी (छवांड) रखी ही थी तब (उसके आभरणहीन चरणों पर) अलाउद्दीन की दृष्टि पड़ गई [९२९]। (उन्हें देखकर अलाउद्दीन को स्मरण हो आया कि छिताई के गहने उसने उतरवा कर रख दिये थे, अतएव उसने आदेश दिया कि) जो आभरण उतरवा कर रखवा दिये हैं वे सब उसे शीघ्र बुलाकर दे दो। (इस आदेश के पालन के लिए) हेजम वहां पहुंचा जहां राजकुमार छिताई को अपने साथ लेकर जा रहा था [९३०]।

हेजम ने छिताई से यह कहा कि शीघ्र लौटकर चलो, सुल्तान बुला रहा है। (यह सुनकर समरसिंह ने सोचा कि) सुल्तान के मन में (छिताई को प्राप्त करने का) लोभ उत्पन्न हो गया है इसी कारण उसने उसे बलाया है। हे दैव, अब मैं उसे कैसे प्राप्त कर सकता हूं [९३१]। (समरसिंह ने कहा) स्वप्न में यदि किसी को धन प्राप्त हो जाए तो जागने पर वह मिथ्या हो जाता है, अर्थात्, कुछ हाथ नहीं रहता। विधाता ने यही दशा मेरी की है, अब इस जन्म में सुन्दरी (छिताई) को प्राप्त नहीं कर सकूँगा [९३२], मुझे वह स्वप्न के धन के समान मिली थी, ऐसे वचन समरसिंह ने दुःख करते हुए कहे। (उसने कहा) मैंने क्यों व्यर्थ ही योग धारण किया और लोक लज्जा छोड़कर पागलों की तरह हो गया [९३३], मैं व्यर्थ ही चारो ओर तीर्थ करता हुआ फिरा, मेरे हृदय में जो आशा थी वह आज निराशा में बदल गई। राजकुमार ने कहा, विधाता बहुत क्रूर है, पानी मांगने पर वह अंगार बरसाता है [९३४]।

(समरसिंह) इस प्रकार रोने और पछताने लगा जिस प्रकार कोई रंक करोड़ों का धन पाकर उसे तिल-तिल जोड़कर इस डर से सम्भालकर रखता है कि कहीं कोई छीन न ले और मानो उस रंक का वह धन छीन लिया गया हो

तब भी कुंअर ने विचार कर (यही) कहा, मुझे छिताई नारी (ही) दान में दे दीजिए [६१८], मैं और कुछ नहीं मांगना चाहता; सुल्तान मुझे तो इसी को बख्शीश में दे दो।

जब समरसिंह ने ऐसा वचन कहा, तब बादशाह बहुत दुखी हुआ [६१६]। उसने कहा, मैं अब छिताई तुझे देता हूं क्यों कि तेरे गुण को सुन कर मुझे बहुत सुख मिला है। यदि मैं वचन देकर झूठा पड़ जाऊँगा तो मेरे लोक और परलोक दोनों बिगड़ जाएँगे [६२०]। जो निर्लज्ज वचन देकर सत्य छोड़ देते हैं उनका जीवन व्यर्थ है, ऐसा सुल्तान ने कहा। बादशाह न उसी समय छिताई उसे दे दी।

वह धन्य है जिसकी सराहना बादशाह करे [६२१]।

तब सुन्दरी मन में बहुत प्रफुल्लित हुई। (बादशाह ने) नटुवा (नायक गोपाल) को बुलाकर उसे प्रदान किया और राजकुमारी को योगी के साथ कर दिया तथा उसे विदा किया। (योगी) उसे साथ लेकर चला [६२२]।

सुल्तान अलाउद्दीन ने कहा, मैं तो तेरा ज्ञान (गुण) देखना चाहता था। योगी के वेश में तू कौन है और मुझे भ्रम में डालने (के लिए छद्म परिचय दे रहा है) यह मैं जानता था, ऐसा सुल्तान अलाउद्दीन ने कहा [६२३]।

समरसिंह ने मन में विचार कर कहा, यह सुन्दरी मेरी धर्मपत्नी है, राजा रामदेव की इस पुत्री के कारण ही मैंने योग का कष्ट सहन किया है [६२४]। यह भी सत्त का साधन करती रही है, यह बात तो स्वयं बादशाह, आपने ही कही है।

सुल्तान ने कहा—

इस बात में भी विधाता ने चूक नहीं की, जैसी पत्नी है, वैसा ही पति है [६२५]। जब तूने पहले फरियाद की थी तभी मैंने तेरी वास्तविकता जान ली थी, जब तू मुझे चोरों के पास ले गया था तभी मैं तेरे मन की बात जान गया था [६२६]। जब वीणा के तारों को साध कर तूने नाद (राग) बजाया था तभी मैं तेरी वास्तविकता (स्वाद) समझ गया था, जब तेरा रूप देखा था तभी (तुझे पहचान कर) मैंने तुझे छिताई नारी प्रदान कर दी थी [६२७]। अब तू क्षेम-कुशल सहित अपने घर चला जा, मैं तुझे विदा करता हूं, ऐसा सुल्तान

ाल दिया। स्वयं बादशाह ने सुपुरुष (समरसिंह) और छिताई को (वस्त्राभूषण) हनाकर उनकी तुष्टि की [९६३]। बादशाह ने उन्हें पांड्य देश तथा विजय ागर के गढ़ का संपूर्ण (प्रदेश) प्रदान किया तथा बहुत ऊँचे एवं लम्बे दाँतों ाले सिंहल देश के सौ हाथी दिये [९६४]। (बादशाह ने) अरब और तुषार ेश के घोड़े दिये तथा (समरसिंह को) पोशाक पहनाकर बारम्बार आश्वस्त केया। (बादशाह ने) भालदार साथ दे दिये और अच्छे लालरंग के तम्बू दिये [९६५]। बादशाह ने जितना द्रव्य (गाड़ियों में) भरवाकर दिया उसकी गिनती कैसे हो सकती है। उसने गंभीर घोषवाले नगाड़े दिये और अपने हाथ का (घोड़े की सवारी के लिए) चाबुक दिया [९६६]। (बादशाह ने समरसिंह के) हाथ में ौग देकर कहा कि हे नरनाथ (समरसिंह), आप (मेरी ओर से) दुर्गम गढ़ों को वेजित करो और जहाँ आपको अपनी शक्ति सफल होती न दिखे वहाँ हमारी सेना बुलवा लो [९६७]।

इतना समान समरसिंह को देकर (बादशाह ने) छिताई को अपने पास बुलाया (और कहा), तुने मुझे पिता कहा है। मैं भी तुझे बेटी के समान ही मानता हूं [९६८]। बादशाह ने उसके लिए आभरण गढ़वा कर दिये जिनमें हीरा तथा रंगबिरंगे (मणि) जड़े हुए थे, उनके ऊपर फीरोजा तथा लाल भी जड़े हुए थे। गजमुक्ताओं की माला भी उसे दी [९६८]। बादशाह ने अमूल्य वस्त्र पाटम्बर तथा दूध जैसे धवल क्षीरोदक दिये। इस प्रकार बादशाह ने दान दिया और वह तो दिल्ली का नरेश था [९७०], (अतः) बादशाह के हृदय में बहुत कृपा उत्पन्न हुई और उसने समरसिंह को बुलाया तथा छिताई को स्वयं ही बुलाकर उसके हाथ में सौंप दिया [९७१]।

बादशाह ने कहा अब सकुशल अपने घर जाओ, मैं तुम्हें बिदा देता हूं। यह संगीताचार्य (नटुवा—गोपाल नायक) भी मैं तुझे सौंपता हूं, मेरा जीव इसमें बसता है (अर्थात, यह मुझे प्राणों के समान प्यारा है) [९७२]।

समरसिंह ने कहा, हे बादशाह, तुम्हारी धाक से शत्रुओं के देश कांप उठते हैं, तुम्हारी टक्कर लगने पर पृथ्वी पर कोई जीवित नहीं रह सकता। ऐसा बादशाह कभी कोई नहीं हुआ [९७३]। तुमने अपने वचन का पालन किया, इस कारण तुम्हारी कीर्ति चलती रहेगी।

प्रकार) तू मेरा कलंक मिटा दे, मैं तुझे रंक से ईश्वर (इन्द्र) बना दूंगा। लोक प्रवाद कैसे मेटा जा सकता है, (लोग यही कहेंगे कि बादशाह ने) सुन्दरी को देकर फिर छीन लिया (इसलिए वे दोनों मर गये) [९५४]।

राघवचेतन ने विनय पूर्वक कहा, हे बादशाह, आप मेरा कहना मनमें धारण कीजिए। यदि आप मुझे आदेश देते हैं तो फिर, हे सुल्तान, लालच मत कीजिए [९५५]। आप कुरान (मुसाफ) उठाकर सौगन्ध खाइए। (इस प्रकार राघवचेतन ने सुल्तान को) उसके वचन पर दृढ़ किया।

(राघवचेतन ने) उस स्थान पर वेदोक्ति के अनुसार (देवी के) आह्वान के मंत्र का जाप किया [९५६]। ध्यान लगाकर उसने मंत्र जाप किया और भावपूर्वक पानी के छींटे दिये। उसने तीन बार पानी छिड़का और चौथी बार छिडकते ही वे (समरसिंह और छिताई) विहँसते हुए उठ बैठे [९५७]।

तब सुल्तान बहुत सुखी हुआ। उसने अपनी (दान देने की) प्रतिज्ञा को प्रमाणित किया। उसने नारी (छिताई को) आभरण पहनाकर उसका शृंगार किया और उसे समरसिंह के हाथ सौंप दिया [९५८]।

प्रसन्न होकर सुल्तान ने (समरसिंह से) कहा कि तू (चाहे तो) मेरे पास मेरे पुत्र के समान रह। यह (छिताई) मेरी बेटी के समान है, यदि मैं अपने वचन से डिगूं तो मुझे नरक (दोजख) मिले [९५९]। तू (दरबार में) मेरे दाहिनी ओर बैठना और मन में कोई चिन्ता न करना। यदि मैं अपने इस वचन से टलूं तो स्वर्ग (बहिश्त) को छोड़कर नरक (दोजख) में पड़ूं [९६०]।

तब समरसिंह ने (सुल्तान की) सेवा में विनय की कि हे देव, आप सब योग्य है। सुन्दरी (छिताई) ने कहा कि आप अब हमें विदा करदें। इससे आपकी कीर्ति युग-युग तक फैलेगी [९६१]।

समरसिंह और छिताई की विदा और अलाउद्दीन द्वारा भेंट देना (१९५०–१९७५)

(समरसिंह ने) धीरे से यह कहा कि (मुझे आदेश दें कि) मैं अपने देश जाकर उसकी रक्षा करूं।

यह सुनकर सुल्तान हँसने लगा और उसने भंडार खोलने का आदेश दिया [९६२]। उसने जामदार (भंडारी) को आदेश दिया जिसने करोडों का अगणित

जब विधाता ने मेरी कर्म-विधि लिखी थी तभी मेरे जन्म से पहले ही मेरे हेतु दुख का विधान हो गया था [६४४], (उस भाग्य विधान को) सुल्तान कैसे पलट सकता है क्योंकि कर्म की रेखा के वन्धन मिट नहीं सकते । इस प्रकार विरक्त होकर छिताई कहने लगी, मैं अभागी हूं [६४५]। (उसने विधाता से कहा) तू मेरे लिए अब एक ही सुख प्रदान कर कि मैं प्रियतम (के अनुगमन) में प्राण छोड़ सकूँ ।

यह कह कर सुन्दरी (छिताई) लड़खड़ाकर मूछित होकर राजकुमार (समरसिंह) के (शव के) चरणों में गिर पड़ी [६४६], माया-मोह की आशा छोड़कर वह ऐसी मूछित हुई कि श्वास निकलना भी रुक गया ।

(दोनों को मरा हुआ देख) हेजम वहाँ पहुँचा जहाँ भीतर वादशाह था [६४७]। उसने विनय करके सुल्तान से कहा कि दोनों व्याकुल होकर मर गये ।

(यह सुन कर) वादशाह क्रुद्ध होकर उठा (और कहने लगा कि) उन्हें क्या भूत, पिशाच या वात लग गई [६४८], अभी तो मैंने उन्हें विदा करके जाने दिया था, हे मूर्ख, तू उन्हें अभी वापस लाने क्यों चला गया ? (हेजम ने) माथे से हाथ ठोक कर (अपनी निर्दोषिता एवं सत्यता जताते हुए) सौंगंध खाई और, कहा कि मेरे साथ आइए, चल कर स्वयं देखिए [४६६] ।

(हेजम) वादशाह को वहाँ ले आया जहाँ सुन्दरी (छिताई) और पुरुष (समरसिंह) पड़े हुए थे । वादशाह ने चारो ओर देखा और अपनी छाती दबाकर गहरी उसांस ली [६५०] । वह शोक पूरित होकर मन में दुख करने लगा कि अधित दुख ने इनके प्राण ले लिए । उसने राघवचेतन को बुलाकर कहा कि इस संकट (संशय) का तू शीघ्र निवारण कर [६५१] ।

राघवचेतन द्वारा समरसिंह और छिताई को जीवित करना(१६३०–१६४६)

(बादशाह ने राघवचेतन से कहा,) यदि तू इन्हें जीवित करके मुझे लौटादे तो मैं तुझे सोने से पाट दूँगा । (इनके) जो वहुत से आभरण रखे हैं वे और अपने भी वहुत से इन्हें दूंगा [६५२], इस हेतु मैंने इन्हें वापिस बुलवाया था, परन्तु भूल से (सहवन) इनने व्याकुल होकर प्राण छोड़ दिये । तेरे पास संजीवन मंत्र है, उसका शीघ्र स्मरण कर और इन्हें जीवित करदे [६५३] तथा (इस

[९३५] । तब तक हेजम उनके पास पहुंच गया और वह छिताई का हाथ पकड़कर क्रोध पूर्वक उसे ले जाने लगा । राजकुमार (समरसिंह) चिन्ता करके पछताने लगा और 'हा, हा' शब्द के साथ उसके प्राण निकल गये [९३६] ।

सुन्दरी (छिताई) ने मुडकर पीछे देखा और (समरसिंह) द्वारा दिये गये प्रेम-प्रीति के परिचय को देखकर वह कांप उठी । वह अपनी लटों को नोचने लगी और करुणापूर्वक रुदन करने लगी । समरसिंह के गुणों का स्मरण कर करके उसका हृदय जलने लगा [९३७] । वह उदास होकर दुख करती है और कहती है, हे बालम, तूने मुझे निराश क्यों कर दिया, तूने मुझसे प्रीति कर मेरे हृदय का हरण क्यों किया था और क्यों मैंने तुझसे आंखें लड़ाई थीं [९३८] । अपनी यह प्रीति छोड़कर अब क्यों चले गए और मुझे विधवा (अ+कामिनि अथवा भग्नमनोरथ) क्यों बना गए । तुम मुझसे बहुत अधिक प्रेम करते थे इसीलिए मुझे अब उससे चौगुना दुख दे रहे हो [९३९] ।

हे कंत, अब तो सम्पूर्ण (अस्तित्व) दुखपूर्ण (ऊन) हो गया, तुम मुझे अधबीच में ही बिलखती हुई छोड़ चले । (अलाउद्दीन द्वारा हरण के पश्चात्) मैं तन-मन (की भावनाओं को) मार कर रह गई थी, (अब तो तुमने) मुझे नख से शिखा तक झुलसा दिया [९४०] । मेरा जन्म मूल नक्षत्र में हुआ था । पिता ने पुरोहित को बुला कर मेरे ग्रहयोग पूछे थे । पुरोहित ने भली प्रकार (चौकस) ग्रहसंयोग देखे थे, (जिनके अनुसार मुझे) बीच यौवन में वियोग होना था [९४१] । ब्राह्मण का वचन झूठा कैसे हो सकता है । ऐसा कह कर (छिताई) रुदन करती है और दुखी होती है । (वह कहती है) मुझे पहले विधाता ने छला (डहकी[1]) और अब पति ने छल किया है [९४२] । पहले जब मेरे ऊपर (वियोग का) दुख आया था तब मुझे मिलन की बहुत आशा थी, परन्तु विधाता, तू बड़ा क्रूर है कि तूने सुख-दुख सभी छीन लिया (आशा का आधार ही मिटा दिया) [९४३] । (हे विधाता,) तू ने मेरा सुख उसी समय हरण कर लिया था जब माता के गर्भ में मेरा बीजारोपण हुआ था,

१. तासन कौन सनेह साधन डहकि जो छाँडियै, गैनासत, पंक्ति १९९ ।

भाग्य) ! जो उस योगेन्द्र (समरसिंह के रूप के ताप) से तपी हुई घर गईं उन्हें राजा समरसिंह ने मानो काम के बाण से आहत कर दिया था [९८१]। वे सुन्दरियाँ जब अपने घर पहुंचीं, अपनी सेज पर पुरुष (समरसिंह) के सौन्दर्य पर भूली (आत्म विस्मृत) हुईं लेट गईं, वे अपने पतियों के साथ अपने मन में राजा समरसिंह को बसाकर रमण का आनन्द लेने लगीं [९८२]। इस युक्ति से उनने अपने पतियों की सेज का मान रखा।

सबेरा होते ही कूच के नगाड़े बजे और राजा (समरसिंह) ने प्रस्थान किया। वे चन्द्रगिरि देश में पहुंचे [९८३]।

चन्द्रगिरि में चन्द्रनाथ से भेट तथा उपदेश ग्रहण (१९९४–२०१३)

(चन्द्रगिरि पहुँच कर समरसिंह ने) चन्द्रनाथ योगी के चरण पकडे (और कहा,) हे सिद्ध, आपके वचन (आशीर्वाद) मेरे सहायक हुए। समरसिंह ने कहा, हे नाथ, सुनिए, अब मैं गुसांई (आप) के पास ही रहूंगा [९८४], नित्य आपके चरण कमलों की वन्दना करूंगा और मेरा मन योग में दृढ़ रहेगा। लोक-लाज और दूसरे के वश में पड़ी हुई सुन्दरी (छिताई) तुर्कों के अवरोध में पड़ी हुई सूख (मुरझा) रही थी [९५८]। इसके हेतु मैंने अपने गुण (नाद कला) का प्रदर्शन किया और (फलतः) बादशाह ने सुन्दरी मुझे सौंप दी। यदि (मैं) बादशाह का कहना नहीं मानता (तथा अपने गुण का प्रदर्शन न करता) तो यह नारी भारी दुख में पड़ी रहती [९८६]। (मेरा यह कार्य पूरा हो गया, अतएव अब मैं) सम्पत्ति, सुख तथा राज्य सब का परित्याग कर रहा हूं[1]। अब मैं, मन को दृढ़ कर योग से ही मतलब रखूंगा।

---

१. योग के आठ अंगों में एक यम है। अपरिग्रह एक यम है। जाति, देश, काल और निमित्त की सीमा से रहित सार्वभौम हो जाने पर यम महाव्रत कहे जाते हैं। पातंजलयोगसूत्र २।२९—३१। अपरिग्रह महाव्रत में योगी की स्थिति दृढ़ हो जाने पर जन्म क्योंकर हुए इसका ज्ञान हो जाता है। वही, २।३९। योगानुशासन कार ने चित्तवृत्ति के निरोध का उपाय भी अभ्यास एवं वैराग्य बतलाया है। वही १।१२, १५—१६

समरसिंह प्रणाम करके चला और अपने डेरे में पहुंच कर (घोड़े पर) सवार हो गया।

समरसिंह और छिताई का दिल्ली से प्रस्थान तथा यमुना तट पर विश्राम [१९७६–१९९३]

(समरसिंह के प्रस्थान करने पर उसके साथ) घटाओं के समान हाथी चले और अच्छे लाल रंग (के वस्त्र पहने हुए) सेना उसके साथ चली।

राजकुमारी (छिताई) सुसज्जित चौडाल (एक प्रकार की पालकी, पीछे पंक्ति ४३१ तथा ७२५ देखिए) पर सवार हुई। उस चौडोल का वर्णन कैसे किया जा सकता है [९७५]। वह पाँच रंगों से (चित्रित) चमक रही थी[1] और उसके रंगों से अत्यधिक ज्योति फूट कर उसे सुहावना बना रही थी। उसके मध्य (हीए) में मोतियों की लड़ें इस प्रकार विकसित हो रही (चमक रही) थीं मानो आकाश में तारे उग रहे हों [९७६]। उसकी अनुपम झालरें एकसी (समी-समान) थीं। स्वयं बादशाह ने उसे सुसज्जित करा कर दिया था। साथ में सखियां भी बुलवा कर (बादशाह ने) दी थीं, वे और ही (अनोखे) रंग (स्वभाव एवं सजधज) की थीं [९७७]।

रतन (रंग कवि कहता है), समरसिंह को एक अच्छा मैदान दिखाई दिया, वहां उसने पड़ाव डाला। वहाँ जल से पूरित यमुना का किनारा था और वहां नारी (छिताई) तथा पुरुष (समरसिंह) ने स्नान किया [९७८]। वहाँ जल का प्रवाह (तेज) तथा लहरों की तरंगें अधिक थीं। वहां नारि (छिताई) समरसिंह के साथ (जल)क्रीडा करने लगी जिससे उसके शरीर का दुख मिट गया और सुख प्राप्त हुआ [९७९]।

नगर के प्रवेश[2] (द्वार) के पास पनघट था[3]। (पनिहारियों ने) राजा समरसिंह को देखा। उसे देखते ही वे मूर्छित होगईं, मानो कामदेव के धनुष के तीर से आहत हो गई हों [९८०]। उसका मुख देखकर उनने उसांस भरी और (सोचा या कहा), यदि (कहीं) ऐसे पुरुष का सामीप्य मिल सके (तब अहो

१. पीछे पंक्ति २७५ से तुलना कीजिए।
२. "अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार ॥" रामचरित मानस ५।३
३. पीछे पंक्ति १५९० देखिए।

समरसिंह, मुझ सिद्ध के तुम ये वचन सत्य जानो कि तुम्हारा राज्य अटल होगा। योग क्रियाओं के अनुरूप जो (बाह्य) वेश तुमने धारण किया है उसे छोड़ दो।

(सिद्ध की इस आज्ञा के पालन में) राजा समरसिंह ने प्रणाम करके (अपने) घर को प्रस्थान किया [६६३]।

समरसिंह का देवगिरि पहुंचना तथा रामदेव द्वारा स्वागत-समारोह (२०१४–२०३१)

लम्बी-लम्बी मंजिलें पार कर (समरसिंह) देवगिरि दुर्ग के स्कंधावार (खंधारा) में पहुंचे। श्रेष्ठ वीर रामदेव ने अपनी सेना सहित आगे आ कर धीरवान समरसिंह से भेंट की [६६४]। राजा रामदेव ने आनन्द बधाए कराने का आयोजन किया। लोगों ने चित्त को भावपूर्ण बना कर बधाई (का उत्सव) किया। अपने नयनों से छिताई को देखकर रामदेव के मन को अत्यधिक सुख मिला [६६५]। रामदेव ने मन में सुखी होकर राजकुमार (समरसिंह) को अंक में भर लिया। पुत्र (के समान समरसिंह) तथा पुत्री (छिताई) को कंठ से लगा कर वह उन्हें देवगिरि दुर्ग के ऊपर चढ़ा ले गया [६६६]।

नारियों ने मंगलगान किये। उनके (मंगलगान के) शब्द अनन्त थे और कान्त एवं प्रसंशनीय थे। व्यासगण वेदमन्त्रों को ध्वनि सहित बोल रहे थे मानो देवताओं के निवास (कविलास) के विप्र (वृहस्पति) हों [६६७]। सुन्दर वार बालाएं नृत्य कर रही थीं। उनका रूप एवं नृत्य-प्रयोग मदनरेखा एवं रम्भा के समान था। उस समय (सबको) ऐसा सुख मिला कि बालिकाएं, तरुणियां एवं वृद्धाएं सभी नृत्य करने लगीं [६६८]।

(कवि) रतनरंग से (उस उत्सव का आनन्द) कहा नहीं जाता, वह वचनातीत होने के कारण सब मन में ही (अपने आनन्द की गंभीरता) जान रहे थे। आंगनों में स्वर्ण-कलश सजाए गये और विप्र, भाट तथा याचकों को सत्कार पूर्वक विदा किया गया [६६९]। महामुनि राजा रामदेव ने बहुत आनन्द मनाया और चंदन के चौक पुरवाए। नगर में अत्यधिक आनन्द हो रहा है। सब लोगों के मुख हँसते हुए दिखाई दे रहे हैं [१०००]।

राजा (रामदेव) राजकुमार (समरसिंह) का हाथ पकड़ कर अर्ध चन्द्राकार छत्र के नीचे बैठा।

यह सुनकर नाथ (सिद्ध) के हृदय में आनन्द हुआ। (उनने कहा) हे पुत्र, तुम द्वारसमुद्र गढ़ को जाओ [६८७]। मेरे एक वचन का पालन करते रहना और पृथिवी के राज्य का उपभोग करते रहना। (मेरा वह वचन यह है कि) मन को वश में करने वाले[1] जिस प्रकार योग साधना करते है (वह यह है कि) वे अपनी काया को आत्मा (जीव) से सींचते (परिप्लुत करते) रहते हैं[2], [६८८] गौडेश्वर गोपीचन्द[3] के समान गुरु के वचनों के भाव में प्रवेश कर (उनके तत्त्व को समझ कर) अपना राज्य, तथा पर्वत (सयल जैसे) विशाल अशेप सुख को त्याग देते हैं। (गोपीचन्द ने) सिद्ध के वचन सुनकर समाधि धारण कर अपने शरीर को योग क्रियाओं के साधन में लगाया था। उसके अन्तःपुर में अगणित (रानियां) थीं। उन्हें छोड़ने में उसे देर नहीं लगी थी [६९०]। (उसी प्रकार अन्त में तू राज-पाट छोड़ देना)।

(समरसिंह ने कहा,) मेरे घर में तो एक ही नारी (छिताई) है। गुरु के वचनों के पालन में मैं उसे छोड़ सकता हूं।

(यह सुनकर) सिद्ध ने कहा, हे वत्स, सुनो, (मैं तुम्हें) योग की युक्ति, भाषा और वेश (का उपदेश करता हूं) [६९१] अविचल बोल (सत्य[4]) धर्म का तत्त्व है। इसके समान अन्य धर्म नहीं है। योग की और भी सिद्ध ((क्रिया) बतलाता हूं कि तुम लोक में रहकर राजधर्म का पालन करो[5] [६९२]।

---

१. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। वही १।२; जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः। श्रीमद्भगवद्गीता ६।७

२. तुलना कीजिए—ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचिज्जगत्यां जगत्।

३. देखिए प्रस्तुत लेखक की पुस्तक "साधनकृत मैनासत", पृष्ठ ९२।

४. सत्य भी योग के अष्टांग में से एक यम है और जाति, देश, काल एवं निमित्त की सीमा से रहित सार्वभौम हो जाने पर इसे महाव्रत कहा जाता है। पातंजलयोगसूत्र २।२९-३१। सत्य महाव्रत में योगी की दृढ़ स्थिति हो जाने पर क्रियाओं के फल उसका आश्रय ग्रहण करते हैं, अर्थात्, उसे वरदान या शाप का सामर्थ्य प्राप्त होता। वही, २।३६

५. देखिए श्रीमद्भगवद्गीता १८।४५—४६

में गया [१०१०]। मैंने नायक (गोपाल) के द्वार पर (अलख) शब्द किया। उसके प्रतिहार ने मुझे वीणा लाकर दी। उस वीणा को देखकर मुझे बहुत सुख मिला और उसके स्वर संधान कर (उसे ठाट कर) मैं राघवचेतन के यहाँ गया [१०११]। मैं वैरागी योगीन्द्र के वेश में हूँ, ऐसा राघवचेतन ने बादशाह से कहा। वीणा-वादन सुनकर बादशाह रीझ गया। फिर मैं उसे पशुओं (मैं पूरित) वन में ले गया [१०१२]। पशुओं का समूह (मेरा वीणा-नाद सुनकर) मोहित हो गया और दिल्ली नरेश भी मोहित हुआ। (उसने कहा, हे भाई, तू जो माँगेगा वह मैं तुझे दूँगा, तू अपना यह गुण मेरे अन्तःपुर (हरम) को दिखा [१०१३]। मैं देवगिरि की नारी का हरण कर लाया हूं, यह स्वरूप में रम्भा के समान है। हे योगी, सोने (के आभरणों) और बहुमूल्य वस्त्रों से सजाकर मैं उसे तुझे भेंट कर दूँगा [१०१४]। रात्रि को (वन में वीणा बजाकर) मैंने (पशुओं के मन को) छीन लिया और उन्हें महल में ले गया। वहाँ बादशाह सिर पर छत्र धारण किए बैठा था और वहाँ चालीस सुन्दरियाँ भी बैठी हुई थीं [१०१५]। और भी स्त्रियाँ वहाँ थीं (?) वे वीणा के तारों की झनकार से रीझ गईं। बादशाह ने प्रसन्न होकर अपने वचन का पालन किया और कमल-नयनी सुन्दरी (छिताई) मुझे प्रदान कर दी [१०१६]। हे राजा, तब मैंने (अपना वास्तविक) परिचय प्रकट किया। मुझे बादशाह ने हाथी, घोड़े और अगणित द्रव्य दिया और बहुत अधिक दान दिया।

मैंने इस प्रकार कामिनी बाला (छिताई) को प्राप्त किया [१०१७]।

रामदेव द्वारा समरसिंह की प्रसंशा (२०६९–२०७०)

तब (यह सुनकर) राजा (रामदेव) ने उठकर प्रसंशा की (और कहा) वंश में ऐसा (सु)पुत्र उत्पन्न होना चाहिए। वह माता धन्य है जिसने तुम्हें उदर में रखा, वह सुवंश धन्य है जिसमें तू अवतरित हुआ [१०१८]। समुद्र के किनारे का वह देश धन्य है जहाँ तुम जैसा धैर्यवान साहसी उत्पन्न हुआ। हे राजकुमार, तेरा पौरुष धन्य है। (ऐसा कहते हुए) राजा रामदेव ने उसकी बहुत सराहना की [१०१९]। (राजा रामदेव ने कहा) वह नक्षत्र धन्य है (जिसमें तूने जन्म लिया और तेरे) माता-पिता धन्य हैं। राजा ने हृदय में उसकी बहुत सराहना की।

राजा ने पूछा, हे वत्स, सुनो, तुमसे म्लेच्छ बादशाह (अलाउद्दीन) किस प्रकार मिला [१००१], किस प्रकार तुमने दिल्लीगढ़ में प्रवेश किया और किस प्रकार तुम्हारी बादशाह से भेंट हो सकी, दिल्ली नरेश तुम पर कैसे अनुरक्त हुआ और किस प्रकार तुम्हें कामिनी बाला (छिताई) प्राप्त हो सकी [१००२] ?

समरसिंह द्वारा रामदेव को छिताई-प्राप्ति का वृत्तान्त सुनाना (२०३२–२०६१)

समरसिंह ने कहा, हे राजा, सुनो, यह सब कर्म-रेखा का प्रभाव है। यदि कोई समर्थ व्यक्ति सौ बार मिटाने का प्रयास करे तो भी विधाता के लिखे हुए भाग्य–अंक मिट नहीं सकते [१००३]। समरसिंह ने कहा, हे राजा, सुनो, मैंने योगी का वेश बनाया और चन्द्रनाथ से दीक्षा ग्रहण की। मुझे योग अत्यधिक सिद्ध हुआ [१००४]। मैं एकशब्दी (अलख शब्द का उच्चारण करने वाला) योगी बन गया। मैंने समस्त जम्बूद्वीप खोज डाला, देखता देखता मैं देश-देशान्तर में फिरा, परन्तु कहीं भी सुन्दरी (छिताई) का समाचार न मिला [१००५]। सुन्दरी का स्मरण करते हुए मैं पागल (के समान) हो गया और मुझे दिल्ली का स्मरण ही नहीं रहा (कि छिताई को दिल्ली में खोजना चाहिए)। मैं धवलगिरि पर शंकर के मेले (जात) में गया, वहाँ मुझे सुन्दरी का समाचार मिला [१००६]। एक निर्मल योगी ने मुझे सब कुछ बतलाया। (उस योगी से) विदा लेकर मैं दक्षिण दिशा की ओर (धवलगिरि से दक्षिण की ओर) चला। (चलने के पूर्व) उस योगेन्द्र ने मार्ग तथा बीच में पड़ने वाली नदियों के घाट समझाए और तब, हे राजा, सुनो, मुझे बहुत हर्ष हुआ [१००७]। तब मैंने चलने का विचार किया और दिल्ली नगर के लिए प्रयाण किया। मेरी इच्छा उड़ कर (शीघ्र) पहुंचने की हो रही थी, परन्तु मेरे पंख नहीं थे (अतएव विवश था)। मैं चँदवार के गढ़ पर पहुंचा [१००८]। वहाँ की स्त्रियों को मैंने स्त्री चरित्र में कुशल पाया और उस नगर को छोड़कर मैं आगे चला। मुझे पुर, राजधानियाँ और नगर अच्छे नहीं लगते थे। मैं उजाड़ वन में पहुँचा [१००९]। वहाँ मैंने हरिण, रोझ तथा मृगों के समूह देखे। तब, हे राजा, सुनो, मैंने अपना गुण (कला) प्रकट किया। उस वन को छोड़कर मैं एकशब्दी योगी के रूप में नगर

होती है [१०२८] उसी प्रकार कलश (उपसंहार) के बिना कथा का प्रारम्भ होता है। मुझ (रतन) रंग कवि ने उसी (उपसंहार) की रचना (वर्णन) की है [१०२९]।

(कवि कहता है) जो इस कथा को ध्यान (कान) देकर सुनेगा उसे गंगा-स्नान का (पुण्य) फल मिलेगा।

छिताईचरित समाप्त हुआ (आयो छेऊ=छोर आ गया), (भगवान) नारायण सबको जय प्रदान करें [१०३०]।

॥ समाप्त ॥

उसी समय छिताई वहाँ पहुँची जहाँ उसकी माता रेखामती थी [१०२०]। माता ने स्नेह के साथ उसे कंठ से लगाकर भेंट की। उसके नेत्र में (अश्रु) उमड़ आए जिनसे उसका शरीर भीगने लगा।

रामदेव ने विनयपूर्वक कहा, हे राजकुमार, मेरे कहने पर मन में विचार करो [१०२१] और अच्छे सगुन देखकर अपने घर जाओ। इस प्रकार वारम्बार राजा ने कहा।

समरसिंह और छिताई का द्वारसमुद्र पहुंचना और राज्य-भोग (२०७१–२०८०)

(समरसिंह) अपना दल सजाकर द्वारसमुद्र की ओर चला। बहुत दिनों में वह समुद्र के पास पहुँचा [१०२२]। वहाँ वह अपने माता-पिता से मिला। नगर में आनन्द-वधाए हुए। घर-घर में गीत तथा नाट्य (पेखना=प्रेक्षणक) होने लगे। उन्हें सब रानियां देखने के लिए आने लगीं [१०२३]। सामन्त और राजकुमार उनके चरणों की वन्दना करने लगे। समस्त कुटुम्ब ने उनके प्रति अपना (प्रेमभाव) प्रकट किया। सबने समरसिंह के सिर पर (राज)छत्र बांधा (और कहा) आप नरेश बन कर अविचल राज्य करें [१०२४]। राजाओं का जैसा चलन है, सबने दल सहित उसे सलामी दी।

(समरसिंह) राजा इन्द्र के समान (राज्य)भोग करने लगा। अनेक देशों का धन (उसके पास) आने लगा। [१०२५]। वह समस्त शत्रुओं की सेनाओं का तथा उनके दुर्गों का दलन करने लगा। दिनरात छिताई उसके हृदय में निवास करती थी, जैसे भुजंग मणि धारण किये रहता है [१०२६]।

जिस प्रकार यती (योगी) योगाभ्यास करता है उसी प्रकार वह पतिव्रता (छिताई) अपने पति की सेवा करती थी।

उपसंहार (२०८१–२०८६)

(रतनरंग तथा देवचन्द्र द्वारा परिवर्धित) पुस्तक को देखकर नारायणदास (कवि) ने कहा कि यह कथा अन्न स्वर्ण के समान मूल्यवान हो गई [१०२७]।

कवि रतनरंग ने विचारपूर्वक (नारायणदास तथा देवचन्द्र से) कहा, आपने जो कथा की रचना की है वह अमृत के रस से युक्त है। जिस प्रकार दीपक के विना भवन तथा स्वाति के जल की बूंद के विना समुद्र की सीप (सूनी)

परिशिष्ट ४

शब्द-सूची
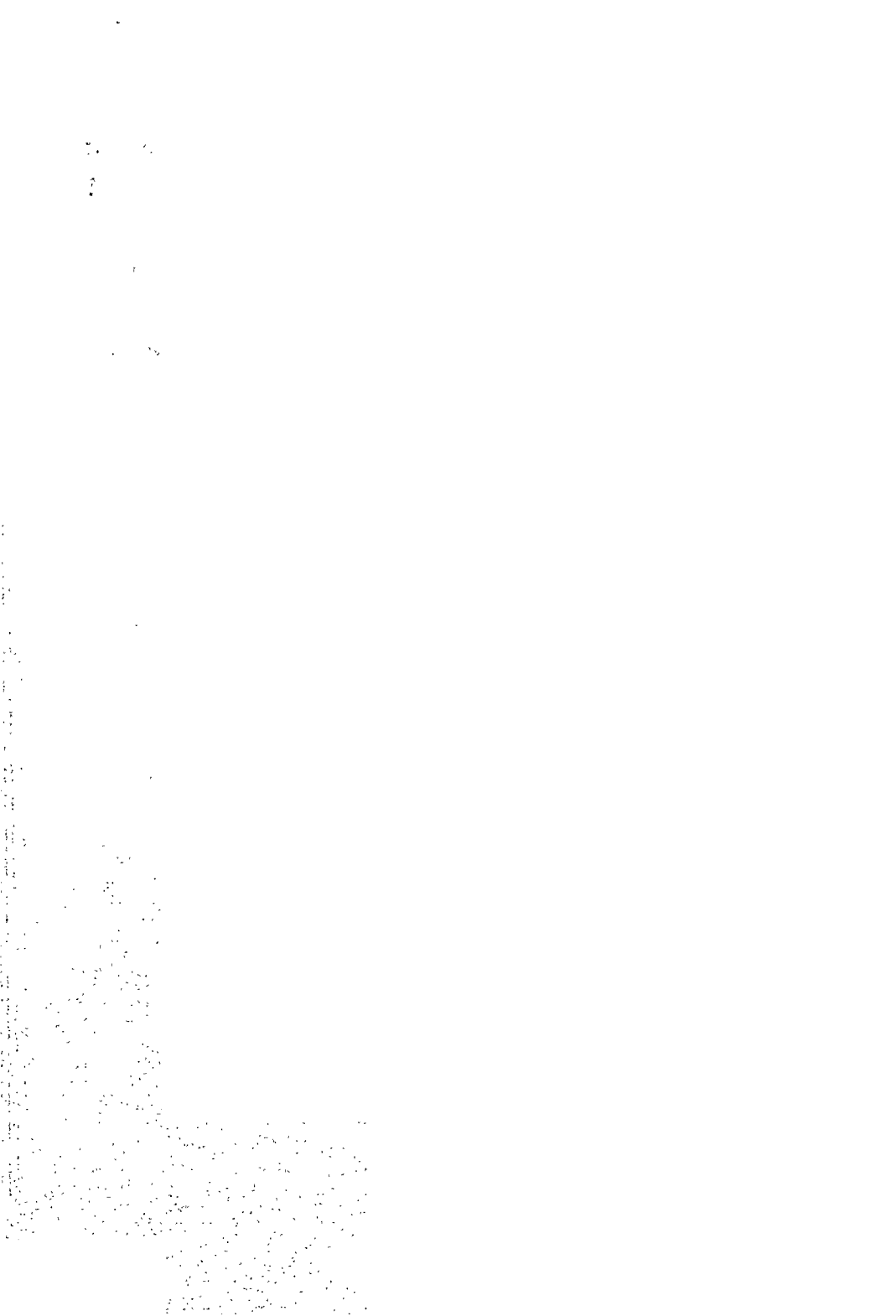
शब्द-सूची

(शब्दों के आगे के अंक पंक्ति क्रमांक के सूचक हैं। व्यक्ति, स्थान और जाति नाम बड़े अक्षरों में दिये गये हैं। एक शब्द के अन्य रूप, यथा संभव, हटा कर दिये गये हैं।)

ग

ध

ब

ल

परिशिष्ट ५

रायसेन का शासक सलहदी तँवर

(लेखक—डा० रघुवीरसिंह, डी० लिट्, सीतामऊ—मालवा)

सलहदी तँवर

अलाउद्दीन खिलजी ने नवम्बर, १३०५ ई० में माण्डू जीत कर मालवा को पहली बार दिल्ली के मुसलमानी राज्य का एक सूबा बनाया और प्रारम्भिक तुगलक सुलतानों ने वहां मुसलमानी सत्ता को सुदृढ़ करने का प्रयत्न किया था, तथापि उस प्रदेश में छोटे-बड़े हिन्दू जमीदारों और राजाओं का अधिकार और महत्त्व बहुत कुछ बना रहा। फिरोज तुगलक की मृत्यु के बाद जब दिल्ली साम्राज्य का प हुआ और मालवा में एक स्वाधीन मुसलमानी राज्य की स्थापना तब समय पाकर मालवा के राज्य-शासन में हिन्दुओं का महत्व त विशेषतया राजपूत वीरों का प्रभाव बढ़ने लगा। किन्तु, हिन्दुओं को शासन में महत्वपूर्ण पद प्राप्त होना मालवा तथा पास पड़ोस के अ राज्यों के भी मुसलमान सेनानायकों तथा अमीरों को कदापि रु कर नहीं होता था और वे सदैव उन्हें गिराने या मरवा डालने घात के लिए सुअवसर की ताक में रहते थे, जिससे उनमें परस्पर वि तथा संघर्ष बराबर चलते जाते थे।

मालवा के सुलतान महमूद खिलजी ने अगस्त, १५१२ ई० में मेदि राय नामक बहुत ही वीर और सुविख्यात अनुभवी सेनानायक पूरबि राजपूत को अपना वजीर बनाया। तब उसके कई कुटुम्बी, सम्ब तथा अन्य साथी राजपूत सेनानायक भी महमूद की सेना में सस सम्मिलित हो गए और उनमें से कुछ को राज्य-शासन में उच्च प पर भी नियुक्त किया गया। मेदिनीराय के ऐसे प्रमुख राजपूत सा सेनानायकों में सलहदी तँवर[1] भी था। उसका जन्म ग्वालियर के पा

---

१. 'सलहदी' नाम का ठीक स्वरूप क्या था यह प्रामाणिक रू से कहना संभव नहीं। तब यह नाम इसी रूप में प्रचलित था क्योंकि नैणसी० में इसी नाम के कुछ व्यक्तियों का उल्लेख है (१

इस लेख के संकेत निर्देशन

ओझा०, उदय०—उदयपुर राज्य का इतिहास, डॉ० गौरीशंकर हीराचंद ओझा कृत; भाग १-२।

टाड०—एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज आफ राजस्थान, कर्नल टाड कृत; आक्सफर्ड संस्करण; भाग १-३।

तबकात०—तबकात-इ-अकबरी, ख्वाजा निजामुद्दीन कृत का अंग्रेजी अनुवाद; भाग १-३; (बिब इण्डिका)।

नैणसी०—मुहणोत नैणसी की ख्यात, काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित; भाग १-२।

फरिश्ता०—तारीख-इ-फरिश्ता अथवा गुलशन-इ-इब्राहिमी, फरिश्ता कृत; (लखनऊ संस्करण)।

बाबर०—बाबर नामा; बेवरिज कृत अंग्रेजी अनुवाद; भाग १-२।

ब्रिग्ज०—हिस्ट्री आफ राइज़ आफ मुहमडन पावर इन इण्डिया; फरिश्ता० का अंग्रेजी अनुवाद, जान ब्रिग्ज कृत; भाग १-४।

बेली०—लोकल मुहमडन डिनेस्टीज़: गुजरात; एडवर्ड क्लाइव बेली द्वारा अनुवादित एवं संपादित।

मिरात०—मिरात-इ-सिकन्दरी, सिकन्दर कृत; बम्बई संस्करण।

सिकन्दरी०—मिरात० का अंग्रेजी अनुवाद, फज्लुल्ला-लुत्फुल्ला फरीदी कृत।

भी उनका विरोधी हो गया। एक दिन वह माण्डू से भागकर गुजरात के सुलतान मुजफ्फर शाह के पास पहुंचा और उसकी सहायता से महमूद खिलजी ने माण्डू पर पुनः अधिकार कर लिया। परन्तु पूर्वी मालवा पर तब भी राजपूतों का ही अधिकार बना रहा। गागरोन, चदेरी, आदि उत्तरी भाग पर मेदिनी राय ने अधिकार कर लिया, और भेलसा की अपनी जागीर से लगे हुए सारंगपुर से लेकर रायसेन तक का सारा प्रदेश सलहदी ने दबा लिया और वह वहां का स्वतंत्र शासक बन बैठा। अपनी शक्ति तथा राज्य-विस्तार के लिए सलहदी को यह सुअवसर मिल गया।[१]

अक्टूबर, १५२० ई० में सलहदी का दमन करने के लिए महमूद ससैन्य भेलसा की ओर बढ़ने लगा। तब सारंगपुर के पास दोनों सेनाओं की मुठभेड हुई। अंत में राजपूत सेना भाग निकली और तब सलहदी को भी वहां से भागना पडा। कुछ समय बाद सलहदी ने कर के रूप में कुछ द्रव्य और अनेकानेक वस्तुएं महमूद को भेंट कीं तथा महमूद की अधीनता स्वीकार कर क्षमा प्रार्थना की, जिससे सलहदी के साथ महमूद का पुनः मेल हो गया।[२]

जनवरी, १५२१ ई० में जब गुजरात की सेना ने मन्दसौर का घेरा डाला तब राणा सांगा भी ससैन्य वहां युद्धार्थ पहुंचा। महमूद खिलजी के साथ मन्दसौर पहुंच कर भी अंत में सलहदी राणा सांगा से जा मिला। यों अंत में गुजरात की सेना के सेनापति मलिक अयाज को राणा सांगा के साथ संधि कर मन्दसौर का घेरा उठाना पड़ा। इसके बाद गुजरात के सुलतान मुजफ्फर शाह को मालवा की ओर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं मिला। महमूद खिलजी को न तो शक्ति

---

१ तबकात०, ३, पृ० ५८८-६०४, ६०८, ३०१-२, ब्रिग्ज०, ४, पृ० २५०-२६२, ८४-६, २०२-३, सिकन्दरी०, पृ० ९८-१०१, १०६।

२ तबकात०, ३, पृ० ६०९। फरिश्ता का इस घटना सम्बन्धी विवरण विश्वसनीय नहीं प्रतीत होता।

ही सुलहन (सोजना ?) गांव में हुआ था।[1] उसके रनिवास में अनेक रानियां थीं जिनमें रानी दुर्गावती ही उसकी पटरानी थी। उसका पुत्र भूपतराय संभवतः सलहदी का ज्येष्ठ पुत्र था; उसका विवाह राणा सांगा की पुत्री के साथ हुआ था।[2] दिसम्बर, १५१३ ई० में भेलसा का परगना सलहदी को जागीर में दिया गया, जो तदनन्तर १८ वर्ष तक लगातार उसी के अधिकार में रहा।[3]

मेदिनी राय और उसके साथी राजपूत सेनानायकों की शक्ति इतनी अधिक बढ़ गई कि महमूद खिलजी भी उनके हाथ में कठपुतली हो गया। मालवा के मुसलमान-अमीर आदि राजपूतों के विरोधी हो गये। और अन्त में राजपूत वजीर आदि से शंकित होकर महमूद खिलजी

पृ० २५१; २, पृ० १०, ३५, ३६, ३८२)। 'छिताई चरित' में उसका नाम 'सलहदीन' लिखा है, छन्द की मात्राएँ पूरी करने के लिए ही अंत में 'न' जोड़ा जान पड़ता है। 'मिरात-इ-सिकन्दरी' की कुछ प्रतियों में, 'अमर काव्य' में तथा मेवाड़ घराने की ख्यातों में उसे तंवर लिखा है जो मान्य जान पड़ता है। मेदिनी राय का साथी सेनानायक होने के कारण इतिहास ग्रन्थों ने उसे भी 'पूरबिया' लिखा है, परन्तु इससे राजपूतों के किसी कुल या शाखा विशेष का निर्देशन नहीं होता। 'छिताई चरित' में उसे 'जांगलो' लिखा है जो स्पष्टतया सलहदी के उग्र दुर्दम्य स्वभाव की ही ओर संकेत करता है।

१ बाबर०, २, पृ० ६१४। आज इस नाम का कोई भी गांव ग्वालियर के आसपास नहीं है। ग्वालियर से कोई सात मील पश्चिम में 'सोजना' नामक गांव संभवतः तब उस नाम से ज्ञात रहा होगा।

२ सिकन्दरी०, पृ० १७५; बेली०, पृ० ३६५ फ० नो०; तबकात०, ३, पृ० ३६६-७। फरिश्ता० (पृ० २२१) के अनुसार रानी दुर्गावती राणा सांगा की पुत्री थी, परन्तु यह कथन ठीक नहीं है।

३ सिकन्दरी०, पृ० १७१; तबकात०, ३, पृ० २६६, २५८।

यों बाबर के आक्रमण का खतरा तो टल गया, परन्तु इधर इन प्रदेशों की राजनैतिक परिस्थिति बहुत ही बदल गई थी। मुजफ्फर शाह का वीर महत्त्वाकांक्षी पुत्र बहादुर शाह अब गुजरात का सुल्तान था एवं महमूद खिलजी के साथ उसका विरोध ही था। पुनः खानवा के युद्ध में हार और तदनन्तर राणा सांगा की मृत्यु से मेवाड़ की शक्ति तथा प्रताप को बहुत धक्का लगा था। तथापि मेवाड़ राज्य में महमूद खिलजी की लूटमार का बदला लेने के लिए अक्टूबर, १५३० ई० के लगभग जब राणा रत्नसिंह ने मालवा पर चढ़ाई की और उधर बहादुर शाह भी बागड़ प्रदेश में आ पहुँचा तब महमूद खिलजी ने सलहदी को भी अपनी सहायता के लिए बुलाया, उसकी बड़ी आवभगत की तथा कई और परगने उसको जागीर में दिये। परन्तु महमूद की इन अनपेक्षित कृपाओं से सशंकित होकर सलहदी ससैन्य राणा रतनसिंह से जा मिला और उसके साथ ही सलहदी भी करजी की घाटी के पास बहादुर शाह की सेवा में उपस्थित हुआ। तब सलहदी ने बहादुर शाह की सेवा करना स्वीकार कर लिया। अतः जब बहादुर शाह ने मालवा पर चढ़ाई कर माण्डू के किले का घेरा डाला और माण्डू पर अधिकार कर महमूद खिलजी को सकुटुम्ब कैद कर लिया तब सलहदी बराबर बहादुर शाह के साथ रहकर उसकी पूरी-पूरी सहायता करता रहा एवं जब मालवा पर बहादुर शाह का आधिपत्य हो गया तब उज्जैन और सारंगपुर की सरकारें सलहदी को पुरस्कार स्वरूप दी गईं। रायसेन का किला, आष्टा की सरकार तथा भेलसा की जागीर भी उसी के अधिकार में यथावत बनी रही।[1]

उदय०, १, पृ० ३७४-५ फु० नो०, पृ० ३७०-१ फु० नो०, ३७६-८ फु० नो०। राणा सांगा को धोखा देकर सलहदी तँवर के बाबर के साथ जा मिलने की बात टाड० (१, पृ० ३५६) में लिखी है, परन्तु प्रामाणिक आधार ग्रंथों में उसका समर्थन नहीं मिलता एवं सर्वथा अमान्य है।

१ सिकन्दरी०, पृ० १६५-१६८, १७०; तबकात०, ३, पृ० २४६-

हो गई और न उसे साहस ही हुआ कि सलहदी के साथ पुनः कोई छेड़-छाड़ करे।[1]

भेलसा, रायसेन और सारंगपुर के अधिपति सलहदी की गणना अब मालवा के शक्तिशाली स्वाधीन शासकों में होने लगी थी। उसकी सेना में कोई ३०,००० घुड़सवार अवश्य ही थे। रायसेन उसकी राजधानी थी तथापि सारंगपुर भी यदा कदा वह निवास करता था। उसके राज्याधिकारियों में कई एक जैन धर्मावलम्बी थे। उस समय जनता में जैन यति वाचनाचार्य जयवल्लभ का, जो 'मालवी ऋषि' कहलाते थे, विशेष प्रभाव था, परन्तु राज्य-कार्य में सलहदी कई बार उनके आदेश को भी अमान्य कर देता था।[2]

पानीपत के प्रथम युद्ध का विजेता बाबर जब उत्तरी भारत में अपना राज्य स्थापित करने लगा तब उसका विरोध करने के लिए, राणा सांगा ने भी राजपूत राजाओं आदि को संगठित किया, जिसमें सलहदी ने भी उसका साथ दिया, तथा शनिवार मार्च १६, १५२७ ई० के दिन राणा सांगा और उसके साथियों का खानवा के युद्ध-क्षेत्र में बाबर के साथ जो निर्णायक युद्ध हुआ तब स्वयं सलहदी और उसके पुत्र भूपतराय ने भी उसमें भाग लिया था। सौभाग्यवश वे दोनों ही इस युद्ध से बच निकले थे। बाबर चाहता था कि चंदेरी-विजय के बाद वह सलहदी के विरुद्ध चढ़ाई कर भेलसा, रायसेन, सारंगपुर, आदि परगनों और गढ़ों को जीत ले। परन्तु तभी उसे पूरब में अफगानों के विद्रोह को दबाने के लिए उधर चला जाना पड़ा।[3]

---

१ तबकात०, ३, पृ० ३१४-५; फारिश्ता०, ४, पृष्ठ २६०, सिकन्दरी०, पृ० ११२-३; ओझा०, उदय०, १, ३५६-७।

२ बाबर०, २, पृ० ५९२, ५९८। जैन-युग, वर्ष १, अंक ६ में प्रकाशित अगरचंद नाहटा का लेख "मालवा के जैन इतिहास का एक आवरित पृष्ठ"। देवास परगना तब सारंगपुर के अन्तर्गत ही रहा होगा।

३ बाबर०, २, पृ० ५६२, ५७३, ५९७-८, ५९४, ओझा०,

सादलपुर में बहादुरशाह की सेवा में उपस्थित हो गया। बहादुरशाह के साथ ही सलहदी भी धार पहुंचा और वहां के किले में जाकर उसने भी डेरा डाला, तब दिसम्बर २७, १५३१ ई० के दिन वहां सलहदी और उसके इने-गिने साथियों को कैद कर लिया गया। सलहदी के साथी सैनिक धार से भाग कर भूपतराय के पास उज्जैन पहुंचे और उनसे सारे समाचार सुनकर भूपतराव भी वहां से चित्तौड़ के लिए चल पड़ा।[1]

बहादुरशाह ने बड़ी तत्परता के साथ उज्जैन पर अधिकार करने के लिए सेना भेजी और वह स्वयं भी वहीं के लिए रवाना हो गया। भूपतराय के चले जाने के कारण विना किसी विरोध के उज्जैन पर बहादुरशाह का अधिकार हो गया, और तब उज्जैन तथा आष्टा के परगने अन्य मुसलमान अमीरों को जागीर में दे दिये गये। तब तेजी से बढ़ कर बहादुरशाह ने सारंगपुर पर भी अधिकार कर लिया और वह परगना भी मल्लूखां को जागीर में दे दिया गया। तब आगे बढ़ कर बहादुरशाह ने भेलसा पर भी अधिकार कर वहां के कई एक मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट किया। तदनन्तर वहां से रवाना होकर बुधवार, जनवरी १७, १५३२ ई० को बहादुरशाह रायसेन के सामने जा पहुंचा। उधर सलहदी का भाई, लखमणसेन, रायसेन के किले को सुसज्जित कर उसकी सुरक्षा में तत्पर था, एवं तब किले के सामने पड़ाव कर रही बहादुरशाह की सेना पर आक्रमण कर उसे मार भगाने का राजपूतों ने पूरा प्रयत्न किया, किन्तु वे विफल हुए और दूसरे दिन से रायसेन किले का घेरा प्रारम्भ हुआ।[2]

बहादुरशाह की सेना के साथ कैदी सलहदी भी तब रायसेन तक पहुंच गया। घेरे की व्यवस्था, बहादुरशाह की सैनिक शक्ति

१ मिरात०, पृ० २५१; सिकन्दरी०, पृ० १७०-१; तबकात०, ३, पृ० ३५६-७, ब्रिग्ज०, ४, पृ० १७७-८।

२ मिरात०, पृ० २५१; सिकन्दरी० पृ० १७१-२; तबकात०, ३, पृ० ३५७-६०; ब्रिग्ज०, ४, पृ० ११८-९।

वर्षा प्रारम्भ होने पर जुलाई, १५३१ ई० में सलहदी बहादुरशाह से विदा लेकर अपनी राजधानी रायसेन को लौट गया, परन्तु उसका पुत्र भूपतराय तब भी बहादुरशाह की सेवा में बना रहा। वर्षा ऋतु की समाप्ति के बाद भी जब सलहदी लौटकर दरबार में नहीं आया तब नवम्बर १५३१ ई० में बहादुरशाह ने अपना एक प्रमुख अमीर सलहदी को अपने साथ लिवा लाने के लिए भेजा। परन्तु सलहदी तब भी आनाकानी और टालमटोल ही करता रहा। अपने हरमखाने में सलहदी ने सैकड़ों मुसलमान स्त्रियाँ रख छोड़ी थीं यह जान कर ही बहादुर शाह सलहदी से रुष्ट हो गया था, और अब भी उसका रोष और भी अधिक बढ़ गया। तथापि कहीं भाग कर सलहदी मेवाड़ के राणा से नहीं जा मिले इस आशंका के कारण बहादुरशाह ने सलहदी को अपने पास बुलाने के लिए अन्य तदबीर से काम लेने का निश्चय किया। वह स्वयं गुजरात को लौट रहा था यह घोषित कर वह तदर्थ माण्डू से चल कर दिसम्बर १५, १५३१ ई० को नालछा पहुँचा।[1]

भूपतराय बहादुरशाह से बहुत ही आतंकित था एवं अपने पिता के प्रति बहादुरशाह के रोष को दूर करने के लिए वह प्रयत्नशील हुआ। उचित आश्वासन देकर सलहदी को दरबार में लाने के लिए बहादुरशाह की स्वीकृति लेकर भूपतराय अपने पिता के पास उज्जैन पहुंचा और शिकार का मिस कर बहादुरशाह भी पीछे-पीछे देवालपुर और सादलपुर तक चला गया। सलहदी को तो विश्वास हो गया कि बहादुरशाह वस्तुतः गुजरात को लौट रहा था, साथ ही ऐसे अवसर पर बहादुरशाह से अनेकानेक पुरस्कार पाने का लालच भी उसे हो आया। अतः भूपतराय को उज्जैन में पीछे छोड़ कर सलहदी तत्परता के साथ

३५८, ६१०-६१५, ३ ०-४; ब्रिग्ज़०, ४, पृ० २६६-२६९, १११, ११२, ओझा०, उदय० १, पृ० ३९०-१।

१ सिकन्दरी०, पृ० १७०-१७१; तबकात०, ३, पृ० ३३५-३३६; ब्रिग्ज़०, ४, पृ० ११६ ११७।

इधर मेवाड़ का राणा विक्रमाजीतससैन्य भूपतराय के साथ सहायतार्थ रायसेन की ओर चला, परंतु उसका सामना करने को जब बहादुरशाह राह में ही आ पहुँचा तब विना युद्ध किए ही राणा ससैन्य चित्तौड़ वापस लौट गया।[१]

उधर से लौट कर बहादुरशाह रायसेन के किले के घेरे को पूरी तत्परता से चलाने लगा। अन्यत्र कहीं से कोई सैनिक सहायता प्राप्त होने की आशा अब बिलकुल ही नहीं रह गई थी। अतः अप्रैल, १५३२ ई० के उत्तरार्द्ध में लखमणसेन ने बहादुरशाह को निवेदन करवाया कि सलहदी को माण्डू से वापस रायसेन बुला लिया जावे जिससे उसकी उपस्थिति में वह रायसेन का किला बहादुरशाह को सौंप सके। लखमण सेन की प्रार्थना स्वीकार कर सलहदी को शीघ्र ही माण्डू से वापस वहाँ बुलवा लिया गया। तब लखमणसेन बहादुरशाह के पड़ाव में पहुँचा, सलहदी से मिला, बहादुरशाह से भेंट की और किले को सौंप देने का वादा कर उसे पूरा करने को वापस लौट गया। अब किले को खाली कर देने के आयोजन होने लगे। अंत में सोमवार, मई ६, १५३२ ई० को सलहदी की पटरानी, रानी दुर्गावती की ओर से बहादुरशाह को निवेदन करवाया कि सलहदी को किले पर जाने की आज्ञा दी जावे जिससे वह अपनी रानियों, अपने रनिवास की सभी स्त्रियों तथा अपने अन्य कुटुम्बियों आदि को साथ लेकर किले पर से उतार लावे। बहादुर शाह ने यह प्रार्थना स्वीकार की और मलिक शेर को सलहदी के साथ किले पर भेजा।[२]

किले पर जब सलहदी अपने महलों में पहुँचा तब लखमणसेन, रानी दुर्गावती आदि के पूछने पर सलहदी ने बताया कि रायसेन के किले तथा आसपास के प्रदेश के बदले में उसे बड़ौदा नगर और उसके आस-

---

१ सिकन्दरी०, पृ० १७३-४; तबकात०, ३, पृ० ३६२-५; ब्रिग्ज०, ४, पृ० १२०-१; ओझा०, उदय०, १, पृ० ३६४-५।

२ सिकन्दरी० पृ० १७४; तबकात०, ३, पृ० ३६५-६; ब्रिग्ज०, ३, पृ० १२१-२।

तथा आक्रमणों से निरन्तर हो रही किले की हानि, आदि को देख कर सलहदी को बहादुरशाह की जीत सुनिश्चित ज्ञात हुई । अब सर्वथा निराश और परिस्थितियों से विवश सलहदी किले में बन्द अपने कुटुम्बियों को बचाने और आगे भी अपना महत्व बनाए रखने के लिए स्वयं मुसलमान बनने तथा रायसेन का किला बहादुरशाह के अधिकार में करवा देने को तैयार हो गया । बहादुरशाह के स्वीकृति देने पर सलहदी ने विधिवत इस्लाम धर्म स्वीकार किया, और तब उसे कैद से मुक्त कर बहादुरशाह ने उसे सम्मानित भी किया तथा अब उसका नाम बदल कर 'सलाहउद्दीन' रख दिया गया ।[1]

अब रायसेन के किले से लखमणसेन को बुलवा कर किला बहादुरशाह को सौंप देने का सलहदी ने पूरा-पूरा आग्रह किया, परन्तु चित्तौड़ से सहायतार्थ सेना लेकर भूपतराय के वहां जल्दी ही पहुंचने की आशा तब भी लखमणसेन को थी एवं अगले दिन किला सौंप देने का वादा कर उस दिन तो वह वापस किले को लौट गया । दूसरे दिन सलहदी के बहुत यत्न करने पर भी लखमणसेन ने वह वादा पूरा नहीं किया । पुनः इसके कुछ ही बाद राजपूत घुड़सवारों के दल की बहादुरशाह की एक सैनिक टुकड़ी के साथ लड़ाई हो गई जिसमें कई राजपूत काम आए । तब यह समाचार सुनकर कि उस युद्ध में काम आने वालों में राजपूत घुड़सवारों के दल का सेनानायक, उसी का छोटा पुत्र भी था, सलहदी को बहुत ही खेद हुआ और उसी के मारे वह अचेत भी हो गया । यह बात सुन बहादुरशाह को विश्वास हो गया कि सलहदी उसको धोखा दे रहा था एवं सलहदी को उसने पुनः कैद कर माण्डू भिजवा दिया ।[2]

---

१ सिकन्दरी०, पृ० १७२, १७३; तबकात० ३, पृ० ३६०; ब्रिग्ज०, ४, पृ० ११६ ।

२ सिकन्दरी०, पृ० १७२-३; तबकात० ३, पृ० ३६०-२; ब्रिग्ज०, ४, पृ० ११६-१२० ।

शुद्धि-पत्र

(छिताईचरित के पाठ में कुछ अशुद्धियां रह गई हैं। पाठकों से निवेदन है कि वे उन्हें इस शुद्धिपत्र के अनुसार अवश्य शुद्ध करलें।)

पंक्ति संख्या (पाठ की)	अशुद्ध	शुद्ध
१५	गया	गईयो
३६	पारजात	परिजाति
५६	उछालहि	उछारहि
६६	करह	करहि
८८	साहि	जाहि
६३	वीना	बीन
१६८	जानी	थानी
१६६	धलाई	घलाई
२००	मदुम ता	मदुमातो
२००	स्यादहि	स्वादहि
२३०	१०८	१०६
२३६	वानी	थानी
२४०	गुनी	ऽ गुनी
२४२	द्रिठ	द्रिढ़
२५८	जल कूकरी	जलकूकरी
३२४ (के पश्चात शीर्षक)	छिताई को	छिताई के
३५१	कोकिला	कोकिल
३५६	फिरही	फिरहीं
३५६	गिरिही	गिरहीं
३८५	सुढारति	सुढारनि
३६०	वर रस माना	वररि समाना
४३०	सउंरासी	सउंरसी

भाग का परगना दिया जावेगा एवं भविष्य में उसपर और भी कृपा [illegible] होने की पूरी आशा थी। तब तो लक्ष्मणसेन आदि के साथ ही उसकी पटरानी रानी दुर्गावती ने भी सलहदी की तीव्र भर्त्सना की और रोष से रानी दुर्गावती ने कहा—"ओ सलहदी! तुम्हारे जीवन का अन्त काल निकट ही है। क्यों अब अपने गौरव और मान-मर्यादा को नष्ट करते हो। हमने तो यह निश्चय कर लिया है कि हम स्त्रियाँ तो जौहर कर चिता पर जल जावेंगी और हमारे वीर पुरुष लड़ते हुए खेत रहेंगे। अगर तुममें कुछ भी लज्जा शेष है तो हमारा साथ दो।" तब तो सलहदी का भी इरादा बदल गया और लक्ष्मणसेन आदि का साथ देते हुए युद्ध में मर-मिटने को वह तैयार हो गया। मलिक शेर ने सलहदी को समझाने का प्रयत्न किया और विफल होने पर वह वापस लौट गया।

अब रायसेन किले पर जौहर चिता जल उठी, और सब अन्य रानियों एवं दूसरी सभी स्त्रियों के साथ रानी दुर्गावती तथा अपने दो बच्चों के साथ भूपत राय की पत्नी राणा साँगा की पुत्री ने भी उसमें प्रवेश किया। सलहदी के रनिवास की सभी मुसलमान स्त्रियों को भी उस जौहर–चिता में जल मरने का आदेश दिया गया तथापि उनमें से एक किसी प्रकार बच निकली। तदनन्तर सलहदी, लक्ष्मणसेन और उनके सभी साथी मरने को कृत-निश्चय होकर बहादुरशाह की सेना पर टूट पड़े तथा वीरतापूर्वक लड़ते हुए सब ही वहाँ खेत रहे। यों सोमवार, मई ६, १५३२ ई० के दिन रायसेन किले में यह जौहर हुआ और उसी दिन सलहदी भी लड़ता हुआ खेत रहा।[1] रायसेन के किले पर तब बहादुरशाह का अधिकार हो गया और उस किले के साथ ही भेलसा, चन्देरी आदि का सारा प्रदेश, जो अब तक सलहदी के अधिकार में था, कालपी के भूतपूर्व शासक, सुल्तान आलम लोदी को दे दिया गया। यों सलहदी के विस्तृत शक्तिशाली राज्य का भी अन्त हो गया।

---

१. सिकन्दरी०, पृ० १९४-५, तबकात०, ३, पृ० ३६६-७; ब्रिग्ज०, ४, पृ० १२१-२

पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
८१३	गी रायहं	गोरा यहं
८१८	रवनि	रयनि
८३२	भीज मसाना	मीन समाना
८५५	मनसि	मनहि
८९८	कोजीयइ	कीजियइ
१००६	जगौ	करौ
१०४१	चदन	नंदन
१०६३	म	सम
११३०	पराइ	पराई
१२२१	होइ अभूचा	होइअ मूचा
१२८०	गीर	पीरा
१३०८	छितारी	छिताई
१३१३	पछिम	दछिन
१३३०	माथौ	माथी
१३४४	सरि बावरी	सूरिमा बरी
१३४४ के पश्चात शीर्षक लिखें—(गढ़ के कोट की दरार पर युद्ध)		
१३८८	आराई	अराई
१४०६	महि	मइं
१४४७	भारओ	मारओ
१५१८	तेखति	देखति
१५५३	सुघर	सुघर
१५७७	सुंदरि	संभरि
१५७७	कइ ताही	कइं ताही
१६०३	चितवहि	चितवंहि
१६०४	चितवहि	चितवंहि
१६१३	कौ	
१६१९	मृगवन	मृग वन

पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
४३४	कारारे	पकारे
४४०	हरन	हरिन
४५०	सुन हकाय	सुनहु काय
४६०	पराा	परजा
४६०	परया	परजा
४६२	ह ति	हसति
४६२	३३८	२३८
४६३	गया	गयो
५३६	मूछडरीपथिआसा	मूछडरी पथि आसा
५५१	मइ हीरा	मइ हीरा
५६१	दमोहर	दमोदर
५६६	कहीं	करी
५७६	हरा एकां सुलइ	हुआए हांसुलइ
५८०	थालपंडपहि	थाल पांडपहि
६०२	अकासा	आकासा
६०६	तथा	कथा
६४६	निमन	निम्नत
६४६	समाहू	सनाहु
६५१	स म न	समान।
६५५	उ नाई	उनाई
६५५	ज ई	जाई
६५७	जोय	जीय
६७०	बिस हए	बिसहुए
६७५	म उ	मतउ
७३६	लरयो	लंघ्यो
८०७	छंत्रु	छत्रु
८१२	असउं न	असउन

सलहदी तत्कालीन मालवा का एक प्रमुख राजपूत शासक और अतीव अनुभवी सेनानायक था। मेदिनी राय के बाद सलहदी की ही गणना की जाती थी। रायसेन का किला तब कोई एक युग से भी अधिक समय तक सलहदी की राजधानी रहा था एवं वहां के उसके महलों के वैभव को देखकर बहादुरशाह के दरबार का मलिक अमीगेर भी तब आश्चर्य चकित रह गया था। 'मिरात-इ सिकन्दरी' में यत्र तत्र सलहदी के ऐश्वर्य विलास का कुछ कुछ वर्णन मिलता है। सलहदी के पास ऐसे ऐसे बरतन भाण्डे, वस्त्र, इत्र-फुलेल, आदि अनेकानेक वस्तुए थीं जो कदाचित ही किसी अन्य सुलतान या राजा-महाराजा के पास हों। सुनहरी जरी के वस्त्र पहिने सुवर्ण आभूषणों और रत्नों से सुसज्जित बनी-ठनी वहाँ की वे अतीव सुन्दर तथा अपनी-अपनी विशिष्ट कला में अद्वितीय नर्तकियाँ और उनकी वैसी ही अनुपम वे सहेलियाँ ·········· समूचे मालवा में उनका जोड़ शायद ही कहीं देख पड़ता। सलहदी के रनिवास में अनेक रानियाँ तथा कोई सात-आठ सौ उपपत्नियाँ, खवासिनें आदि थीं जिनमें कई सौ मुसलमान थीं। उन सब हो के खान-पान, रहन सहन और साज-सिंगार, आदि पर बहुत अधिक द्रव्य व्यय होता था। इस सारे ऐश्वर्य विलास में जीवन बिताकर भी सलहदी की पट रानी, रानी दुर्गावती की सुदृढ़ धर्म भावना तथा कठोर कर्त्तव्य निष्ठा बराबर बनी रही। घेरे के कठिन समय में उसने लखमणसेन आदि रायसेन किले के संरक्षकों को डटकर सामना करने के लिए प्रोत्साहित ही नहीं किया किन्तु अपने धर्मच्युत पति को भी अत्यावश्यक प्रेरणा देकर उचित मार्ग-दर्शन किया। यों मुख्यतया रानी दुर्गावती की ही दृढ़ता और प्रेरणा से रायसेन का यह जौहर हुआ तथा प्राणों की आहुति देकर सलहदी अपने उत्कटतम प्रायश्चित को चिरस्मरणीय बना सका।

पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
१६२७	निर्मनि	निर्मनि
१६३०	परिवरि	परिवारि
१६३८	गर	ऽ गर
१६६५ के पश्चात का शीर्षक (छिताई...भेजना) कम कर दीजि		
१६६८	अंसुपानि	अंसुपानि
१६८०	म गी	मागी
१६८४	मालिनि	मालिनी
१७३१	करी	करी
१७५४	कागद	कागद
१७७४	पेमकपाट	पेमकपाट
१८३१	निज गुनित	निज गुनि
१८६५	४८५	८६५
१९५३	आपै	आपै
२००२	र ज	राज
२०२०	मंतू	मंतू[२]
२०३१ के पश्चात के शीर्षक में प्राप्त		प्राप्ति
२०३४	सउंरहीं	सउंरसी
२०८१	सभी	सभी

——

परिशिष्ट ५

रायसेन का शासक सलहदी तँवर

(लेखक—डा० रघुवीरसिंह, डी० लिट्, सीतामऊ—मालवा)

इस लेख के संकेत निर्देशन

ओझा०, उदय०—उदयपुर राज्य का इतिहास, डॉ० गौरीशंकर हीराचंद ओझा कृत; भाग १-२।

टाड०—एनल्ज एण्ड एण्टीक्विटीज आफ़ राजस्थान, जेम्स टाड कृत; आक्सफर्ड संस्करण; भाग १-३।

तबकात०—तबकात-इ-अकबरी, ख्वाजा निज़ामुद्दीन कृत का अंग्रेजी अनुवाद; भाग १-३; (बिब इण्डिका)।

नैणसी०—मुहणोत नैणसी की ख्यात, काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित; भाग १-२।

फरिश्ता०—तारीख-इ-फरिश्ता अथवा गुलशन-इ-इब्राहिमी, फरिश्ता कृत; (लखनऊ संस्करण)।

बाबर०—बाबर नामा; बेवरिज कृत अंग्रेजी अनुवाद; भाग १-२।

ब्रिग्ज०—हिस्ट्री आफ़ राइज़ आफ़ मुहमडन पावर इन इण्डिया; फ़रिश्ता० का अंग्रेजी अनुवाद, जान ब्रिग्ज कृत; भाग १-४।

बेली०—लोकल मुहमडन डिनेस्टीज़ : गुजरात; एडवर्ड क्लाइव बेली द्वारा अनुवादित एवं संपादित।

मिरात०—मिरात-इ-सिकन्दरी, सिकन्दर कृत; बम्बई संस्करण।

सिकन्दरी०—मिरात० का अंग्रेजी अनुवाद, फ़ज्लुल्ला-लुत्फ़ुल्ला फ़रीदी कृत।

सलहदी तँवर

अलाउद्दीन खिलजी ने नवम्बर, १३०५ ई० में माण्डू जीत कर मालवा को पहली वार दिल्ली के मुसलमानी राज्य का एक सूबा बनाया और प्रारम्भिक तुगलक सुलतानों ने वहां मुसलमानी सत्ता को सुदृढ़ करने का प्रयत्न किया था, तथापि उस प्रदेश में छोटे-बड़े हिन्दू जमीदारों और राजाओं का अधिकार और महत्त्व बहुत कुछ बना ही रहा। फिरोज तुगलक की मृत्यु के बाद जब दिल्ली साम्राज्य का पतन हुआ और मालवा में एक स्वाधीन मुसलमानी राज्य की स्थापना हुई तब समय पाकर मालवा के राज्य-शासन में हिन्दुओं का महत्व तथा विशेषतया राजपूत वीरों का प्रभाव बढ़ने लगा। किन्तु, हिन्दुओं को यों शासन में महत्वपूर्ण पद प्राप्त होना मालवा तथा पास पड़ोस के अन्य राज्यों के भी मुसलमान सेनानायकों तथा अमीरों को कदापि रुचिकर नहीं होता था और वे सदैव उन्हें गिराने या मरवा डालने की घात के लिए सुअवसर की ताक में रहते थे, जिससे उनमें परस्पर विरोध तथा संघर्ष बराबर चलते जाते थे।

मालवा के सुलतान महमूद खिलजी ने अगस्त, १५१२ ई० में मेदिनी राय नामक बहुत ही वीर और सुविख्यात अनुभवी सेनानायक पूरबिया राजपूत को अपना वजीर बनाया। तब उसके कई कुटुम्बी, सम्बन्धी तथा अन्य साथी राजपूत सेनानायक भी महमूद की सेना में ससैन्य सम्मिलित हो गए और उनमें से कुछ को राज्य-शासन में उच्च पदों पर भी नियुक्त किया गया। मेदिनीराय के ऐसे प्रमुख राजपूत साथी सेनानायकों में सलहदी तँवर[1] भी था। उसका जन्म ग्वालियर के पास

---

1. 'सलहदी' नाम का ठीक स्वरूप क्या था यह प्रामाणिक रूप से कहना संभव नहीं। तब यह नाम इसी रूप में प्रचलित था, क्योंकि नैणसी० में इसी नाम के कुछ व्यक्तियों का उल्लेख है (१

ही मुलकन (सोजना ?) गाँव में हुआ था।[1] उसके रनिवास में अनेक रानियाँ थीं जिनमें रानी दुर्गावती ही उसकी पटरानी थी। उसका पुत्र भूपतराय संभवतः सलहदी का ज्येष्ठ पुत्र था; उसका विवाह राणा साँगा की पुत्री के साथ हुआ था।[2] दिसम्बर, १५१३ ई० में भेलसा का परगना सलहदी को जागीर में दिया गया, जो तदनन्तर १८ वर्ष तक लगातार उसी के अधिकार में रहा।[3]

मेदिनी राय और उसके साथी राजपूत सेनानायकों की शक्ति इतनी अधिक बढ़ गई कि महमूद खिलजी भी उनके हाथ में कठपुतली हो गया। मालवा के मुसलमान-अमीर आदि राजपूतों के विरोधी हो गये। और अन्त में राजपूत वजीर आदि से शंकित होकर महमूद खिलजी

पृ० २५१; ३, पृ० १०, ३५, ३६, ३८२)। 'छिताई चरित' में उसका नाम 'सलहदीन' लिखा है; छंद की मात्राएँ पूरी करने के लिए ही अंत में 'न' जोड़ा जान पड़ता है। 'मिरात-ए-सिकन्दरी' की कुछ प्रतियों में, 'अमर काव्य' में तथा मेवाड़ घराने की ख्यातों में उसे तंवर लिखा है जो मान्य जान पड़ता है। मेदिनी राय का साथी सेनानायक होने के कारण इतिहास ग्रन्थों ने उसे भी 'पूरबिया' लिखा है, परन्तु इससे राजपूतों के किसी कुल या शाखा विशेष का निर्देशन नहीं होता। 'छिताई चरित' में उसे 'जांगलो' लिखा है जो स्पष्टतया सलहदी के उग्र दुर्दम्य स्वभाव की ही ओर संकेत करता है।

१ बाबर०, २, पृ० ६१४। आज इस नाम का कोई भी गाँव ग्वालियर के आसपास नहीं है। ग्वालियर से कोई सात मील पश्चिम में 'सोजना' नामक गाँव संभवतः तब उस नाम से ज्ञात रहा होगा।

२ सिकन्दरी०, पृ० १७५; वेली०, पृ० ३६५ फ० नो०; तबकात०, ३, पृ० ३६६-७। फरिश्ता० (पृ० २२१) के अनुसार रानी दुर्गावती राणा सांगा की पुत्री थी, परन्तु यह कथन ठीक नहीं है।

३ सिकन्दरी०, पृ० १७१; तबकात०, ३, पृ० २६६, २५८।

भी उनका विरोधी हो गया। एक दिन वह माण्डू से भागकर गुजरात के सुलतान मुजफ्फर शाह के पास पहुंचा और उसकी सहायता से महमूद खिलजी ने माण्डू पर पुनः अधिकार कर लिया। परन्तु पूर्वी मालवा पर तब भी राजपूतों का ही अधिकार बना रहा। गागरोन, चदेरी, आदि उत्तरी भाग पर मेदिनी राय ने अधिकार कर लिया, और भेलसा की अपनी जागीर से लगे हुए सारंगपुर से लेकर रायसेन तक का सारा प्रदेश सलहदी ने दबा लिया और वह वहां का स्वतंत्र शासक बन बैठा। अपनी शक्ति तथा राज्य-विस्तार के लिए सलहदी को यह सुअवसर मिल गया।[1]

अक्टूबर, १५२० ई० में सलहदी का दमन करने के लिए महमूद ससैन्य भेलसा की ओर बढ़ने लगा। तब सारंगपुर के पास दोनों सेनाओं की मुठभेड हुई। अंत में राजपूत सेना भाग निकली और तब सलहदी को भी वहां से भागना पडा। कुछ समय बाद सलहदी ने कर के रूप में कुछ द्रव्य और अनेकानेक वस्तुएं महमूद को भेट कीं तथा महमूद की अधीनता स्वीकार कर क्षमा प्रार्थना की, जिससे सलहदी के साथ महमूद का पुनः मेल हो गया।[2]

जनवरी, १५२१ ई० में जब गुजरात की सेना ने मन्दसौर का घेरा डाला तब राणा सांगा भी ससैन्य वहां युद्धार्थ पहुंचा। महमूद खिलजी के साथ मन्दसौर पहुंच कर भी अंत में सलहदी राणा सांगा से जा मिला। यों अंत में गुजरात की सेना के सेनापति मलिक अयाज को राणा सांगा के साथ संधि कर मन्दसौर का घेरा उठाना पड़ा। इसके बाद गुजरात के सुलतान मुजफ्फर शाह को मालवा की ओर ध्यान देने का अवकाश ही नहीं मिला। महमूद खिलजी को न तो शक्ति

---

१ तबकात०, ३, पृ० ५८८-६०४, ६०८, ३०१-२, ब्रिग्ज०, ४, पृ० २५०-२६२, ८४-६, २०२-३, सिकन्दरी०, पृ० ६८-१०१, १०६।

२ तबकात०, ३, पृ० ६०६। फरिश्ता का इस घटना सम्बन्धी विवरण विश्वसनीय नहीं प्रतीत होता।

ही थी और न उसे साहस ही हुआ कि सलहदी के साथ पुनः कोई छेड़-छाड़ करे।[1]

भेलसा, रायसेन और सारंगपुर के अधिपति सलहदी की गणना अब मालवा के शक्तिशाली स्वाधीन शासकों में होने लगी थी। उसकी सेना में कोई ३०,००० घुड़सवार अवश्य ही थे। रायसेन उसकी राजधानी थी तथापि सारंगपुर भी सदा कदा वह निवास करता था। उसके राज्याधिकारियों में कई एक जैन धर्मावलम्बी थे। उस समय जनता में जैन यति वाचनाचार्य जयवल्लभ का, जो 'आलमी ऋषि' कहलाते थे, विशेष प्रभाव था, परन्तु राज-कार्यों में सलहदी कई बार उनके आदेश को भी अमान्य कर देता था।[2]

पानीपत के प्रथम युद्ध का विजेता बाबर जब उत्तरी भारत में अपना राज्य स्थापित करने लगा तब उसका विरोध करने के लिए, राणा सांगा ने भी राजपूत राजाओं आदि को संगठित किया, जिसमें सलहदी ने भी उसका साथ दिया, तथा शनिवार मार्च १६, १५२७ ई० के दिन राणा सांगा और उसके साथियों का खानवा के युद्ध-क्षेत्र में बाबर के साथ जो निर्णायक युद्ध हुआ तब स्वयं सलहदी और उसके पुत्र भूपतराव ने भी उसमें भाग लिया था। सौभाग्यवश वे दोनों ही इस युद्ध से बच निकले थे। बाबर चाहता था कि चंदेरी-विजय के बाद वह सलहदी के विरुद्ध चढ़ाई कर भेलसा, रायसेन, सारंगपुर, आदि परगनों और गढ़ों को जीत ले। परन्तु तभी उसे पूरब में अफगानों के विद्रोह को दबाने के लिए उधर चला जाना पड़ा।[3]

---

१ तबकात०, ३, पृ० ३१४-५; फारश्ता०, ४, पृष्ठ २६०, सिकन्दरी०, पृ० ११२-३; ओझा०, उदय०, १, ३५६-७।

२ बाबर०, २, पृ० ५६२, ५९८। जैन-युग, वर्ष १, अंक ६ में प्रकाशित अगरचंद नाहटा का लेख "मालवा के जैन इतिहास का एक आवरित पृष्ठ"। देवास परगना तब सारंगपुर के अन्तर्गत ही रहा होगा।

३ बाबर०, २, पृ० ५६२, ५७३; ५९७-८, ५९४, ओझा०,

यों बाबर के आक्रमण का खतरा तो टल गया, परन्तु इधर इन प्रदेशों की राजनैतिक परिस्थिति बहुत ही बदल गई थी। मुजफ्फर शाह का वीर महत्त्वाकांक्षी पुत्र बहादुर शाह अब गुजरात का सुल्तान था एवं महमूद खिलजी के साथ उसका विरोध ही था। पुनः खानवा के युद्ध में हार और तदनन्तर राणा सांगा की मृत्यु से मेवाड़ की शक्ति तथा प्रताप को बहुत धक्का लगा था। तथापि मेवाड़ राज्य में महमूद खिलजी की लूटमार का बदला लेने के लिए अक्टूबर, १५३० ई० के लगभग जब राणा रत्नसिंह ने मालवा पर चढ़ाई की और उधर बहादुर शाह भी बागड़ प्रदेश में आ पहुँचा तब महमूद खिलजी ने सलहदी को भी अपनी सहायता के लिए बुलाया, उसकी बड़ी आवभगत की तथा कई और परगने उसको जागीर में दिये। परन्तु महमूद की इन अनपेक्षित कृपाओं से सशंकित होकर सलहदी ससैन्य राणा रतनसिंह से जा मिला और उसके साथ ही सलहदी भी करजी की घाटी के पास बहादुर शाह की सेवा में उपस्थित हुआ। तब सलहदी ने बहादुर शाह की सेवा करना स्वीकार कर लिया। अतः जब बहादुर शाह ने मालवा पर चढ़ाई कर माण्डू के किले का घेरा डाला और माण्डू पर अधिकार कर महमूद खिलजी को सकुटुम्ब कैद कर लिया तब सलहदी बराबर बहादुर शाह के साथ रहकर उसकी पूरी-पूरी सहायता करता रहा एवं जब मालवा पर बहादुर शाह का आधिपत्य हो गया तब उज्जैन और सारंगपुर की सरकारें सलहदी को पुरस्कार स्वरूप दी गईं। रायसेन का किला, आष्टा की सरकार तथा भेलसा की जागीर भी उसी के अधिकार में यथावत बनी रही।[1]

उदय०, १, पृ० ३७४-५ फु० नो०, पृ० ३७०-१ फु० नो०, ३७६-८ फु० नो०। राणा सांगा को धोखा देकर सलहदी तँवर के बाबर के साथ जा मिलने की बात टाड० (१, पृ० ३५६) में लिखी है, परन्तु प्रामाणिक आधार ग्रंथों में उसका समर्थन नहीं मिलता एवं सर्वथा अमान्य है।

१ सिकन्दरी०, पृ० १६५-१६८, १७०; तबकात०, ३, पृ० २४१-

वर्षा प्रारम्भ होने पर जुलाई, १५३१ ई० में सलहदी बहादुरशाह से विदा लेकर अपनी राजधानी रायसेन की ओर गया, परन्तु उसका पुत्र भूपतराय तब भी बहादुरशाह की सेवा में बना रहा। वर्षा ऋतु की समाप्ति के बाद भी जब सलहदी लौटकर दरबार में नहीं आया तब नवम्बर १५३१ ई० में बहादुरशाह ने अपना एक प्रमुख अमीर सलहदी को अपने साथ लिवा लाने के लिए भेजा। परन्तु सलहदी तब भी आनाकानी और टालमटोल ही करता रहा। अपने रनिवास में सलहदी ने सैकड़ों मुसलमान स्त्रियां रख छोड़ी थीं यह जान कर ही बहादुर शाह सलहदी से रुष्ट हो गया था, और अब तो उसका रोष और भी अधिक बढ़ गया। कहीं भाग कर सलहदी मेवाड़ के राणा से नहीं जा मिले इस आशंका के कारण बहादुरशाह ने सलहदी को अपने पास बुलाने के लिए अन्य तदबीर से काम लेने का निश्चय किया। वह स्वयं गुजरात को लौट रहा था यह घोषित कर वह तदर्थ माण्डू से चल कर दिसम्बर १५, १५३१ ई० को नालछा पहुँचा।[1]

भूपतराय बहादुरशाह से बहुत ही आतंकित था एवं अपने पिता के प्रति बहादुरशाह के रोष को दूर करने के लिए वह प्रयत्नशील हुआ। उचित आश्वासन देकर सलहदी को दरबार में लाने के लिए बहादुरशाह की स्वीकृति लेकर भूपतराय अपने पिता के पास उज्जैन पहुंचा और शिकार का मिस कर बहादुरशाह भी पीछे-पीछे देपालपुर और सादलपुर तक चला गया। सलहदी को तो विश्वास हो गया कि बहादुरशाह वस्तुतः गुजरात को लौट रहा था, साथ ही ऐसे अवसर पर बहादुरशाह से अनेकानेक पुरस्कार पाने का लालच भी उसे हो आया। अतः भूपतराय को उज्जैन में पीछे छोड़ कर सलहदी तत्परता के साथ

३५८, ६१०-६१५, ३०-४; ब्रिग०, ४, पृ० २६५-२६६, ११०, ११२, ओझा०, उदय० १, पृ० ३६०-१।

१ सिकन्दरी०, पृ० १७०-१७१; तबकात०, ३, पृ० ३३५-३३६; ब्रिग०, ४, पृ० ११६-११७।

सादलपुर में वहादुरशाह की सेवा में उपस्थित हो गया। बहादुरशाह के साथ ही सलहदी भी धार पहुंचा और वहां के किले में जाकर उसने भी डेरा डाला, तब दिसम्बर २७, १५३१ ई० के दिन वहां सलहदी और उसके इने-गिने साथियों को कैद कर लिया गया। सलहदी के साथी सैनिक धार से भाग कर भूपतराय के पास उज्जैन पहुंचे और उनसे सारे समाचार सुनकर भूपतराव भी वहां से चित्तौड़ के लिए चल पड़ा।[१]

वहादुरशाह ने बड़ी तत्परता के साथ उज्जैन पर अधिकार करने के लिए सेना भेजी और वह स्वयं भी वहीं के लिए रवाना हो गया। भूपतराय के चले जाने के कारण विना किसी विरोध के उज्जैन पर वहादुरशाह का अधिकार हो गया, और तव उज्जैन तथा आष्टा के परगने अन्य मुसलमान अमीरों को जागीर में दे दिये गये। तव तेजी से बढ़ कर वहादुरशाह ने सारंगपुर पर भी अधिकार कर लिया और वह परगना भी मल्लखां को जागीर में दे दिया गया। तब आगे बढ़ कर वहादुरशाह ने भेलसा पर भी अधिकार कर वहाँ के कई एक मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट किया। तदनन्तर वहां से रवाना होकर बुधवार, जनवरी १७, १५३२ ई० को वहादुरशाह रायसेन के सामने जा पहुंचा। उधर सलहदी का भाई, लखमणसेन, रायसेन के किले को सुसज्जित कर उसकी सुरक्षा में तत्पर था, एवं तव किले के सामने पड़ाव कर रही बहादुरशाह की सेना पर आक्रमण कर उसे मार भगाने का राजपूतों ने पूरा प्रयत्न किया, किन्तु वे विफल हुए और दूसरे दिन से रायसेन किले का घेरा प्रारम्भ हुआ।[२]

वहादुरशाह की सेना के साथ कैदी सलहदी भी तब रायसेन तक पहुंच गया। घेरे की व्यवस्था, वहादुरशाह की सैनिक शक्ति

---

१ मिरात०, पृ० २५१; सिकन्दरी०, पृ० १७०-१; तबकात०, ३, पृ० ३५६-७, फ्रिग्ज०, ४, पृ० १७७-८।

२ मिरात०, पृ० २५१; सिकन्दरी० पृ० १७१-२; तबकात०, ३, पृ० ३५७-६०; फ्रिग्ज०, ४, पृ० ११८-९।

तथा आक्रमणों से निरन्तर हो रही किले की हानि, आदि को देख कर सलहदी को बहादुरशाह की जीत सुनिश्चित जान पड़ी । तब सर्वथा निराश और परिस्थितियों से विवश सलहदी किले में बन्द अपने कुटुम्बियों को बचाने और आगे भी अपना महत्व बनाए रखने के लिए स्वयं मुसलमान बनने तथा रायसेन का किला बहादुरशाह के अधिकार में करवा देने को तैयार हो गया । बहादुरशाह के स्वीकृति देने पर सलहदी ने विधिवत इस्लाम धर्म स्वीकार किया, और तब उसे कैद से मुक्त कर बहादुरशाह ने उसे सम्मानित भी किया तथा अब उसका नाम बदल कर 'सलाहुद्दीन' रख दिया गया ।[1]

अब रायसेन के किले से लखमणसेन को बुलवा कर किला बहादुरशाह को सौंप देने का सलहदी ने पुनः-पुनः आग्रह किया, परन्तु चित्तौड़ से सहायतार्थ सेना लेकर भूपतराय के वहां जल्दी ही पहुंचने की आशा तब भी लखमणसेन को थी एवं अगले दिन किला सौंप देने का वादा कर उस दिन तो वह वापस किले को लौट गया । दूसरे दिन सलहदी के बहुत यत्न करने पर भी लखमणसेन ने वह वादा पूरा नहीं किया । पुनः इसके कुछ ही बाद राजपूत घुड़सवारों के दल की बहादुरशाह की एक सैनिक टुकड़ी के साथ लड़ाई हो गई जिसमें कई राजपूत काम आए । तब यह समाचार सुनकर कि उस युद्ध में काम आने वालों में राजपूत घुड़सवारों के दल का सेनानायक, उसी का छोटा पुत्र भी था, सलहदी को बहुत ही खेद हुआ और उसी के मारे वह अचेत भी हो गया । यह बात सुन बहादुरशाह को विश्वास हो गया कि सलहदी उसको धोखा दे रहा था एवं सलहदी को उसने पुनः कैद कर माण्डू भिजवा दिया ।[2]

---

१ सिकन्दरी०, पृ० १७२, १७४; तबकात० ३, पृ० ३६०; ब्रिग्ज०, ४, पृ० ११६ ।

२ सिकन्दरी०, पृ० १७२-३; तबकात० ३, पृ० ३६०-२; ब्रिग्ज०, ४, पृ० ११६-१२० ।

इधर मेवाड़ का राणा विक्रमाजीत ससैन्य भूपतराय के साथ सहायतार्थ रायसेन की ओर चला, परंतु उसका सामना करने को जब बहादुरशाह राह में ही आ पहुँचा तब बिना युद्ध किए ही राणा ससैन्य चित्तौड़ वापस लौट गया।[1]

उधर से लौट कर बहादुरशाह रायसेन के किले के घेरे को पूरी तत्परता से चलाने लगा। अन्यत्र कहीं से कोई सैनिक सहायता प्राप्त होने की आशा अब बिलकुल ही नहीं रह गई थी। अत: अप्रैल, १५३२ ई० के उत्तरार्द्ध में लखमणसेन ने बहादुरशाह को निवेदन करवाया कि सलहदी को माण्डू से वापस रायसेन बुला लिया जावे जिससे उसकी उपस्थिति में वह रायसेन का किला बहादुरशाह को सौंप सके। लखमणसेन की प्रार्थना स्वीकार कर सलहदी को शीघ्र ही माण्डू से वापस वहाँ बुलवा लिया गया। तब लखमणसेन बहादुरशाह के पड़ाव में पहुँचा, सलहदी से मिला, बहादुरशाह से भेंट की और किले को सौंप देने का वादा कर उसे पूरा करने को वापस लौट गया। अब किले को खाली कर देने के आयोजन होने लगे। अंत में सोमवार, मई ६, १५३२ ई० को सलहदी की पटरानी, रानी दुर्गावती की ओर से बहादुरशाह को निवेदन करवाया कि सलहदी को किले पर जाने की आज्ञा दी जावे जिससे वह अपनी रानियों, अपने रनिवास की सभी स्त्रियों तथा अपने अन्य कुटुम्बियों आदि को साथ लेकर किले पर से उतार लावे। बहादुरशाह ने यह प्रार्थना स्वीकार की और मलिक शेर को सलहदी के साथ किले पर भेजा।[2]

किले पर जब सलहदी अपने महलों में पहुँचा तब लखमणसेन, रानी दुर्गावती आदि के पूछने पर सलहदी ने बताया कि रायसेन के किले तथा आसपास के प्रदेश के बदले में उसे बड़ौदा नगर और उसके आस-

---

१ सिकन्दरी०, पृ० १७३-४; तबकात०, ३, पृ० ३६२-५; ब्रिग्ज०, ४, पृ० १२०-१; ओझा०, उदय०, १, पृ० ३९४-५।

२ सिकन्दरी० पृ० १७४; तबकात०, ३, पृ० ३६५-६; ब्रिग्ज०, ३, पृ० १२१-२।

भाग का परगना दिया जाकर एवं भविष्य में उससे और भी कृपा-लाभ होने की पूरी आशा थी। तब तो लखमणसेन आदि के साथ ही उसकी पटरानी रानी दुर्गावती ने भी सलहदी की तीव्र भर्त्सना की और अंत में रानी दुर्गावती ने कहा—"ऐ सलहदी! तुम्हारे जीवन का अन्त काल निकट ही है। क्यों अब अपने गौरव और मान-मर्यादा को नष्ट करते हो। हमने तो यह निश्चय कर लिया है कि हम स्त्रियाँ तो जौहर कर चिता पर जल जावेंगी और हमारे और पुरुष लड़ते हुए खेत रहेंगे। अगर तुममें कुछ भी लज्जा शेष है तो हमारा साथ दो।" तब तो सलहदी का भी इरादा बदल गया और लखमणसेन आदि का साथ देते हुए युद्ध में मर-मिटने को वह तैयार हो गया। मलिक शेर ने सलहदी को समझाने का प्रयत्न किया और विफल होने पर वह वापस लौट गया।

अब रायसेन किले पर जौहर चिता जल उठी, और तब अन्य रानियों एवं दूसरी सभी स्त्रियों के साथ रानी दुर्गावती तथा अपने दो बच्चों के साथ भूपत राव की पत्नी राणा सांगा की पुत्री ने भी उसमें प्रवेश किया। सलहदी के रनिवास की सभी मुसलमान स्त्रियों को भी उस जौहर–चिता में जल मरने का आदेश किया गया तथापि उनमें से एक किसी प्रकार बच निकली। तदनन्तर सलहदी, लखमणसेन और उनके सभी साथी मरने को कृत-निश्चय होकर बहादुरशाह की सेना पर टूट पड़े तथा वीरतापूर्वक लड़ते हुए सब ही वहाँ खेत रहे। यों सोमवार, मई ६, १५३२ ई० के दिन रायसेन किले में यह जौहर हुआ और उसी दिन सलहदी भी लड़ता हुआ खेत रहा।[1] रायसेन के किले पर तब बहादुरशाह का अधिकार हो गया और उस किले के साथ ही भेलसा, चन्देरी आदि का सारा प्रदेश, जो अब तक सलहदी के अधिकार में था, काल्पी के भूतपूर्व शासक, सुल्तान आलम लोदी को दे दिया गया। यों सलहदी के विस्तृत शक्तिशाली राज्य का भी अन्त हो गया।

---

१. सिकन्दरी०, पृ० १९४-५, तबकात०, ३, पृ० ३६६-७; ब्रिग्ज०, ४, पृ० १२१-२

शुद्धि-पत्र

(छिताईचरित के पाठ में कुछ अशुद्धियां रह गई हैं। पाठकों से निवेदन है कि वे उन्हें इस शुद्धिपत्र के अनुसार अवश्य शुद्ध करलें।)

पंक्ति संख्या (पाठ की)	अशुद्ध	शुद्ध
१५	गया	गईयो
३६	पारजात	परिजाति
५६	उच्छालहि	उछारहि
६६	करह	करहि
८८	लाहि	जाहि
९२	वीना	बीन
१६८	जानी	धानी
१९६	धलाई	घलाई
२००	मदुम ता	मदुमातो
२००	स्यादहि	स्वादहि
२३०	१०८	१०९
२३६	वानी	थानी
२४०	गुनी	ऽ गुनी
२४२	द्रिठ	द्रिढ़
२५८	जल कूकरी	जलकूकरी
३२४ (के पश्चात शीर्षक)	छिताई को	छिताई के
३५१	कोकिला	कोकिल
३५६	फिरही	फिरहीं
३५६	गिरिही	गिरहीं
३८५	सुढारति	सुढारनि
३९०	वर रस माना	वररि समाना
४३०	सउंरासी	सउंरसी

पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
४३४	कामारे	कमारे
४४०	हरन	हरिन
४५०	गुन हकाय	गुनह काय
४६०	गरता	गरजा
४६०	परसा	परजा
४६२	ह थि	हसथि
४६२	३३८	२३८
४६३	गया	गयौ
५३६	मूछजरीपथिजाता	मूछजरी पथि जाता
५५१	मइहीरा	मइडीरा
५६१	दमोहर	दमोदर
५६६	कहीं	करी
५७६	हरा एहां सुलइ	हरीए हांसुलइ
५८०	वालगांडपहि	वाल गांडपहि
६०२	अकासा	आकासा
६०६	तथा	कथा
६४६	निमन	निम्मन
६४६	समाह	सनाह
६५१	स म न	समाना
६५५	उ नाई	उनाई
६५५	ज ई	जाई
६५७	जोय	जीय
६७०	बिस हए	बिसहए
६७५	म उ	मतउ
७३६	लरयो	लंघ्यो
८०७	छंन्	छन्
८१२	असउं न	असउन

पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
८१३	गी रायहं	गोरा यहं
८१८	रवनि	रयनि
८३२	भीज मसाना	मीन समाना
८५५	मनसि	मनहि
८६८	कोजीयइ	कीजियइ
१००६	जगी	करी
१०४१	चदन	नंदन
१०६३	म	सम
११३०	पराइ	पराई
१२२१	हाइ अभूचा	होइअ मूचा
१२८०	गीर	पीरा
१३०८	छितारी	छिताई
१३१३	पछिम	दछिन
१३३०	मावी	माथी
१३४४	सरि बावरी	सूरिमा बरी

१३४४ के पश्चात शीर्षक लिखें—(गढ़ के कोट की दरार पर युद्ध)

पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
१३८८	आराई	अराई
१४०६	महि	मइं
१४४७	भारओ	मारओ
१५१८	तेखति	देखति
१५५३	सुधर	सुघर
१५७७	सुंदरि	संभरि
१५७७	कइ ताही	कइं ताही
१६०३	चितवहि	चितवहिं
१६०४	चितवहि	चितवहिं
१६१३	कों	
१६१६	मृगवन	मृग वन

पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
१६२७	निगनि	निग्नि
१६३०	परिवरि	परिवारि
१६३८	गार	ऽ गार
१६६५ के पश्चात का शीर्षक (पिताई...भजना) कम कर दीजिए।		
१६६८	ध सुपाति	धंसुपाति
१६८०	म गी	मागी
१६८४	मानिनि	मानिनी
१७३१	गनी	कनी
१७५४	मागई	मांगई
१७७४	पेमकपट	पेमकपाट
१८३१	निज सुनिउ	निज गुनिउ
१८६५	४८५	८६५
१९५३	झापे	झापि
२००२	र ज	राज
२०२०	कंतू	गंतू[3]
२०३१ के पश्चात के शीर्षक में	प्राप्त	प्राप्ति
२०३४	सउंरही	सउंरसी
२०८१	सयी	समी

सलहदी तत्कालीन मालवा का एक प्रमुख राजपूत शासक और अतीव अनुभवी सेनानायक था। मेदिनी राय के बाद सलहदी की ही गणना की जाती थी। रायसेन का किला तब कोई एक युग से भी अधिक समय तक सलहदी की राजधानी रहा था एवं वहां के उसके महलों के वैभव को देखकर बहादुरशाह के दरबार का मलिक अमीगेर भी तब आश्चर्य चकित रह गया था। 'मिरात-इ सिकन्दरी' में यत्र तत्र सलहदी के ऐश्वर्य विलास का कुछ कुछ वर्णन मिलता है। सलहदी के पास ऐसे ऐसे बरतन भाण्डे, वस्त्र, इत्र-फुलेल, आदि अनेकानेक वस्तुए थीं जो कदाचित ही किसी अन्य सुलतान या राजा-महाराजा के पास हों। सुनहरी जरी के वस्त्र पहिने सुवर्ण आभूषणों और रत्नों से सुसज्जित बनी-ठनी वहाँ की वे अतीव सुन्दर तथा अपनी-अपनी विशिष्ट कला में अद्वितीय नर्तकियाँ और उनकी वैसी ही अनुपम वे सहेलियाँ .... समूचे मालवा में उनका जोड़ शायद ही कहीं देख पड़ता। सलहदी के रनिवास में अनेक रानियाँ तथा कोई सात-आठ सौ उपपत्नियाँ, खवासिनें आदि थीं जिनमें कई सौ मुसलमान थीं। उन सब ही के खान-पान, रहन सहन और साज-सिंगार, आदि पर बहुत अधिक द्रव्य व्यय होता था। इस सारे ऐश्वर्य विलास में जीवन बिताकर भी सलहदी की पट रानी, रानी दुर्गावती की सुदृढ़ धर्म भावना तथा कठोर कर्त्तव्य निष्ठा बराबर बनी रही। घेरे के कठिन समय में उसने लखमणसेन आदि रायसेन किले के संरक्षकों को डटकर सामना करने के लिए प्रोत्साहित ही नहीं किया किन्तु अपने धर्मच्युत पति को भी अत्यावश्यक प्रेरणा देकर उचित मार्ग-दर्शन किया। यों मुख्यतया रानी दुर्गावती की ही दृढ़ता और प्रेरणा से रायसेन का यह जौहर हुआ तथा प्राणों की आहुति देकर सलहदी अपने उत्कटतम प्रायश्चित को चिरस्मरणीय बना सका।